श्रीः ।

बृहन्निघण्टुरत्नाकरान्तर्गते-

सचित्रेप्रथमभागे,

शारीरकं शस्त्रचिकित्सितं च ।

हिन्दीभाषानुवादसमेतम् ।

मथुरानिवासि-माथुरदत्तरामेण

सङ्कलितं संशोधितं च ।

सोऽयं

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

इत्यनेन,

स्वकीये'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर'मुद्रालयेऽङ्कित्वा

प्रकाशितः ।

कल्याण-मुंबई.

शाके १८१७ संवत् १९५२.

क कियाजायगा) उपरांत बालकके जन्मोत्तरविधि, प्रसूताके नियम, बालककी रक्षाविधान, बालककी प्रकृतिवर्णन, देशवर्णन, काल वर्णन, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, अवस्था वर्णन, व्याधि आदिके लक्षण, चिकित्सा वर्णन, यंत्राध्याय, शस्त्राध्याय, विशिखानुप्रवेशनीयाध्याय, शकुन, दूत, कालज्ञान, औषधके लक्षण, और औषध परिभाषा, द्रव्यकी परीक्षा, औषध ग्रहणमें औषधकी, संकेत, प्रतिनिधि, द्रव्यगत पंचपदार्थ, दीप्तादिगुण, हरीतक्यादि, सर्व औषधोंके प्रसिद्ध नाम, संस्कृतनाम, और यथाप्राप्त अंग्रेजी फारसीके नाम गुण।

औषधोंके तोल हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी; स्वरस, मंथ, हिम, फांट, क्काथ, तैल, घृत, आदि की विधि; धातूनका शोधन मारण सविस्तर वर्णन होगा;वमन, विरेचन, अनुवासन, स्वेदन, और स्नेहनविधि, धूम्रपान, गंडूषविधि, जोक लगाना, दागना, फस्तखोलना, नेत्रप्रसादन कर्म, नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, स्पर्श, स्वर, और मलपरीक्षा, अग्रोपहरणीयाध्याय, योग्यासूत्रीय, क्षारपाक, दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञाना, कर्णवेध और बंधन, आमपक्वैषणीय, त्रिस्रैषणीय, हिताऽहित, कृत्याकृत्य इन अध्यायोंका वर्णन, निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, और, संप्राप्ति का वर्णन, ज्वररोग का ज्योतिषद्वारा निर्णय, ज्वर का निदान, ज्वर की चिकित्सा, (जिसमें हिम, फांट, क्काथ, गोली, तैल घृत, पाक, चूर्ण, आसव, रस, और मंत्रादि द्वारा ज्वरका निवारण तथा फारसी चिकित्सा, अंग्रेजी निदान चिकित्सा, भी कुछ कहा है) ज्वरका कर्मविपाक तथा धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त वर्णन–इसी प्रकार अतीसार संग्रहणी, बवासीर, पांडू, रक्तपित्त, क्षई, खासी, श्वास, से आदिले बालविरोग, स्त्रीरोग और विषरोगपर्यंत की चिकित्सा, लिखी है, तिसके पीछे वाजीकरणाधिकार अर्थात् नपुंसक की चिकित्सा, और रसायनाधिकार लिखा जायगा, । ए सब विषय इस ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक वर्णन करे हैं। प्रथम संस्कृत श्लोक और उसके नीचे सरल भाषा टीका लिखी जायगी। और अन्य ग्रंथोंसे इस ग्रन्थमें यह अति विचित्रता है कि जो प्रकर्ण लिखादे वो इसमें गुरु शिष्यके संवाद पूर्वक लिखाहै. इसमें सर्व पठन पाठन कर्त्ता मनुष्योंके इसके विषय बहुत ठीक २ कंठाग्र होसकते हैं।

इस ग्रन्थमें यह भी नियम रहेगा कि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट, और भावप्रकाशमें जो विषय उत्तम हैं उन सबकी भाषाटीका करके इसमें लिखेंगे, बहुत कहाँतक

लिखे यह एक ही ग्रन्थ भारतवासी पुरुषोंके लिये ऐसाहै कि अब दूसरे ग्रन्थ लेनेका कुछ प्रयोजन न रहैगा. जिनको थोडाभी शास्त्रमें परिचय है उनको यह ग्रन्थ अति उपकारी होगा. सर्व साधारण गृहस्थोंको अपने देहकी और अपने संतति आदि की रक्षार्थ इस ग्रन्थकी एक एक प्रति घरमें अवश्य रखनी चाहिये । अल-मतिविस्तरेण ।

आपका-दत्तराम चौबे मथुरा निवासि०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना-कल्याण-मुंबई.

प्रस्तावना.



श्रीमान् भरतखंडनिवासी वैद्यजनोंको सविनय विदित करनेमें आता है कि, इस संसारका मूल केवल शरीर है. जिस शरीरके उपभोगकेवास्तेही अनेक प्रकारकी युक्तियोंके साथ अनेक अनेक इस संसारके पदार्थ तैयार होते हैं. ऐसा कोई पदार्थ दीखनेमें और सुनेमें नहीं आता है कि, जिस पदार्थका उपयोग इस शरीरको नहीं होय. और चार प्रकारके पुरुषार्थोंको वश करनेमें इस जीवमात्रको शरीरके सिवाय दूसरा साधन नहीं है कि,—जिससे वो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ए चतुर्विध पुरुषार्थ साधले. इस्में प्रमाण यह है कि, "देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम्" ऐसे इस पुरुषार्थचतुष्टयको कारणीभूत इस शरीरको रक्षण करना यह सर्व जीवमात्रको इष्टहै, इस शरीरको रोगरहित रखना यहही इसका रक्षण है. इससे तो यह सिद्ध भया कि, यदि शरीर है और वह सदा रोगग्रस्त है तब उसकरके कौनसा पुरुषार्थ हो सक्ता है? इसवास्ते पुरुषार्थोंका साधन आरोग्य (नीरोग शरीर) ही कहना यहही योग्य है. इस्में यह प्रमाण है कि, "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्" अब देखिये विद्वज्जन हो! प्रथम तो कहा है कि, पुरुषार्थसाधन शरीर है. अब कहा कि, पुरुषार्थ साधन आरोग्य है. ऐसी दो प्रकारकी उक्ति क्योंकर होती है? ऐसे संदिग्ध विषयमें विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि, इन दोनों उक्तिओंसें एकही अर्थ निकलता है कि, रोगरहित शरीरही पुरुषार्थोंका साधन है, अब उस शरीरके आरोग्यका और जीवन कहिये आयुष्य तथा कल्याणका हरण करनेमें रोग निरंतर तत्पर रहते है. इस्में यह शार्ङ्गधरका प्रमाण है कि, "रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च" इसवास्ते उन रोगोंका नाश होना यहही शरीरका रक्षण है.

ऐसे इस शरीरके रक्षणके वास्ते चिकित्सा कहिये औषध आदिकोंका उपचार करना आवश्यक है. अब अमुक रोग होय, तो उसपर अमुक चिकित्सा करना चाहिये, ऐसा ज्ञान होनेके वास्ते तिषट आदि आचार्योंने केवल लोकोपकारार्थ आयुर्वेदके ग्रंथ बनाये है, यह आयुर्वेद साक्षात् उपवेद है. इस्में यह प्रमाण है कि "ऋग्वेदस्योपवेदोयमायुर्वेद इति स्मृतः। सृष्ट्युत्पादनचिंतेन स्मृतः पूर्वं स्वयंभुवा॥" इत्यादि। इस आयुर्वेदकी संहिता पृथक् पृथक् बहोतही होगई है, परंतु ये संहिताग्रंथ बहोतही कठिन है. इसीसे उन सब ग्रंथोंको कोई प्रायः नहीं पढसक्ता है.

इस हेतुसे सर्वसाधारण मनुष्यमात्रको उस आयुर्वेदका सहजहीमें ज्ञानहोनेके वास्ते हमारा (बृहन्निघंटुरत्नाकर) ग्रंथमें प्रयत्न है.

इस पुस्तकको मथुरानिवासी पंडित दत्तराम चौबे इन्होंसे बनवाकर हमने अपने "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें छपाया है. इस सर्वभी ग्रंथका आरंभसे लगाकर सब रजिष्टरी हक्क राजनियमके अनुसार हमने अपने स्वाधीन रक्खा है. कोईभी महाशय अविचारसे छपनेकी चेष्टा नहीं करे.

अब हम अपने ग्राहकजनोंको प्रार्थना करते हैं कि--यह चौथे वर्षका चतुर्थ भागभी तैयार होकर आप लोगोंके दर्शनकी इच्छा कर रहा है. इस वास्ते सुजन वैद्यलोग इसको अपना उदार आश्रय देकर कृतकृत्य करेंगे. और इसके साहाय्यसे रोगोंका विनाश करके अपने और दूसरेके शरीरको आरोग्य करके सर्वकार्यदक्ष शरीरद्वारा धर्मादिक चतुर्विधपुरुषार्थोंको प्राप्त होकर अपने मानवजन्मको सफल करेंगे, इति शम् ।

आपका कृपाभिलाषी-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-कल्याण-मुंबई.

द्रष्टव्य सूचना।

लीजिये ! देखिये ! अवश्य देखिये ! निरन्तर देखिये !
फिरभी देख लीजियेगा !

ऐसा कौन मनुष्य होगा कि, जिसको वैद्यविद्यासे प्रीति न होगी, और साल-भर में दो चार दफे इसके अनुशरण कर्त्ता वैद्य का आश्रय न लेताहो। क्योंकि यह देह रोगोंका घर है। यथा " शरीरं रोगमन्दिरम् " अतएव सर्व देशहितैषी, राजा महाराजा और सत्पुरुष वैद्यकी अत्यन्त तन मन धनसे प्रतिष्ठा करतेहैं तथा वाग्भट, वैद्यको प्राणोंका आचार्य्य लिखते हैं। " राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्य्यंनिवेशयेत् " अर्थात् राजा प्राणाचार्य्य (वैद्य) को अपने घरके पास रक्खे। इस वाक्य को भारतवासी राजा महाराजा और सेठ साहूकार आदि तो सामान्य मानते हैं परन्तु मानना अंग्रेजोंका सत्य है कि विना डाक्टरके पत्ताभी नहीं हिलाते। इसी कारण देखिये कि जैसे हृष्टपुष्ट अंग्रेजहैं, वैसे इस आर्यावर्त्त के मनुष्य बहुत थोड़े निकलेंगे। यह वैद्यविद्या ऐसी वस्तु है कि जो सर्वथा कुछ नहीं पढ़े वेभी एकदो औषधि अवश्य कंठाग्र रखतेहैं। और तो क्या पशु, पक्षी, आदिभी जब उनके रोग होते हैं, तो वेभी वनस्पति आदि खाकर वमन, विरेचनद्वारा अपनी देहकी रोगों से रक्षा करते हैं, अब जो मनुष्य होके रोगोंसे देहरक्षा न करे, वो पशुओंसेभी बढ़कर है। इस लिखनेसे हमारा यह प्रयोजन है, आज कल इस भारतखंडमें बहुतसे मनुष्योंने देशोन्नतिपर कमर बांध रक्खी है परंतु जिसदेहसे अनेक अलभ्य वस्तुओंका लाभ हो सक्ता है, उसकी ओर कुछभी दृष्टि नहीं है। प्रत्येक वर्षमें हजारों मनुष्य इन रोगरूप शत्रुओंके द्वारा वध किये जाते हैं। अतएव हम सबको चाहिये कि, जैसे बने तैसे अपनी देहरक्षा सर्व प्रकार करे। क्योंकि नीतिमें लिखा है कि आपत्तिके अर्थ धनकी रक्षा करे, और धनसे स्त्री पुत्रादिकी रक्षा करे, तथा धन और स्त्री पुत्रादि द्वारा अपने आपकी रक्षा करनी चाहिये। सो देहरक्षा वैद्य पर निर्भरहै। परंतु वैद्योंकी तरफ देखते हैं तो निरक्षर भट्टाचार्य जिनको यहभी ज्ञान नहीं है कि निदानचिकित्सा किस चिड़ियाका नामहै और राजका आतंक न होनेसे माली, काछी, धोबी, कोरी, आदि नीच जात जिसकी इच्छा हुई वो दो चार झूठी मूठी दवाई ले वैद्य बन बैठे।

मालाकारश्चर्मकारोनापितोरजकस्तथा
वृद्धारण्डाविशेषेणकलौपञ्चचिकित्सकाः ॥

यथा ।

अर्थ–माली, चमार, नाई, धोबी और वृद्ध रंडा स्त्री, ये पांच कलियुगके वैद्य हैं देखो ऐसे वैद्योंके होनेसे कैसा अनर्थ हुआ है कि, इनके आगे अब पढ़े लिखे वैद्य की पूछ कम होगई और इसी कारण हिन्दुस्थानमें आयुर्वेद शास्त्रका पठन पाठन दिन प्रति दिन अस्तप्रायसा होगया ।

दूसरे ऐसेही वैद्योंसे अब वैद्योंकी औषधका विश्वास जाता रहा । और मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि आज कल हकीमोंकी और डाक्टरोंकी औषध तत्काल फलदायक है और जो शारीरक अर्थात् देहके अवयवोंका ज्ञान, तथा चीरना फाड़ना, तथा यंत्र और शस्त्र इत्यादि इनके हैं वो, हमारे वैद्य शास्त्रमें तो देखनेकोभी नहीं हैं ऐसे ऐसे अनेक कारणोंको सोचा तो यही निश्चय हुवा ।

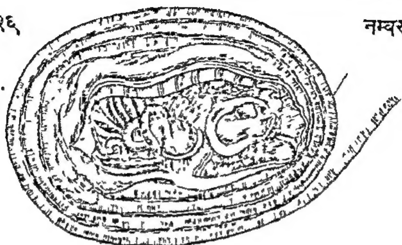
कि यह केवल अपने बडे२ग्रन्थोंके पठन पाठन उठ जानेका कारण है यदि अपने ग्रन्थोंको देखें तो कदापि डॉक्टर और हकीमोंकी विद्यामें लालसा न होवे । दूसरे इस उष्ण प्रधान देशमें यूरोप आदि शीतदेशोंकी अतितीक्ष्ण औषधोंकी अपेक्षा हमारी भारतीय मृदुवीर्य्य औषधि सर्वथा कल्याण कर्त्ता है इससे हमको चाहिये कि अपने प्राचीन ग्रन्थोंको अवश्य देखें; परन्तु प्रथम उन ग्रन्थोंका मिलना कठिन, यदि मिलेभी और शुद्धाशुद्ध मिले तो फिर क्या कामके और शुद्धग्रन्थभी मिले तो उनके पढानेवाले तथा पढनेवाले न मिलेंगे, इन सब कारणोंको विचार यह निश्चय हुआ कि ।

कोई ऐसा ग्रन्थ रचाजाय कि जिसके देखनेसे ही सर्व आयुर्वेदके विषय सुगम रीतिसे मालूम होजावे और जो जो विषय जिस २ ग्रन्थके उत्तम होवें वो इसमें यथाक्रमपूर्वक लिखे जाँवें, तथा उचित २ स्थानोंमें फारसी इंग्रेजीका भी मत प्रकाशित कराजावे यह विचार हमने बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थ रचनेका प्रारंभ करा ।

इस ग्रन्थमें आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्याय, शिष्योपनयनीयाध्याय, अध्ययनसंप्रदानीयाध्याय, प्रभाषणीयाध्याय, इसके अनन्तर, १० अध्यायोंमे शारीरक, जिसमें (गर्भवतीके नियम, मनुष्यके देहके संपूर्ण अवयवोंका पृथक् २ वर्णन विस्तार पूर्व-

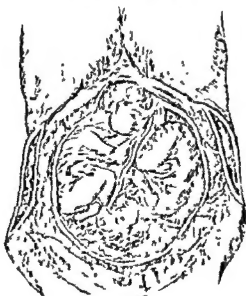
गर्भाशयका चित्र.

पृष्ठ ११६ नम्बर १

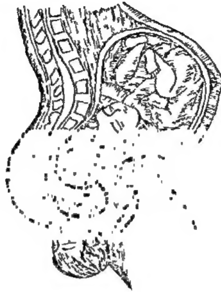


यमलगर्भका चित्र.

पृष्ठ १२६ नम्बर २



अनेक गर्भका चित्र-





राक्षसी गर्भका चित्र.

पृष्ठ १३२ नंबर ४



फुप्फुस (फेफडा)

पृष्ठ १८० नंबर ५



इस फुप्फुसचित्रमें ग श्वासनाड़ी इसके द्वारा मुखनासाकृप बाहरकी वायु फुप्फुसमें प्रवेश करे हैं.

ष मूल अन्ननाडी.

ड. आभ्यंतर कंठशिरा

ज.छ.झ.रच ये विशेष २ शिरा.

अ ऊर्द्धस्थूल महाशिरा.

ट धमनी मूल.

च ऊर्ध्वस्थ दक्षिण हृत्कोष्ठ

ड दक्षिण फुप्फुस धमनी.

थ धामनिक प्रणाली.

त वाम फुप्फुस धमनी.

ह निम्नस्थ दक्षिण हृत्कोष्ठ.

म हृद्गर्भीयवृत्ति.

क्ष निम्नस्थूल महाशिरा.

ए ऊर्द्धस्थ वाम हृत्कोष्ठ.

ल निम्नस्थ वाम हृत्कोष्ठ.

फ फुप्फुस

क फुप्फुसका ऊर्द्ध खण्ड

द फुप्फुसका मध्यखंड और नीचे का खंड.

पुंजननेंद्रिय.

पृष्ठ १९१ नम्बर ६

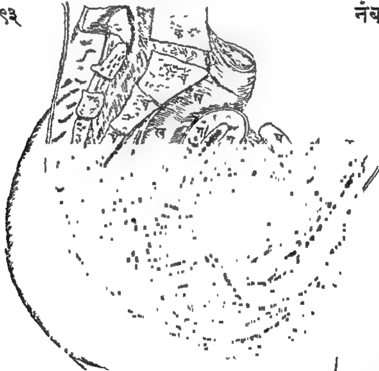


इस पुंजननेंद्रियसंज्ञक चित्रमें **क** वस्ति वा मूत्राशय-

ध	उपस्थिकास्थिसन्धि-		
तट	मेढ्रभूमि. .	द	वस्तीका अधोदेश-
ड	कलायिका-	अ	मूत्रस्रोतः
फ	अण्डकोश-	च	रेतोनाड़ी शुक्रवाहिनी.
घ	बीजकोश	ख	मूत्रनाडीरन्ध्र
तट	इस जगेसे ल पर्यंत मेढ्र	छ	त्वक्
मु	लिङ्गमुंड	न	शलाका व्यवहारकी अवस्था लिंग इस प्रकार आकृष्ट तथा गुदा करके इस रन्ध्रमें शलाका प्रवेश करी जानी है.
य	लिंगसरित् वा लिंगग्रीवा-		
ल	असंसक्त अग्रचर्मः		
प	लिंगगात्र		

स्त्रीजननेंद्रिय-

पृष्ठ१९२ नंबर७



इस स्त्रीजननेंद्रिय संज्ञक चित्रमें भ भगमणि.

न	भगोष्ठ.	प	गुदा
ध	भगपक्ष.	ठ	उपस्थिकास्थिसंधि.
द	भगलिंग	फ	मज्ञस्त रज्जु.
त	योनि वा स्त्रीन्द्रियविवर.	क	कटिस्थ निम्नकशेरुका.
ग ग	जरायु वा गर्भाशय.	च च च	त्रिकास्थीका ऊर्ध्वांश.
य	डिम्ब कोश.	च	त्रिकास्थीका निम्नांश.
ट	मूत्रनाडी.	ख ख	कलावृत निम्नांत्र.
छ	वस्ति वा मूत्राशय.		

इस नरकङ्काल संज्ञक चित्रमें न गुल्फ सन्धि और उस जगेकी सात हड्डी इसके अग्रभागमें पांच पैरकी उंगली.

ढ	गुल्फसन्धि.	ङ.	और घ प्रकोष्ठस्थ (कलाईकी) दो हड्डी.
ठ	तथा ड जंघास्थि अर्थात् जंघाकी दो हड्डी.	ग	कूर्परसन्धि अर्थात् कोहनीकी-सन्धि.
ञ	जानुसन्धि.	ख	प्रगण्डस्थ अस्थि अर्थात् बाजूकी हड्डी.
ट	जान्वस्थि वा घोटू.	द	स्कंधसन्धि तथा अंसास्थि.
ऊ	ऊर्वस्थि	क	पृष्ठवंश इसके सन्मुख उरोस्थि इनके उभय पार्श्वस्थ जत्रुद्वयक रके सहित मिला हुआ है.
ज	वंक्षणसन्धि.		
थ	श्रोणयस्थि.		
छ	हस्ताङ्गुलि सकल.		
छ	यहांसें लेकर च पर्यंतके अंशमें पांच रकभास्थि.		
च	मणिबन्धस्थ पहुंचेकी आठ हड्डी.		

पृष्ठवंश क यहांसें लेकर गुह्य देशके पश्चात् भागमें समाप्त हुआहै. इसके निम्न खंडका नाम त्रिक है.

द यहांसें लेकर उरोस्थिपर्यंत जत्रुद्रूपक होती है.

त पांशुओंका समूह है.

पृष्ठवंश अर्थात् पीठके वांसके ऊपर में वदनमंडलास्थि तथा परोट्यस्थि आदि जाननी.

पृष्ठ २३७ नंबर ८

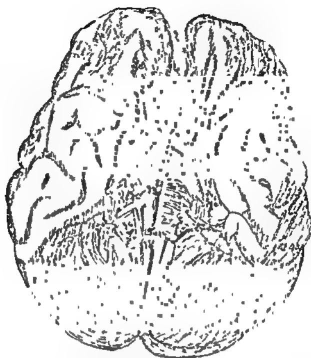


नरकङ्काल

अथवा मनुष्य अस्थिपंजर.

मस्तिष्क संबन्धिचित्र.

पृष्ठ २४० नंबर९



इस मस्तिष्क संबंधी चित्रमें १-२-३-४ चिन्ह इत्यादिसें लेकर १८-१९-२० चिन्हपर्यन्त मस्तिष्कका नीचेका प्रतिरूप तिन्होंमें.

१ क्षुद्रमस्तिष्क.	८ दर्शनस्नायुनदेश.
३ मस्तिष्कका अग्रखंड.	९ नेत्रसंदकस्नायु.
४ घ्राणस्नायु.	१० दृष्टिसन्धि.
७ दर्शनस्नायु	१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश.

स्नायुप्रदर्शक चित्र.

इस चित्रमे क मस्तकस्थ

बृहत् मस्तिष्क.

पृष्ठ २४१. नंबर १०

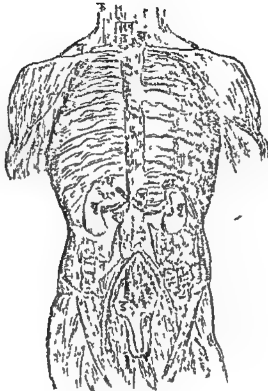


ख.	क्षुद्रमस्तिष्क		
ग	ग्रीवास्नायु	ठ	[illegible]स्नायु.
घ	वदनस्नायु	ग	[illegible]ाभ्यंतरस्नायु.
ङ.	प्रगंडसन्धिस्नायु	ड	जानुपश्चात्स्नायु.
ज	प्रगंडस्नायु	ट	जान्वभिमुखस्नायु.
च	प्रकोष्ठस्नायु.	ण	पदतलस्नायु.
छ	प्रकोष्ठनिम्नस्नायु	टि	कटिस्नायु.
झ	करतलस्नायु	त	ऊरूस्नायु.

शिराप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ २७०

नंबर ११



इस शिराप्रदर्शक चित्रमे क ख ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठ शिरा.

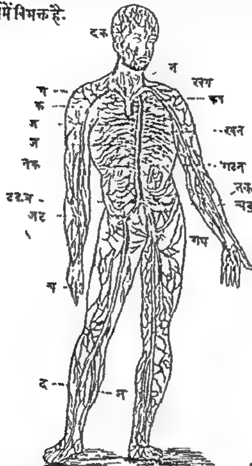
ग अनारव्यात शिरा.
घ जत्रुनिम्नाशिरा.
वृ वृक्कद्वय.
द वृक्कशिरा.
ध ऊर्द्ध्व वृक्कग्रंथिशिरा.
ड रेतो रज्जू शिरा.
थ बाह्य बस्तिशिरा.

जत्रुके नीचे उर्द्धस्थ महाशिरा तथा बस्तीसें अधस्थ महाशिरा.

धमनीप्रदर्शक चित्र.

इस धमनीप्रदर्शक चित्रमें ख ग धमनी मूल यह ऊर्ध्वाभिमुखी. पश्चाद्गामी तथा निम्नमुखी ये तीन अंशोमें विभक्त है.

पृष्ठ ३०२ नंबर १२



द् क	कपालस्थधमनी.	च	उदरस्थनाडी
झ न	गलस्थधमनी.	द्	नलकास्थीयधमनी.
ग	कंठस्थ धमनी.	न	जानुपश्चात् धमनी.
क	कक्षनाडी	व	जानुस्थ सन्मुख नाडी.
ज	धमनीस्कंध वा वक्षःस्थमूलनाडी	ख त	पर्शुकाभ्यंतर धमनी.
त ड	उदरस्थमूलनाडी.	ह क	प्रगंडीय नाडी.
ट ड.ज	अभ्यंतर(भीतरकी)बस्तिनाडी	त क	मणिबंधस्थनाडी.
ज ट	बाह्य(बाहरकी) बस्तिनाडी	ग घ	प्रकोष्ठीय धमनी.

मूढगर्भप्रदर्शकचित्र.

पृष्ठ २३६

नं० १८

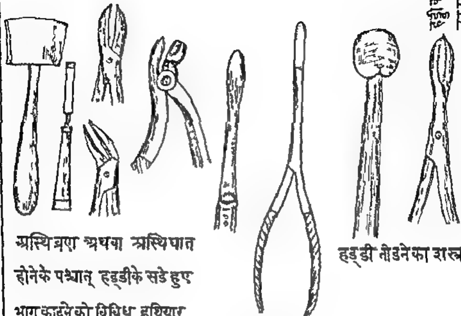








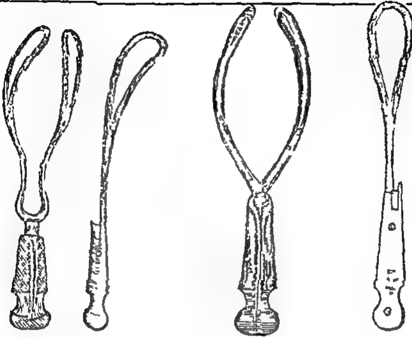
मूढगर्भवेधक विविध शस्त्र-



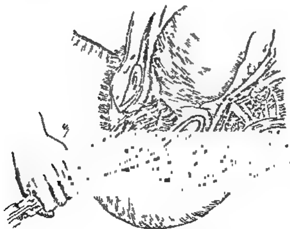




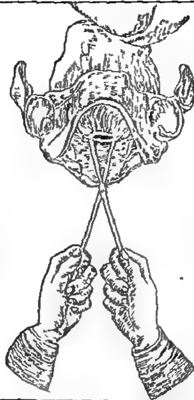
मूढगर्भ निकालनेके शस्त्र.



मूढगर्भआहरणप्रदर्शक चित्र.



मूढगर्भ निकालने का चित्र.



मूढगर्भ तोडनेके शस्त्र.







अंत्र (आंतडें) प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ४४०

नंबर २०



इस आंतडेके चित्रमें २ गलनालीका शेषांश, अन्ननाडी मुखसें लेकर इस स्थान आमाशयसें मिलित होती है.

१-२-३-४ ये चिन्ह गर्भवेष्टित नाडीके है- ५ इस आकृति विशिष्ट यन्त्रको आमाशय (पाकस्थली) अन्न मुखसें गलनाडीमें होकर इस स्थानमे

पतित होतीहै. ५-६ चिन्हांकित अधोमुख गामिनी नाड़ी ग्रहणी-इस स्थानमें सूक्ष्म नाड़ी विशेष मार्गमें यकृत् यहांसे पित्तरस आयकर आमाशयगत अन्नके साथ मिलताहै.

५-६-७-८- चिन्हांकित वृहत् नाडी क्षुद्रांत्र तिनमें ५-६- चिन्हित भागका नाम ग्रहणी है. ग्रहणीके परेजो अंश उसको पक्वाशय कहते हैं. इस जगेसे क्षुद्रान्त्र अतिशय कुंडलाकृति होकर अवस्थित है. भुक्त द्रव्य आमाशयसे समुदाय क्षुद्रांत्र परिवेष्टन करके तथा विविध पाचक रसके साथ मिलकर और जीर्ण होकर रहता है. क्षुद्रांत्रके निम्नवर्ती कोई दो२ अंश कारण विशेष करके कोषादिमें प्रवेश कर इसीका नाम अंत्रवृद्धि पीडा.

९-१०-११-१३-१४- इत्यादि चिन्हित नाडी स्थूलांत्र इनमें ९-११ चिन्हके तरफ अर्थात् दक्षिण पार्श्वके अंशके ऊर्ध्वगामी स्थूलांत्र तथा १३-१४ चिन्हवाले अर्थात् वामपार्श्वके अंशके अधोगामीको स्थूलांत्र कहते हैं. इन दोनोंके मध्य क्षुद्रान्त्रोंके ऊर्द्धस्थ अनुमस्थ अंशको अनुमस्थ स्थूलांत्र कहते हैं. प्रवाहिकादि पीडा स्थूलांत्रमें विशेष करके अधोगामी स्थूलांत्रोंमें क्षत.पीडा होनेसें रक्तादि विसृत होताहैं.

१५- अंक चिन्हित निम्नाभिमुख अंत्रांशको गुदा कहते हैं. इसका सर्व निम्नांश गुह्यद्वार रूप परिणामको प्राप्त हुआ है. प्रवाहिकादि रोग इसी स्थानमें तथा स्रवादि होते हैं. तथा इसी स्थानमें बवासीरके मस्से होते हैं इस निम्नाभिमुख अंत्र तथा उसके ऊर्ध्वस्थ स्थूलान्त्रांशको मलाशय कहते हैं. अधोगामी अंश(गुद) पुरीषनिर्गमक है.

पाकस्थली प्रदर्शक चित्र-

पृष्ठ २४० नंबर २०

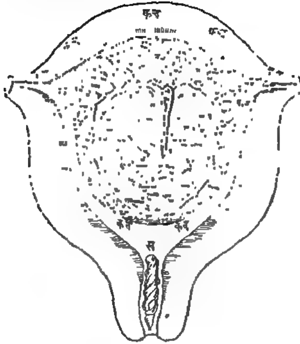


इस चित्रमें यय यकृत्.

पा	आमाशयके (पाकस्थलीके) अधोंश-	ड.	क्लोमदेह.
पि	पित्ताशय	न	क्लोमपुच्छ.
त	आमाशयके अधःस्थ छिद्र.	द	प्लीहा-
घ	ग्रहणिका अंशविशेष-	ए	आमाशयका ऊर्ध्वछिद्र.
क	उदरप्रविष्ट धमनीस्कंध.	गग	उदरवक्षोव्यवधायक (पक्षस्थःउरस्थ) पेशीके दो स्तंभ-
झ	क्लोम वा तिलयंत्र.	च	मूल पित्तप्रणाली-
ज	क्लोममूर्च्छा.	प्ली	प्लीहखात-

भ्रूणगर्भस्थिति प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ २४५ नंबर २१



इसचित्रमे ख ख ख जरायुगव्हर

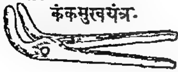
कत- कत- कत- कत- अस्थायिनी भ्रूणावरक कला

कग- कग- अस्थायिनी जरायु वेष्टिका कला

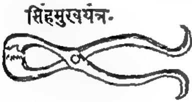
कच- कच- अस्थायि जरायु वेष्टक डिम्बकला

इस चित्रमे जरायुस्थ भ्रूणकी अवस्थिति प्रदर्शित करी है

यंत्राध्यायके चित्र.

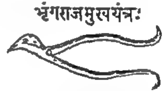

कंकमुखयंत्र.

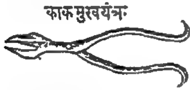

व्याघ्रमुखयंत्र.


सिंहमुखयंत्र.


श्वानमुखयंत्र.

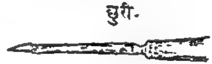

ऋक्षमुखयंत्र.

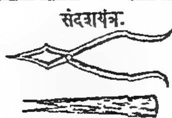

भृंगराजमुखयंत्र.


काकमुखयंत्र.


वृकास्ययंत्र.


जरखमुखयंत्र.


छुरी.


संदंशयंत्र.

तालयंत्र.



नाडीयंत्र



स्नुहियंत्र



अर्शोयंत्र.



अंगुलित्राणयंत्र.



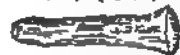
योनिव्रणेक्षणयंत्र.



नाडिव्रणक्षालनयंत्र.



जलोदरयंत्र.



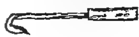
बस्तियंत्र.



शलाकायंत्र



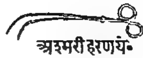
गर्भशंकुयंत्र.



शस्त्राध्यायकेचित्र.

योग्मशंकुयन्त्र.



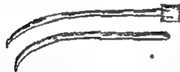


अश्मरीहरणयं.

शलाकायंत्र.



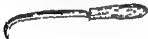




छेदनशस्त्र.



मंडलाग्रशस्त्र.



वृद्धिपत्रशस्त्र.





उत्पलशस्त्र.





सर्पास्यशस्त्र.



एषणीशस्त्र.





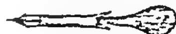




वेतसपत्रशस्त्र.







कुशपत्रशस्त्र.



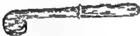


आटीमुखशस्त्र.

व्रीहिमुख शस्त्र.



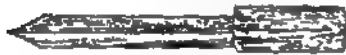
कुठारिका शस्त्र.



शलाका शस्त्र.



मुद्रिका शस्त्र.



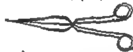
बडिशमुख शस्त्र.



करपत्रशस्त्र



कर्तरी (कैंची) शस्त्र











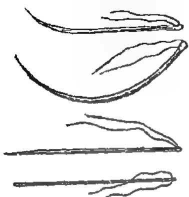
नखशस्त्र



दंतलेखनशस्त्र.



सूचिशस्त्र.



कूर्चशस्त्र.



कर्णछेदनशस्त्र.



सूचना.

समस्त विद्याओंमें आयुर्वेद विद्या उच्चतम है. इसमेंभी और अंशोंकी अपेक्षा शारीर स्थान और अस्त्रचिकित्सा प्रकर्णका जानना सर्व वैद्योंके आवश्यक है. यद्यपि इस शस्त्रचिकित्साका बहुतसे मनुष्य अनादर और निंदा करते हैं परंतु वे मूर्ख हैं. हमारे समस्त पूर्वाचार्य शवच्छेदन करके शिष्यको दिखाते थे ऐसे ग्रन्थ औपधेनव. औरभ्र. सुश्रुत. पौष्कलावत आदि महर्षियोंको बनाए हुए अनेक ग्रन्थ थे. परंतु हमारे और हमारे शास्त्रोंके द्रोही यवनादिकोंके अधिपत्य होनेसे वो ग्रन्थ अस्तभावसे होगए. दूसरे इस शस्त्रचिकित्साका बड़ा भारी प्रमाण वेद. रामायण. भारतादि ग्रंथ देते हैं. क्यों कि हमारे इस देशमें प्रथम बाणोंसे युद्ध होता था तब अवश्य शस्त्रवैद्योंकी आवश्यकता रहतीथी इसीसे हम कहते हैं कि, वैद्योंको अवश्य पठनीय यह शारीर और शस्त्रविद्या है. शेष अन्यस्थलमें कहेंगे.

भवदीय आयुर्वेदोद्धारसंपादक,
दत्तराम चोबे. श्रीमथुरा.

बृहन्निघंटुरत्नाकरके शारीरस्थानकी

अनुक्रमणिका.

शुक्रशोणितशारीराध्यायः

* इतिसप्तमस्तरङ्गः ७

गर्भव्याकरणशारीराध्यायः

* इतिनवमस्तरङ्गः ९

प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्यायः

* इतिद्वादशतरंगः

धमनीव्याकरणंशारीराध्यायः

इतिनवमोध्यायः ९

गर्भिणीव्याकरणाध्यायः।

इति शारीरभागः समाप्तः ।

अथ शस्त्रचिकित्साप्रारंभः ।

अग्रोपहरणीयाध्यायः ।

यंत्राध्यायः ।

जाहिरात.

ओ३म्

बृहन्निघण्टुरत्नाकरः ।

श्रीशंवन्दे ।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

मंगलाचरणम् ।

भजेराधाराध्यंरमितरमणीरञ्जितपदं
रमातातानन्दातिशयगुरुगर्वापहनखम् ॥
रमेशंगोविन्दंसुरवरकिरीटैरभिनुतं
हरन्तंमेविघ्नंसपदिसमलङ्कृत्यवचसाम् ॥ १ ॥

रागादिरोगान्सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ॥
औत्सुक्यमोहारतिदान्जघान योपूर्ववैद्यायनमोस्तुतस्मै ॥ २ ॥

पायाद्वोहरिरुद्भवकलशंहस्तेसुधासंभृतं
देवायेनकृतामराभगवतावारिव्रजाद्यश्वसः॥
सर्वव्याधिविनाशनेतुकुशलोधन्वन्तरिर्देवता
आरोग्यैकनिदानदोमुनिवरैश्चर्कादिभिःसंस्तुतः ॥३॥

यत्करस्पर्शनादेव विकसन्त्यम्बुजगाः श्रियः ॥
तत्प्रसादेन वैद्यानां विकसन्तु यशःश्रियः ॥ ४ ॥

श्रीखंडभस्मार्चितचर्चिताङ्गौ मुक्तालिगङ्गोल्लसदुत्तमाङ्गौ ॥
शिवाशिवौनौमिसुमाल्यनागौ रत्नाग्निभाभूपितभालभागौ ॥५॥

हेरम्बोरम्यलम्बोदरमरुणवपुर्मूषकेसन्निविष्टं
बिभ्रद्विभ्राजमानंकरकमललसत्पुस्तकंस्वास्तिकञ्च ॥

ध्यातुर्विघ्नंविनिघ्नन्मृदुमधुरमहामोदकामोदकामो
गौरीसूनुर्गजास्योदिशतुगणपतिर्वांप्सयाऽभीप्सितार्थान् ॥ ६ ॥

स्फटिकाक्षसुधाकलशाभयकच्छपिकावरपुस्तदरेषुकरा ॥
धृतशौक्तिकमौक्तिकहारवराशरदिन्दुमुखीह्रदिमेवसताम्॥७॥

यस्मादृष्टफलस्ययस्यपरमेशेनोदितत्वादिह
प्रामाण्यंनिगमेषुसिध्यतिकिलादृष्टार्थसामादिषु ॥
सत्यंशाश्वतमुत्तमोत्तममतंशास्त्रेषुसर्वेषुवा
आयुर्वेदमुपास्महेवयमिमंतंसर्वविद्याकरम् ॥ ८ ॥

अथग्रंथकर्तुर्वंशपरंपरा ॥

श्रीमन्माथुरमण्डलेद्विजकुलेश्रीमाथुरीयान्वये
गोपीनाथप्रपाठकश्चयशसाश्लाघ्योभवत्सूरिभिः ॥
तत्पुत्रस्तपसांनिधिर्गुणनिधिः श्रीवासिरामोभवत्
तत्पुत्राःकुलभूषणाः समभवन्नामानितेषांब्रुवे ॥ ९ ॥
श्रीचन्द्रस्तदनुस्वधर्मनिपुणः श्रीरामचन्द्राभिध-
स्तद्भ्रातातृतियोबभूवसुभगोनाम्नाहरिश्चन्द्रकः ॥
तत्पौत्रःकिलकृष्णलालजनितःश्रीदत्तरामाभिधः
रत्नान्तंहिबृहन्निघंटुममलंकुर्वेसतांप्रीतये ॥ इति ॥

शिष्य–हेगुरो ! इस मनुष्यको परम हितकारी विद्या कौनसी है,
गुरु–आयुर्वेद विद्या,
शिष्य–कौन कराणोंसे आयुर्वेद हितकारी है,
गुरु–धर्मार्थ काम मोक्षका कारणभूत देहकी रक्षा कर्ता यही शास्त्र है, अत एव यह ग्रंथ सर्वजनादरणीय है, सो वाग्भटमेंभी लिखा है ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

अर्थ–धर्म धन और सुखका साधनरूप जो आयु (जीवन) उसकी कामना करके मनुष्यको आयुर्वेदशास्त्रका अत्यन्त आदर करना चाहिये । अर्थात् आरोग्यके शत्रु रोग है, सो इस आयुर्वेदके पढनेसे और इसके लिखे अनुसार करनेसें नष्ट होते हैं, चरकमुनिनेभी लिखाहै ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

अर्थ-धर्म अर्थ काम और मोक्षका कारण नैरोग्य है, उस आरोग्यके और जीवनाद्वारा जो कल्याण होताहै उसके रोग हरण करता है, ऐसी प्रकार शार्ङ्गधरमें लिखा है ॥

अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥

अर्थ-कर्मके विपाकके जाननेवाला पुरुष अपनी देहकी रक्षा करे क्योंकि धर्म अर्थ काम और मोक्षका साधन देहही है ।

ग्रंथान्तरे च ॥

देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
न नीरोगः स कुत्रापि तच्छान्तिस्तु चिकित्सया ॥

अर्थ-पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म अर्थ काम मोक्ष) पुरुषके देहसे प्रगट होते हैं, वो देह कहीभी नीरोग नहीं है, उन रोगोंकी शान्ति चिकित्सा करके होय है ॥

शिष्य-प्रथमही आयुर्वेदके अनेक ग्रंथ विद्यमान हैं फिर बृहन्निघंटुरत्नाकर बनानेका क्या प्रयोजन है ॥

गुरु—इह खलु चतुर्वर्गसाधनं शरीरं, तच्चायुःपराधीनं, तद्विघ्नकारिणो रोगाः तदभावहेतुचिकित्साप्रतिपादकतयातिसटाद्याचार्याणामायुर्वेदशास्त्रेप्रवृत्तिः तद्ग्रंथानामतिदुर्ज्ञेयतयाऽद्यावधितनानामप्रवृत्तेः सुकरोपायेनज्ञानार्थमेतस्मिन्ग्रन्थेप्रयत्नः ॥

अर्थ-इस संसारमें चतुर्वर्गसाधनरूप शरीर है वह शरीर आयुके अधीन है, उस आयुके नाशक रोग है, उन रोगोंको नाशक चिकित्सा है, इस चिकित्साके प्रतिपादक तिसटादि आचार्योंकी आयुर्वेदशास्त्रमें प्रवृत्ति है, परंतु तिसटादि आचार्योंके बनाये ग्रंथ अतिकठिन है, इसीसे अद्यावधिपर्यंत उन ग्रंथोंको कठिनताके कारण कोई नहीं पढता, इस निमित्त सर्वसाधारण पुरुषोंके सहजमें ज्ञान होनेके निमित्त इस बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रंथमें हमारा प्रयत्न है, अर्थात् अनेक क्लिष्ट ग्रंथ पठनपाठनमें जो असमर्थ है उनको इस ग्रंथद्वारा सहज ज्ञान होजायगा, दूसरे प्राचीन ग्रंथोंकी प्रणाली संलग्न नहीं है, अर्थात् जिसजगह जो वस्तु

लिखनी चाहिये सो नहीं लिखी, इस दोषको हमने बृहन्निघंटुरत्नाकरमें दूर कर-दीना है, तीसरे किसी ग्रंथका निदान किसीकी चिकित्सा किसीका शारीर उत्तम है, जैसे किसीने लिखा है ॥

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते ॥

अर्थ-निदानग्रंथोंमें माधव श्रेष्ठ है, सूत्रस्थान वाग्भटका, शारीरक सुश्रुतका, और चरकका चिकित्सा प्रशंसनीय है, इस कारण जो स्थल जिस ग्रंथमें उत्तम दीखा वो इसमें लिखा है, और प्रमाणान्तरभी लिखे है । अब इस ग्रंथ बनानेका चौथा कारण औरभी लिखते हैं ॥

प्रयोगाः परतन्त्रेषु ये गूढाः सिद्धसूचिताः ।
तानेव प्रकटीकर्तुमुद्यमं किल कुर्महे ॥

अर्थ-चतुर्थ अन्य ग्रंथोंमें जो रहस्य प्रयोग सिद्धोंके कहेहुए हैं, उन्के प्रगट करनेको हमारा इस बृहन्निघंटुरत्नाकर बनानेमें उद्योग है ॥

शिष्य-आप तो इस्को चतुर्वर्गदाता कहते हो, परंतु शास्त्रोंके मतसे आयुर्वे-दकी अधमशास्त्रोंमें गणना है, यथा ॥

उत्तमा वेदविद्या च शास्त्रविद्या च मध्यमा ।
अधमा ज्योतिषीविद्या वैद्यविद्याधमाधमा ॥

अर्थ-वेदविद्या उत्तम है, शास्त्रविद्या मध्यम है, और ज्योतिषविद्या अधम-विद्याओंमें है, तथा वैद्यविद्या तो अधमसेभी अधम अर्थात् नीचसेभी अत्यंत नीच विद्या है । और मनुमहाराजने ३ अध्यायमें वैद्यको भोजन कराना तथा वैद्यके भोजन करना वर्जित करा है । औरभी बहुतसे प्रमाण हैं कि वैद्यविद्या अधम है ॥

गुरु-तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु यह जो निषेध है सो अधम वैद्यके प्रति है, और यह श्लोक किसी मूर्खका नवीन कल्पना कराहुआ है, क्योंकि आयुर्वेद सनातन है । और इस्के आचार्यभी ब्रह्मा, दक्ष, इन्द्र, चरक, सुश्रुत, भरद्वाज, अत्रि, पराशर आदि ऋषि है । यदि यह अधम शास्त्र है तो चरक, सुश्रुत, भर-द्वाज आदि ऋषियोंको दूषण आना चाहिये । दूसरे यह शास्त्र ऋग्वेदका उपवेद है, यथा ।

ऋग्वेदस्योपवेदोयमायुर्वेदइतिस्मृतः ॥
सृष्ट्युत्पादनचित्तेन स्मृतः पूर्वं स्वयंभुवा ॥

अर्थ-यह ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद कहा है, इसको सृष्टि रचनेके प्रथम ब्रह्माने प्रगट करा है । और सुश्रुतने इसको अथर्ववेदका उपांग लिखा है इसके पढनेका फल चरकमुनिने इस प्रकार लिखा है ।

तदिदंशाश्वतंपुण्यंसौख्यंवृत्तिकरंपरम् ॥
स्वर्ग्यंयशस्यमायुष्यंयदिसम्यक्प्रकल्पितम् ॥

अर्थ-यह शास्त्र पुण्य, सुख और जीविकाका करनेवाला सनातन है । यदि इसको यथार्थविधिसे करे तो स्वर्ग, यश और आयुष्यको देवे, इस श्लोकमें जो (यदि सम्यक्प्रकल्पितं) यह पद है, इससे निश्चय होता है, कि जो वैद्यके लक्षण और शास्त्रके कहे अनुसार न वर्ते उसको पाप, दुःख, अपयश और नरककी प्राप्ति होती है । अर्थात् शास्त्रहीन, निर्दयी, मौल्य लेकर चिकित्सा करनेवाले वैद्यकी निंदा है । और मनुमहाराजनेभी ऐसेही वैद्यका निषेध लिखा है, यथा ।

नक्षत्रसूचिनंविप्रंभिषजंशुल्कजीविनम् ॥
तद्वत्पौराणिकांश्चापिवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत्॥

अर्थ-नक्षत्रसूची ज्योतिषी और मोल लेकर औषध देनेवाला वैद्य, उसीप्रकार द्रव्य ठहराकर कथा बाचनेवाला पौराणिक, इन्होंका वाणीसेंभी सत्कार न करे । किंतु तिरस्कार करदे । इस शास्त्रका माहात्म्य और वैद्यके लक्षण आगे कहेंगे ॥

शिष्य-आपने आयुर्वेदका अच्छा प्रतिपादन करा, इसको सुनके मुझको इसके पढनेकी अत्यन्त लालसा उत्पन्न हुई है । इससें अब आप आयुर्वेदकी उत्पत्ति वर्णन करो ।

गुरु-

अथातोआयुर्वेदोत्पत्तिंनामाध्यायंव्याख्यास्यामः ॥



यथोवाचभगवान्धन्वन्तरिः सुश्रुताय ।

अर्थ-अब हम आयुर्वेदोत्पत्ति नामक * अध्यायकी व्याख्या करेंगे । जैसे भगवान् धन्वन्तरिने सुश्रुत शिष्यके प्रति सुश्रुत ग्रन्थमें कही है ॥

तत्रप्रथममेवग्रन्थसंदर्भप्रारम्भे, तदसमापनकारणविघ्नविनाशनपरमाप्ताचारपरंपरापरिप्राप्तमंगलाचरणमुचितमिति; तदाचरणीयत्वे प्रचुरतरविघ्नशंकाशंकितचेतसांप्रचुरतरविघ्नभङ्गायप्रचुरतरमङ्गलमेवशिष्यशिशिक्षयिपयाप्रत्याध्यायमग्रतोऽथशब्दोपादानेनाचचार ॥

अर्थ-तहां प्रथम ग्रन्थके प्रारंभमें, ग्रन्थकी समाप्तिके कारण और विघ्नविनाशनार्थ मंगलाचरण करना चाहिये । यह शिष्टाचार परंपरा चली आती है । इसीसे तदाचरणीय होनेसे और प्रचुरतर शंकाशंकित चित्तवाले पुरुषोंके संपूर्ण विघ्न दूर करनेके अर्थ, प्रचुरतर मंगल शिष्यशिक्षाके अर्थ प्रत्येक अध्यायके प्रथम अथशब्दके उपादान करके करा है । अर्थात् ग्रंथके बननेमें विघ्न न होय, इस कारण प्रत्येक अध्यायके प्रथम अथशब्द मंगलवाची धरा है ।

शिष्य-ननुकिमभिधेयार्थकमिदंशास्त्रंप्रयोजनमपिकिम् ?

अर्थ-शिष्य प्रश्न करे है, कि हे गुरो! इस आयुर्वेदशास्त्रमें कौन विषय है और क्या प्रयोजन है, जैसा लिखा है ।

ज्ञातार्थंज्ञातसंबंधं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनम् ॥

---

* अक्षरोंसे शब्द, शब्दसे पद, पदके समुदायसे वाक्य, वाक्यके समूहसे प्रकरण, प्रकरणके समूहसे अध्याय, अध्यायके समुदायसे स्थान और स्थानके समुदायसे तंत्र होता है ।

अर्थ-ज्ञातार्थ और ज्ञात संबंध सुननेको, श्रोता (सुननेवाले)की प्रवृत्ति होती है, इसी कारण ग्रन्थके आदिमें प्रयोजनसहित संबन्ध कहना चाहिये । अर्थात् जबतक प्रयोजन, संबंध, विषय और अधिकारी ये ४ नहीं जाने जांय तबतक मनुष्य किसी शास्त्रके पढनेमें प्रवृत्त नहीं होता है । अन्यत्रभी लिखा है।

प्रयोजनमनुद्दिश्यनमन्दोपिप्रवर्त्तते ॥

अर्थ-विना प्रयोजन मूर्खभी किसी कार्यको नहीं करे, अतएव हे गुरो ! आप आयुर्वेदशास्त्रके संबंधचतुष्टय कहो, अर्थात् इस शास्त्रमें कौन विषय, क्या संबंध, क्या इस शास्त्रका प्रयोजन और कौन पढनेका अधिकारी है ।

गुरु-आयुर्वेदका प्रयोजन चरकमुनिने इसप्रकार लिखा है ।

धातुसात्म्यक्रियाचोक्तातन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ॥

अर्थ-धातु (रस, रुधिर, मांसादि) के समान करनेवाली क्रियाही इस आयुर्वेदशास्त्रका प्रयोजनरूप है, अर्थात् बढीहुई धातुओंको घटाना और घटी हुईयोंको बढाना, तथा जो स्वयं समान है उनको घटनेबढनेसें रक्षा करना, यही इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है । उपाय और उपेयरूप इस शास्त्रमें संबंध है. * हेतु, लिंग और औषधात्मक, तीनस्कंधोंका प्रतिपादन यही इसमें विषय है । और ब्राह्मण इसके पढनेका अधिकारी है, परंतु कोई आचार्य्य कहते हैं कि "तज्जिज्ञासुः" अर्थात् इसके पढनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य,त्रिवर्णको अधिकार है,और कुल गुण संपन्न शूद्रकोभी पढनेका अधिकार है।यह सुश्रुत कहता है,अथ ।

सुश्रुतके मतसे प्रयोजन कहते हैं ॥

वत्स सुश्रुत! इहखल्वायुर्वेदप्रयोजनंव्याध्युपसृष्टा-नांव्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्यरक्षणञ्च ॥

अर्थ-धन्वन्तरि कहते हैं कि हेवत्स सुश्रुत ! इस आयुर्वेदशास्त्रका यही प्रयोजन है कि रोगग्रस्त मनुष्योंको रोगोंसे (औषधादि देकर) रोगरहित करना, और रोगरहितों को (हित आहार विहारादि आचरण साधन कराकर) रोगोंसे रक्षा करना अर्थात् अहित आचरणके सेवनसे कदाचित् रोगी न होजाय।

---

* धातु समान करनेवाला यह शास्त्र है, इसीसे इसको प्रयोजनवान् शास्त्र कहते हैं। इसके पढनेसे और अर्थ जाननेसे तथा इस शास्त्रविहित विधिके अनुष्ठान करनेसें, आरोग्यरूप उपेयकी प्राप्ति, और नैरोग्य देह होनेसे अभीष्ट पूर्णआयुकी प्राप्ति होती है, उससें परमपुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति सुलभ है, इसी कारण वास्तवमें यह शास्त्र उपायरूप है ।

शिष्य–हे गुरो ! जिस मनुष्यके प्रारब्धमें जो दुःख या सुख लिखा है वो अवश्य भोगना पड़ेगा, फिर यत्न करना व्यर्थ है, जैसे लिखा है "अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतंकर्मशुभाऽशुभम्" शौनकभी कहते हैं । यथा ॥

येनतुयत्प्राप्तव्यं तस्यविपाकंसुरेशसचिवोपि ।
यःसाक्षान्नियतिज्ञः सोपिनशक्तोन्यथाकर्तुम् ॥

अर्थ–जिसको जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है, उसको विपाकका जाननेवाला इन्द्रका सचिवभी अन्यथा नहीं करसके, इसीसे प्राचीन सदसत् कर्मको अवश्य भावित्व है ।

गुरु–ऐसा कहोगे तो औषधादि भक्षण मुहूर्तादि देखना और दुकान आदि करना, तथा पुरश्चरणादि कर्मको असत्यता आवेगी, इसीसें दैव (प्रारब्ध) और यत्न (उद्योग) दोनोंही सफल है, केशवार्किनेभी लिखा है ।

फलेद्यदिप्राक्तनमेवतत्किं कुर्याद्युपायेपुपरःप्रयत्नः ॥
श्रुतिस्मृतिश्चापिनृणांनिषेधविध्यात्मकेकर्मणिकिंनिषण्णे

इति ॥

अर्थ–प्राकृतन कर्महीं फले हैं । कदाचित् तुम ऐसा मानोगे तो खेती करना आदि उपायोंमें मनुष्यको प्रयत्न करना व्यर्थ है, तथा श्रुतिस्मृति निषेध विधिवाले कर्म करनाभी निरर्थक है, " न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्यां नदीन्तरेन्न संशयमभ्यापद्येत " अर्थात् वृक्षपर न चढ़े, कूएको उल्लंघन न करे, नदीको हाथोंसें न तरे, तथा जहां प्राणका संदेह होय उस स्थानमें न जाय, इत्यादि आश्वलायनके वचनोंको और आयुर्वेदशास्त्रको व्यर्थता आवेगी, और शार्ङ्गधरमें लिखा है ।

दिव्यौषधीनांबहवःप्रभेदा वृन्दारकाणामिवविस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेतिसंदेहमपास्यधीरैःसम्भावनीयाविविधप्रभावाः ॥

अर्थ–दिव्यौषधोंके अनेक भेद हैं, और वे देवतोंके सदृश प्रकाशवान् हैं, अर्थात् देवतोंके समान फलके देनेवाली हैं । इस प्रकार जानके धीर पुरुष संदेहको दूरकर अनेक प्रभाववाली औषधोंको जाने इस जगह देवताओंके सदृश जो प्रभाव लिखा है उस्को असत्यता आवेगी, अतएव कर्मकी सिद्धि केवल दैवसें नहीं है किंतु पुरुषार्थसेभी होय है सो याज्ञवल्क्य ऋषि लिखते हैं ॥

दैवेपुरुषकारेपिकर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
तत्रदैवमभिव्यक्तंपौरुषंपौर्वदैहिकम् ॥

अर्थ-कर्मकी सिद्धि, अर्थात् भले बुरे फलकी प्राप्ति होना, यह केवल दैवसेही नहीं है, किंतु पुरुषार्थसेभी होती है । क्योंकि पूर्वकृत पुरुषार्थकोही दैव कहते हैं । वो अल्प उद्योगसे महाफल देता है, ऐसाही शकुनवसंतराज ग्रंथमें लिखा है ।

पूर्वजन्मजनितंपुराविदः कर्मदैवमितिसंप्रचक्षते ।
उद्यमेनसमुपार्जितंतदावांछितंफलतिनैवकेवलम् ॥

अर्थ-पूर्वजन्मके कर्मको दैव कहते हैं । वह उत्तम उद्योगद्वारा वांछित फल देता है । स्वयंही फल नहीं दे सकता, इसीसे उद्योग और दैव दोनोंकोही मुख्यता है । उसको याज्ञवल्क्य दृष्टान्त देकर कहते हैं ।

यथाह्येकेनचक्रेण रथस्यनगतिर्भवेत्।
तद्वत्पुरुषकारेणविनादैवंनसिध्यति ॥

अर्थ-जैसे एक पैयेसे रथ नहीं चले, उसी प्रकार विना पुरुषार्थ (उद्योग) के दैव सिद्ध नहीं होता, केशवार्किभी लिखता है ।

प्राक्कर्मबीजंसलिलानलोर्वीसंस्कारवत्कर्मविधीयमानम् ।
शोषायपोषायचयस्यतस्य तस्मात्सदाचारवतांनहानिः ॥

अर्थ-पूर्वजन्मान्तरोपार्जितकर्म दैव कहाता है । उसके निमित्त इस जन्ममें क्रियमाण कर्म सुखाने और पोषणार्थ होता है, जैसे बीजको जल, गरमी और पृथ्वीका संस्कार, अर्थात् जैसे उत्तम बीज जल खात आदिके देनेसे जल्दी ऊगकर बढता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका कर्म इस जन्मके अच्छे उद्योगसे बढता है, अन्यथा क्षीण होजाता है । इसी कारण आयुर्वेदशास्त्रद्वारा, प्रथम निदानादिसे परीक्षा कर, औषध सेवन और शांति दुकान और मुहूर्तादि देखना आदि सदाचारवाले पुरुषोंकी हानी नहीं होती *

तथाचचरकेविमानस्थानस्यतृतीयाध्याये च ।

* किन्तु खलु भगवन् ! नियतकाल प्रमाणमायुः सर्वं नवेति । भगवानुवाच । इहाग्निवेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते । दैवे पुरुषकारेचस्थिते ह्यस्यबलाबलम् १ दैवमात्मकृतं विद्यात्कर्मयत्पूर्वदैहिकम् । स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियतेयादिहापरम् २ बलाबलविशेषोस्तितयोरपिचकर्मणोः । दृष्टंहित्रिविधंकर्म हीनंमध्यममुत्तमम् ३ तयोरुदारयोर्युक्ति दीर्घस्यस्वसुख

शिष्य-हे गुरो ! मेरे मनमें कर्म और उद्योग इन दोनोंमें कौन बडा है यह भ्रम था सो आपने दोनों मुख्य कहे यह ठीक है, मैनेभी बहुतसे प्रारब्ध माननेवाले देखे परंतु विना उद्योग किसीको न देखा इसीसे उद्योग अवश्य कर्त्तव्य है । अब आप आयुर्वेद किसको कहते हो सो कहो ।

गुरु-आयुर्वेदके लक्षण भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखे है ।

स्यच । नियतस्यायुषो हेतुर्विपरीतस्यचेतरा ॥ मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंगृणुचापरम् । दैवं पुरुषकारेण दुर्बलंह्युपहन्यते ५ दैवेनचेतरत्कर्म्मविशिष्टेनोपहन्यते । दृष्ट्वायदेकेमन्यन्ते नियतंमानमायुषः ६ कर्मकिंचित्क्वचित्कालेविपाकेनियतंमहत् । किंचित्त्व कालनियतंप्रत्ययैः प्रतिबोध्यते ७ तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहणमसाधु । निदर्शनमपिचात्रोदाहरिष्यामः । यदि हिनियतकालप्रमाणमायुः सर्व्वस्यादायुष्कामानां नमन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्राणिपातगमनाद्याः क्रियाइष्टयश्चप्रयोज्येरन् । नोद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखरतुरगमहिषादयः पवनादयः दुष्टाः परिहार्याः स्युः । नप्रपातागिरिविषमदुर्गाम्बुवेगाः तथानप्रमत्तोन्मत्तोद्भ्रान्तचण्डचपलमोहलोभाकुलमतयोनारयोनप्रवृद्धोऽग्निर्नच विविधविषयाश्रयाः सरीसृपोरगादयः । नसाहसंनदेशकालचर्य्यानिनरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयोभावनाभावकराः स्युरायुषः सर्वस्यनियतकालप्रमाणत्वात् नचानभ्यस्ताकालमरणभयानिवारकाणामकालमरणभयमागच्छेत्प्राणिनाम् । व्यर्थाश्चारम्भकथाप्रयोगबुद्धयः स्युर्महर्षीणांरसायनाधिकारे । नापीन्द्रोनियतायुषशत्रुंवज्रेणाभिहन्यात् । नाश्विनावार्त्तंभेषजेनोपपादयेतांनर्षयोयथेष्टं आयुस्तपसाप्राप्नुयुर्नचविदितवेदितव्यापमहर्षयः ससुरेशाः सम्यक्पश्येयुरुपदिशेयुराचरेयुर्वा अपिचसर्व्वचक्षुषामेतत्परंयदैन्द्रंचक्षुरिदंचास्माकंप्रत्यक्षंयथापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाऽऽहवंकुर्वतामकुर्वतांचतुल्यायुष्ट्वंतथाजातमात्राणामप्रतिकारात्चाविषप्राशिनांचाप्यतुल्यायुष्ट्वंनचतुल्योयोगक्षेमउपदानघटकानां चित्रघटकानांचोत्सीदताम् । तस्माद्धितोपचारमूलंजीवितंअतोविपर्ययान्मृत्युरपि चदेशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रियापयोगः । सम्यक्सर्वातियोगसन्धारणमसंधारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतांसाहसानांचवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुरुपदिशामः । सम्यक्पश्यामश्चेति ।

अतःपरमग्निवेश उवाच । एवंसतिअनियतकालप्रमाणायुषांभगवन् ! कथंकालमृत्युरकालमृत्युर्भवतीति । तमुवाचभगवानात्रेयः । श्रूयतामग्निवेश ! यथायानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतः सर्वगुणोपपन्नोवाह्यमानोयथाकालंस्वप्रमाणक्षयादेवावसानंगच्छेत्तथायुः शरीरोपगतंप्रकृत्यायथावदुपचर्य्यमानंस्वप्रमाणक्षयादेवअवसानंगच्छति । समृत्युकाले । यथा चसएवाऽक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथादक्षचक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषादनिर्मोक्षात्पर्यसनादनुपाङ्गाच्चान्तराव्यसनमापद्यते । तथायुरप्ययथाबलमारम्भादयथाग्न्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादतिमैथुनादसत्संश्रयादुदीर्णवेगाविनिग्रहात् । विधार्यवेगाविधारणाद्भूतविषाग्न्युपतापादभिघातादाहारविवर्जनाच्चान्तराव्यसनमापद्यते । तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचरितानकालमृत्यून्पश्याम इति ।

आयुर्हिताहितंव्याधिनिदानशमनंतथा।
विद्यतेयत्रविद्वद्भिः सआयुर्वेदउच्यते ॥

अर्थ-आयुका हित और अहित तथा व्याधि (रोग) का निदान, और शमन (चिकित्सा) जिस्में होय उसको आयुर्वेद कहते हैं। तथा च चरके।

हिताऽहितंसुखंदुःखमायुस्तस्यहिताहितम्।
मानञ्चतच्चयत्रोक्तमायुर्वेदःसउच्यते ॥

अर्थ-चरक कुछ विशेष कहता है कि- हित, अहित, सुख और दुःख, चार प्रकारकी आयू हैं, । इन चारों प्रकारकी आयूनका हित और अहित तथा आयुका प्रमाण, और अप्रमाण, ये संपूर्ण जिसमें होय, उसको आयुर्वेद कहते हैं। १ तहां शरीर मानसिक रोगोंसें रहित, यौवनवान्, सामर्थ्यके अनुसार बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ज्ञान, विज्ञान, इन्द्रियार्थ बल समुदाय, श्रेष्ठ भोग और यथेष्ट विचारवान् पुरुषकी सुख आयु कहाती है। २ इस्सें विपरीत असुख आयु जाननी। ३ सर्व प्राणीयोंका हितैषी, सदुपदेशकर्त्ता, सत्यवादी, विचारके कार्य कर्त्ता, अप्रमत्त, त्रिवर्गसेवी, पूजनीयोंका पूजन कर्त्ता, ज्ञान विज्ञान साधक, वृद्धसेवी, तपस्वी, इस लोकका और परलोकका ज्ञाता, स्मृति और मतिमान् पुरुषकी आयुको हितआयु कहते हैं। इससे विपरीतको अहित आयु जाननी।

शिष्य-अब आयुर्वेदकी निरुक्ति कहो।

गुरु-आयुर्वेदकी निरुक्तिभी भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है।

अनेनपुरुषोयस्मादायुर्विन्दतिवेत्तिच।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदइतिस्मृतः ॥

अर्थ-इस शास्त्रद्वारा पुरुष अपनी आयुको प्राप्त हो और दूसरेकी आयूको जाने, इसी कारण मुनीश्वर इस शास्त्रको आयुर्वेद ऐसे कहते है।

शिष्य-आयु किस को कहते हैं।

गुरु-शरीरजीवयोर्योगोजीवनं। तेनावच्छिन्नःकालआयुः ॥

अर्थ-देह और जीवके संयोग को जीवन कहते हैं, उस जीवनके अनवच्छिन्न कालको अर्थात् नियमित समयको आयु कहते हैं।

सुश्रुतेच।
आयुरस्मिन्विद्यतेऽनेनवाआयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः ॥

अर्थ—अब सुश्रुतके मतसे आयुर्वेदकी निरुक्ति कहते हैं, शरीर इन्द्रिय सत्वात्मक संयोगको आयु कहते हैं, सो आयु इस शास्त्रमें है, इसीसे इसको आयुर्वेद कहते हैं। अथवा। आयु जिस करके जानी जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं। अथवा। जिससे आयुका विचार करा जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं। अथवा। आयु जिस करके प्राप्त हो उसको आयुर्वेद कहते हैं।

शिष्य—अपनी और दूसरेकी आयु कौन कारणोंसें प्राप्त होती है और जानी जाती है सो हेतु कहो।

गुरु—आयुर्वेदद्वाराऽऽयुष्याण्यनायुष्याणिच द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वातेषांसेवनत्यागाभ्यामारोग्येणायुर्विन्दति। तेनैवहेतुनापरस्याप्यायुर्वेत्तिच॥

अर्थ—आयुर्वेदद्वारा, आयुष्यके बढ़ानेवाले और आयुष्यके नाश करनेवाले, द्रव्य, गुण और कर्म, जानकर जो आयुष्यके वृद्धि कर्त्ता होय, उनका सेवन और जो आयुष्यके नाशक हैं उनका त्याग करनेसे आयुकी वृद्धि होती है, तब मनुष्य आयुष्यको प्राप्त होता है इन्ही पूर्वोक्त कारणोंसें दूसरे मनुष्यकी आयु जान सकता है।

आयुर्वेदके सामान्यलक्षण॥

इहखल्वायुर्वेदोनामयदुपाङ्गमथर्ववेदस्याऽनुत्पाद्यैवप्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्चकृतवान्स्वयम्भूः॥

अर्थ—यह आयुर्वेद जो अथर्ववेदका उपाङ्ग है, उसको सृष्टि रचनेके प्रथमही, ब्रह्मदेवने एक लक्ष श्लोक और एक हजार अध्याय जिसमें ऐसा आयुर्वेद संहिता नामसे निर्माण करा, अर्थात् प्रथम आयुर्वेद प्रगट करा पीछे सृष्टि रचना करी, इस जगह ब्रह्माको आयुर्वेदकर्त्ता न समझना, किंतु, आयुर्वेदसंग्रहकर्त्ता जानना, क्योंकि आयुर्वेद अथर्ववेदका उपाङ्ग होनेसें नित्य और सनातन है।

ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वञ्चावलोक्यनराणाम्भूयोऽष्टधाप्रणीतवान्॥

अर्थ—तदनन्तर (संसारमें अधर्म प्रवृत्त होनेसें) मनुष्योंकी अल्प आयु र अल्प बुद्धि देख उसी आयुर्वेदके पुनः आठ विभाग करे, क्योंकि जब थोडा

जीवन और उसमेंभी मंदबुद्धिवाले पुरुष होने लगे, तो पूर्वोक्त १००००० लक्ष श्लोककी संहिता कंठाग्र होना दुर्घट जानके, आठ विभाग (टुकडे) करे।

शिष्य-आठ विभाग कौनसे हैं सो कहो।

गुरु-हे वत्स ! आयुर्वेदके आठ विभाग ये हैं।

शल्यं,शालाक्यं, कायचिकित्सा,भूतविद्या, कौमारभृत्य मगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति ॥

अर्थ-अब पूर्वोक्त आठ विभागोंको कहते हैं जैसे कि- १ शल्य, २ शालाक्य, ३ कायचिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमारभृत्य, ६ अगदतन्त्र, ७ रसायनतन्त्र, और ८ वाजीकरणतन्त्र।

१ शल्य हरण, अर्थात् कांटा, खोंबरा, तीरकी भाल आदि, निकालना प्रधान है जिसमें उस तन्त्रको शल्यतन्त्र कहते हैं। २ जिसमें शलाका, (सलाई) का कर्म, अर्थात् नेत्ररोगकी चिकित्सा प्रधान है, उसको शालाक्यतन्त्र कहते हैं। ३ जिसमें काय (अग्नि) की चिकित्सा है उसको कायचिकित्सा कहते हैं। अथवा। जिसमें काय (देह) की चिकित्सा कहते हैं, उसको कायचिकित्सातन्त्र कहते हैं। ४ जिसमें भूत (देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, नाग और पिशाच)इन आठोंको जिससे जाने उस विद्याको भूतविद्या कहते हैं। अथवा। भूत वेशादि शान्ति कर्त्ता विद्याको भूतविद्या कहते हैं।५ बालकोंका भरण, पोषण आदि जिसमें, उस तंत्रको बालतंत्र कहते हैं। ६ जिसमें विषका प्रतिकार है, उस तंत्रको अगदतंत्र कहते हैं। ७ जिसमें रस (रस रुधिर आदि) पुष्ट करनेकी विधि हो, उसको रसायनतंत्र कहते हैं। अथवा। रस कहिये रस, वीर्य, विपाकादि, आयुप्रभृतिकारणोंके विशिष्ट लाभोपायको रसायन कहते हैं, उसके अर्थ जो तंत्र, उसको रसायनतंत्र कहते हैं। ८ जिस्से मनुष्य स्त्रीके विषयमें घोडेके सदृश सामर्थ्यको प्राप्त होय, उसको वाजीकरणतंत्र कहते हैं। कोई आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं कि, वाजी शुक्रके वेगका नाम है, वह शुक्रका वेग जिन पुरुषोंमें है, उनको वाजिन्, ऐसा कहते हैं। अब जो अवाजिः अर्थात् वीर्यवेगरहित पुरुषोंको वीर्यवेगयुक्त जिस्से करा जाय उसको वाजीकरण कहते हैं. कोई आचार्य शुक्रकोही वाजी कहते हैं, अर्थात् वीर्यरहितोंको वीर्ययुक्त जिस्से करा जाय उसको वाजीकरण कहते हैं, । उसके अर्थतंत्रको वाजीकरणतंत्र कहते हैं।

अब आयुर्वेदके अंगोंके लक्षण कहते हैं।

शल्यतंत्रम् ॥

तत्र शल्यं नाम । विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोह लोष्टास्थिवालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं यंत्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थश्च ॥

अर्थ-पूर्वोक्त आठ भेद कहे उनमेंसे जो अनेक प्रकारके तृण, (तिनका घास, कठोर तृण, खोवरा, कांटा, गोखरू आदि) काष्ठ, (लकड़ीकी फांस आदि) पाषाण, (पत्थरकी कत्तल आदि) धूल, लोह, (सुई आदि) लोष्ट, (कंकर ठीकरी आदि) हाड, बाल, नख, (नाखून) आदिके लगनेसे अथवा, अंतर्गत शल्य, (तीर वगैरह आदि) से जो घाव होजाता है और उस घावमें उक्त वस्तुओंका कुछ भाग रहजानेसे घाव दुष्ट होकर उसमेंसे राध, रुधिर आदि निकले, तथा स्त्रियोंके मूढ गर्भ निकालनेके वास्ते, जो यंत्र (स्वस्तिकादि) शस्त्र, (मंडलाग्र करपत्रादि) द्वारा पूर्वोक्त शल्योंका निकालना, तथा क्षार, अग्निदाह (दागना) और व्रणके अच्छे प्रकारसे जाननेके अर्थ जो शास्त्र है उसको शल्यतंत्र कहते हैं ।

शालाक्यम् ।

शालाक्यं नाम । ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदन घ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ-जिसमें जत्रु (कंठ अथवा हासियेके) ऊपर अर्थात् कान, नेत्र, मुख और नाक आदि शब्दसे शिर, कपालमें होनेवाले रोगोंके अर्थ जो ग्रंथ उसको शालाक्यतंत्र कहते हैं ।

कायचिकित्सा ।

कायचिकित्सा नाम । सर्व्वाङ्गसंसृतानांव्याधीनांज्वरातीसा ररक्तपित्तशोषोन्मादाऽपस्मारकुष्टमेहादीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ-सर्वांगमें होनेवाले रोग, जे ज्वर, अतीसार, रक्तपित्त, कार्श्य, उन्माद, अपस्मार, (मृगी) कोढ़ और प्रमेहादिकोंके शमनार्थ चिकित्साको, कायचिकित्सा कहते हैं ।

भूतविद्या ।

भूतविद्या नाम । देवासुरगंधर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥

अर्थ-देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, पिशाच और नाग आदिग्रहों करके व्याप्त चित्तवाले पुरुषोंके ग्रह शांति करनेके निमित्त जो शान्तिबली देना आदि कर्मको भूतविद्या कहते हैं ।

कौमारभृत्यम् ।

कौमारभृत्यं नाम । कौमारभृत्यधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ-बालकका पालना, माताके दूधके शोधनार्थ, तथा दुष्ट दुग्धसे होनेवाली शरीरकी व्याधी और दुष्टग्रहोंसे प्रगट आगन्तु व्याधियोंके शमनार्थ, तो जो कर्म है, उसको कौमारभृत्यतंत्र कहते हैं ।

अगदतंत्रम् ।

अगदतंत्रं नाम । सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषिकादिदष्टविषव्यञ्जनार्थं, विविधविषसंयोगविषोपहतोपशमनार्थम् ॥

अर्थ-सर्प, कीट, (खाणखजूरा अथवा विच्छू आदि) लूता (मकड़ी आदि) विच्छू, मूसा आदिके काटनेसे जो मनुष्योंके देहमें विष फैल जावे उसके ज्ञानार्थ और अनेक प्रकारके भेद स्थावर जंगम आदि विष, तथा (घृत शहत आदि) संयोग विषसे ग्रस्त मनुष्योंके कल्याणार्थ जिसमें चिकित्सा करी है,उसको अगदतंत्र कहते हैं ।

रसायनतंत्रम् ।

रसायनतंत्रं नाम । वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगोपहरण समर्थञ्च ॥

अर्थ-जिससे मनुष्य अपनी वयका स्थापन अर्थात् १०० वर्षकी आयु हो, तथा आयुकी वृद्धि, अर्थात् सौवर्षसे अधिक दोसौ तीनसो वर्ष की आयु (ऊ-

मर) करनेकी और बुद्धि तथा बलकर्त्ता और रोगनाशक उपायको रसायन-तंत्र कहते हैं।

वाजकिरणतंत्रम्।

वाजीकरणतन्त्रं नाम । अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामप्यायनप्रसादोपचयजननिमित्तंप्रहर्षजननार्थञ्च । एवमयमायुर्वेदोऽष्टांगउपदिश्यते ॥

अर्थ—प्रकृतिसेही अल्पशुक्रवाले मनुष्योंके शुक्र बढ़ानेके निमित्त दुष्ट शुक्र, अर्थात् दूषित वीर्यके शोधनार्थ और शुष्कवीर्यवाले पुरुषोंके वीर्य पुष्ट करनेके निमित्त और क्षीणवीर्यपुरुषोंके वीर्योत्पादनार्थ और स्त्रीयोंमें हर्षोत्पादनार्थ जो उपाय है, उसको वाजीकरणतंत्र कहते हैं। अथवा जिनकी २५ वर्षकी अवस्था नहीं है वो अल्पवीर्य कहाते हैं। और वृद्ध मनुष्योंको क्षीणरेतस् कहते हैं. यह सुश्रुतका मत कहा इसमें शल्यतंत्र मुख्य होनेसे प्रथम कहा है। परन्तु वाग्भटने दूसरा क्रम कहा है उसकोभी कहते हैं।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावङ्गानितस्याहुश्चिकित्सायेषुसंश्रिताः ॥

अर्थ—कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहचिकित्सा ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, (शालाक्य) शल्यचिकित्सा, दंष्ट्राचिकित्सा, (अगद तंत्र) जराचिकित्सा, (रसायनतंत्र) और वृष, अर्थात् वाजीकरणचिकित्सा, इसप्रकार कायादि आठ चिकित्सा आयुर्वेदके आठ अङ्ग हैं। इन आठों अंगोंमें चिकित्सा विद्यमान है, चिकित्साके लक्षण चरकमुनिने कहे हैंयथा (चतुर्णांभिषगादीनांशस्तानांधातुवैकृते। प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते) अर्थात् उत्तम भिषगादि चतुष्टय, (रोगी वैद्य-सेवक और औषध) इनकी, दूषित धातु सुधारनेके अर्थ जो प्रवृत्त होना उसको चिकित्सा कहते हैं, यह वाग्भटका मत कहा इसमें कायचिकित्सा मुख्य है।

आयुर्वेदके गौरवोत्पादनार्थ आगमशुद्धि कहते हैं।

ब्रह्माप्रोवाच । ततःप्रजापतिरधिजगे । तस्मादश्विनौ । अश्विभ्यामिन्द्रः इन्द्रादहंमयात्विहप्रदेयमर्थिभ्यःप्रजाहितहेतोः ॥

अर्थ—प्रथम ब्रह्मदेवने कहा, उनसे दक्षप्रजापतिने पढ़ा, तिनसे अश्विनीकुमार और अश्विनीकुमारसे इन्द्र, इन्द्रसे धन्वन्तरि कहे हमने पढ़ा, अब में प्रजाके

कल्याणार्थ इस विद्याके पढ़नेवाले मनुष्योंको पृथ्वीमें देऊंगा, इस ग्रंथशुद्धि कहने का यह प्रयोजन है कि यह आयुर्वेद सनातन है, यह सुश्रुतमें लिखा है।

अब इस आयुर्वेदकी शुद्धीको विस्तारपूर्वक भावप्रकाशसे कहते हैं।

ब्रह्मदेवका प्रादुर्भाव।

विधाताथर्वसर्वस्वमायुर्वेदंप्रकाशयन् । स्वनाम्नासंहितांचक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥ ततःप्रजापतिंदक्षं दक्षंसकलकर्मसु । विधिर्धीनीराधेसाङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥

अर्थ—अथर्ववेदका सर्वस्व जिसमें ऐसा आयुर्वेदका प्रकाश करते हुए श्रीब्रह्माजी अपने नामसे एक लाख श्लोककी सरल संहिता करते हुये ब्रह्मा इस सर्व कर्ममें कुशल और बुद्धिके समुद्ररूप ऐसे दक्ष प्रजापतिको अङ्गसहित आयुर्वेदका उपदेश करते भए ॥

दक्षप्रजापतिका प्रादुर्भाव।

अथ दक्षः क्रियादक्षः स्ववैद्यौवेदमायुषः।
वेदयामासविद्वांसौसूर्यांशौसुरसत्तमौ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् क्रियामें कुशल ऐसे दक्ष प्रजापतिसे स्वर्गके वैद्य और सूर्यके अंशरूप, विद्वान्, तथा देवतोंमें उत्तम, ऐसे अश्विनीकुमारको आयुर्वेदका उपदेश करते भय ॥

अश्विनीकुमारका प्रादुर्भाव।

दक्षादधीत्यदस्रौ वितनुतः संहितांस्वीयाम्
सकलचिकित्सकलोकप्रतिपत्तिविवृद्धयेधन्याम् ॥

अर्थ—दक्षसे पढ़कर वे अश्विनीकुमार. संपूर्ण वैद्यलोकको ज्ञान बढ़ानेको, अपनी श्रेष्ठ संहिताका विस्तार करते भए ॥

स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नंभैरवेणरुषाथतत् ।
अश्विभ्यांसंहितंतस्मात्तौयातौयज्ञभागिनौ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् भैरव (शंकर) नें क्रोधवश होकर ब्रह्माका मस्तक छेदन करा, उसको अश्विनीकुमारोंने संधित करा। अर्थात् जोड़ दिया इसी कारण वे दोनों यज्ञके भागी हुए।

देवासुररणेदेवादैत्यैर्येसक्षताःकृताः ।
अक्षतास्तेकृताःसद्योदस्राभ्यामद्भुतंमहत् ॥
वज्रिणोभूद्भुजस्तम्भःसदस्राभ्यांचिकित्सितः ।
सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेवसुखीकृतः ॥

अर्थ-जब देव और असुरोंके युद्धमें देवतोंको दैत्योंनें अंगभंग [घायल] करे उस समय अश्विनीकुमारोंनें तत्क्षण अंग जोड़ घावरहित करे यह अद्भुत कर्म करा । [च्यवन ऋषिके प्रतापसे] इन्द्रकी भुजाका स्तम्भ भया (लंबा संकोच ऊंचा नीचा न होना) उसकोभी अश्विनीकुमारोंनें चिकित्सा करके अच्छा करा । सोमरहित चन्द्रमाकों इन दोनों अश्विनीकुमारोंनें सुखी करा ।

विशीर्णादशनाः पूष्णोनेत्रेनष्टेभगस्यच । शशिनोराजयक्ष्माऽ भूदश्विभ्यान्तेचिकित्सिताः ॥ भार्गवश्च्यवनःकामीवृद्धःसन् विकृतिंगतः ॥ वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्याम्पुनर्युवा ॥ एतैश्चान्यैश्चवहुभिः कर्मभिर्भिषजांवरौ । वभूवतुर्भृशंपूज्या विन्द्रादीनांदिवौकसाम् ॥

अर्थ-पूषादेवताके दांत गिर पड़े, भगदेवताके नेत्र जाते रहे, चंद्रमाकि खईका रोग हुआ, इन सर्वोको अश्विनीकुमारोंनें चिकित्सा कर अच्छा करा । भृगुऋषि के वंशमें प्रगट ऐसे जो च्यवन ऋषि कामी, और वृद्ध अवस्थाके प्रभावसें विकार अर्थात् वीर्यादिकके फेर फारसे बुरी चेष्टा होगई उनको अश्विनीकुमारोंनें फिर वीर्य, वर्ण, और स्वरयुक्त कर ज्वान करदीने । इन कर्मोंसें, तथा और बहुतसे कर्मोंसें, वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओंमें पूजनीय हुए । भावप्रकाशमें ब्रह्माका शिर जोड़ना लिखा है और सुश्रुतमें यज्ञका शिर जोड़ा है ॥

यथा सुश्रुते ।

श्रूयतेहियथारुद्रेणयज्ञस्यशिरश्छिन्नमिति, ततोदेवाअश्विना वभिगम्योचुः । भगवन्तौ नः श्रेष्ठतमौयुवांभविष्यथः । भव द्भ्यांयज्ञस्य शिरःसन्धातव्यम् । तावूचतुरेवमस्त्विति । अथ तयोरर्थेदेवाइन्द्रंयज्ञभागेनप्रासादयन् । ताभ्यांयज्ञस्यशिरः संहितमिति ॥

अर्थ-जैसे सुनते हैं कि, रुद्रने यज्ञका शिर काटा, तब संपूर्ण देवता अश्विनीकुमार दोनोंके समीप जाकर यह वाक्य बोले कि तुम दोनों हम लोगोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ होओ, और तुम यज्ञका शिर जोड़ देओ, तब अश्विनीकुमार बोले बहुत अच्छा, ऐसेही होगा, तदनन्तर सब देवता अश्विनीकुमारोंके लिये इन्द्रको यज्ञभाग करके प्रसन्न करते यज्ञभाग मांगा और अश्विनीकुमारोंने यज्ञका शिर जोड़ दिया ॥

अथ इन्द्रप्रादुर्भावः।

संदृश्यदस्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानियत्नवान्। आयुर्वेदंनिरुद्वेगं तौययाचेशचीपतिः ॥ नासत्यौसत्यसन्धेनशक्रेणकिलयाचितौ॥आयुर्वेदंयथाधीतंददतुःशतमन्यवे॥नासत्याभ्यामधीत्यैवआयुर्वेदंशतक्रतुः।अध्यापयामासबहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन्॥

अर्थ-इन्द्राणीका पति, तथा यत्नवान् ऐसा जो इन्द्र सो उन दोनों अश्विनीकुमारके इन सब आश्चर्यकारक कर्मोंको देख, उद्वेगरहित अर्थात् उत्साहपूर्वक आयुर्वेदविद्याको अश्विनीकुमारोंसें याचना करता हुआ, जब सत्यसंध इन्द्रनें दोनोंसे इस प्रकार याचना करी, तब अश्विनीकुमारोंने जैसे पढ़ा उसी प्रकार आयुर्वेद इन्द्रको देते भए। अश्विनीकुमारोंसें आयुर्वेदको इन्द्र पढ़कर, आत्रेय हैं मुख्य जिनमें ऐसे अनेक ऋषियोंको पढ़ाता हुआ।

आत्रेयप्रादुर्भावः।

एकदाजगदालोक्यगदाकुलमितस्ततः।चिंतयामासभगवानात्रेयोमुनिपुङ्गवः॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथंलोकानिरामयाः। भवन्तिसामयानेतान्नशक्नोमिनिरीक्षितुम् ॥ दयालुरहमत्यर्थं स्वभावोदुरतिक्रमः।एतेषांदुःखतोदुःखंममापिहृदयेधिकम्॥

अर्थ- एक समय चारों ओर रोगसें व्याकुल ऐसा जगत्को देख, मुनिपुङ्गव भगवान् आत्रेयमुनि विचार करने लगे, क्या करूं, किधर जांऊ, कैसे मनुष्य रोगरहित होंवे। मैं इन रोगियोंको रोगाकुल देखभी नहीं सकूं; क्या करूं मेरा स्वभावही अतिदयालू है, यह स्वभाव दुरतिक्रम अर्थात् अमिट है। इन मनुष्योंके दुःखसेंभी मेरा हृदय अधिक दुखी है।

आयुर्वेदंपठिष्यामिनैरुज्यायशरीरिणाम्। इतिनिश्चित्यभ

गवान्आत्रेयस्त्रिदशालयम् ॥ तत्रमन्दिरमिन्द्रस्यगत्वाशक्रं ददर्शसः॥ सिंहासनसमासीनंस्तूयमानंसुरर्षिभिः॥भासयन्तं दिशोभासाभास्करप्रतिमन्त्विषा । आयुर्वेदमहाचार्यशिरो· धार्यंदिवौकसाम् ॥

अर्थ—अतएव मनुष्योंके रोग दूर करनेको में आयुर्वेद पढूंगा । ऐसें निश्चय कर आत्रेय भगवान् स्वर्गको गए, तहां स्वर्गमें इन्द्रके भवनमें प्राप्त हो इन्द्रके दर्शन करते हुए । दिव्य सिंहासनपर विराजमान, सुर और ऋषि जिसकी स्तुति कर रहे हैं, सूर्यकासा प्रकाश जिससे सर्व दिशाओंमें प्रकाश कर रहाहै, सर्व देवमान्य तथा आयुर्वेदका बड़ा आचार्य ऐसे इन्द्रको देखा ।

शक्रस्तुतंनिरीक्ष्यैवत्यक्त्वासिंहासनंययौ ॥ तदग्रेपूजयामा सभृशंभूरितपःकृशम्॥ कुशलंपरिपप्रच्छतथागमनकारण म्॥समुनिर्वक्तुमारेभेनिजागमनकारणम्॥

अर्थ—इन्द्र आत्रेयऋषिको देखतेही शीघ्र सिंहासनको परित्यागकर सम्मुख आय बहुततपसें कृश भए ऐसें मुनिकी पूजा करता हुआ मुनिसें कुशल पूछी, और आगमनका कारण पूछा, तब आत्रेयमुनि अपने आनेका कारण इस प्रकार कहते हुए ।

देवराज ! नजानासिदिवएवयतोभवान् । विधात्राविहितोय तात्रिलोकीलोकपालकः ॥ व्याधिभिर्व्यथितालोकाः शो काकुलितचेतसः । भूतलेसन्तिसन्तापन्तेपाहन्तुंकृपांकुरु ॥ आयुर्वेदोपदेशंमेकुरुकारुण्यतोनृणाम् । तथेत्युक्त्वासहस्राक्षो । ध्यापयामासतंमुनिम् ॥

अर्थ—हे देव ! हे राजन् ! तुम केवल स्वर्गकही राजा नहीं हो ? किंतु ब्रह्मानें तुमको यत्नपूर्वक त्रिलोकीका राजा करा है । शोकसे व्याकुल हैं चित्त जिनके, और व्याधियोंसे व्यथित (पीड़ित) मनुष्य पृथ्वीमें हैं उन्होंके संताप हरण करनेको कृपा करो । मनुष्योंकी करुणा विचार मुझको आयुर्वेदका उपदेश करों, पश्चात् ' ठीक है' ऐसे कहिकर इन्द्रने आत्रेय ऋषिको आयुर्वेद पढ़ाया ।

मुनीन्द्रइन्द्रतः साङ्गमायुर्वेदमधीत्यसः । अभिनन्द्यतमाशी

भिराजगामपुनर्महीम् ॥ अथात्रेयोमुनिश्रेष्ठोभगवान्करुणाकरः ॥स्वनाम्नासंहिताश्चक्रेनरश्चक्रानुकम्पया॥ततोग्निवेशं भेडंचजातूकर्णपराशरम्।क्षीरपाणिञ्चहारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥

अर्थ—मुनीन्द्र जो आत्रेय सो इन्द्रसे अङ्गसहित आयुर्वेद पढ़के तथा इन्द्रको आशीर्वादोंसे प्रसन्न कर, फिर पृथ्वीमें पधारे । तदनन्तर दयासागर मुनिश्रेष्ठ भगवान् आत्रेय ऋषि मनुष्योंके समूहऊपर दया विचार अपने नामसे संहिता बनाते हुए । इनकी बनाई तीन संहिता हैं । (बृहत् आत्रेय संहिता, मध्य आत्रेय संहिता, और लघु आत्रेय संहिता, यह बात इनहीकी संहितामें लिखी है) तत्पश्चात् अग्निवेशको, भेडको, जातूकर्णको, पराशरको, क्षीरपाणीको, और हारीतको आयुर्वेद पढ़ाया ।

तन्त्रस्यकर्त्ताप्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा । ततोभेडादयश्चक्रुः स्वंस्वं तन्त्रंकृतानिच ॥ श्रावयामासुरात्रेयंमुनिवृन्देनवन्दितम् । श्रुत्वाचतानितन्त्राणिहृष्टोऽभूदत्रिनन्दनः॥ यथावत्सुत्रितन्तस्मात्प्रहृष्टामुनयोभवन् । दिविदेवर्षयोदेवाः श्रुत्वासाध्वितितेब्रुवन् ॥

अर्थ—पहले इस शास्त्रके कर्त्ता प्रथम अग्निवेशनामक मुनि भए, तिनके पीछे भेडादिक ऋषियोंने अपने अपने नामसे संहिता बनाई । अर्थात् अग्निवेशसंहिता, भेडसंहिता, जातूकर्णसंहिता, पराशरसंहिता, क्षीरपाणिसंहिता और हारीतसंहिता, ये छः ऋषियोंने छः संहिता बनाई । ये पुरानी संहिता हैं इसीसे इनको प्रधानता है, और जहां वैद्यककी छः संहिता कहीं हैं तहां इनहींका ग्रहण है, जैसे लीलावतीमें लिखा है " षट्चभिषजोव्याचख्युः संहिताः " इसप्रकार अग्निवेशादि ऋषि अपनी २ संहिता बनाय, मुनिसमूहसे वंदित ऐसे आत्रेयमुनिको सुनाते हुए ये अत्रिनन्दन इस प्रकार सबोंके ग्रंथोंको सुनकर अत्यंत हर्षित भए । यथार्थ शास्त्र रचनेसे सब मुनि आनंदित होते हुए और स्वर्गमें देवता तथा देवर्षि सुनकर ' बहुत सुन्दर ' ऐसे बोले ।

भरद्वाजमुनिप्रादुर्भावः ।

एकदाहिमवत्पार्श्वेदेवादागत्यसङ्गताः । मुनयोबहवस्तेषां नामानिकथयाम्यहम् ॥ भारद्वाजोमुनिवरः प्रथमंसमुपाग

तः । ततोऽङ्गिरास्ततोगर्गोमरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ पुलस्त्योऽग स्तिरसितोवसिष्ठःसपराशरः। हारीतोगौतमःसांख्योमैत्रेयश्च्य वनोऽपिच ॥ जमदग्निश्चगार्ग्यश्चकाश्यपः कश्यपोपिच। नार दोवामदेवश्चमार्कण्डेयःकपिञ्जलः ॥

अर्थ–एक समय हिमालयपर्वतपर दैवइच्छासें बहुतसे मुनि आकर इकट्ठे हुए, उन्होंके नाम कहते हैं । मुनिनमें श्रेष्ठ भरद्वाज, प्रथम आए । तिन्होंके पीछे अङ्गिरा और तत्पश्चात् गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्ति, असित, वसिष्ठ, पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, काश्यप, कश्यप, नारद, वामदेव, मार्कंडेय और कपिञ्जल आए ।

शाण्डिल्यःसहकौंडिन्यःशाकुनेयश्चशौनकः । आश्वलाय नःसांकृत्योविश्वामित्रःपरीक्षकः ॥ देवलोगालवोधौम्यःकाम्य कात्यायनावुभौ । काङ्कायनोवैजवापःकुशिकोबादराय णिः ॥ हिरण्याक्षश्चलौगाक्षिः शरलोमाचगोभिलः । वैखान सावालखिल्यास्तथैवान्येमहर्षयः ॥

अर्थ–कौंडिन्यसहित शांडिल्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य और कात्यायन, ए दोनों, कांकायन, बैजवाप, (वैजपायभी पाठान्तर है) कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षी, शरलोमा, गोभिल, वैखानस और बालखिल्य, इनसे आदि ले और बहुतसे महर्षि आए ।

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोयमस्यनियमस्यच। तपसस्तेजसादीप्ताहूय मानाइवाग्नयः ॥ सुखोपविष्टास्तेतत्रसर्वेचक्रुः कथामिमाम्। धर्मार्थकाममोक्षाणांमूलमुक्तंकलेवरम्॥ तपःस्वाध्यायधर्मा णांब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् । हर्त्तारः प्रसृतारोगायत्रतत्रचसर्वतः॥

अर्थ–वे ब्रह्मर्षि ब्रह्मज्ञान, यम, तथा नियमकी निधि और होमी हुई अग्निका जैसा प्रकाश ऐसे तपके तेजसें प्रकाशवान्, सुखपूर्वक बैठे हुए सब ऋषि, इस प्रकार वार्ता करने लगे कि–धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल देह है । इस प्रकार पूर्व कहा है, तप, स्वाध्याय (पढना पढ़ाना) धर्म, ब्रह्मचर्य, व्रत, और आयुष्यके हरणकर्त्ता रोग सर्वत्र फैल रहे हैं ।

रोगाः कार्श्यकराबलक्षयकरादेहस्यचेष्टाहराहष्ट्याद्रीन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥ धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषुमहाविघ्नस्वरूपा बलात् । प्राणानाशुहरन्तिसन्तियदिते क्षेमंकुतः प्राणिनाम्॥

अर्थ-रोग शरीरको कृश करते हैं । बलका क्षय करें हैं । देहकी चेष्टाको हरण करें है । नेत्र आदि इन्द्रियोंकी शक्तीका क्षय करें हैं । सब अंगमें पीड़ा करते हैं। धर्म, अर्थ, अखिल काम, और मुक्तिमें महाविघ्नस्वरूप हैं। बलात्कारसे शीघ्र प्राणोंको हरण करलेते हैं। ऐसे रोग यावत् पर्यन्त विद्यमान हैं, तबतक दीन हीन मीनके सदृश बिचारे प्राणियोंका कल्याण कहां हैं ।

तत्तेषांप्रशमायकश्चनविधिश्चिन्त्योभवद्भिर्बुधैर्योग्यैरित्यभिधायसंसदिभरद्वाजंमुनिंतेऽब्रुवन् ॥त्वंयोग्योभगवन् । सहस्रनयनंयाचस्वलब्धंक्रमात् । आयुर्वेदमधीत्ययंगदभयान्मुक्ताभवामोवयम् ॥

अर्थ-इसी कारण रोगोंके उपाय करनेमें योग्य और विद्वान् ऐसे तुम करके इन रोगोंके निवृत्ति करनेको कोई उपाय विचारना चाहिये। इस प्रकार आपसमें एकमती हो और विचार करके, सभामें बैठे हुए भरद्वाज मुनिके प्रति सब मुनीश्वर बोले । कि हे भगवन्! तुम इस कार्य करने योग्य हो, इसीसे इन्द्रके पास जाकर याचना करो, और क्रमसे प्राप्त आयुर्वेदको अध्ययन करके, हम रोगके भयसे मुक्ति होवें ।

इत्थंसमुनिभिर्योग्यैःप्रार्थितोविनयान्वितैःभरद्वाजोमुनिश्रेष्ठो जगामात्रिदशालयं॥ तत्रेन्द्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगम्।दृष्टवान्वृत्रहन्तारंदीप्यमानमिवाऽनलम् ॥ दृष्टवैसमुनिंप्राहभगवान्मघवामुदा । धर्मज्ञस्वागतन्तेऽथमुनिन्तंसमपूजयत् ॥

अर्थ-इस प्रकार जब सब योग्य मुनीश्वरोंनें विनयपूर्वक प्रार्थना करी तब उनकी आज्ञा ले मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज इन्द्रलोकको जाते भये, तहां अमरावती पुरी, में इन्द्रके भवनमें प्राप्त हो, देवता और ऋषिगणमें विराजमान, अग्निके समान प्रकाशित, वृत्रासुरका नाशक इन्द्रको देखा, भगवान् इन्द्रभी अपने समीप आए

ऐसे भरद्वाज मुनिको देख हर्षपूर्वक कहने लगा, कि हे धर्मज्ञ ! आप भले पधारे, इस प्रकार कहि पीछे मुनिकी अर्घपाद्यादिसे पूजा करी ।

सोऽभिगम्यजयाशीर्भिरभिनन्द्यसुरेश्वरम् । ऋषीणांवचनं सम्यक्श्रावयन्मुनिसत्तमः ॥ व्याधयोहिसमुत्पन्नाः सर्वप्राणि भयंकराः । तेषांप्रशमनोपायंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥

अर्थ-मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे जो भरद्वाज मुनि इन्द्रके समीप जाय, जयशब्द और आशीर्वाद देकर इन्द्रकी स्तुति करी, तथा सब ऋषियोंके वचन सुनाये, कि सुनो देवेन्द्र ! सर्व प्राणियोंको भयंकर, ऐसी व्याधि जगत्में उत्पन्न हुई हैं उनके नाश होनेका उपाय होय, वह बराबर हमसे आप कहिये ।

तस्मुवाचमुनिंसाङ्गमायुर्वेदंशतक्रतुः ॥ पदैरल्पैर्मतिंबुद्धाविपुलांपरमर्षये॥जीवेद्वर्षसहस्राणिदेहीनीरुङ्निशम्ययम्। हेतुलिंगौषधज्ञानंस्वस्थातुरपरायणम्॥सोनन्तपारंत्रिस्कन्धमायुर्वेदंमहामुनिः । यथावदचिरात्सर्वंबुबुधेतन्मनामुनिः ॥

अर्थ-विपुलबुद्धि जान, अल्प पदों करके अंगसहित आयुर्वेद, परमर्षि भरद्वाज मुनिके प्रति कहा । कि जिस आयुर्वेदको सुनकर रोगरहित हो मनुष्य हजार वर्ष जीवे है, तथा हेतु, लिङ्ग और औषधका ज्ञान जिस्से होय और स्वस्थ (सुखी) की रक्षा, आतुर (दुखी) की निवृत्तिरूप प्रयोजन साधनरूप शास्त्रको इन्द्रने कहा ।

वह मुनि भरद्वाज अपार और त्रिस्कंध (हेतुलिंगौषध) वाले आयुर्वेदको थोडे़ कालमें भले प्रकार पढ़े, और उसमें अच्छी रीतिसें मन रखनेसें इस शास्त्रका सर्व आशय जाना ।

तेनायुः सुचिरंलेभेभरद्वाजोनिरामयम्।अन्यानपिमुनींश्चक्रेनीरुजः सुचिरायुषः ॥तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषाऋषयोखिलाः ॥ गुणान्द्रव्याणिकर्माणिदृष्ट्वातद्विधिमाश्रिताः ॥ आरोग्यंलेभिरेदीर्घमायुश्चसुखसंयुतम्। आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपिस्युर्मुनयोयथा ॥

अर्थ-इसी आयुर्वेद विद्याके द्वारा भरद्वाज मुनि रोगरहित पूर्ण आयुको प्राप्त

भये, और अन्य बहुतसे ऋषियोंको निरोगी तथा पूर्णायु करते भये, तिनके तंत्रसे उत्पन्न भया ज्ञानरूपी चक्षु ऐसे अखिल ऋषि, गुण, द्रव्य, और कर्म देख आयुर्वेदकी विधिका आश्रय लेते हुए उसी विधिके अनुष्ठान करने सें सर्व ऋषि आरोग्य और सुखसंयुक्त दीर्घ आयुष्यको प्राप्त होते हुए। सर्व मुनीश्वर जैसे सुखी हुए उसी प्रकार आयुर्वेदविधिके सेवनसें और भी मनुष्य सुखी होते हैं।

चरकप्रादुर्भावः।

यदामत्स्यावतारेणहरिणावेदउद्धृतः । तदाशेषश्चतत्रैववेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ अथर्वान्तर्गतंसम्यक्आयुर्वेदञ्चलब्धवान् । एकदासमहीवृत्तंद्रष्टुंचरइवागतः ॥ तत्रलोकान्गदैर्ग्रस्तान् व्यथयापरिपीडितान् ॥ स्थलेषुबहुदुःख्यग्रान्म्रियमाणांश्चद्दृष्टवान् ॥ तान्दृष्ट्वातिदयायुक्तस्तेषांदुःखेनदुःखितः । अनन्तश्चिन्तयामासरोगोपशमकारणम् ॥

अर्थ-जिस समय हरि भगवान् ने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार करा, उस समय श्रीशेषजीने उसी ठिकाने अंगसहित चारो वेद पढ़े। और अथर्ववेदके अंतर्गत जो आयुर्वेद है, उस्कोभी प्राप्त होते भए, एक समय जैसे राजाका चर (पर राज्यका वृत्तान्त जानने के कारण निर्मित च कर) होय इस प्रकार, शेषजी आप पृथ्वीका वृत्तान्त देखनेको आये तहां पृथ्वीमें अनेक ठौर रोगोंसें ग्रस्त और पीड़ासे पीड़ित मुरझाए हुए और मरनेको तैयार ऐसे मनुष्योंको देखा, उनको देख अतिदयायुक्त तथा उनके दुःखसे अत्यन्त दुखी ऐसे शेष भगवान् मनुष्योंके रोगशांति होनेका कारण विचारने लगे।

संचिन्त्यसस्वयंतत्रमुनेःपुत्रोवभूवह ॥ प्रसिद्धस्यविशुद्धस्यवेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ यतश्चरइवायातोनज्ञातःकेनचिद्यतः ॥ तस्माच्चरकनाम्नासौविख्यातःक्षितिमण्डले ॥ स भातिचरकाचार्योदेवाचार्योयथादिवि । सहस्रवदनस्यांशोयेनध्वंसोरुजांकृतः ॥

अर्थ-इस प्रकार शेष भगवान् अपने मनमें विचार करके, वेदवेदांग जाननेवाले और प्रसिद्ध ऐसे विशुद्ध मुनिके पुत्र हुए। किसी राजाका नौकर जैसे किसी परराज्यके वृत्तान्त जाननेको गुप्त होकर आवे उसके आनेको कोई नहीं जा-

ने, इसीसे शेष पृथ्वीऊपर चरक इस नामसें प्रसिद्ध हुए । शेष नारायणके अंशरूप, तथा जिन्होने रोगोंका नाश करा, ऐसे चरकाचार्य, जैसें देवोंके आचार्य बृहस्पति स्वर्गमें शोभित हे । उसी प्रकार पृथ्वीमें शोभित हुए ।

आत्रेयस्यमुनेःशिष्याअग्निवेशादयोऽभवन् ॥ मुनयोबहव स्तेश्चकृतंतन्त्रंस्वकंस्वकम् ॥ तेषांतन्त्राणिसंस्कृत्यसमाहृत्य विपश्चिता ॥ चरकेणात्मनोनाम्नाग्रन्थोऽयंचरकःकृतः ॥

अर्थ-आत्रेय मुनिके अग्निवेशसे आदिके बहुत शिष्य हुए । उन्होंने इस आयुर्वेदसे अपने अपने न्यारे न्यारे शास्त्र रचे, उन सब ऋषियोंके ग्रंथ इकट्ठे कर तथा सुधारके विद्वान् ऐसे चरक मुनिने अपने नामसे यह चरक नाम ग्रन्थ रचा ।

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

एकदादेवराजस्यदृष्टिर्निपतिताभुवि । तत्रतेननराहृष्टाव्या धिभिर्भृशपीडिताः ॥ तान्दृष्ट्वाहृदयंतस्यदययापरिपीडि तम् ॥ दयार्द्रहृदयःशक्रोधन्वन्तरिमुवाचह ॥

अर्थ-एक समय देवराज इन्द्रकी दृष्टि पृथ्वीमें पड़ी तो अनेक मनुष्य रोगोंसें पीड़ित देखे, उन्हेंको देख इन्द्रका हृदय दयासे बहुत पीड़ित हुआ, पश्चात् दयासें कोमल हृदयवाला इन्द्र धन्वन्तरिसे बोला ।

धन्वन्तरेसुरश्रेष्ठभगवन्किञ्चिदुच्यते । योग्योभवसिभूताना मुपकारपरोभव ॥ उपकारायलोकानांकेनकिन्नकृतंपुरा । त्रै लोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ॥ तस्मात्त्वंपृथि व्यांहिकाशिमध्येनृपोभव । प्रतीकारायरोगाणामायुर्वेदंप्र काशय ॥

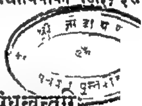
अर्थ-हे धन्वन्तरि ! हे सुरश्रेष्ठ ! हे भगवन् ! मे आपसे कुछ कहताहूं सो आप सुनो, कि तुम प्राणियोंके उपकार करने योग्य हो, इसीसे उनके उपकार करनेमें तत्पर होओ, लोकोंके उपकारार्थ पहिले किसने क्या नहीं करा ! देखो त्रिलोकीके अधिपति विष्णु भगवान् मत्स्यादिरूपवाले हुए । अतएव आप पृथ्वीमें जाय काशीमें राजा होओ, तथा रोगोंके उपाय करनेके निमित्त आयुर्वेदका प्रकाश करो ।

इत्युक्त्वासुरशार्दूलःसर्वभूतहितेप्सया । समस्तमायुर्वेदं धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ अधीत्यचायुर्वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिःपुरा । अभ्येत्यपृथिवींकाश्यांजातोबाहुजवेश्मनि ॥ नाम्नातुसोऽभवत्ख्यातोदिवोदासइतिक्षितौ । बालएवविरक्तो भूच्चचारसुमहत्तपः ॥

अर्थ-इन्द्रसे आयुर्वेदका अध्ययन कर, धन्वन्तरि आप पृथ्वीऊपर आय काशीमें बाहुज (क्षत्री) के घरमें उत्पन्न हुए । पृथ्वीमें दिवोदास इस नामसें विख्यात हुए, वे धन्वन्तरि बालअवस्थामेंही विरक्तताको प्राप्त हुए, और घोर दुष्कर तप करा ।

यत्नेनमहताब्रह्मातंकाश्यामकरोन्नृपम् । ततोधन्वन्तरिर्लोकैःकाशीराजोऽभिधीयते ॥ हितायदेहिनांस्वीयासंहिताविहिताऽमुना । अयंविद्यार्थिनोलोकान्संहितान्तामपाठयत् ॥

अर्थ-तदनन्तर ब्रह्माने बड़े यत्नसें उसको काशीमें राजा करा, पीछे उस धन्वन्तरिको मनुष्य ' काशीराज ' ऐसें कहने लगे, प्राणियोंके हितके कारण इन धन्वन्तरिने अपने नामकी संहिता बनाई, और उसको विद्यार्थियोंको पढाई, इस संहिताको धन्वन्तरिसंहिता कहते हैं ।



सुश्रुतस्य प्रादुर्भावः ।

अथज्ञानदृशाविश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् । अयंधन्वन्तरिःकाश्यांकाशीराजोऽयमुच्यते ॥ विश्वामित्रोमुनिस्तेषुपुत्रंसुश्रुतमुक्तवान् । वत्स । वाराणसींगच्छत्वंविश्वेश्वरवल्लभाम् ॥ तत्रनाम्नादिवोदासःकाशीराजोस्तिबाहुजः । साहिधन्वन्तरिःसाक्षादायुर्वेदविदांवरः ॥

अर्थ-तदनन्तर विश्वामित्रसें आदिले सब ऋषि ज्ञानदृष्टि सें जान गए कि, यह काशीराजा काशीमें धन्वन्तरिका अवतार है । यह विचार विश्वामित्र अपने पुत्र सुश्रुतसें बोले कि, हे वत्स ! विश्वनाथकी प्यारी काशीपुरीको जाओ वहां दिवोदास काशीका राजा है, वह आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरि हैं ।

आयुर्वेदंततोऽधीत्यलोकोपकृतिहेतवे ।
सर्वप्राणिदयातीर्थंसुपकारोमहामखः ॥
पितुर्वचनमाकर्ण्यसुश्रुतःकाशिकांगतः ।
तेनसार्द्धंसमध्येतुंमुनिसूनुशतंययौ ॥

अर्थ-उनके पाससे सर्व प्राणियोंकी दयासे पवित्र, ऐसा आयुर्वेदका अध्ययन करो, कारण कि सब प्राणियोंऊपर दया करना यह तीर्थ है, और उपकार यह बड़ा भारी यज्ञ है, इस प्रकार पिताके वचनसुन सुश्रुत काशीको गए और उनके संग पढ़नेके निमित्त मुनीश्वरोंके सौ पुत्र गए।

अथधन्वन्तरिंसर्वेवानप्रस्थाश्रमेस्थितम् ।
भगवन्तंसुरश्रेष्ठंमुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥
काशिराजंदिवोदासंतेऽपश्यन्विनयान्विताः ।
स्वागतंवइतिस्माहदिवोदासोयशोधनः ॥
कुशलंपरिपप्रच्छतथागमनकारणम् ।
ततस्तेसुश्रुतद्वाराकथयामासुरुत्तरम् ॥

अर्थ-तहां काशीमें जायकर वानप्रस्थ आश्रममें स्थित देवतावोंमें श्रेष्ठ अनेक मुनि जिनकी स्तुति कर रहे ऐसे सर्व सामर्थ्ययुक्त धन्वन्तरि काशीके राजा दिवोदासको विनययुक्त ऐसे सर्व सुश्रुतआदि देखते हुए। यशरूपी धनवाले दिवोदास उन ऋषियोंको आए हुए देख, बोले कि 'तुम भले पधारे' तथा कुशल पूछी और आगमनका कारण पूछा, तब वे सर्व ऋषिपुत्र सुश्रुतद्वारा उत्तर कहते हुए।

भगवन्! मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान्।
क्रन्दतोम्रियमाणांश्चजातास्माकंहृदिव्यथा ॥
आमयानांशमोपायंविज्ञातुंवयमागताः ।
आयुर्वेदंभवानस्मानध्यापयतुयत्नतः ॥

अर्थ-कि हे भगवन्! रोगोंसे परिपीड़ित, पुकारते और मरते हुए मनुष्योंको देख, हमारे हृदयमें पीड़ा उत्पन्न हुई है। इसी कारण रोगोंके नाश करनेका उपाय पूछनेको हम आपके पास आए हैं, सो आप हम सबको यत्नपूर्वक आयुर्वेदका उपदेश करो।

अङ्गीकृत्यवचस्तेषांनृपतिस्तानुपादिशत्।
व्याख्यातन्तेनतेयत्नाज्जगृहुर्मुनयोमुदा ॥
काशिराजंजयाशीर्भिरभिनन्द्यमुदान्विताः।
सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्थाजग्मुर्गेहंस्वकंस्वकम् ॥

अर्थ–वे काशिराज, उन सुश्रुतादि ऋषियोंके वचन अंगीकार कर, आयुर्वेद कहते हुए। उस व्याख्यानको वे ऋषि यत्नसे बड़े हर्षपूर्वक ग्रहण करते हुए। तदनन्तर काशिराजको 'तुम्हारी जय होय' ऐसे आशीर्वाद देकर हर्षयुक्त तथा अपने अर्थको भले प्रकार सिद्धकर सुश्रुतादि ऋषि अपने २ घर गए। * इसी प्रकार सुश्रुतमेंभी लिखा है।

प्रथमंसुश्रुतस्तेषुस्वतन्त्रंकृतवान्स्फुटं । सुश्रुतस्यसखायोऽपिपृथक्तन्त्राणितेनिरे ॥ सुश्रुतेनकृतंतन्त्रंसुश्रुतंबहुभिर्यतः। तस्मात्तत्सुश्रुतंनाम्नाविख्यातंक्षितिमण्डले ॥

अर्थ–तिन औपधेनवादि ऋषियों में सुश्रुतने अपना स्फुट ऐसा शास्त्र रचा। तथा सुश्रुतके मित्र [औपधेनव, पौपकलावत, वैतरणौरभ्र, करवीर्य, गोपुररक्षित, आदि] भी अपने अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थ बनाते हुए, सुश्रुतने जो शास्त्र रचा उसको बहुतसे मनुष्योंने सुना इसीसे वह ग्रन्थ सुश्रुत नाम से पृथ्वीमें विख्यात हुआ। परन्तु सुश्रुत नाम से दो आचार्य हुए हैं। एक सुश्रुत दूसरे वृद्धसुश्रुत इन दोनोंमें यह निश्चय नहीं हो सके कि यह प्रसिद्ध सुश्रुत ग्रन्थ किसका बनायाहै।

---

* अथ खलु भगवन्तममरवरऋषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनव–वैतरणौरभ्र–पौष्कलावत–करवीर्यगोपुर–रक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचुः ॥ भगवन्! शारीरमानसागन्तुस्वाभाविकैर्व्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतानसनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान्विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीडाभवति, तेषां सुखैषिणां रोगोपशमार्थमात्मनः प्राणयात्रार्थञ्च प्रजाहितहेतोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छाम इहोपदिश्यमानम्। अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकञ्चश्रेयः तद्भगवन्तमुपपन्नाः स्मः शिष्यत्वेनेति ॥ तानुवाचभगवान्स्वागतंवः सर्वएवमीमांस्याअध्याप्याश्चभवन्तोवत्साअयमायुर्वेदोऽष्टाङ्गमुपदिश्यते । कस्मैकिमुच्यतामिति। तऊचुः अस्माकं सर्वेषामेवशल्यज्ञानमूलंकृत्वोपदिशतुभवानिति । सहोवाचैवमस्त्विति । तऊचुर्भूयोपिभगवन्तमस्माकमेकमतानांमतमभिसमीक्ष्य सुश्रुतोभवन्तंपृच्छति अस्मै चोपदिश्यमानं वयमप्युपधारयिष्यामः सहोवाचैवमस्त्विति।

अथवाग्भटप्रादुर्भावः ।

ततः कालात्ययेजातेवाग्भटोभिषजांवरः । समुत्पन्नोधरण्यांवैधन्वन्तरिरिवाऽपरः ॥ आसीद्राजाऽधिराजस्यसत्यसंधस्यधीमतः । ज्ञानिनः पाण्डवाग्र्यस्यसभायांसुचिकित्सकः ॥ प्रबंधावहवस्तेनप्रणीताहितकाम्यया । तेषामष्टाङ्गहृदयसंहिताप्रथिताभुवि ॥ सावाग्भटाऽभिधानेनख्याताधरणिमण्डले ॥

अर्थ–तदनंतर कुछ काल व्यतीत होनेपर, वैद्योंमें श्रेष्ठ, मानो दूसरा धन्वन्तरि ऐसा पृथ्वीमें वाग्भट वैद्य प्रगट हुआ । यह राजाधिराज, सत्यसंध, ज्ञानी ऐसे युधिष्ठिर महाराज पांडवकी सभामें चिकित्सक (वैद्य) था इन्होंने अनेक ग्रन्थ लोकहितार्थ बनाए, तिनमें अष्टाङ्गहृदयसंहिता पृथ्वीमें विख्यात हुई, और वही वाग्भटसंहिताके नामसे पृथ्वीमें विख्यात है ।

चरकात्सुश्रुताच्चैवतन्त्रेभ्योऽन्येभ्यएवच ॥ सासंगृहीतायत्नेनलोकाऽनुग्रहहेतवे ॥ विचित्रंकौशलञ्चास्यांचिकित्सासुप्रदर्शिता ॥ अनयोपकृतंसर्व्वंजगदेतन्नसंशयः ॥

अर्थ–चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थोंसे लोकके कल्याणार्थ यत्नपूर्वक इस संहिताका संग्रह करा है । इस संहितामें और चिकित्सामें इन्होंने अद्भुत चतुराई दिखाई है अर्थात् चरक सुश्रुतमें वीस पचीस श्लोकमें जो कार्य करा है, वो इसमें दो चार श्लोकमेंही कर दीना है । इन्होंने यथार्थमें संपूर्ण जगत्का उपकार करा है । इसी कारण इसकी आयुर्वेदकी बृहत् त्रयीमें गणना है । सो किसीने कहा भी है ।

सुश्रुतंनश्रुतंयेनवाग्भटोनैववाग्भटः ✓
नाधीतश्चरकोयेनसवैद्योयमकिङ्करः ॥

अर्थ–अर्थात् सुश्रुत जिसने सुना नहीं, वाग्भट जिसने जिव्हाग्रत न करा, और चरक जिसने पढा नहीं, वो वैद्य यमका दूत है इसी कारण बृहत्त्रयीपाठी वैद्यकी अत्यन्त प्रतिष्ठा है और कोई वैद्य यह कहते हैं कि अन्य १८ संहिता और युगोंके लिये हैं । परंतु वाग्भटसंहिता केवल कलियुगके लिये बनी है । यथा.

अत्रिः कृतयुगेचैवत्रेतायांचरकोमतः ।
द्वापरेसुश्रुतः प्रोक्तः कलौवाग्भटसंहिता ॥

अर्थात् सतयुगमें अत्रिसंहिता, त्रेतामें चरकसंहिता, द्वापरमें सुश्रुत, और कलियुगके लिये तो वाग्भटसंहिता है।

शिष्य–आपने कहा कि अन्य अठारह संहिता हैं वो कौनसी हैं सो कृपापूर्वक कहो।

गुरु–अठारह संहितान्के नाम हारीतसंहितामें इस प्रकार लिखे हैं।

हारीतसुश्रुतपराशरभोजभेडभृग्वग्निवेशचरकाश्च्यवनोऽप्यगस्तिः । वाराहवाग्भटनरायणनारसिंहाआत्रेयकात्रिशशिनःशिवभास्करौच ॥ सन्त्यष्टादशशिक्षाधन्वन्तेरवाग्भटंवाहिष्कृत्य ॥

अर्थ–हारीत, सुश्रुत, पराशर, भोज, भेड, भृगु, अग्निवेश, चरक, च्यवन, अगस्ति, वाराह, वाग्भट, नारायण, नारसिंह, आत्रेय, अत्रि, चन्द्रमा, शिव और सूर्य, इनमें वाग्भटको त्यागनेसे अठारह संहिता आयुर्वेद शास्त्रकी कही हैं।

शिष्य–चरक सुश्रुत वाग्भट आदिग्रन्थोंमें रस चिकित्सा कहीं नहीं लिखी फिर रसग्रन्थोंका प्रचार कैसे हुआ। गुरु–

रसग्रंथानां प्रादुर्भावः।

भूतानुकम्पाप्रवणोमहेशः श्मशानवासीजगदादिनाथः । स्ववीर्य्ययुक्तागदयोगरत्नैःकीर्णानितन्त्राणिबहूनिचक्रे ॥ रसप्रबन्धास्त्वधुनातनायेतन्मूलकाएवकृताःसुधीभिः॥सृष्टिस्थितिध्वंसकृतोऽखिलानामनादिनाथस्यमहाप्रसादात् ॥

अर्थ–सर्व जगतके आदिभूत, श्मशानवासी परमकारुणिक, भूतपति श्रीमहादेव उन्होंने स्वप्रकाशित, विविधतन्त्र स्ववीर्ययुक्त अर्थात् जिन्होंमें पारदसे आदि ले अनेक रसादि औषध रोग दूर करनेको कही ऐसे अनेक तंत्र रचते हुए। और जितने आधुनिक रसग्रन्थ पंडितोंने बनाए हैं वे सब उन्हीं शिवप्रोक्त तंत्रोंसे निकाले हैं अतएव सब आधुनिक रस ग्रन्थोंकी जड़ प्राचीन तंत्र हैं।

रसग्रन्थेषुतंत्रेषुधातुशोधनमारणे । विवृतेचविशेषेणरसराज

स्यसंस्कृतिः ॥ चरकादौरसादीनांप्रयोगोनैवदृश्यते । अतः प्रचारएतेषांहितायजगतोमतः ॥

अर्थ-रसके ग्रन्थोंमें और तंत्रोंमें धातुओंका शोधन, मारण और विशेष करके पारदके संस्कार कहे हैं सो चरकादि (सुश्रुत वाग्भटादि) ग्रन्थोंमें रस-प्रयोग नहीं है । इसीवास्ते जगत्के कल्याणार्थ इनका प्रचार संसारमें है ।

शिष्य-रसग्रन्थोंका प्रचार विशेष कबसे हुआ, और प्राचीन ग्रन्थोंसे इनमें क्या विशेषता है ।

गुरु-पहले समयमें काष्ठादि औषधद्वारा वैद्य चिकित्सा करा करते, क्योंकि रसोंके बनानेमें एक तो समय बहुत चाहिये, दूसरे द्रव्य विशेष खर्च होता है, तीसरे इनके बनानेमें सहायकभी दो चार मनुष्य अवश्य होने चाहिये । तथा रस, आसव और तैल आदि प्राचीन उत्तम कहे है । ऐसे ऐसे अनेक कारणोंसें प्राचीन वैद्य काष्ठादि जड़ी बूंटीसे चिकित्सा करते, इसीसे रस ग्रन्थोंका प्रचार पहले समयमें थोडाथा, परन्तु जबसे इस भारतवर्षमें यवनोंका राज्य हुआ और उनके साथ उनके देशके यूनानी वैद्य आए । उन यूनानी वैद्योंने यहांके राजा बाबू लोगोंको अपनी स्वादिष्ट औषध देकर अपनी और अपने शास्त्रकी उत्तमता दिखाय, यहांके वैद्योंकी और यहांके शास्त्रोंकी निंदा करने लगे । इसी कारणसें वैद्योंकी जीविका नष्ट होने लगी, और दिन प्रतिदिन हकीमोंकी चाह विशेष होने लगी । तब हमारे गुरु घंटाल वैद्योंसे न सहा गया शीघ्र अपने प्राचीन रसशास्त्र रूप खजानेको खोला जैसे शत्रुकी चढाई देख राजा महाराजा अपने खजानेको खोलते है । बस जो इन्होने रसोंको देना प्रारंभ करा तो यूनानी मुगलानी पठानियोंकी वानी बंद कर पानीसे भी पतले कर दिये । और जो यूनानी वैद्य रुक्का लिख रोगींके द्रव्य हरण करनेको सैकरों दवाई लिखतेथे, तथा अत्तारोंसे आधा तिहाई ठहरा कर उस रुक्केमें दो चार दवाई संकेत (समस्या) की लिख देते थे जो दमडीकी औषध उसके अत्तार साहब रुपया दो रुपये अथवाजैसा रोगी देखा वैसाही दो आने चार आने मांग लेते थे, यह अधर्म रसशास्त्रके प्रगट होते ही नष्ट होने लगा अर्थात् जो हकीमोंकी सेरों दवाई काम करती वो वैद्योंके रसोकी पाव चावल आधे चावलकी मात्रा काम करने लगी । इसी कारण काष्ठादि औषधोंसे रसशास्त्रको श्रेष्ठता है जैसे किसीने लिखा है ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्यसंगतः ॥
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योरसोधिकः ॥

अर्थ-काष्ठादि औषधोंकी अपेक्षासें रसकी थोडी मात्रा उपयोगी होती है तथा काष्ठादि औषधोंके खानेसें अरुचि होती है, सो रसके भक्षणसें कदाचित् नहीं हो, और काष्ठादि औषधकी अपेक्षा रस जल्दी आरोग्यदाता है, इसीसे काष्ठादि औषधोंसे रसको आधिक्यता है।

अन्यच्च

मुक्त्वैकंरसवैद्यन्तु लाभंपूजांयशस्तथा ॥
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः कोलभेतवराटकाम् ॥

अर्थ-एक रसज्ञ वैद्यको छोड़, लाभ, पूजा और यशको कौन प्राप्त हो सकता है। तथा तृण काष्ठोषधोंकर्के कौन वैद्य कौडी ले सके है । और चंद्रोदय, मकरध्वज, मृत्युंजय, कफरस, राजमृगांक, स्वर्णपर्पटी, वसंतकुसुमाकर, नागेश्वर, ताम्रेश्वर, वंगेश्वर आदि रसोंके अनुपानभी दूध, मक्खन, मलाई, सहत, मिश्री, सोने चांदीके वर्क इत्यादि है । बस जबसे मुसलमानोंका आर्यावर्त्तमें आना हुआ, तबसेही रसशास्त्रके प्रचार होनेकी बहुधा जड़जमी,

शिष्य-प्राचीन रसग्रन्थकर्त्ता कौनसे हैं ।

गुरु-प्राचीन रसशास्त्र बनानेवाले आचार्यों के नाम रसरत्नसमुच्चयमें इस प्रकार लिखे हैं ।

आगमश्चन्द्रसेनश्चलङ्केशश्चविशारदः । कपालीमतमांडव्यौ भास्करः शूरसेनकः ॥ रत्नकोशश्चशम्भुश्चतथैकोनरवाहनः। इन्द्रदोगोमुखश्चैवकंबलिर्व्यालिरेवच ॥ नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः॥ खण्डः कपालिकोब्रह्मागोविन्दोलुंपकोह रिः॥ रसांकुशोभैरवश्चकाकचण्डीश्वरस्तथा । वासुदेवोऋष्य शृंगः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ॥ रसेन्द्रतिलकोयोगीभालुकीमै थिलाह्वयः॥महादेवोनरेन्द्रश्चरत्नकारोहरीश्वरः ॥ एतेचान्ये चयेसिद्धारसशास्त्रप्रवर्त्तकाः॥

अर्थ-आगम, चन्द्रसेन, लंकेश (रावण) कपाली, मांडव्य, भास्कर, शूरसेन, रत्नकोश, शम्भु, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कंबलि, व्यालि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खंड, कपालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लुंपक, हरि, रसांकुश, भैरव,

काकचंडीश्वर, वासुदेव, ऋष्यशृंग, क्रियातंत्रसमुच्चयी, रसेन्द्रतिलकयोगी, भालुकी, जनक, महादेव, नरेन्द्र, रत्नकार, हरीश्वर इनसे आदि ले और नित्यनाथ, गोरख, मुछंदरआदि सिद्ध रसशास्त्रके प्रवृत्तिकर्त्ता हैं ।

अथसिद्धोनित्यनाथः पार्व्वतीतनयः सुधीः ।
रसरत्नाकराख्यश्चरसग्रंथंप्रणीतवान् ॥
रसेन्द्रचिन्तामणिनामधेयः । ढुंढूकिनाथोभिषगग्रगण्यः ॥
रसेन्द्रयुक्तैर्विविधैश्चकार । सुभेषजैःकीर्णमतीवचित्रम् ॥
रसग्रंथप्रणेतारोभूवन्नन्येपिभूतले ।
सर्व्वएवहितेग्रन्थाआश्चर्यफलदायिनः ।

अर्थ–पूर्वोक्त ग्रन्थोंके अनन्तर पार्वती पुत्र ऐसे सिद्ध नित्यनाथने रसका ग्रन्थ रसरत्नाकर बनाया, औरभिषग्शिरोमणि ढुंढुनाथने अनेक पारदके प्रयोगसहित सुन्दर औषध जिसमें ऐसा रसेन्द्रचिन्तामणि ग्रन्थ निर्माण करा । तदनंतर और बहुतसे पंडितोंने अनेक रसग्रन्थ बनाए । वे सब ग्रन्थ आश्चर्यफलदायक हैं । उनमेंसे जो आज कल प्रचलित ग्रन्थ हैं उनके कुछ नाम लिखते हैं । रसार्णव, रसमञ्जरी, रसेन्द्रकल्पद्रुम, रसराजशंकर, रसहृदय, रसदीपक, रससिद्धिप्रकाश, रसेन्द्रकोश, रसालंकार, रसभूषण, इत्यादि हैं इन सबका संग्रह करके रसराज सुन्दर ग्रन्थ भाषाटीका सह निर्माण करा गया है ।

श्रीमाधवकरश्चन्द्रसूनुः सूरितमोभिषक् ।
नानाशास्त्रोद्धृतंचक्रेसंग्रहंरुग्विनिश्चयम् ॥

अर्थ–भिषक्शिरोमणि श्रीमाधवकरश्चन्द्रके पुत्र, अनेकशास्त्रोंका संग्रहकाररुग्विनिश्चयनामक ग्रन्थ करते हुए।यद्यपि,अंजननिदान, हंसराजनिदान, सुषेणनिदान, व्याडि आदि आचार्य्योंकेनिदान बहुत हैं । परन्तु सर्वोत्तम निदान माधवही है इस माधवनिदानकी मधुकोशटीकाकरताने औरभी ग्रन्थकर्त्ताओंके नाम लिखेहैं । यथा-

भट्टारजेज्जटगदाधरवाप्यचन्द्रैः श्रीचक्रपाणिवकुलेश्वरसेन भव्यैः ॥ ईशानकार्तिकसुकीरसुधीरवैद्यैर्मैत्रेयमाधवमुखै र्लिखितंविचिंत्य ॥१॥ तन्त्रान्तराण्यपिविलोक्यममैपयत्नः सद्भिर्विधेयइहदोषविधौसमाधिः ॥ मर्त्यैरसर्व्वविदुरैर्विहितेक नाम ग्रन्थेऽस्तिदोषविरहः सुचिरन्तनेपि ॥ २ ॥

अर्थ-भट्टार, जेज्झट, गदाधर, वाप्पचन्द्र, श्रीचक्रपाणि, बकुलेश्वरसेन, ईशान, कार्तिक, सुकीर, मैत्रेय और माधव आदिका लेख विचार, तथा और अनेक तंत्रों-को देख इस ग्रन्थ बनानेमें हमारा प्रयत्न है इस ग्रन्थमें पंडितजनोंको समाधान करना चाहिये क्योंकि असर्वज्ञ मनुष्यकृत ग्रन्थमें दोषराहित्य कहां है ! अर्थात् दोषदृष्टिको परित्याग कर जहां कहीं अशुद्ध रहगया होय उसको सुधार देवे, परन्तु, जो दुष्टजन हैं वो इस बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थको देखकर दोषारोपण करेंहींगे, उनसे हम नहीं डरते, जैसे लिखा है।

तथापिक्रियतेग्रन्थः सन्तियद्यपिदुर्जनाः ।
नहिदस्युभयाल्लोकोदैन्यवानिहवर्त्तते ॥

अर्थ-यद्यपि संसारमें दुर्जन जन हैं तोभी हम ग्रंथ करते हैं। क्योंकि संसार चोरोंके भयसें दीनता नहीं ग्रहण करे, अर्थात् सेठ साहूकार चोरोंके भयसे कुछ अपने व्यवहारको नहीं छोड़ते।

भ्रमद्भ्योव्याधिचक्रेभ्योरक्षितुंह्यबलान्नरान् । नानातन्त्रप्रसूनेभ्योमधून्याहृत्ययत्नतः ॥ शास्त्रचक्राणिसंघूर्ण्यदृष्ट्वासम्यक्फलाफलम् । चक्रपाणिश्चिकित्सात्ममधुचक्रंप्रणीतवान् ॥ ग्रन्थेचक्रकृतेरीतिर्वैशद्यंपरिदर्शितम् । चिकित्सायां विशेषेण स्नेहादिपचनेतथा ॥ नान्यस्मिन्दृश्यतेचेदृग्ग्रन्थकौशलबन्धनम् । चिरंविद्योततांसूरिहृदयेऽयंसुसंग्रहः ॥

अर्थ-निरन्तर भ्रमणशील रोगचक्रसें दुर्बल मनुष्य गणोंकी रक्षा करनेके निमित्त, भिषग्वर चक्रपाणिदत्त, अनेक शास्त्रोंका सार संग्रह कर स्वनामक अर्थात् चक्रदत्त नाम चिकित्सा ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथमें चिकित्साकर्मकी सुन्दर शृंखला दिखाई है और तैलआदि पाचनकी विधि उत्तम कही है। जैसी प्रणाली इस ग्रंथमें है ऐसी दूसरे ग्रंथमें कुशलता नहीं है, यह ग्रंथ पंडित लोगोंके हृदय-में बहुत कालपर्यंत प्रकाश करो सुनते हैं कि, चक्रपाणिदत्तकृत चक्रदत्त ग्रंथमें निदान, निघंट और चिकित्सा सर्व वस्तु है परन्तु यह कलकत्तेमें जो छपा है वह संपूर्ण नहीं है।

राजनिघण्टुः।

नाम्नाश्रीनरसिंहपंडितवरः काश्मीरदेशोद्भवो नानाकोष-

महाब्धिमन्थनगतंरत्नोच्चयंयत्नतः ॥ एकीकृत्यनिबन्धबन्ध नमहोनिघण्टुराजाभिधं चक्रेलोकहितेप्सयाहितकरंद्रव्या भिधानार्थकम् ॥ १ ॥

कोपादस्मात्तथाऽन्येभ्योद्रव्याणितद्गुणान्गुणान् । यौरू पीयावनीभाषांदेशभाषांतथैवच । सामग्र्येणतथोलाच्यक्रिया स्माभिर्विधीयते ॥

अर्थ–काश्मीर देशीय श्रीनरसिंह नामक पंडितवर, अनेक कोपरूप समुद्रका मन्थन कर उनसे अनेक शब्दोंको एकत्र कर, राजनिघंटु नामक सर्व लोकके कल्याणार्थ द्रव्याभिधान बनाया इस कोषसे तथा और कोशोंसे गुण और अवगुण विचार तथा अंग्रेजी यूनानी भाषाओंको विचार इस ग्रंथमें क्रिया लिखी है ।

भावप्रकाशः ।

आसीन्मद्रेजनपदेविप्रोविद्वत्कुलोत्तमः । शिरोमणिःसद्भिप जांधन्वन्तरिरिवक्षितौ ॥ शास्त्राणांपारदृक्सम्यक्भावमिश्रे तिनामकः । वाराणस्यामवस्थायभूमिपानांमहात्मनाम् ॥ व हूनांबहुधासम्यग्रुजांकृत्वाप्रतिक्रियाम् । प्रतिष्ठांमहतींभूमौ लब्धवान्साधुपूजितः ॥

अर्थ–३०० तीनसौ वर्ष व्यतीत हुए तब मद्रदेशमें, विद्वान् ब्राह्मणों के उत्तम कुलमें, मानो द्वितीय धन्वन्तरि ऐसे शास्त्रके पारदर्शी, भावमिश्रनामक भिषक्शिरोमणि प्रगट हुए । वे काशीपुरीमें वास करि तद्देशीय अनेक महात्मा राजाओंकी अनेकवार चिकित्सा कर बड़ी भारी प्रतिष्ठाको प्राप्तहुए ।

शिष्यानध्यापयामासयोविदशतसंख्यकान् । महारत्नानिचो द्धृत्यआयुर्वेदमहाम्बुधेः । ग्रंथंभावप्रकाशाख्यंलोकानांहित काम्यया । प्रणीतवान्प्रयत्नेनवैद्यानामुपकारकम् ॥ आयु र्वेदप्रबंधानांग्रन्थःसचरमःस्मृतः ।

अर्थ–जिन्होंने चारसौ ४०० शिष्योंको आयुर्वेदादि शास्त्र पढ़ाए, तथा आयुर्वेदरूप समुद्रसें महारत्नरूप श्लोकोंका संग्रह कर, लोकोंके कल्याणार्थ भावप्र-

काश नाम ग्रंथ बनाते हुए । यह ग्रंथ वैद्योंका उपकारी है, यह जितने आयुर्वेदके ग्रंथहैं उनमें पिछला ग्रंथ है ।

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयोयोगरत्नानियत्नाल्लब्ध्वा-स्वेस्वेनिबंधेदधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय । तत्तद्ग्रंथाद्गृहीतैःसुवचनमणिभिर्भावमिश्रश्चिकित्साशास्त्रेजाड्यान्धकारंप्रशमयितुमिमंसंविधत्तेप्रकाशम् ॥

अर्थ-आयुर्वेदरूपी समुद्रमेंसे, महाबुद्धिमन्त मुनीश्वरोंने योगरत्नरूपी रत्नाको लेकर, अपने अपने ग्रंथोंमें धरे हैं । उन रत्नोंको समग्र मनुष्योंके रोगनाशनार्थ उन्हीं उन्हीं ग्रन्थोंमेंसे ग्रहणकरके और भावयुक्त ऐसे सुवचनरूपी मणियोंसे इस चिकित्साशास्त्रमें मूर्खताके अन्धकार दूर करनेके वास्ते ग्रन्थकर्त्ता आप यह प्रकाश करे है ।

पूर्वाचार्य्यैःप्रणीतेषुपूजनीयैर्महर्षिभिः ।तंत्रेषुयानिरत्नानिता-न्यत्रापिप्रधानतः॥लभ्यन्तेन्यान्यपितथाहश्यन्तेयानिनक्वचित्॥ तथालिप्यंतरेचापियत्कप्यन्यैर्नहश्यते।पारस्यादिप्रदेशेषुजाताऔषधयश्चयाः॥आचार्येणगृहीतास्ताःपूर्वाचार्य्यैर्नतत्कृतम् । व्याधेःफिरङ्गकाख्यस्यलिखितंचात्रलक्षणम्।तस्यप्रतिक्रियाचापितन्त्रेऽन्यस्मिन्नदृश्यते ॥

अर्थ-महर्षियोंकरके पूज्य ऐसे पूर्वाचार्य्योंके बने हुए ग्रन्थोंके श्लोक सब इस भावप्रकाशमें हैं और बहुतसे ऐसे प्रयोग इसमें हैं, जो कहींनहीं लिखे-पारसी (मुसलमानी) प्रदेशोंमें होनेवाली औषधियोंके नाम गुण, प्राचीन आचार्योंने नहींलिखे वो सब इन्होंने लिखेहैं । तथा फिरंगरोगके लक्षण यत्न किसी ग्रंथमें नहीं है वो इन्होंने अपने ग्रंथमें लिखे हैं ।

अतःप्रतीयतेचायुःशास्त्राणांचरमोन्नतिः । जाताश्रीभावमिश्रस्यसमयेकुशलप्रदे । तादिमंचरमंग्रन्थंवैद्यानांजीवनंमतम् । श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् । भावप्रकाशनामाग्रंथोयंपठ्यतांसर्वैः ॥

अर्थ-इन पूर्वोक्त कारणोंसे मालूमहोता है कि इस भावप्रकाश ग्रंथकी उन्नति

भावमिश्रके समय पीछे हुई है। यह सबके पश्चात् बनाहुआ ग्रंथ वैद्योंका जीवनरूप है। श्रीपतिके चरणारविंदके प्रसादसें, और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसें भावप्रकाश-नामक यह ग्रंथ तुम सर्व मनुष्य पढ़ो।

इति आयुर्वेदप्रणेतॄणांप्रादुर्भावः ।

अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषइत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानं कस्माल्लोकस्य द्वैविध्यात् ।

अर्थ-इस आयुर्वेदशास्त्रमें, पञ्च महाभूत "पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश," और शरीरी कहिये आत्मा, इन्के संयोगको पुरुष कहते हैं। उस पुरुषमें शास्त्रोक्त कर्म हैं, क्योंकि वही पुरुष व्याधि और आरोग्यका आधार है, अर्थात् पुरुषमेंही शास्त्रोक्त चिकित्सा होती है, क्योंकि सर्व जीवोंके दो भेद हैं।

लोकोहिद्विविधः स्थावरोजङ्गमश्च । द्विविधात्मकए वाग्नेयः सौम्यश्चतद्भूयस्त्वात् । पञ्चात्मकोवा ।

अर्थ-लोक स्थावर और जंगमके भेदसें दो प्रकारका है, वह स्थावर जंगमभी आग्नेय (गरम) और सौम्य (शीतल) के भेदसें दो प्रकारका है, क्योंकि बहुधा प्राणिमात्र तेज और शीतळ स्वभाववालेही होते हैं । अथवा सर्व प्राणी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी आधिक्यतासें पांच प्रकारके हैं ।

तत्रचतुर्विधोभूतग्रामः। स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायुजसंज्ञः । तत्रपुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत् । तस्मात्पुरुषोऽधिष्ठानम्।

अर्थ-तहां पूर्वोक्त प्राणियोंका समूह चार प्रकारका है। स्वेदज (१) अंडज, (२) उद्भिज्ज, (३) जरायुज, (४) इन चारों प्रकारके प्राणियोंमें पुरुष (मनुष्य (५) की प्रधानता है। और उस मनुष्य जातिके स्थावर जंगम स्वेदजादि उपकरण (सामग्री) अर्थात् साधन है । इसीसें आयुर्वेदोक्त क्रियाओंका आधार पुरुष है।

(पंचमहाभूत शरीरी समवायः पुरुषः) इस्के कहनेसें, पुरुषशब्द करके पश्वादिकोंकाभी बोध होता है। तथापि मनुष्यजातिकाही इस जगह पुरुषशब्द वाचक है।

(१) पसीनासें जो होते हैं जुंआं लीख आदि (२) जो अंडाओंसें प्रगट होते हैं तोता चिरैया, सर्प आदि, (३) जो पृथ्वीको फोड कर प्रगट होते हैं

जैसे वृक्षादि (४) और जो जरा (झिल्ली) में लिपटे माताके पेटसे प्रगट हो जैसे मनुष्य आदि ।

तद्दुःखसंयोगाव्याधयइत्युच्यंते । तेचतुर्विधाआगन्तवःशारीरा मानसाः स्वाभाविकाश्चेति । तेषामागन्तवोऽभिघातनिमित्ताः । शारीरास्त्वन्नपानमूलावातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः । मानसास्तुक्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवंति । स्वाभाविकाःक्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः ।

अर्थ-उस पुरुषको दुःख संयोग होनेको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं अथवा जिनके होनेसें, अथवा जिन करके, अथवा जिनसें मनुष्यको दुःख हो उनको रोग कहते हैं । वो व्याधि (रोग) चार प्रकारके हैं । आगंतुज, शारीरी, मानसिक, और स्वाभाविक, तिनमें तीर, तलवार, लाठी आदि चोट लगनेसे जो रोग होवे, उसको आगंतुज कहते हैं । अन्न अर्थात् विषम भोजन है कारण जिसमें और वात, पित्त, कफ, रुधिर, सन्निपात इन्होंकी विषमता है निमित्त जिन्होंकी उन व्याधियोंको शारीरी (अर्थात् शरीरसे होनेवाली) कहते हैं । क्रोध, शोक, भय, हर्ष, (आनन्द) विषाद (पश्चात्ताप) ईर्ष्या, निंदा, दीनता, मत्सरता, काम, लोभ, आदि शब्दसे-मान, मद, दम्भ, इत्यादि इच्छा और द्वेषसें होनेवाली व्याधियोंको मानसिक (अर्थात्) मनसें होनेवाली व्याधि कहते हैं । और भूख, प्यास, वृद्धता, मृत्यु, निद्रा आदि स्वाभाविक व्याधि (रोग) कहाते हैं । अर्थात् भूख प्यास ए ईश्वरनिर्मित हैं) इसीसें इन्होंका निवारण नहीं होता है । यदि पूर्वोक्त भूख प्यास आदि रोग दोषोंके घटने बढनेसे होवे (जैसे भस्मकरोग, अतितृषा, बिना समय बुढापा) तो इनकी चिकित्सा होसकती है ।

तएतेमनःशरीराधिष्ठानाःतेषांसंशोधनसंशमनाहाराचाराःसम्यक्प्रयुक्तानिग्रहहेतवः ॥

अर्थ-पूर्वोक्त चतुर्विधव्याधि, मन और शरीरके आश्रय होती है । अर्थात् काम क्रोधादि रोग मनके आश्रय है । और ज्वरादि रोग शरीरके आश्रय होते हैं। तथा अपस्मार (मृगी) आदि व्याधि मन और शरीर दोनोंके आश्रित होती हैं। इन पूर्वोक्त ४ प्रकारकी व्याधि, (१) संशोधन (२) संशमन (३) आहार और (४) आचार (५) विधिपूर्वक सेवन करनेसे शांति होती है।

प्राणिनांपुनर्मूलमाहारोबलवर्णौजसांच । पट्सुर सेष्वायत्तोरसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः ।

अर्थ-प्राणियोंका कारण आहार (भोजन) है । केवल प्राणियोंकाही मूल नहीं है किंतु बल, वर्ण और ओज, (लावण्यता) काभी हेतु आहारही है । वह आहार मधुर आदि छः रसोंके अधीन है, रस द्रव्यके अधीन हैं ।

१ शोधन दो प्रकारका एक बहिराश्रय दूसरा अंतराश्रय, तहां शस्त्र, दागना, लेप आदिको बहिराश्रय, और वमन, विरेचन, अनुवासन, फस्त खोलने आदिको अन्तराश्रय शोधन कहते हैं ।

२ जो दूषित दोषोंको शोधन न करे, और जो दोष समान हैं उनको बढ़ावे नहीं, और कुपित दोषोंको समान करे, उस द्रव्यको संशमन कहते हैं । वो संशमन बाह्य अभ्यंतरके भेदसें दो प्रकारका है । तहां लेप, परिषेक, स्नान उबटना, फस्त खोलना, बस्तिकर्म, गंडूष, (कुल्ला) इत्यादि बाह्य संशमन है । और पाचन, लेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, विषप्रशमनादि, अभ्यंतर संशमन है ।

३ आहार ४ प्रकारका है १ भक्ष्य, २ भोज्य, ३ लेह्य, ४ चोष्य, फिर वह आहार तीन प्रकारका है । १ दोषप्रशमन, २ व्याधिप्रशमन, और ३ स्वस्थवृत्तिकर।

४ देह, वाणी और मन, इनके कर्म को आचार कहते हैं । तहां खेलना, कूदना, डोलना आदि देहका कर्महै । पढना, पढाना आदि वाणीका कर्म है । ध्यान, चिंता, विचार, संकल्प आदि मानसिक कर्म है ।

५ विधिपूर्वक कहनेका यह प्रयोजन है कि, देश, काल, अवस्था, बल आदिको देखकर शोधनादि कर्म करने चाहिये ।

द्रव्याणिपुनरौषधयस्ता द्विविधाः स्थावराजङ्गमाश्च । तास्थावराश्चतुर्विधाः वनस्पतयो वृक्षा वीरुध ओषधय इति। तास्वपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयःपुष्पफलवन्तो वृक्षाः प्रतानवत्यः स्तंबिन्यश्च वीरुधः फलपाकनिष्ठाओषधयः।

अर्थ-द्रव्य औषधके अधीन है वह औषध दो प्रकारकी है, एक स्थावर, दूसरी जंगम, तिनमें स्थावर ४ प्रकारकी है वनस्पति, वृक्ष, वीरुध और औषधी, तिनमें फूलरहित फलवाली (जैसे पाखर, गूलर आदि) वनस्पति कहाती है । और जिन्होंमें फूल फल दोनों आवें (जैसे आम, जामुन आदिको) वृक्ष कहते हैं,और जो धरतीमें फैल जाती हैं अथवा छोटी गुल्मवान् हों (जैसे करेला, गिलोय, शा-

लपर्णी, पृष्ठपर्णी, जवासे आदि) इनको वीरुध कहते है, और जो फलके पकने से नष्टहोवे (जैसे गेंहूं, जो, चना आदि) इन्को ओषधि कहते हे।

जङ्गमास्त्वपिचतुर्विधाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः। तत्रपशुमनुष्यव्यालादयोजरायुजाः। खगसर्पसरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः।कृमिकीटपिपीलकप्रभृतयःस्वेदजाः। इन्द्रगोपमण्डूकप्रभृतय उद्भिज्जाः।

अर्थ–जंगम प्राणी भी ४ प्रकारके हे। जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज, तिनमें पशु, मनुष्य, व्याल (सर्प) आदि जरायुज कहलाते हे।पक्षी (तोता, मैना, कोयल, मोर आदि) सर्प, सरीसृप, आदि अंडज कहलाते हैं कृमि, कीट, चेंटी, (जूंआं, खटमल) आदि स्वेदज अर्थात् पसीनेसें होनेवाले कहाते हे। इन्द्रगोप (बीरवहूटी) मेंडका, वृक्षादि उद्भिज्ज कहलाते हैं। व्याल शब्द करके हिंसक जीव सिंह व्याघ्रादिकोंका ग्रहण है, कोई आचार्य व्यालशब्द करके सर्पविशेष कहते हे, यथा " सर्पजातिपुअहिपताकाजरायुजेति" अथवा सर्पशब्दसे अजगर आदि मंदगामी सर्प जानने, और सरीसृपशब्दसे जल्दी चलनेवाले काले. पीनिया आदि सर्प जानने। आदिशब्दसे मच्छी, मगर आदि जानने। कहीं कहीं चेंटी अंडांसे और पृथ्वीसेभी होती हे।

तत्रस्थावरेभ्यस्त्वक्पत्रपुष्पफलमूलकन्दनिर्यासस्वरसादयः प्रयोजनवन्तोजङ्गमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः।

अर्थ–तिन स्थावर जीवोंसे त्वचा, (छाल) पत्ता, फूल, फल, जड़ कन्द, गोंद, रस आदिशब्दसे तेल, क्षार, भस्म, कांटे आदि ए कामके हे अर्थात् स्थावरोंसे ए अंग ग्रहण करने चाहिये और जंगम जीवोंके चर्म (चाम) नख, रोम, (बाल) रुधिर, और आदिशब्दसे मांस, वसा, हड्डी और खुर ए कामके हे।

पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः। कालकृतास्तुप्रवातनिवाताऽऽतपच्छायाज्योत्स्नातमःशीतोष्णवर्षाहोरात्रपक्षमासर्त्वयनादयः संवत्सरविशेषाः।

---

१ पाठ मलसे प्रगट होनेवाली इन्को कृमि कहते हे, जैसे गिनार आदि। २ विच्छूः पूंछवालेन्को कीट कहते हैं।

तएतेस्वभावतएवदोषाणांसञ्चयप्रकोपप्रशमप्रतीकारहेतवः प्रयोजनवन्तश्च ।

अर्थ–पार्थिव कहिये पृथ्वीके विकारोंमें सोना, चाँदी, फटिक आदि मणि, मोती, मनसिल, मट्टी, खपरा और आदिशब्दसें लोह, कौटी, धूल, विष, हरिताल' नोन, गेरू और सुरमा, आदि इन सबको काममें लाने चाहिये । तथा काल (समय) संबंधी वस्तुओंमें अत्यंत पवन, पवनका निरोध, धूप, छाया, चांदनी, अंधकार, सरदी, गरमी, वर्षा, दिन, रात्रि, पक्ष, महिना, ऋतु, अयन आदि संवत्सर-विशेष और आदिशब्दसें निमिष, कला, काष्ठा, मुहूर्त्तादिक, जानने । अब इनका प्रयोजन यह है कि-ए पूर्वोक्त स्थावर, जंगम, पार्थिव और कालकृत पदार्थ ये सब स्वभावहीसें वात, पित्त, कफ आदि दोषोंके संचय, प्रकोप और प्रशमन (शांति) के हेतु होते हैं, तथा चिकित्सोपकारक होते हैं अर्थात् खील, सुगंधवाला, खस, लालचंदन, जलमें डारके पवनमें रातिभर धरा रक्खे तथा मैनफलोंको पवनरहित धूएमें सुखावे इत्यादि प्रयोजन जानना ।

शरीराणांविकाराणामेपवर्गश्चतुर्विधः ॥चयेकोपेशमेचैवहेतुरुक्तश्चिकित्सकैः ॥आगन्तवश्चयेरोगास्तेद्विधानिपतन्तिहि॥मनस्यन्येशरीरेऽन्येतेपान्तुद्विविधाक्रिया॥शरीरपतितानान्तु शरीरवदुपक्रमः मानसानान्तुशब्दादिरिष्टोवर्गः सुखावहः ।

अर्थ–[आहार, आचार, पार्थिव और काल भेदसें] शरीर विकारोंका यह चार प्रकारका वर्ग, संचय कोप और शांतिका कारण वैद्योंने कहा है, [परंतु जेज्जट आहार आचारको छोड़ स्थावर, जंगम, पार्थिव और काल इस चतुर्वर्गको देहके रोगोंके संचय, कोप और शांतिका कारण मानता है] परंतु इसके मतका पंजिकावाला खंडन करता है । अब जो आगंतुक रोग अर्थात् किसी चोट आदि कारणोंसे प्रगटे हैं वह रोग दोप्रकारके हैं पहले जो मनसें संबंध रक्खे दूसरे वो जो शरीरसें सम्बन्ध रखते हैं उन दोनोंकी दो प्रकारकी चिकित्सा है । जो शरीरमें पड़ते हैं जैसें तीर, तलवार आदिका घाव उनकी शरीरके अनुकूल चिकित्सा करनी चाहिये और मनमें होनेवाले रोग (चिंता, उद्वेग, ईर्ष्या आदि) मन प्रसन्न करनेवाले (शब्दादि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) आदि वांछित पदार्थ सुख देनेवाले होते हैं ।

एवमेतत्पुरुषोव्याधिरौषधंक्रियाकालइतिचतुष्टयंसमासेन व्याख्यातं । तत्रपुरुषग्रहणात्तत्सम्भवद्रव्यसमूहोभूतादि

रुक्तस्तदङ्गप्रत्यङ्गविकल्पाश्चत्वङ्मांससिरास्नायुप्रभृतयः।

अर्थ-इस प्रकार पुरुष, व्याधि, औषध, क्रिया और काल यह चार वस्तु संक्षेपसें कही हैं यद्यपि पुरुषादिक पांच होते हैं तथापि चारही समझने अथवा क्रिया काल एकही जानना तहां पुरुषके ग्रहणसें उस पुरुषसें उत्पन्न द्रव्य समूह, (शुक्र, आर्त्तव) और पंच महाभूत आदि तथा पुरुषके अंग (मस्तकादि) प्रत्यंग, (चिबुक आदि) त्वचा, मांस नस आदिका ग्रहण करा जाय है।

व्याधिग्रहणाद्वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः सर्वएवव्याधयोव्याख्याताः। ओषधिग्रहणाद्द्रव्यगुणरसवीर्यविपाकप्रभावाणामादेशः।

अर्थ-व्याधिके कहनेसें वात, पित्त, कफ, रुधिर और सन्निपात इन्होंकी विषमता (घाट वाढ) सें उत्पन्न होनेवाली सर्व व्याधियोंका ग्रहण कियाजाय है (सर्वएव) इसके कहनेसें आगंतुक, मानसिक, स्वाभाविक सर्व रोगोंका ग्रहण है।

क्रियाग्रहणाच्छेद्यादीनिस्नेहादीनिचकर्माणिव्याख्यातानि। कालग्रहणात्सर्वक्रियाकालानामादेशः। बीजंचिकित्सितस्यैतत्समासेनप्रकीर्तितम्॥

अर्थ-क्रियाके कहनेसें छेद्यादि (अर्थात् छेद्य, भेद्य, लेख्य, आहार्य, विश्राव्य और सीव्य) तथा स्नेह आदि(स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, स्थापन, अनुवासन, नस्य, कवलग्रहण, गंडूष, पाचन और संशमनादि) कोंका ग्रहण है। और कालके कहनेसें संपूर्ण वमन विरेचनादि क्रियाओंका समय जानना चाहिये, अर्थात् अमुक समयमें विरेचनादि लेवे और अमुक समयमें चिरना फाड़ना आदि कर्म करने चाहिये यह चिकित्साका बीज संक्षेपसें कहा है।

स्वयम्भुवाप्रोक्तमिदंसनातनंपठेद्धियः काशिपतिप्रकाशितम्॥
सपुण्यकर्माभुविपूजितोनृपैरसुक्षयेशक्रसलोकतांव्रजेत्॥ १॥

अर्थ-अब इस शास्त्रका माहात्म्य कहते हैं, जो मनुष्य श्रीब्रह्मदेवप्रणीत तथा काशिपतिप्रकाशित इस सनातन शास्त्रको पढेगा वह पुण्यकरनेवाला पृथ्वीमें राजा महाराजाओंसें पूजित होवे और देहके अन्तमें इन्द्रके स्वर्गमें जावे।

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मिते आयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्यायकथनं नाम प्रथमतरङ्गप्रथमवीचिः॥

ग्नि, देवता, राजा, पिता और भर्त्ता (स्वामी) इनके सदृश सेवा करे। तदनंतर गुरुकी प्रसन्नतासें संपूर्ण शास्त्रोंको प्राप्त हो शास्त्रोंकी दृढताको और नामकें विख्यात होनेके लिये, तथा अर्थ जाननेको बोलनेकी शक्ति बढनेके वास्ते, फिर शास्त्रमें अच्छी रीतिसें यत्न करे। तहां शास्त्रमें प्रवृत्ति होनेके उपाय कहते हैं। पढना, पढाना और उस शास्त्रका संभाषण करना ए तीन उपाय हैं।
तहां प्रथमपढनेकी विधि कहते हैं।

तत्राध्ययनविधिकल्पः।

कृतक्षणः प्रातरुत्थायोपव्युषंवाकृत्वाऽऽवश्यकमुपस्पृश्योदकंदेवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाऽऽचार्य्येभ्योनमस्कृत्य समेशुचौदेशेसुखोपविष्टोमनःपुरस्सरोभिर्वाग्भिः सूत्रमनुक्रामन्पुनरावर्त्तबुद्ध्यासम्यगनुप्रविश्यार्थतत्त्वंसदोपपरिहारप्रमाणार्थमेवाऽपराह्णेरात्रौचशश्वदपरिहापयन्नभ्यस्येदित्यध्ययनविधिः

अर्थ-निश्चित करा है समय जिसने, ऐसा विद्याभिलाषी प्रातःकाल, अथवा चार पांच घड़ी रात शेष रहने पर उठे, और मल मूत्र परित्याग आदि आवश्यक कर्मसें निवृत हो, दांतन कुरला आदिकर स्नानादिक करे पीछे देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्य, इनको प्रणाम करे, पीछे समान और पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक बैठे, मनको एकाग्र कर वाणीसें सूत्रका उच्चारण वारंवार करे, और शास्त्रमें बुद्धिको प्रवेश कर उसके अर्थ और तत्वको जानना चाहिये। तथा जो दोष होवें उसके परिहार और प्रमाण तथा प्रमाणके अर्थकोभी जाने। सायंकाल और रात्रिको छोडकर बाकी समयोंमें पढना चाहिये यह पढनेकी विधि कही।

अथाध्यापनविधिः।

अध्यापनेकृतबुद्धिराचार्यः शिष्यमादितः परीक्षेत तद्यथा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वयवयःशीलशौर्यशौचाचारविनयशक्तिबलमेधाधृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्तियुक्तं [अक्षुद्रकर्माणमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रियंनिभृतमनुद्धमव्यसनिनमध्ययनाभिकाममत्यर्थंविज्ञानकर्मदर्शनेचानन्यकार्य्यमलुब्धमनालसं] तनुजिह्वोष्ठदन्ताग्रमृजुवक्त्राऽक्षिनासंप्रसन्नचित्तवाक्चेष्टंक्लेशसहञ्चभिषक्शिष्यमुपनयेत्।विपरीतगुणंनोपनयेत्॥

अर्थ-पढानेवाला आचार्य प्रथम शिष्यकी इस प्रकार परीक्षा करे ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, इनमेंसे किसी जातका हो उत्तम कुल (इस जगे कुलशब्दसे आयुर्वेदाध्ययनकर्त्ता कुलसे प्रयोजन है) नई अवस्था अथवा तरुण अवस्था शील स्वभाव, शूरवीर, बाहर भीतरसे शुद्ध; परंपरागत कुल, देश और लौकिकआचारवाला, नीतवाला, उत्साहवाला, बली, बुद्धिवान्, धृति (जिह्वा और लिंग इन्द्रियका जीतनेवाला) पढीहुई अथवा देखी वस्तुको स्मरण रखनेवाला, अप्राप्त वस्तुको ज्ञानवान्, बड़े भारी कामको करनेवाला, सर्व अंग और सर्व इन्द्री जिसके होवे, वशीभूत, किसी कार्यमें बंधा न हो, जुआ, चोरी, वेश्यागमन, आदि व्यसनवाला न होवे। पढनेकी और ज्ञान कर्मके जाननेकी इच्छावाला, पढनेके सिवाय जिसको दूसरा कार्य न हो, लोभी न हो, आलसी न होय, और जीभ, होंठ, दांत ए पतले होवे. मुख, नेत्र, नाक, ए जिसके सुडौल और देखने योग्य हो, जिस्की प्रसन्न चित्त, वाणी, और चेष्टा, होवे । दुःखको सहनेवाला, ऐसे शिष्यको वैद्य उपनयन करे । और जो गुण कहे इनसें विपरीत गुणवाले शिष्यको उपनयन (दीक्षा) न देवें।

उपनीयस्तुब्राह्मणः उदगयनेशुक्कपक्षेप्रशस्तेऽहनिपुष्यहस्तश्रवणाऽश्वयुजामन्यतमेननक्षत्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणेतिथिकरणसुमुहूर्तेस्नातः कृतोपवासोमुण्डःकपायवस्त्रसंवीतःसमिधोऽग्निमाज्यमुपलेपनमुदककुम्भांश्च सगन्धहस्तमाल्यदामाहिरण्यान्हेमरजतमणिमुक्ताविद्रुमक्षौमपरिधिकुशलाजसर्षपाऽक्षतांश्चशुक्लाश्चसुमनसोग्रथिताग्रथितामेध्यान्भक्ष्यान्गन्धांश्चपिष्टापिष्टानादायोपतिष्ठस्वेति ॥

अर्थ-उपनीय (दीक्षाके योग्य) तो ब्राह्मण है । उत्तरायण, शुक्लपक्ष, उत्तमदिवस, पुष्य, हस्त, श्रवण और अश्विनी, इनमेंसें कोई नक्षत्रपर चन्द्र होवे कल्याण कर्त्ता तिथि, करण, और मुहूर्त्त होवे, तब गुरु शिष्यसें कहे कि अमुक समय पर स्नान कर उपवास करना क्षौर कराकर मुंडित हो गेरुअे रंगके वस्त्र पहिन कर समिधा, अग्नि, घृत, उपलेपन (लीपना) जल भरे कलश, सुगंधितवस्तु माला, डोरी, सोना, चांदी, मणि, मोती मूंगा, रेशमीवस्त्र, यज्ञके वृक्ष, कुशा, खील, सरसों, अक्षत, सपेद चावल, सुंदर फूल और फूलोंकी माला, पवित्र और भोजनके पदार्थ, चंदन इनमें पिसे हुए तथा विना पिसे (चून, धान, आदि) सर्व सामिग्री लेकर तैयार रहना इस प्रकार सुन शिष्य उसी प्रकार, करे ।

तमुपस्थितमाज्ञाय शुचौसमेदेशे प्राक्प्रवणे उदक्प्रवणेवा चतुष्किष्कुमात्रंचतुरस्रंस्थण्डिलं गोमयोदकेनोपलिप्तं दर्भैः संस्तीर्य। यथोक्तेचन्दनोदकुम्भक्षौमहेमहिरण्यरजतमणिमुक्ताविद्रुमालङ्कृतंमेध्यभक्ष्यगन्धशुक्लपुष्पलाजसर्षपाऽक्षतोपशोभितंकृत्वा। पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्चदेवताः पूजयित्वाविप्रान्भिषजश्च तत्रोल्लिख्याभ्युक्ष्यच दक्षिणतोब्रह्माणंस्थापयित्वाऽग्निमुपसमाधाय खदिरपलाशदेवदारुबिल्वानांसमिद्भिश्चतुर्णांवाक्षीरवृक्षाणांन्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थमधूकानांदधिमधुघृताक्ताभिर्दार्वीभिर्होमिकेनविधिनास्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात्॥

अर्थ—गुरु शिष्यको उपस्थित जान पवित्र और समान देशमें तथा जिस स्थानमें वेदी बनावे वहा सें अथवा उत्तरसें मिली हुई चौकोन चार वितस्त अथवा चार हाथकी वेदी रचे उसको गोवर सें लीपे, और उसपर कुशा बिछावे। तथा पूर्वोक्त चन्दन जलके कलश रेशमी कपड़े, चांदी, सोना, सोनेके पात्रआदि, मणि, मोती और मूंगा आदिसे यज्ञस्थानको सुशोभित करे। तथा पवित्र भोजन करनेके पदार्थ, सुगंधिक पदार्थ (अत्तर आदि) सफेद फूल, खील, सरसों और चावल आदिसे शोभितकरे। फूल, खील, भात और रत्नोंसे देवता ब्राह्मण तथा वैद्योंका पूजन करके पश्चात् वेदीको कुशाओंसे झाडके तथा जल छिडककर वेदीके दक्षिणमें ब्रह्माको स्थापन करे। पीछे वेदीमें अग्निको स्थापन कर खैर, ढाक, देवदारु और बेल इनकी समिधा अथवा वड, गूलर, पीपर और महुआ इनक्षीर वाले वृक्षोंकी समिधाओंको दही, सहत, घृतमें डुबोयके, तथा और जो हवन करने योग्य लकड़ी उनको होमकी विधिसे होमे तथा स्रुवा से घृतकी आहुति देवे॥

सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिस्ततःप्रतिदैवतमृषींश्चस्वाहाकारञ्चकुर्यात् शिष्यमपिकारयेत्।

अर्थ—ओंकारसहित महाव्याहृतिओंसे हवन करे (यथा ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा, ओंभूर्भुवःस्वः स्वाहा) इसी क्रमसे देवताओंको भी आहुति देवे। जैसे (ओं ब्रह्मणे स्वाहा. ओं प्रजापतये स्वाहा, ओं विष्णवे स्वाहा) इसी प्रकार ऋषियोंके नामसें हवन करे चकारसें वैद्यविद्याके प्रवर्तक

प्राचीन आचार्य्योंके नामसे हवन करे । इस प्रकार वैद्य आप होम करे और शिष्यसे भी करावे ।

ब्राह्मणस्त्रयाणांवर्णानामुपनयनंकर्तुमर्हति । राजन्योवैश्यस्यवैश्योवैश्यस्यैवेति।शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नंमंत्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥

अर्थ—ब्राह्मण त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का उपनयन करसक्ता है, क्षत्री (क्षत्री, वैश्य) दो वर्ण का, और वैश्य केवल अपनीही जातिको दीक्षा देसक्ता है कोई आचार्य कहते हैं कि श्रेष्ठ (कायस्थादि) कुलमें प्रगट और श्रेष्ठ गुणयुक्त मंत्र रहित तथा उपनयन रहित शूद्रकोभी पढाना उचित है ।

ततोऽग्निंत्रिःपरिणीयाऽग्निसाक्षिकंशिष्यंब्रूयात् । कामक्रोधलोभमोहमानाहङ्कारेर्ष्यापारुष्यपैशुन्यानृतालस्यायशस्यानिहित्वानीचनखरोम्णाशुचिनाकषायवाससासत्यव्रतब्रह्मचर्याभिवादनतत्परेणावश्यंभवितव्यम् । मदनुमतस्थानगमनशयनासनभोजनाध्ययनपरेण भूत्वा मत्प्रियहितेषुवर्त्तितव्यमतोन्यथातिवर्त्तमानस्याधर्मोभवत्यफलाचविद्याचनप्राकाश्यंप्राप्नोति ॥

अर्थ—पीछे अग्निकी तीन परिक्रमा कराय अग्निके साक्षी शिष्यके प्रति गुरु इस प्रकार कहे । कि हे वत्स ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, अहङ्कार, ईर्षा, कठोरता, चुगली, असत्य, आलस्य और अपयश कर्ता कर्मोंको छोड देना, तथा नख, बालोंको सदैव दूर कराते रहना (अर्थात् क्षौर सदैव कराते रहना) पवित्रतासें रहना गेरुआ रंगे वस्त्र धारण करना, सत्य बोलना, वेदके जो व्रत लिखे हैं उन्को करना, ब्रह्मचर्यमें तत्पर रहना, और आचार्यसें आदि ले बडोंको प्रणाम करना, इत्यादि बातोंमे सदैव तुमको तत्पर रहना चाहिये, मेरी आज्ञानुसार जाना, सोना, बैठना, भोजन करना और पढना चाहिये । मेरे प्रिय और हितकारी कर्मोंमें वर्त्तना चाहिये । यदि तू पूर्वोक्त मेरे कहनेके विपरीत वर्त्तेगा तो तुझको अधर्म होगा, और तेरी पढी हुई सब विद्या निष्फल होवेगी, कदाचित् प्रकाशित न होगी ।

अहंवात्वयिसम्यग्वर्त्तमानेयद्यन्यथादर्शीस्यामेनोभाग्भवेयमफलविद्यश्च ॥

अर्थ-फिर गुरु अपने नियमोंको इस प्रकार कहेकि, यदि तू मेरे साथ निष्कपटतासें वर्त्तेगा और फिर मैं तेरे साथ (पढानेमें) कपट करूंगा तो मैं पापभागी और मेरी पढी हुई विद्या निष्फल होवेगी ।

द्विजगुरुदरिद्रमित्रप्रव्राजिनोदिनसाध्वऽनाथाऽभ्युपगतानाञ्चात्मबान्धवानामिवस्वभेषजैः प्रतिकर्त्तव्यमेवंसाधुभवति ॥

अर्थ-रोगियोंके साथ वर्त्ताव करनेके नियम गुरू शिष्यसें कहे, कि ब्राह्मण, गुरु, (माता, पिता, बडा भाई आदि) दरिद्रि, मित्र, संन्यस्त, दीनजन, साधु (सत्पुरुष) अनाथ और प्रदेशी इन्होंकी अपने बांधवोंके (पिता पुत्रादिके) सदृश चिकित्सा करनी चाहिये इस प्रकार करनेसें तुमको अच्छा है *

व्याधशाकुनिकपातितपापकारिणांचनप्रतिकर्त्तव्यमेवंविद्याप्रकाशते मित्रयशोधर्मार्थकामांश्चप्राप्नोति

अर्थ-व्याध (अहेरिया, कंजर, चाण्डाल आदि हिंसक प्राणी) शाकुनिक (चिडीमार आदि पक्षियोंका पकडनेवाला) पतित (जातिभ्रष्ट वर्णसंकर आदि) और पापकर्त्ता (वेश्यागामी, लोंडेबाज आदि) इन्होंकी चिकित्सा (इलाज) न करना । इस प्रकार करनेसें विद्याका प्रकाश होता है और मित्र, यश, धर्म, धन और कामनाओंकी प्राप्ति होती है ।

॥ अनध्यायानाह ॥

कृष्णेऽष्टमीतान्निधनेऽहनीद्वेकृष्णेतरेप्येवमहर्द्विसंध्यम् । अ
कालविद्युत्स्तनयित्नुघोषेस्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु॥ १ ॥
श्मशानयानायतनाहवेषुमहोत्सवोत्पातिकदर्शनेषु । ना
ध्येयमन्येषुचयेषुविप्रानाधीयतेनाशुचिनाचनित्यम् ॥ २ ॥

अर्थ-कृष्ण पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी, और अमावसको, तथा शुक्लपक्षमेंभी अष्टमी, चौदश और पूर्णमासीको तथा सायंकाल और प्रातःकालकी दोनों सन्ध्याओंमें, तथा अकाल (कुसमय) में, बिजुरी चमकना और मेघका गर्जन, अथवा अकालविद्युतके कहनेसें (पौष आदि चार महिनेकी वर्षा जाननी) उ-

---

* इस प्रमाण के माननेवाले वैद्य संसार में विरले हैं श्रेष्ठ वैद्य वोहि हैं जो दुष्टोंकी चिकित्सा नहीं करते ।

स्मैं, तथा देशोपद्रव (भाजड, मरी, आदि) में, तथा स्वदेश राजाकी पीडामें, श्मशानमें, घोडा, हाथी, आदिकी सवारीमें बैठकर, वधस्थान (कसाईखाने) में संग्राममें, महोत्सव (विवाह, यज्ञोपवीतादि) त्रिविधि उत्पात (दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष) इन्होंमें और जिस्में ब्राह्मण नहीं पढे जैसें प्रतिपदा आदि तिथी इन्में, हे पुत्र ! तुमको न पढना चाहिये । तथा अपवित्रता सें भी कभी न पढना ।

इतिआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे पूर्व० शिष्योपनयनीयाध्यायकथनं नामप्रथमतरङ्गस्य द्वितीयवीचिः ॥ २ ॥

शिष्य–हे गुरो! अब आप इस आयुर्वेद पढनेका क्रम कहो ।

गुरु–हे वत्स! पढनेका क्रम सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है सो सुनो ।

अथातोऽध्ययनसंप्रदानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–शिष्योपनयनीयाध्याय कहनेके पश्चात् अब हम अध्ययनसंप्रदानीय अर्थात् जिस्में पढनेकी परिपाटी है उस अध्यायको कहेंगे ।

अथ वत्स ! तदेतदधीतं यथातथोपधारयमयाप्रोच्यमानम् । अथ शुचयेकृतोत्तरासङ्गायाव्याकुलायोपस्थितायाऽध्ययनकालेशिष्याय यथाशक्तिगुरुरुपदिशेत्, पदंपादं श्लोकंवा । तेच पदपादश्लोका भूयः क्रमेणाऽनुसन्धेया एवमेकैकशो घटयेदात्मनाचानुपठेत् ।

अर्थ–हे वत्स ! यह आयुर्वेद शास्त्र जिस प्रकार पढना चाहिये, वह क्रम में कहताहूं, उस्को सावधान होकर धारण अर्थात् कंठाग्र कर । आवश्यक कर्मसें निवृत्ति होचुकाहो, तथा स्नानादिद्वारा पवित्र हो, और उत्तरीय वस्त्रको वामस्कंध पर धारण करनेवाला, अव्याकुल, पढनेके समय आचार्यको प्रणाम करचुकाहो, ऐसें शिष्यके अर्थ, गुरु यथाशक्ति आयुर्वेद शास्त्रका उपदेश करे । अर्थात् पढावे, एक २ पद, एक एक पाद, एक एक श्लोक, अर्थात् अल्प बुद्धिवाले शिष्यको चौथाई श्लोक, मध्य बुद्धिवालेको आधा २ श्लोक, और तीव्र बुद्धिवालेशिष्यको गुरू एक-एक श्लोक पढावे । जबतक शिष्यके । समझमें न बैठे तब तक गुरुको चाहिये कि

उस्को अच्छी रीतिसें समझावे, क्योंकि " वक्तुरेवहितज्जाड्यंश्रोतायत्रनबुध्यते" अर्थात् (वो कहनेवालेहीकी मूर्खता है कि जिस्को सुननेवाला न समझे) पीछे गुरूसें भले प्रकार पढके शिष्यको चाहिये कि आप उस गुरूकी पढाईहुई संथाको घोख कर कंठाग्र कर लेवे, पश्चात् गुरू आगे पढावे। अर्थात् जिस्को चौथाई श्लोक बताया उस्को चौथाई औरभी बतावे, आधे वालेको एक, और एक श्लोक वालेको दूसरा श्लोक बतावे। पीछे जो थोड़ा पढा है उस्को उससें विशेष पढे हुए शिष्यके आधीन कर देवे। और शिष्यके शीघ्र कंठाग्र करानेके अर्थ शिष्यके संग गुरूभी बराबर बोले।

पठनसमयके नियम ॥

अद्रुतमविलम्बितमविशङ्कितमननुनासिकं व्यक्ताक्षरमपीडितवर्णमक्षिभ्रुवौष्ठहस्तैरनभिनीतं सुसंस्कृतं नात्युच्चैर्नातिनीचैश्चस्वरैः पठेन्नचान्तरेणकश्चिद्व्रजेत्तयोरधीयानयोः ॥

अर्थ-बहुत जल्दी जल्दी न पढे, तथा बहुत धीरे धीरेभी न पढे, संदेहको त्याग कर पढे, और अननुनासिक अर्थात् गिनगिनाय कर न बोले ऐसें बोले कि सब अक्षर स्पष्ट दूसरेको सुनाई देवे। वर्णोंको चबायके न बोले, भौंह, होठ, और हाथोंको, न चलावे। अर्थात् बहुतसे बालकोंके नेत्र, भौंह, हाथ, और सर्व शरीर पढते समय हिला करते हैं। इस अपगुणको छोड देना चाहिये। पृथक् २ वर्ण सुनाई देवे, न बहुत जोरसें बोले, न बहुत मंदस्वरसें पढे, और पढते समय गुरू शिष्यके बीचमें होकर न निकलना चाहिये।

शुचिर्गुरुपरोदक्षस्तन्द्रानिद्राविवर्जितः। पठेदेतेनविधिना शिष्यः शास्त्रान्तमाप्नुयात्। वाक्सौष्ठवेऽर्थविज्ञानेप्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे। तदभ्यासेचासिद्धौचयतेताऽध्ययनान्तगः॥

अर्थ-पवित्र, गुरूकी सेवामें तत्पर, चतुर, तन्द्रा और निद्राकरके रहित, इस प्रकारको शास्त्र पढे तो वह शिष्य भलेप्रकार शास्त्रोंके पारको प्राप्तहोवे। वाणी की सौष्ठव अर्थात् बोलनेकी सुन्दररीति सीखनेको, शास्त्रके अर्थ जाननेको, और शास्त्रमें प्रगल्भ (ढीट) होने को, तथाकर्म (क्रिया) में निपुण होनेको, और इन पूर्वोक्तोंके अभ्यासकी सिद्धीके लिये, पढाहुआ विद्यार्थी यत्नकरे। अर्थात् केवल पढनेमात्रसेही वैद्य नहींहोता, शास्त्रको पढके बराबरके स्वाध्यायियोंसे शास्त्रार्थ कराकरे। तो बोलनेकी शक्ति बढे। और पढेहुए शास्त्रको नित्य विचार करके

विनापढे ग्रन्थको अपनी बुद्धिसे लगावे। जो स्थल आपसे न लगें उसको भी गुरू से अर्थ पूछलीया करे। और अपने पढ़े में जो भ्रम होवे उसको भी गुरू से पूछ लीया करे। इसप्रकार करनेसे शिष्यकी अर्थमें प्रवीणता होती है। तथा गुरू जहां कहीं सभामें जावे तहां शिष्यको संग लेजावे, उस सभामें जो पण्डित हैं उन के साथ शिष्यका शास्त्रार्थ करावे, जहां कहीं शिष्य घबरावे उसीजगह सावधान करता रहे, पीछे जब अपने घरमें आवे तब शिष्यसे कहे कि देख तैनें अमुकस्थान में अशुद्ध बोला सो ऐसा नहीं ऐसा है। और अमुककी टीका अच्छा प्रतिपादन करा, परन्तु उसमें यह बात तुमको कहनी और भी चाहिये, और देखो तुम्हारे प्रतिपक्षीने अमुक बात कैसी उत्तमताके साथ कही और अमुक स्थानमें वो चूका था परन्तु तुमने नहीं जाना। इसप्रकार शिष्यको शिक्षा देनसे शिष्य बोलने चा-लनेमें प्रगल्भ (ढीट) होता है। बोलनेका प्रकार चरक ग्रन्थके विमानस्थानकी अष्टम अध्यायमें लिखा है सो देखलेना। इसी प्रकार जो रोगी आवे उसकी नाडी प्रथम गुरू आपदेखे, पीछे शिष्यको दिखावे, और उस शिष्यसे पूछे कि इसकी कौनदोषकी नाडी है, जब वो कहे अमुक दोषकी है, तब उससे पूछे किसप्रकार यदि वो उसकी चालका वर्णन ठीक ठीक करे तो कहे ठीक है। और यदि वो कुछकाकुछ कहे तो उसको समझाय देवे, इसीप्रकार मूत्रपरीक्षा, नेत्र परीक्षा, मलपरीक्षा और निदान आदिको गुरू आपकरे। और शिष्यको बताया करे, तथा तैल बनाना, रसों का बनाना, इनमें भी औषध, जल, तेल, आदिका अनुमान गुरू शिष्यको ब-तावे। तथा भट्ठीका बनाना, बकयादि यंत्रोंका बनाना, कच्ची पक्की धातुकी परीक्षा, मणियोंकी परीक्षा, इत्यादि सर्ववस्तु गुरू शिष्यको बतावे। इसप्रकार सिखानेसे शिष्य सर्व कर्ममें प्रवीण होता है।

एतदवश्यमध्येयमधीत्यचकर्माप्यवश्यमुपासितव्य
मुभयज्ञोहिभिषग्राजार्होभवति।

अर्थ—यह आयुर्वेद शास्त्र अवश्य पठितव्य है। और पढ़कर इसके कर्मोंको अवश्य सीखे क्योंकि शास्त्र और शास्त्रकी क्रिया दोनों का जाननेवाला वैद्य राजा-ओंके योग्य होता है। यथा।

यस्तुकेवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः।
समुह्यत्यातुरम्प्राप्यप्राप्यभीरुरिवाऽऽहवम् ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्रका ज्ञाता हो, अर्थात् केवल शास्त्रको पढ़ाहो और कर्म

(कर्त्तव्यता) में मूढ़ हो अर्थात् क्रिया न जानताहो वह रोगीको देखके घबड़ाता-है, जैसे संग्रामको देख कायर पुरुष डरे है।

यस्तुकर्म्मसुनिष्णातोधाष्टर्याच्छास्त्रबहिष्कृतः ॥
ससत्सुपूजांनाप्नोतिवधंचार्हतिराजतः ॥

अर्थ-जो वैद्य कर्ममें निष्णात अर्थात् क्रिया करनेमें कुशल हो, परन्तु शास्त्र न पढ़ाहो, और ढीठता पूर्वक वैद्य बने, वह श्रेष्ठ पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता है। और राजा से वधको प्राप्तहोता है । अर्थात् राजाको चाहिये कि ऐसे ढीठ वैद्योंको प्राणान्त दण्ड देवें *

उभावेतावनिपुणावसमर्थौस्वकर्मणि । अर्द्धवेदधरावेतावेक पक्षाविवद्विजौ ॥ औषध्योऽमृतकल्पास्तुशस्त्राशनिविषो पमाः । भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतौविवर्जयेत् ॥

अर्थ-इन दोनों अर्थात् न शास्त्रमें कुशल, और न क्रियामें कुशल, ऐसा वैद्य वैद्यविद्याके करनेमें असमर्थ जानना । ए दोनों (शास्त्र पढ़ा और क्रियाओंका जाननेवाला) अर्द्ध आयुर्वेदके धारण करनेवाला इनकी गति नहीं, जैसे एक पंखवाला पक्षी कुछ कामका नहीं, उसी प्रकार ये दोनों वैद्य जानने, अमृत तुल्य-भी औषध मूढ़वैद्यकी संग्रह करीहुई, शस्त्रकी अनी और विषके तुल्य होतीहै, इसीसे ए दोनों (केवल शास्त्रका ज्ञाता और केवल क्रियाकुशल वैद्य) वर्जित कहे हैं, अर्थात् जो औषधोंके गुणको तो शास्त्रद्वारा जानता है, और उनके रूपको न जाने. तथा औषध के रूपको तो जानता हो और उनके संयोगविधि तथा गुणको न जाने वे दोनों औषधके लेने देनेमें वर्जित हैं।

छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु । सनिहन्तिजनंलो भात्कुवैद्योनृपदोषतः ॥ यस्तूभयज्ञोमतिमान्ससमर्थोऽर्थ साधने । आहवेकर्मनिर्वोढुंद्विचक्रः स्यन्दनोयथा ॥

अर्थ-जो वैद्य छेद्यादि (छेद्य, भेद्य विस्राव्य आदि) और स्नेहादि (स्नेहन, रोपण, वमन, विरेचन आदि) कर्ममें मूर्ख है अर्थात् छेद्य कर्मोंमें स्नेहादि कर्म करे । और स्नेहादि कर्ममें छेद्यआदि कर्म करतेहै । वे खोटे वैद्य राजाके दोषसे

---

* न मालुम हमारे इस देश में ऐसे अधमों वैद्योंकी अपेक्षा अंग्रेज बहादुरोंने क्यों कर रक्खी है ।

लेभवश हो मनुष्योंको मारते हैं। और जो शास्त्र और क्रिया दोनोंको जानते हैं वो बुद्धिव न् वैद्य प्रयोजन (आरोग्य) करनेमें समर्थ हैं। जैसे संग्राममें दो पहिये का रथ कर्मसाधकहोता है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे अध्ययनसम्प्रदानीयाध्यायकथनं नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥

अथातःप्रभाषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-गुरू कहते हैं कि हे वत्स ! पढ़ेहुए शास्त्रका फिर कहना उसको प्रभाषण कहते हैं वह प्रभाषण है जिस अध्यायमें उसकी हम व्याख्या करेंगे।

॥ प्रभाषणका प्रजोजन दिखाते हैं ॥

अधिगतमप्यध्ययनमप्रभाषितमर्थतः खरस्यचन्दनभारवाहइवकेवलंपरिश्रमकरंभवति ॥

अर्थ-पढाहुआ भी शास्त्र अर्थद्वारा करके अप्रभाषित होवे, अर्थात् जो ग्रंथपढ़ हुआ है परन्तु विना अर्थके जाने वह केवल परिश्रम कारी है। जैसे गधेके ऊपर चन्दन का बोझा केवल भार देनेवाला होता है।

यथाखरश्चन्दनभारवाहीभारस्यवेत्तानतुचन्दस्य । एवंहि शास्त्राणिबहून्यधीत्यचार्थेषुमूढाः खरवद्वहंति ॥

अर्थ-जैसे चन्दनके भारका वहनेवाला गद्हा, केवल भार (बोझा) कोजानता है। उस चन्दनके सुगन्धादि गुणोंको नहीं जाने, इसी प्रकार बहुतसे शास्त्रोंको भी पढा, परन्तु उनशास्त्रोंके प्रयोजनोंको न जाना वह गधेके सदृश शास्त्रोंका बोझा धारण करनेवाला है। अर्थात् उसको शास्त्रज्ञाता नहीं कहना।

तस्मादायुर्वेदशास्त्रंविविदिषुणाह्यनुपदपादश्लोकार्द्धश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च।

अर्थ-इसीसे आयुर्वेद शास्त्रका जाननेवाला, चौथाई चौथाई श्लोक आधा आधाश्लोक । एक एक श्लोक । गुरूको शिष्यके प्रति भले प्रकार कहना चाहिये । और शिष्यको सावधान चित्तसे सुनना चाहिये । अथवा गुरुकहे और उसी प्रकार शिष्यसे सुने इसजगे (अनु) शब्द वीप्सा वाचक है ।

कस्मात्सूक्ष्माहि द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकदोषधातुमलाशयमर्मसिरास्नायुसन्ध्यऽस्थिगर्भसम्भवद्रव्यसमूहविभागास्तथा प्रनष्टशल्योद्धरणव्रणविनिश्चयभग्नविकल्पाः साध्ययाप्यप्रत्याख्येयताच । विकाराणामेवमादयश्चाऽन्येविशेषाः सहस्रशोयेविचिन्त्यमानाविमलविपुलबुद्धेरपिबुद्धिमाकुलीकुर्य्युः किंपुनरल्पबुद्धेः । तस्मादवश्यमनुपदपादश्लोकार्धश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च ।

अर्थ-क्योंकि द्रव्य (स्थावरादि) रस (मधुरादि) गुण (गुरु लघु आदि) वीर्य (शीतोष्णादि) विपाक (कटु मधुरादि) दोष (वात पित्तादि) धातु (रस रक्तादि) मल (दोष, मलमूत्रादि) आशय (शारीरोक्त ७) मर्म (१०७) शिरा (७००) नाडी (९००) सन्धि (२१०) हड्डी (३००) तथा गर्भसम्भव द्रव्य (शुक्र शोणितादि) द्रव्यादि विभागके समूह बहुत सूक्ष्म है । यह सूक्ष्म शब्द द्रव्य रस आदि प्रत्येकके साथ लगे हैं । तथा प्रनष्ट शल्य (त्वचा आदिमें चुभाहुआ) व्रण विनिश्चय (वातादिभेदसे १६ प्रकारका) भग्न (दो प्रकारका) इत्यादि विकल्प (भेद) और साध्य याप्य (चकार जो है उससे सुसाध्य और कृच्छ्रसाध्य ; इत्यादिनाम है जिन्होंके, इसी प्रकार औरभी बहुत पदार्थ हे । (जैसे आठ प्रकारके शस्त्र कर्मोंकी विधि) आदि हजारों प्रकार के हैं । जिनको गुरुसे विचारभी करे परन्तु विमल और अतितीव्र बुद्धिवान् मनुष्योंकी बुद्धि उन्के विचारमें (गुरुके विना) अतिशय करके व्याकुल होती है अर्थात् द्रव्यादिविभाग ऐसे सूक्ष्महै कि बडे बडे पण्डितोंकीभी समझमें नहीं आवे । फिर अल्पज्ञ अर्थात् थोडीबुद्धिवाले है उन्होंका तो क्या कहना है।कोई आचार्य ऐसा अर्थ करता है, कि हजारों वार सुनकर चिंतवनभी करे, परन्तु उन्कोभी नहीं आवे । और जिन्होंने कभी नहीं सुना उन्का तो क्याही कहना है ? इसी कारण इस आयुर्वेदशास्त्रको पद पद, पाद पाद, आधा आधा श्लोक, एक एक श्लोकके क्रमसे अवश्य गुरू शिष्यके प्रति कहे, और शिष्यसे फिर सुने ।

अन्यशास्त्रविषयोपपन्नानांचार्थानामिहोपनिपतितानामर्थव शात्तेषांतद्विद्येभ्य एवव्याख्यानमनुश्रोतव्यम् । कस्मान्नह्येक स्मिन्शास्त्रेशक्यःसर्वशास्त्राणामवरोधकर्तुम् ।

अर्थ—अन्य शास्त्रोंके विषय, प्रयोजन वशसे इस आयुर्वेद शास्त्रमें जो आवे, उन्को उन्के मुख्य शास्त्रोंसे जाने । अर्थात् जैसे दोषशब्द दुष् वैकृत्ये धातुसे सिद्ध होता है । तो इसको व्याकरणसे जाने । पदार्थोंका वर्णन और तर्कविषय न्यायशास्त्रसे जाने । ज्योतिषका प्रकरण ज्योतिषसे । इत्यादि जानने चाहिये) क्योंकि सर्व शास्त्रोंका विषय एकही शास्त्रमें नहीं आ सके है, जैसे लिखा है ।

एकंशास्त्रमधीयानोनविद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ।
तस्माद्बहुश्रुतः शास्त्रंविजानीयाच्चिकित्सकः ॥

अर्थ—एक शास्त्रका पढनेवाला वैद्य, उस शास्त्रके यथार्थ सार पदार्थको नहीं जान सके । इसी कारण बहुश्रुत अर्थात् जिसने बहुत शास्त्र सुने है वह शास्त्रोंका यथार्थ प्रयोजनको जानेगा । परन्तु ग्रन्थके पढे विना केवल बहुश्रुत वैद्य नहीं हो सक्ता । इस लिये वैद्यको उचित है कि- सर्व शास्त्रोंके विषयोंको सुनता रहे । और पढनेभी चाहिये ।

विना पढे वैद्यकी निंदा ॥

शास्त्रंगुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्यचासकृत् ।
यःकर्मकुरुतेवैद्यःसवैद्योऽन्येतुतस्कराः ॥

अर्थ—जो वैद्य गुरुमुखसे शास्त्रको पढ, और पाठ तथा अर्थको वारम्वार विचारके चिकित्सा करता है, वोही वैद्य है, और तो चोर है । अर्थात् विना गुरुमुख पढे और विचारि कदाचित् वैद्य न बने, क्योंकि वह विद्या फलीभूत नहीं होती । जैसे लिखा है ।

विद्यांग्रहीतुमिच्छन्तिचौर्य्यच्छद्मबलादिना ।
नतेषांसिध्यतेकिंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥

अर्थ—जो विद्या चोरीसे, कपटसे अथवा जबरदस्तीसे लेना चाहे उन्की मणिपरीक्षा, मंत्रविद्या और औषध, आदिशब्दसे ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आदिकी सिद्धि नहीं होवे, इसीसे गुरुमुखसे पढा शास्त्र फलीभूत होता है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे प्रभापणीयाध्याय-
कथनं नामचतुर्थतरङ्गः ॥ ४ ॥

ओ३म् ॥

॥ श्रीशंवन्दे ॥

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः।

अथ शारीरस्थानमारभ्यते ॥

तहां प्रथमशारीरज्ञानका प्रयोजन कहते हैं

दोषधातुमलादीनामाधारस्तुवपुर्यतः।
तत्स्वरूपमतोज्ञातुं शारीरं प्राङ्निरूप्यते ॥

अर्थ-वातादि दोष, रसरक्तादि धातु, तथा धातुओंके मल और आदिशब्दसे मल, मूत्र, नाडी हड्डी आदि जानने। इन सबका आधार शरीर है, उस शरीरके स्वरूप जाननेके अर्थ प्रथम शारीरका निरूपण करते हैं।

शिष्य-शारीर किस्को कहते हैं?।

गुरु-शारीर उस विद्याको कहते हैं, जिस्में देहके प्रत्येक अङ्ग और उपांग आदिका वर्णन है।

जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है।

अङ्गप्रत्यङ्गजीवाऽऽशयधमनिशिरास्नायुभिः कण्डराभिः।
पेश्यास्थित्वक्कलाभिर्निजमलसहितैर्धातुभिः सन्धिभिश्च ॥
वातैः पित्तैर्बलासैः प्रकृतिभिरखिलैर्मर्मरन्ध्रोपधातुः।
स्रोतःश्रेणीगुणैरप्यमलतरधियः साभिशारीरमाहुः॥

अर्थ-अङ्ग, प्रत्यङ्ग, जीव, आशय, धमनी, नस, नाडी, कंडरा, पेसी, हड्डी, त्वचा, कला और इन्होंके मल, रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, शुक्र, सन्धि, वात, पित्त, कफ, प्रकृति, मर्म, छिद्र, उपधातु, स्रोतोंकी (इन्द्रियोंकी) श्रेणी, इन सबके वर्णनको उत्तम बुद्धिवाले पुरुष शारीर कहते हैं।

शिष्य-शारीर विद्याके जाननेसे और क्या प्रयोजन हैं?।

गुरु-हे पुत्र! निज और आगंतुज रोगोंका आधार यही देह है। इसीसे इस

देहके रक्षार्थ अनेक महर्षियोंने हेतु, लिङ्ग और औषधवान् त्रिस्कंधवाले इस आयुर्वेदके अनेक ग्रन्थ रचे है। उन ग्रन्थोंके द्वारा चिकित्सा करके देहकी अवश्य रक्षा कर्त्तव्य है। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका दाता यही देह है।

परन्तु वैद्यको लिखा है कि प्रथम निदानपूर्वरूपादिद्वारा रोगका निश्चय करके फिर चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु उसमेंभी विना शारीरक जाने वैद्यको चिकित्सा करनेका अधिकार नहीं है।

अर्थात् जब तक इस बातको वैद्य भले प्रकार न जानलेवे कि, यह शरीर कौन कौन वस्तुओंसे बना है, और कैसे बना है, तथा कौन कौनसी हड्डी, नाड़ी, नस, आशय आदि देहके किस किस विभागोंमें हैं। और वो कितने हैं। तथा वे कौन कारणोंसे बिगड़ते है। और उनके सुधारनेकी क्या रीति है। तब तक चिकित्सा करनेका अधिकारी नहीं है।

जैसे बृहद्योगतरंगिणीमें लिखा है।

यः शारीरमविज्ञायशस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
प्रवर्त्ततेसोऽस्खलतिवर्त्मनीवगतेक्षणः॥

अर्थ- जो वैद्य शारीर विद्याके ज्ञान विना शस्त्रकर्म (चीरना फाड़ना) क्षारकर्म और अग्निकर्म (दागना आदि) करता है उसकी चिकित्सा निष्फल होती है। जैसे अंधे मनुष्यका रस्ता चलना। अर्थात् जैसे विना जानीहुई रस्तेमें चलनेवाला अंधा ठोंपर खाता है और गिरता है उसी प्रकार विना शारीरकके जाने वैद्य अंधेके समान चिकित्साक्ष्प मार्गमें ठोंपर खाता है और गिरता है। ऐसा वैद्य राजा करके दंड्य है। जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है।

परिचितआयुर्वेदस्त्रिस्कन्धोयेननैवशारीरम्।
हन्यात्तमाशुनृपतिर्देशान्निःसारयेत्स्वकीयाद्वा॥

अर्थ-जिस वैद्यनें त्रिस्कन्धवान् आयुर्वेद तो पढा परन्तु उपेक्षापूर्वक उसमेंसे शारीरकको न पढ़ा ऐसे वैद्यको राजा फांसी आदिसे शीघ्र मारडाले और ब्राह्मणआदिको अपने राज्यसे निकाल देवे।

शिष्य-अब आप शारीरकका वर्णन करो।

गुरु- अब तुमसे हम सुश्रुतोक्त दश अध्यायोंसे शारीरकका वर्णन करते हैं और जो वार्त्ता सुश्रुतसे विशेष हैं वो ग्रन्थान्तरसे कहेंगे तहां प्रथम सर्वभूतचिंताशारीराध्यायको कहते हैं।

अथातः सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–ग्रन्थके प्रारम्भमें मंगलाचरण होता है, ऐसा शिष्टाचार चला आता है-इसीसे अथशब्दके प्रयोगसे मंगलाचरण करके स्थावर जंगम आदि भूतोंकी अथवा पृथ्वी तेजआदि महाभूतोंकी चिंताका प्रतिपादन इसग्रन्थमें करतेहैं । अ-र्थात् ए कैसे उत्पन्न हुए और इन्होंके कौनसे लक्षण हैं तथा इन्होंके कौनसे कार्य हैं ऐसा विचार इस ग्रन्थमें प्रतिपादन करा है, इसीसे इस ग्रन्थको सर्वभूतचिन्ता कहते हैं । फिर उसको शरीरके अधिकार (प्रधानता) करके किया इसीसे उसको शारीर कहते हैं, उस शारीरका व्याख्यान करते हैं [गयी] आचार्य [अथातः सर्व-भूतचिंता नाम शारीरम्] ऐसा पाठ कहताहै । *

एतस्यनिबन्धस्यफलंचिकित्सा । चिकित्सापुरुपस्य । पुरुप स्तुचतुर्विंशतितत्त्वजीवात्मसमवायस्तस्माच्चातुर्विंशतितत्त्वा नांजीवात्मनश्चस्वरूपनिरूपणायसृष्टिक्रममाह ॥

अर्थ–इस निबन्ध (ग्रन्थ) का फल चिकित्सा है । वह चिकित्सा पुरुपका करा जाता है । सो पुरुष चौवीस तत्त्व और जीवात्माके एकत्र होनेको कहतेहैं, इसीसे चौवीस तत्त्वोंके और जीवात्माके स्वरूप निरूपणार्थ सृष्टिक्रम कहते हैं ।

परमात्माका रूप ।

आत्माज्योतिश्चिदानन्दरूपोनित्यश्चनिःस्पृहः ।
निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणःकुरुतेजगत् ॥

अर्थ–आत्मा जो है सो स्वयंज्योति चिदानन्दस्वरूप इच्छा रहित और निर्गुण है । वह अपनी मायाके संयोगसे इच्छादियुक्त होकर इस जगत्को उत्पन्न करै है । आत्मा और परमात्मा उसी ईश्वरके नामभेद हैं ।

सत्वंरजस्तमश्चेतिगुणास्तेप्रकृतेःसमाः ।
साजडापिजगत्कर्त्रीपरमात्मचिदन्वयात् ॥

अर्थ–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीनगुण मायाके हैं । और सम हैं ।

* (पांचज्ञानेन्द्रि) नेत्र नाक कान जीभ और त्वचा (पांच कर्मेन्द्रि) हाथ पैर वाणी लिंग और गुदा (पंचमहाभूत) पृथ्वी तेज वायु जल आकाश (चार अन्तःकरण) मन बुद्धि चित अहंकार (पांचसूक्ष्म) शब्दः स्पर्श रूप रस गंध ए चौवीस तत्व कहते हैं ।

वह माया जड़भी है परन्तु परमात्मारूपी चैतन्यके संबन्धसे जगत्को उत्पन्न करती है । सत्का प्रकाशक सतोगुण कहाता है । और वह सत्व प्रकाशकर्त्ता ज्ञान-रूप और सुखका कारणरूप है । रज जो है सो रागात्मक है, और दुःखका कारण है । जिसमें मनुष्य ग्लानिको प्राप्तहो वह तमोगुण कहाता है । वह तमोगुण बुद्धिका आच्छादन करताहै, और मोह होनेका कारण है । वे गुण समहैं, अर्थात् प्रकृतिरूप हैं उसी प्रकार न्यूनाधिक होनेसे विकृति कहाते हैं ।

अब सुश्रुतको उपदेश करते हुए धन्वन्तरि प्रकृतिके स्वरूप-विशेषको कहते हैं ।

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूप-मखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम ।

अर्थ-अव्यक्त कहिये मूलप्रकृति सर्वभूतोंका कारण होकर स्वयं अकारण है । तथा कार्य कारण नहीं है अर्थात् अविकृत है । तथा स्वतंत्र सत्व रज तम रूप होकर अव्यक्त, महान्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा ऐसे आठरूपवाली है । तथा सर्व स्थावर जंगमात्मक जगत्के प्रगट होनेका कारण है । इसके कहनेसे कार्य और कारणकी तादात्म्यता दिसाई । जैसे गुडके गणरतोंका गुड़ही नैवेद्य उसीप्रकार अव्यक्त होकर व्यक्तका कारण । कोई आचार्य, अव्यक्त महान् अहंकार और पंच महाभूत ए मूलप्रकृतिके आठ रूप कहते हैं । कोई धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य, आठ रूप कहते हैं । कोई मन, बुद्धि, अहंकार और महाभूत ए प्रकृतिके आठ रूप हैं । ऐसा कहते हैं।

तदेकंवहूनांक्षेत्रज्ञानामधिष्ठानसमुद्रइवौदकानांभावानाम् ।

अर्थ-वह अव्यक्त, अविवेच्यावयव होकर सर्व कर्म जीवोंका आश्रय है । जैसे समुद्र, सर्व (नदी, नद, सरोवर, तलाव आदि) जलोंका आधार है । कोई आचार्य [औदकानां भावानाम्] इस पदका अर्थ चराचर मत्स्य पद्मादिक ऐसा करते हैं ।

शिष्य-एक अव्यक्त अनेकधर्मवाले पुरुषोंका कैसे कारण है ?

गुरु-हे प्रियवर ! अब हम सर्वभूतोंकी उत्पत्ति कहते हैं ।

अव्यक्तसे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति ।

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यतेतल्लिङ्गकएव ।

अर्थ–तस्मात् कहिये, आत्माके प्रतिबिंबित जो अव्यक्त तिसमें सत्व, रज,तम, स्वभावात्मक, महत्तत्व उत्पन्न होता है।

तल्लिङ्गाच्चमहतस्तल्लिङ्गकएवाऽहङ्कारउत्पद्यते।

अर्थ–शुद्ध सतोगुणरूप महत्तत्वसे सत्व, रज, तमोगुणात्मक, अहंकार उत्पन्न होता है * यह चरकमें लिखा है।

अहङ्कारको त्रिविधत्व कहते है।

सचत्रिविधोवैकारिकस्तैजसोभूतादिरिति।

अर्थ–[यहां वैकारिकादि] संज्ञा पूर्वाचार्यैने व्यवहारके अर्थ करीहै अर्थात् वो अहंकार, सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका है। तहां वैकारिक (सात्विक) तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) जानना।

अहङ्कारके कार्य्य कहते हैं।

तत्रवैकारिकादहंकारात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते।

अर्थ–राजस सहाय, तथा तामस गुणांशाभियुक्त, सात्विक अहंकारसे प्रकाशलक्षणवाली एकादश इन्द्री उत्पन्न हुई।

इन्द्रियोंके नाम।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्हस्तोपस्थपायुपादम-
नांसीति। तत्रपूर्वाणिपञ्चबुद्धीन्द्रियाणि इतरा
णिपञ्चकर्मेन्द्रियाणिउभयात्मकंमनः॥

अर्थ–कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, और मन, ये ११ इन्द्री है। तिनमें पहिली पांच ज्ञानेन्द्रिय है, तथा पांच कर्मेन्द्रिय है। और उभयात्मक ग्यारहवां मन है। अर्थात् मनके विना दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंका व्यवहार नहीं होता।

पंचभूतोंसे तन्मात्रोत्पत्ति।

भूतादेरपितैजससाहाय्यात्तल्लक्षणान्येवपञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते।

---

* शुद्धसत्वस्ययाशुद्धासत्याबुद्धिः प्रवर्तते। ययाभिनत्त्यतिबलमहामोहमयं तमः॥ सर्वभावस्वभावज्ञोययाभवतिनिस्पृहः। ययानोपैत्यहङ्कारंनोपास्तेकरणंयया॥

अर्थ-राजस सहाय, सत्वांशयुक्त तामस अहंकारसे मोहलक्षणवाली पंचतन्मात्रा उत्पन्न होती है। अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये विषय हैं।

तद्यथा। शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति।

अर्थ-जैसे शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, और गन्धतन्मात्रा।

विषय कहते हैं।

तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः।

अर्थ-तिन तन्मात्राओंके विशेष कहिये अनुभवयोग्य जे दुःख सुख मोह तिनसे युक्त होवे, वे विशेष शब्दादिक ऐसे जानने, तहां अनुद्भूतस्वभाव ऐसी बाह्य इन्द्रियोंसे उन तन्मात्राओंको योगी ग्रहण करते हैं।

तन्मात्राण्यविशेषाणि।

अर्थ-वे तन्मात्रा अति सूक्ष्म हैं। अतएव अनुभवयोग्य जे सुखादिक धर्म तिनसे युक्त नहीं हो सके।

भूतोंकी उत्पत्ति।

तेभ्यो भूतानि व्योमाऽनिलाऽनलजलोर्व्यः।

अर्थ-तिन शब्दादि तन्मात्राओंसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पंच महाभूत उत्पन्न हुए। उनका प्रकार कहते हैं।

उत्पत्तिप्रकार।

एकोत्तरपरिवृद्ध्याशब्दादयउत्पद्यन्ते

अर्थ-तिन शब्द तन्मात्रादि पांचोंसें एकोत्तरवृद्धिके क्रमसे शब्दादि गुणविशिष्ट आकाश आदि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं। जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्दगुणवाला आकाश प्रगट हुआ। और शब्दतन्मात्रासहित स्पर्शतन्मात्रासे शब्द, स्पर्शगुणवाला वायू (पवन) प्रगट हुआ। तथा शब्द, स्पर्श, तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासे शब्दस्पर्शरूपगुणवान् तेज (अग्नि) प्रगट हुआ। तथा शब्द, स्पर्श, रूपतन्मात्रासहित रसतन्मात्रासे शब्द, स्पर्श, रूप, रसगुणवान् जल प्रगट हुआ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासे शब्द,

स्पर्श, रूप, रस, गुणवान् पृथ्वी प्रगट हुई। [पतंजलि मुनिके मतानुसार शब्दादिकोंसेही आकाश आदिकी उत्पत्ति है] इस प्रकार शब्दादिकोंका आकाशादि महाभूतोंसे अभिन्नत्व सूचना कर उपसंहार कहते हैं।

२४ तत्व तथा बुद्धीन्द्रियोंके विषय।

एवमेषांतत्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता तत्रबुद्धीन्द्रियाणांशब्दादयोविषयाः।

अर्थ-इस प्रकार इन तत्वोंकी समग्र चौवीस संख्या कही है। तिनमें श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रियोंके शब्दादिक विषय जानने।

कर्मेन्द्रियोंके विषय।

कर्मेन्द्रियाणांयथासंख्यंवचनादानानन्दविसर्गविहरणानि।

अर्थ-कर्मेन्द्रियोंके विषय, यथासंख्य अर्थात् यथाक्रमसे कहते हैं। वाणीका विषय भाषण, (बोलना) हाथोंका लेना देना, लिंगेन्द्रीका विषयानंद, गुदाका मलोत्सर्ग, पैरोंका गमन (चलना) ऐसे पांच विषय जानने। कहे हुए चौवीस तत्वोंके अन्य धर्म दिखाते हैं।

८ प्रकृति व १६ विकार.

अव्यक्तंमहानअहङ्कारः पंचतन्मात्राणि चेत्यष्टौप्रकृतयःशेषाःषोडशविकाराः।

अर्थ-अव्यक्त, महान्, अहंकार, पंचतन्मात्रा ए प्रकृति है। अर्थात् औरोंके कारणभूत है। अव्यक्त प्रथम कहआए है तथापि अव्यक्त प्रकृतिही है इसकी दृढ सूचनार्थ पुनः कहा है। [तन्मात्राणि चेति] इसमें जो चकार है उसका [प्रकृतयः] इस पदसे संबन्ध है। इससे महदादिक सात प्रकृति होकर कार्यवान् विकृतभी होते हैं। महदादिकोंको अव्यक्त निरूपित होनेमें प्रकृतित्व और श्रोत्रादि षोडश विकारोंको विकारनिरूपित प्रकृतित्व जानना। [शेषाः] कहिये पंचमहाभूत तथा षोडशइन्द्री होनेसें ऐसे चौवीस तत्व हैं। तिनमें बुद्ध्यादिकोंको प्रकाशत्व करके प्रधानता है इसीसे जिनमें प्रकाश और जहां स्थितहोकर प्रकाश करते हैं तथा जिसके अनुग्रहसे प्रकाश करते हैं तत्प्रकारत्रयोंको अधिभूतादि भेदों करके कहते हैं।

स्वस्वश्चैषांविषयोऽधिभूतम्।

अर्थ-[एषां] कहिये बुद्धि, अहंकार, मन, तथा श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रिय और वाणी आदि, कर्मेन्द्रिय और मन इन्का स्वस्वविषय कहिये बुद्धिका विषय निश्चय अहंकारका विषय अधिमंतव्य, मनका संकल्प विकल्प और शब्दादिक विषय ए सर्व पंचमहाभूतोंमें स्वरूपसंबंध करके रहते हैं, अतएव इन्को अधिभूत कहते हैं। कोई आचार्य ऐसा पाठान्तर कहते हैं।

[स्वस्वएषांविषयोऽधिभूतम्)

अर्थ-बुद्ध्यादि त्रयोदशोंका जो स्वकीय विषय अर्थात् भोगसाधन उस्की अधिभूत संज्ञा जाननी।

अध्यात्म।

स्वयमध्यात्मम्।

अर्थ-ये बुद्ध्यादिक स्वतः अध्यात्म अर्थात् [आत्मनि अधि इत्यध्यात्मम्] आत्मशब्द इस जगे शरीरवाची है अर्थात् बुद्ध्यादिक शरीरका आश्रय करके रहते हैं। इसीसे अध्यात्म कहाते हैं।

अधिदैवत।

अधिदैवतञ्च। अथबुद्धेर्ब्रह्मा अहङ्कारस्येश्वरः मनसश्चन्द्रमाः दिशः श्रोत्रस्य त्वचो वायुः, सूर्य्यश्चक्षुषो रसनस्यापः, पृथिवी घ्राणस्य, वाचोऽग्निः, हस्तयोरिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मित्रं, प्रजापतिरुपस्थस्येति॥

अर्थ-देवताओंको इन्द्रियोंके अधिष्ठाता होनेसे अधिदैवत है। उन्को बुद्ध्यादिकोंमें प्रगट करते हैं। जो जो देवता विश्वरूप विष्णुके जिस जिस अवयव (अंग) सें प्रगट हुआ, वही २ देवता उसी २ अंगका अधिदैवत हुआ। इस कहनेका कारण यह है कि, देवताओंके विना इन्द्रियोंका प्रकाश अर्थात् स्वस्वविषय ग्रहण नहीं होवे। अब उन देवताओंको कहते है। बुद्धिका ब्रह्मा, अहंकारका रुद्र, मनका चन्द्रमा, कानोंकी दिशा, त्वचाका पवन, नेत्रोंका सूर्य्य, जिह्वाका जल, नासिकाकी पृथ्वी, वाणीका अग्नि, हाथोंका इन्द्र, पैरोंका विष्णु, गुदाका मित्रदेवता, शिश्न-(लिंग) का प्रजापति अधिदैवत जानना।

श्रोत्रादिकोंको अध्यात्मादिस्वरूप।

यथाश्रोत्रमध्यात्मंश्रोतव्यमधिभूतंदिशोऽधिदैवतम्।

अर्थ–श्रोत्रेन्द्रियका मांसगोलक जो कर्ण सो अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव । त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, पवन अधिदैव । जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, जल अधिदैव । नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत, सूर्य अधिदैव । नासिका अध्यात्म, गंध अधिभूत, पृथ्वी अधिदैव। इसी प्रकार वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, बुद्धि, अहंकार और मन ए अध्यात्म हैं. इन्के भाषण, देना, लेना, विषयानंद, मलोत्सर्ग, गमन, निश्चय करना, अभिमान और मंतव्य ये अधिभूत हैं अर्थात् विषय हैं । और अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, मित्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, और चंद्रमा ये क्रमसें वाणीआदिके अधिदेवत अर्थात् देवता हैं ।

पुरुषलक्षण ।

तत्रसर्वएवाचेतनएषवर्गःपुरुषः पञ्चविंशतितमः कार्य्यकारणसंयुक्तश्चेतयितासत्यप्यचैतन्येप्रधानस्य कैवल्यार्थंप्रवृत्तिरुपदिशन्त्याचार्य्याः ॥

अर्थ–[सर्वएवैषवर्गः] कहिये अव्यक्तादि चतुर्विंशति तत्वोंका कारण अव्यक्त अचेतन है । इसीसें उन्होंके कार्य्य जो महदादिक वेभी अचेतन जानने । इसमें दृष्टान्त जैसें, सुवर्णके कटक कुंडलादि [पुरुषः पंचविंशतितमः] अर्थात् पुरुष पंचविंशतितत्ववान्, कार्य्यगण कहिये विकारगण महदादिक, और कारण कहिये मूलप्रकृति उस्के प्रतिबिंबित होकर उसमें चैतन्यता उत्पन्न करे हैं । वास्तवसें परमात्मा निर्व्यापार, परन्तु लोहचुंबकके सान्निध्य करके जैसें लोहमें चैतन्यता होती है । उसी प्रकार प्रकृति और महदादिकोंमें चेतना प्रगट होती है । पुरुषस्य] कहिये जीवोंके मोक्षार्थ [प्रधान] की अर्थात् मूलप्रकृतिकी आचार्य प्रवृत्ति मानते हैं । तात्पर्य यह है कि, पुरुष प्रकृतिसंयुक्त होनेसें उस्के जो सत्वादि गुण तत्संबन्धी सुख दुःखादि भोग भोगता है । और उस्के न्हास होने (छूटने) सें मुक्ति होती है । अचेतन कैसें प्रवृत्त होता है इसमें उदाहरण दिखाते हैं ।

क्षीरादिश्चात्रउदाहरन्ति।

अर्थ–जैसें दूध अचेतनभी होकर बछड़ाकी वृद्धिके विषयमें प्रवृत्ति होता है । [आदि] शब्द करके अन्य दृष्टान्त दिखाते हैं । जैसे, एकान्तमें परम सुंदर कामिनीके सुरत (क्रीड़ा) दत्तवर्य सुखातिशयोत्पादनके अर्थ असंज्ञक (चेतनारहित) शुक्र प्रवृत्त होता है ।

प्रकृतिपुरुषका साधर्म्य कहते हैं ।

अतऊर्ध्वंप्रकृतिपुरुषयोःसाधर्म्यवैधर्म्यंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-[अतऊर्ध्वं] कहिये तत्वनिरूपणानन्तर [प्रकृति] अव्यक्त और [पुरुष] आत्मा, इन्के [साधर्म्य] समान धर्म तथा (वैधर्म्य) विपरीत धर्म, उन्होंको [व्याख्यास्यामः] कहिये कहते हैं।

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गौ उभावप्यनित्यौ उभावप्यनपरौ उभौचसर्वगताविति॥

अर्थ-प्रकृति पुरुष समानधर्मवान् हैं इस प्रमाणसें दोनों अनादि, व अनन्त, व अलिंग, तथा दोनों लयरहित, किसी कालमें नाश नहीं होते, तथा दोनों [अनपर] कहिये जिनसें कोई परे नहीं तथा दोनों [सर्वगत] कहिये सर्वव्याप्त होकर स्थित। यह दोनोंके साधर्म्य कहिये अनादित्व धर्म, दोनोंके बीच समान रहते हैं ऐसें जानना।

वैधर्म्य कहते हैं।

एकातुप्रकृतिरचेतनात्रिगुणाबीजधर्म्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणीचेति॥

अर्थ-प्रकृति एक होकर, अचेतन, तथा त्रिगुणात्मक कहिये सत्वादिगुणत्रयकी समान अवस्थामें रहे है। तथा [बीजधर्मिणी] कहिये सर्व महदादि विकारोंकी बीजरूप रहे हैं। इसी सें बीजधर्मिणी कहते हैं। "गयी आचार्य" इस प्रकार कहता है कि, प्रलयकालमें भूत, इन्द्री, तन्मात्रा, अहंकार, तथा महान् इत्यादिक प्रकृतिमें बीजरूप करके रहते हैं। इसीसें उसको बीजधर्मिणी कहते हैं। तथा यही प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाला परमात्मा प्रभूके साथ क्षोभको प्राप्त हो, समान अवस्याको परित्याग कर तदनन्तर महदहंकारादिकके क्रम करके चराचर जगत्को प्रगट करे है, इसीसे प्रसवधर्मिणी कहते हैं। तथा (अमध्यस्थधर्मिणी) कहिये यह प्रकृति सत्वादिगुणोंकी राशी है, इसीसे सत्वादि स्वरूप सुख दुःखानुभव मध्यस्थको नहीं होवे। और इससे सुख दुःखानुभव होते हैं इसीसें अमध्यस्थधर्मिणी कहते हैं।

जीवोंके लक्षण।

बहवस्तुपुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणाऽबीजधर्माणोऽप्रसवधर्माणोमध्यस्थधर्माणश्चेति॥

अर्थ-(बहवः) कहिये, एक कालमें सबका मरण होना असंभव है इसीसें पुरुष परमाणुओंके सदृश अनेक हैं। तथा चेतनायुक्त जानने। यदि पुरुष एकही

होता तो, एक मनुष्यके मरनेमें सर्व मनुष्य मर जावे, इस जगे (पुः) शब्द करके महदादिकोंका निर्मित सूक्ष्म शरीर, अर्थात् लिंग शरीर जानना । वह लिंग शरीर योगियोंकोही दीखता है । उस लिंग शरीरमें रहे उस्को पुरुष कहते हैं । तथा वह पुरुष सत्वादि गुण रहित तथा वह पुरुष [अबीजधर्माणः] कहिये महाप्रलयमें जैसे महदादिक प्रकृतिके बीच रहते हैं । उस प्रकार पुरुषमें नहीं रहते इसीसें वह पुरुष अबीजधर्मक है । तथा [मध्यस्थधर्माणः] कहिये प्रीति, अप्रीति, विषाद, इनसे रहित है इसीसे इच्छा, द्वेषशून्य मध्यस्थके सदृश उदासीन है । अतएव मध्यस्थधर्मवान् पुरुष है ऐसे जानना । इस विषयमें सांख्यमत दिखाते हैं ।

तदुक्तंसांख्ये ।

तस्माद्विपर्य्ययात्सिद्धंसाक्षित्वमजस्यपुरुषस्य
कैवल्यंमाध्यस्थंद्रष्टृत्वमकर्तृभावश्चेति ॥

अर्थ– (तस्मात्) कहिये प्रकृतिके वैधर्म्यरूप विपरीततासें, परमात्माको साक्षित्व, मोक्षप्रदत्व, मध्यस्थत्व, द्रष्टृत्व, अकर्तृभाव, इत्यादिक सिद्ध हुए । अब कहेहुएको उपसंहार करते हैं ।

महत्तत्वको त्रिगुणात्मकत्व ।

तत्रकारणाऽनुरूपंकार्य्यमितिकृत्वासर्वं
एवैतेविशेषाःसत्वरजस्तमोमयाभवन्ति॥

अर्थ–कारणके गुण कार्य्यमें नियम करके होते हैं । इसीसें प्रकृतिसें प्रगट भया जो महत्तत्व उस्में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीन गुण है. प्रतिबिंबसंयुक्त जो पचीसवां पुरुष उस्मेंभी सत्वादिक गुण है यह दिखाते हैं ।

पुरुषको त्रिगुणात्मकत्व कहते हैं ।

तदंजनत्वात्तन्मयत्वात्तद्गुणाएवपुरुषाभवन्तीत्येकेभापन्ते ॥

अर्थ–पुरुषके सत्वादिक गुण प्रकाशकत्व तथा तन्मयत्व हैं, इसीसें वे सत्वादि गुण पुरुषके हैं । ऐसें कोई आचार्य कहते हैं । परन्तु सत्वादिरूप करके महत्तत्वादिकोंमें प्रतिबिंबित हुए इसीसें सत्वादिमय पुरुष ऐसे भासते हैं । जैसें तलाव सरोवरके जलमें जलके हिलनेसें सूर्य, चन्द्र, बिजली, आदिका प्रतिबिंबको हिलना. कहते हैं । उसी प्रकार सत्वादिकोंमें प्रतिबिंबित पुरुष सत्वादिमय दीखते हैं । वास्तवसें सत्वादिमयत्व पुरुषको नहीं है ।

तादृशाश्चतन्मयत्वात्तल्लक्षणत्वेनतद्गुणाः
सुखिनोदुःखिनोमूढाश्चपुरुषाभवन्ति॥

अर्थ-उसी प्रकार पुरुष सत्वादि गुण होनेसे तन्मय है । इसीसे सत्वादिकोंके परिणाम सुखी, अथवा दुःखी, मूढ ऐसा भासते है [गर्ग आचार्य] कहता है, कि सत्वादिकों कर्के अंजन अर्थात् अभिव्यक्ति जिस्की ऐसा पुरुष है । सत्वादिकों कर्के महदादिकोंकी अभिव्यक्ति कैसे होती है ? इस लिये कहते हैं [तन्मयत्वात्] अर्थात् महदादिकोंकी कारण सत्वादिगुण राशि प्रकृति है। इसीसें वे तन्मय जानने । निर्विकार पुरुषको तदंजनत्व कैसे है, इस्में दृष्टान्त देते हैं। जैसे स्फटिकमणिमें जपा (गुड़हर) पुष्पके समीप धरनेसें लाली दीसती है । उसी प्रकार नीले, पीले, रंग वाले कांचकी फानूसमें दीपक धरनेसे उस फानूसके संबंधसे दीपकके नीले, पीले, रंग बाह्यदृष्टि कर्के प्राप्त होते हैं । अथवा संध्याके समय जैसें सूर्यकी किरणोंसे आकाश रंग जाता है, उसी प्रकार पुरुषमें सत्वादिगुण जानने । ये पूर्वोक्त सर्व एक मत दिखातेहुए अपने मतको कहते हैं । [वैद्यकेतु]

प्रकृतिको षड्विधत्व दिखाते हैं ।

स्वभावमीश्वरंकालं यदृच्छांनियतिंतथा ।
परिणामश्चमन्यन्ते प्रकृतिंपृथुदर्शिनः ॥

अर्थ-स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, नियति और परिणाम, ऐसे दीर्घदर्शी प्रकृतिके छः भेद मानते हैं । तिन्में स्वभाववादी सर्व जगत्के उत्पन्न होनेका स्वभावही मानते हैं ।

स्वाभाविक मत १ ।

कःकण्टकानांप्रकरोतितैक्ष्ण्यंविचित्रचित्रंमृगपक्षिणाञ्च ॥
माधुर्यमिक्षौकटुतामरीचेस्स्वभावतःसर्वमिदंप्रवृत्तम् ॥

अर्थ-कंटकको (कांटेनु) में तीक्ष्णता कौन करता है । पशु पक्षिओंको चित्रविचित्र कौन करता है । ईखमें मिठास और मीरचमें चरपरापना कौन करता है । यह सब धर्म स्वभावहीसें प्रवृत्त है * ईश्वरवादी स्थावर, जंगम प्राणियोंको स्वर्ग नर्कका कारण ईश्वर मानता है । यथा-

ईश्वरमत २ ।

अज्ञोजन्तुरनीशोयमात्मनःसुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्स्वर्गंनरकमेवच ॥

अर्थ-अज्ञानी प्राणी अपने आत्माके सुख दुःखके दूर करनेको असमर्थ है। ईश्वरका प्रेरित स्वर्ग अथवा नर्कको जाता है । काल कारण वादी सर्व जगत्का कारण काल है ऐसा मानता है इसमें प्रमाण दिखाते हैं । जैसें ज्योतिर्वित् श्रीपति लिखता है ।

कालको ईश्वरत्व ३ ।

प्रभवविरतिमध्यज्ञानसन्ध्यानितान्तं
विदितपरमतत्वा यत्रतेयोगिनोऽपि ॥
तमहमिहनिमित्तं विश्वजन्माऽत्ययाना-
मनुमितमभिवन्दे भग्रहैःकालमीशम् ॥

अर्थ-जिस कालरूपी ईश्वरके विषै, परमार्थवेत्ता ऐसे योगीभी उत्पत्ति, नाश और मध्य, इन्का जो ज्ञान उस करके रहित होते हैं । तथा विश्वके उत्पत्ति, पालन और नाशका हेतु तथा अश्विन्यादि नक्षत्र और सूर्यादि ग्रहों करके जिस्का अनुमान होता है, ऐसें कालरूपी ईश्वरको हम नमस्कार करते हैं ।

याहच्छिकमत ४ ।

योयतोभवतितत्रनिमित्तमितियाहच्छिकाः ॥

अर्थ-जो जिस्सें होता है, उसीमें उसका निमित्त होता है । ऐसें याहच्छिक मतावलंबी कहते हैं, इसमें दृष्टांत यथा [तृणारणिनिमित्तोवह्निरिति] जैसें तृण-रूप अरणिसें अग्नि उत्पन्न होकर उस अरणीको जलाता है ।

नियतिमत ५ ।

पूर्वजन्मार्जितधर्माधर्मौनियतिः ॥

अर्थ-पूर्वजन्मोपार्जित धर्म अधर्मही सर्व जगत्के कारण है । ऐसे नियतिवादी कहते हैं ।

परिणामवादिमत ६ ।

प्रधानमेवमहदहङ्कारादिरूपतयापरिणतंसर्वस्य
निमित्तमितिपरिणामवादिनः ॥

अर्थ-प्रधानही महदहंकारादि रूप करके परिणाम पाते हैं । इसीसे वेही सबके कारण ऐसें परिणामवादी कहते हैं । ये पूर्वोक्त सर्व मत स्वमतानुकूलही है । कारण यह है कि आयुर्वेद सर्व पारिषदस्वरूप है । इसीसे सुश्रुताचार्यनेभी स्वभावादि भेदसे षड्विध प्रकृतिके उदाहरण कहे हैं । तिनमें स्वभावको कारणत्व कहते हैं ।

स्वभावमत ।

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेवजायतेइति ॥

अर्थ-अंग और प्रत्यङ्ग इन्होंकी उत्पत्ति स्वभावसेही होती है ।

पुनश्च ।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्भवौ ।
तलेष्वसम्भवोयश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ-सर्व शरीरके अवयवोंकी रचना, तथा दांतोंका गिरना और ऊगना, तथा हाथपैरोंकी हथेली, और तरुआ, इन्में केशों (बालों) की अनुत्पत्ति (न होना) यह सब स्वभावसेही होता है ।

पुनश्चोक्तम् ।

धातुषुक्षीयमाणेषु वर्द्धतेद्वाविमौसदा ।
स्वभावंप्रकृतिकृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥

अर्थ-धातुओंके क्षीण होनेपरभी दो वस्तु सदैव बढ़ती है । एक नख (नाखुन) और दूसरे बाल, इसमेंभी कारण स्वभावही है ।

पुनरप्याह ।

निद्राहेतुस्तमःसत्वं बोधनेहेतुरुच्यते ।
स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्तितः ॥

अर्थ-निद्राका कारण तमोगुण और जाग्रदवस्थाका कारण सतोगुण अथवा स्वभावही दोनों अवस्थाओंका कारण कहा है ।

अन्यत्राप्युक्तम् ।

स्वभावाल्लघवोमुद्गास्तथालावकपिञ्जलाः ।
स्वभावाद्गुरवोमाषा वराहमहिषादयः ॥

अर्थ-जैसें मूंग, लवापक्षी और तीतरपक्षी, ये स्वभावसेही हलके होतेहैं । और उरद, सुअरका मांसतथा भैंसा, आदि ए स्वभावसेही भारी है । ईश्वर-भी अग्निरूप होकर जीवत्वादिकोंका कारण कहाहै ।

अग्निको ईश्वरत्व तथा जीवत्व कहते हैं ।

जाठरोभगवानग्निरीश्वरोन्नस्यपाचकः ॥ सौक्ष्म्याद्रसानाददानोविवेक्तुंनैवशक्यते ॥ अग्निमूलं बलंपुंसांबलमूलंचजीवितम्॥

अर्थ-स्वतंत्र तथा षड्गुणैश्वर्यसंपन्न ऐसा ईश्वर जठराग्नि होकर अन्नका परिपाक करे हैं । तथा रसोंका ग्रहण करे हैं । परंतु सूक्ष्म है इसीसें दीखता नहीं । बलका मूल कारण अग्नि, तथा बलमूलक जीवित है ऐसें जानना ।

कालभी प्रकृतिहीका भेद है ।

महाभूतविशेषास्तु शीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्यध्यवस्यन्ति न्यायमार्गाऽनुसारिणः ॥

अर्थ-शीत, उष्ण इन भेदों करकें, आकाशादि महाभूतविशेषोंका नैय्यायिक काल कहते हैं । सोह काल वातादिदोषोंके संचय, तथा प्रकोप और उपशम इन्होंके द्वारा हेतु हैं ऐसें इसी सुश्रुतके सूत्रस्थानकी छटवी ऋतुचर्य्याध्यायमें कहा है ।

याहच्छिकमतका प्रमाण ।

यदृच्छा पुनरलक्षितआकस्मिकःसर्वपदार्थाविर्भावः ॥

अर्थ-यदृच्छा कहिये अलक्षित होकर आकस्मिक ऐसा जो पदार्थका आविर्भाव उसें यदृच्छा कहते हैं ।

उक्तश्च ।

यदृच्छयाचोपगतानिपाकंपाकक्रमेणोपचरेद्बुधिज्ञः ॥ इत्यादि ।

अर्थ-सर्व वस्तु मात्र यदृच्छाककें परिणाम पाते हैं । इसीसें विचारवान् पुरुषको उसी क्रम करकें आचरण करना चाहिये ।

कर्मवादी मतका प्रमाण ।

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवतो परस्वहरणादिभिः ।
कर्मभिःपापरोगस्य प्राहुःकुष्ठस्यसम्भवम् ॥

अर्थ-ब्राह्मणकी स्त्रीमें गमनकरनेसें, तथा परद्रव्यहरण इत्यादि पापकर्मोके करनेसें, कुष्ठादिक रोग उत्पन्न होते हैं । इसीसें कर्मही कारण है ।

परिणामको हेतुत्व कहते हैं ।

जाठराग्नेस्तुसंयोगाद्यदुदेतिरसान्तरम् । रसानांप

रिणामान्ते सविपाकइतिस्मृतः ॥ ताएवौपधयः कालपरिणामात्परिणतवीर्य्याभवंतिहेमन्तेभवन्त्या पश्चसम्यक्परिणतस्याहारस्यसारोरसः । एवंबालानामपि वयःपरिणामाच्छुक्रप्रादुर्भावोभवति ॥

अर्थ-जठराग्निके संयोग कर्के अन्नमें जो रसांतर उत्पन्न होता है। [रस कहिये उत्तम प्रकार जीर्ण हुआ आहारका सारांश] रसके परिणाम होनेसें उस्को विपाक कहते हैं। उसी प्रकार औपधिकालपरिणाम कर्के पूर्ण वीर्य होती है। जैसें हेमंत ऋतुमें उदक पूर्णवीर्य होते हैं। उसी प्रकार बालकोंके अवस्थाके परिणामकर्के वीर्यप्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार स्वभावादिकोंको प्रकृतित्व वैद्यशास्त्र संमत है। ऐसें दिखाया है इस प्रकार वैद्यकानुमत पूर्वोक्त प्रकृति दिखाई है। स्वभावादिक पट्पदार्थ अपररूपा प्रकृतिके पर्य्याय हैं। अथवा अन्य अर्थाभिधायित्व कर्के भिन्नार्थ है। यदि भिन्नार्थ है ? तो भिन्नार्थमेंभी दो भेद हैं। फिर भिन्नार्थ स्वभावादिकों कर्के क्या है। कुछ स्वभाव कर्के कुछ ईश्वर ऐसें मिलनेसें जगत्का आरंभ होता है। अथवा स्वभावादिक पृथक् २ ही विश्व प्रगट करनेमें समर्थ है, इस प्रकार अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं [जेज्जटाचार्यने] ईश्वरको त्याग स्वभावादिकोंको उस स्वरूप कर्के अवभास होनेसें अभिन्न प्रकृतित्व प्रतिपादन करा है।

प्रकृतिही कारण ऐसें स्वमत कहते हैं।

परमार्थतस्तुगुणत्रयात्मिकाप्रकृतिरेवकारणं यतःस्वभावादयश्चत्वारःप्रकृतिपरिणामस्य धर्मविशेषतयाप्रकृतावेवान्तर्भवन्ति ।

अर्थ-वास्तव अर्थसें तो गुणत्रयात्मिका प्रकृतिही सर्व जगत्का कारण है। स्वभावादि चार प्रकृति परिणामके धर्मविशेष हैं। अर्थात् प्रकृतिमेंही इन्होंका अंतरभाव जानना।

स्वभावमतखण्डन।

स्वभावस्तावत्सत्वरजस्तमसांतद्विकाराणांपृथिव्यादिमहाभूतानाञ्चयादृशोविशेषइतिप्रकृतिपरिणामादन्योनभवति ॥

अर्थ-स्वभाव तो साकल्य कर्के सत्वादि गुण और उन्के विकार पृथिव्यादि पं महाभूत इन्का परिणामविशेष कहाता है। इसीसें स्वभाव प्रकृतिसें भिन्न नहीं है

नियतमतखण्डन ।

नियतेरपिपूर्वकृतसदसत्कर्मरूपायारजोगुणपरिणामरू-
पत्वेननप्रकृतेरन्यत्वम् ॥

अर्थ-नियति, पूर्वजन्मकृत जो शुभाऽशुभ कर्मके संदश होता है, इसीसे रजोगुणके परिणाम रूप होनेसें वह नियति प्रकृतिसें भिन्न नहीं है ।

कालमतखण्डन ।

कालोपिचन्द्रार्कादिगतिःक्रियालक्षणः तथाचमहाभूता
नांपरिणामविशेषाःशीतोष्णाभवन्ति ।

अर्थ-कालभी चन्द्र सूर्यादिक ग्रहों करके परिछिन्न इसीसें क्रियालक्षण तथा महाभूतोंके परिणामविशेष शीत, उष्ण, काल होता है इसमें पूर्वोक्त प्रमाण है । यथा " महाभूतविशेषास्तुशीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्यध्यवस्यन्तिन्यायमार्गोऽनुसारिणः" अर्थात् शीत उष्णके भेद करके जो महाभूतविशेष उसको नैयायिक काल कहते हैं ।

क्रियात्वेनरजोगुणपरिणामित्वान्महाभूतविशे-
षत्वाच्चनकालस्यप्रकृतेरन्यत्वम् ।

अर्थ-कालको क्रियात्व है । अर्थात् रजोगुणका परिणाम काल और महाभूतोंका परिणामविशेष शीत उष्णादि काल, इसीसें प्रकृति भिन्नकाल नहीं है । ईश्वर, पचीसतत्वमय पुरुष और प्रकृतिका क्षोभक है । इसीसें उसको कारण कहते हैं । यदृच्छाभी आकाशादि महाभूतोंका परिणामविशेष है । इसीसे प्रकृति भिन्न नहीं है ।

इस शास्त्रका सिद्धान्त ।

किञ्चास्मिन्शास्त्रेप्रकृतिपरिणामात्मकंविश्वंपच्यते ॥

अर्थ-इस शास्त्रमें प्रकृतिपरिणामात्मक विश्व है, ऐसें कहा है ।

शरीर कहते हैं ।

सात्विकंकायलक्षणं राजसंकायलक्षणम् । तथासत्व
बहुलमाकाशमित्यादि ।

अर्थ-काय कहिये शरीर, यह सतोगुणरजोगुणात्मक, तथा आकाश सत्वगुणप्रधान है ।

सर्वमतोंकी ऐक्यता।

तेचस्वभावादयःसमुच्चयेनजगदुत्पत्तौकारणभुताः। तत्रप्रकृतिपरिणामस्योपादानत्वंस्वभावादीनांपञ्चानांनिमित्तकारणत्वमिति।

अर्थ-वे स्वभावादिक सर्व मिलकर जगत् उत्पन्न करते है। परन्तु उनमें प्रकृतिपरिणाम उपादान कारण है और इतरस्वभावादिक पांच निमित्तकारण जानने।

तन्मयान्येवभूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत्॥

अर्थ-आकाशादि पंचमहाभूत तन्मय है। अर्थात् अवकाश, घन, उष्ण, द्रव, स्वभावादि धर्मविशेष करके युक्त जो प्रकृतिपरिणाम उस करके वे पंचमहाभूत तन्मय होकर तद्गुणविशिष्ट है। क्योंकि सत्वबहुल आकाशयुक्तत्व ऐसे पूर्व कह आए हैं, गयीआचार्य (ततोजातानिभूतानि) ऐसा पाठ कहकर व्याख्या करता है कि, स्वभावादिक निमित्तकारण उनसे तथा प्रकृतिके परिणाम उपादान कारण उनसे हुए जो आकाशादि पंचमहाभूत वे कारण गुणात्मक है।

चिकित्सास्थानको दिखाते हैं।

तैश्चतल्लक्षणःकृत्स्नो भूतग्रामोव्यजन्यत। तस्योपयोगोभिहितश्चिकित्सांप्रतिसर्वदा। भूतेभ्योहिपरतस्मान्नास्तिचिन्ताचिकित्सिते॥

अर्थ-आकाशादिक भूतोंसे स्थावर, जंगम, पृथिव्यादिकोंके जो लक्षण स्थिर, गुरु, कठिनत्वादि तिन करके युक्त ऐसे अनेक प्रकारके भूतग्राम, प्रगट होते है। (तस्य) कहिये पंचमहाभूतारब्ध, तथा परस्परोपयोगी ऐसा भूतग्राम, उसका प्रयोजन सर्व काल रोगनाश करनेके विषयमें कारण है। इसीसे [भूतेभ्यःपरम्] अर्थात् पंचमहाभूतारब्ध जो भूतग्राम तिनसे परे जे अव्यक्तादिक उनमें रोगापनयन विषयमें विचार नहीं है। जैसे प्रथमाध्यायमें लिखा है।

तत्रास्मिन्पञ्चमहाभूतशारीरसमवायःपुरुषइत्युच्यते। तस्मिन्पुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत्॥

अर्थ-यहां पंचमहाभूतोंका जो शरीरसमवाय अर्थात् शुक्रशोणितका संयोगविशेष उसको पुरुष ऐसे कहते हैं। उस पुरुष प्रकृतिका साधनभूतदेहमें चिकित्सा

होता है । इसीसें देहसें परे जे अव्यक्तादिक तिनका चिकित्सामें प्रयोजन नहीं है । यह अर्थ अन्यत्रभी दिखाया है ।

यतोभिहितंतत्सम्भवद्रव्यसमूहोभूतादिरुक्तः ॥

अर्थ-इस सूत्रकी बीजाध्यायमें व्याख्या करी है । परन्तु यहांभी शिष्यबोधार्थ थे ड़ासा व्याख्यान करते हैं । जिसकारण पुरुषके शुक्र शोणित संयोग करकें पंचमहाभूत प्रधान स्थूलदेह वह भूतादि कहिये चिकित्साके उपयोगी हैं । इस मनुष्य देहसें व्यतिरिक्त अन्य देह उपयोगी नहीं है ।

वैद्यशास्त्रप्रतिपाद्य कहते हैं ।

भौतिकानिचेन्द्रियाण्यायुर्वेदेवर्ण्यन्ते । तथेन्द्रियार्थाः ।

अर्थ-भौतिक इन्द्री और इन्द्रियोंके अर्थ इस आयुर्वेदमें वर्णन करे जाते हैं । तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण ये इन्द्री हैं । और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये इन्के अर्थ हैं ।

तथा चोक्तम् ।

पञ्चभूतात्मकत्वेपि । श्रोत्रेखंस्पर्शनेवायुर्दर्शनेतेज
उत्कटम् ॥ सलिलंरसनेभूमिर्घ्राणेतज्ज्ञैर्निरूपिता ॥

अर्थ-सर्व इंद्रियोंको पंचमहाभूतात्मकत्व यद्यपि है, तथापि कर्णइन्द्रीमें आकाश मुख्य, तथा त्वचामें पवन, नेत्रमें तेज, जीभमें जल और नाकमें पृथ्वी ये पंचभूत मुख्य हैं ।

विषयोंको पांचभौतिकत्व कहते हैं ।

शब्दोवैहायसःस्पर्शो वायवीयःप्रकीर्तितः ।
रूपमाग्नेयमाप्यस्तु रसोगन्धस्तुपार्थिवः ॥

अर्थ-शब्द आकाशसंबंधी, स्पर्श पवनसंबंधी, रूप तेजसंबंधी, रस जलसंबंधी और गंध पृथ्वीसंबंधी है, ए शब्दादिक पंचमहाभूतोंके विकार हैं । परंतु जिस महाभूतका जिस इन्द्रीमें अधिकता है, वोह शब्दादि गुण उसी इन्द्री करकें ग्रहण कराजाय है । ऐसें दिखाते हैं ।

स्वविषयग्राहकत्व और अन्यनिषेध कहते हैं ।

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थन्तु स्वंस्वंगृह्णातिमानवः ।
नियतंतुल्ययोनित्वान्नाऽन्येनाऽन्यमितिस्थितिः ॥

अर्थ–मनुष्य इन्द्रियों करके तिसी तिसी विषयका ग्रहण करता है जैसे नेत्र नियम करके रूपकोही ग्रहण करते हैं उसी प्रकार शब्दको कान, स्पर्शको त्वचा, रसको जीभ, गंधको नासिका नियम पूर्वक ग्रहण करे हैं। इस विषयमें हेतु कहा है। [तुल्ययोनित्वात्] अर्थात् अपनी अपनी योनिके प्रति जाते हैं, जैसें जल जलके प्रति जाता है। [नान्येनान्यम्] अर्थात् अन्य इन्द्रीसें कारण भूतके विना दूसरा विषयका ग्रहण नहीं होवे।

अन्यसांख्यादिकोंसेंक्षेत्रज्ञकेविषयमेंआयुर्वेदकाभेदकहतेहैं।

नचायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्तेसर्वगताः क्षेत्रज्ञाःकिंतर्ह्यायुर्वेदे असर्वगताःपुरुषाउपदिश्यंतेसत्वोपाधित्वात् ॥

अर्थ– आयुर्वेदशास्त्रमें सत्वोपाधि होनेसें क्षेत्रज्ञको सर्वगत नहींमानते किंतु असर्वगत मानतेहैं। सांख्यादिशास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञको सर्वगत मानते हैं। क्षेत्रज्ञ एकदेशीहै इसीसें अनित्यता आई इससें [नित्याश्चोपदिश्यन्तेइतिशेषः] अर्थात् पुरुष नित्य है ऐसें मानते हैं।

नित्यत्व कैसें सो दिखाते हैं।

असर्वगतेषुक्षेत्रज्ञेषुनित्येषुनित्यपुरुषव्यापकत्वाद्धेतूनुदाहरन्ति ॥

अर्थ–असर्वगत जो क्षेत्रज्ञ नित्य उसमें नित्यत्वप्रतिपादक ऐसें सत्कारणत्वादिक हेतुओंको दिखाते हैं।

तथाहि। सन्नात्मासुखादिलिङ्गोपलम्भात् अविपर्योकारणश्चअतोनित्यः।

अर्थ–आत्मा सत्तावान् कहिये भूत भविष्यत् वर्तमान् कालमें है इसका यह कारण है कि, उसको सुख दुःखादि लिंगोंका अनुभव होता है। इसीसें अदृश्य होकर कारण है, अतएव नित्य है।

इस विषयमें भोजका वचन।

शुभाशुभाभ्यांकर्मभ्यां प्रेरणान्मनसोगतेः ॥ देहाद्देहांतरंयाति क्रमिवच्छाश्वतोव्ययः ॥ नित्यइत्युच्यतेसद्भिः सन्नकारणवान्यतः ॥ इति।

अर्थ–शुभाऽशुभ कर्म करके तथा मनकी गतिकी प्रेरणासें यह जीव पहली देहसें दूसरी देहमें जाता है। इसमें दृष्टान्त है। जैसें, तिनकाकी गिनार दूसरे

तिनकाको पकड़ पहले तिनकाको छोड़ती है, उसीप्रकार पुरुष देहांतरको प्राप्त होता है । इसीसें पुरुष शाश्वत, अव्यय नित्य और अकारण है, ऐसें बुद्धिमान् कहते हैं ।

सर्वमतोंका उपसंहार ।

आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेपुअसर्वगताःक्षेत्रज्ञानित्याश्चेति ।

अर्थ-आयुर्वेदशास्त्रके सिद्धान्तमें पुरुष, असर्वगत, तथा नित्य ऐसा है । * असर्वगत जीवोंको सर्वयोनि गमन कहते हैं ।

तिर्य्यग्योनिमानुपदेवेपुसंसरन्तिधर्माऽधर्मनिमित्तम् ॥

अर्थ-तिर्यक् योनि, पशु पक्ष्यादिक तथा मनुष्य, देव, उन्होंमें पुरुष जन्म पाते हैं । उस विषयमें धर्म और अधर्म कारण है । परंतु तिर्यक् योनिमें बहुत जन्म होते हैं । इसीसें सूत्रमें तिर्यक् पद प्रथम धरा है । तदनंतर मनुष्य धरा अर्थात् पाप पुण्य समान होनेसें मनुष्यदेह मिलताहै । और पुण्यप्रधान देवदेह कभी किसीको मिलती है, इसीसें देवशब्द मूलमें सबसे पिछाड़ी धरा है ।

इस विषयमें अनुमान ।

तेएतेऽनुमानग्राह्याःसुखदुःखोपलब्धिरूपेणालिङ्गे-नाव्यभिचारिणा ।

अर्थ-वे आत्मा सुख दुःखोपलब्धिरूप लक्षणद्वारा अनुमान करके ग्रहण करे जाते हैं । आत्माके विना सुख दुःखका अनुभव नहीं होता है । जैसें, धूँआसें अग्निका अनुमान होता है । उसी प्रकार सुख दुःखोपलब्धि आत्मज्ञानका कारण होता है ।

प्रत्यक्षप्रमाणसेंक्षेत्रज्ञकेसेंनहींजानाजायसोकहतेहैं ।

परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः । शाश्वतलोहितरेतसः सन्निपातेपुअभिव्यज्यन्ते ।

अर्थ-क्षेत्रज्ञ परम सूक्ष्म परमाणुके सदृश चेतनावंत नित्य ऐसा है, इसीसें दीखता नहीं है * यदि ऐसा है तो उत्पन्न कैसें होता है सो कहते हैं, (लोहित-रेतसः) अर्थात् आत्मा परम सूक्ष्म ऐसा होनेसें पंचभूतात्मक जो शुक्र शोणित उन्होंके संयोगसें प्रगट होता है । जैसे त्रसरेणु अन्यत्र नहीं दीखे परंतु झरोखामें सूर्यकी किरणोंसें स्पष्ट दीखता है ।

वैद्यककेअनुमतपुरुषोंकीपड्धातुकसंज्ञाकहतेहैं।

एपएवचसूक्ष्मपुरुपाणांभूतानाञ्चसंयोगोवैद्यके
पड्धातुकःपुरुपःपरिभापितः॥

अर्थ-वैद्यकशास्त्रमें सूक्ष्मपुरुष तथा पंचमहाभूतोंके संयोगको पड्धातुकपुरुष कहते हैं। पड्धातुक यह संज्ञा कैसे करी इसलिये प्रथमाध्यायका प्रमाण देते हैं।

यतोभिहितंपञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुपइति॥

अर्थ-पंचमहाभूत और शारीरि कहिये आत्मा, इन्के संयोगको पुरुष कहते हैं।

उसपुरुपकोऔपधोपयोगित्वकहतेहैं।

सएपकर्मपुरुपश्चिकित्साऽधिकृतः॥

अर्थ-यह पुरुष कर्मफल भोक्ता है इसीसे चिकित्सित कर्मफलकोभी प्राप्त होता है।

मनकेसंयोगकरकेजीवकेगुणहोतेहैं।

तस्यसुखदुःखेच्छाद्वेपोप्रयत्नःप्राणापानौ।
उन्मेपनिमेपौबुद्धिर्मनःसंकल्पविचारणा।
स्मृतिविज्ञानमध्यवसायोपलब्धिश्चगुणाः।

अर्थ-सुख, दुःख, इच्छा, वैर, कार्यारंभकउत्साह, वक्रसंचारीपवन, अधोवायु, नेत्रोंका खुलना मूदना, बुद्धि, (निश्चयात्मक अंतःकरणविशेष) मन (संकल्प-विकल्पात्मक) संकल्प (ऊहाऊपोह) स्मृति (अनुभूत पदार्थस्मरण) विज्ञान (शिल्पशास्त्रादिकोंका बोध) अध्यवसाय (बुद्धिका व्यापार) और उपलब्धि (शब्दादिविषयोंकी प्राप्ति) ए कर्म पुरुषके सोलह गुण हैं और इन्हींको कला कहते हैं। ' गर्गी ' आचार्य कहता है कि, सुख (प्रीति) दुःख (अप्रीति) इच्छा (सुखहेतुकी लालसा) द्वेष (दुःखहेतुकी मनसें अनिच्छा) प्रयत्न (मनप्रवृत्तिक उत्साह) मन (संकल्पात्मक लक्षण) उस मनका संकल्प (विषयोंमें दोष गुण कल्पना) बाकी सब अर्थ समान है।

प्रकृतिके गुण।

सत्वंरजस्तमश्चेतित्रीणिविज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः॥
तैश्चयुक्तस्यचित्तस्यकथयाम्यखिलान्गुणान्॥

अर्थ—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीन प्रकृतिके गुण हैं । इन तीनों गुण युक्त ऐसा जो चित्त उसके संपूर्ण गुण पृथक् पृथक् कहते हैं ।

सतोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

आस्तिक्यंप्रविभज्यभोजनमनुत्तापश्चतथ्यंवचो
मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्चकरुणाज्ञानश्चनिर्दम्भता ।
कर्म्मानिन्दितमस्पृहंचविनयोधर्मःसदैवादरा
देतेसत्वगुणाऽन्वितस्यमनसोगीतागुणाज्ञानिभिः ॥

अर्थ—आस्तिक्य (अर्थात् धर्म मोक्ष यह लोक परलोक आदिको मानना) अन्नका विभागकर भोजन करना, क्रोध रहित, सत्य वचन, मेधा (ग्रंथाकर्षण शक्ति) बुद्धि (तत्कालविषया) धृति (मनका नियमन) अथवा धृति (भूत, प्रेत, काम, क्रोध और लोभादिकोंके आवेशसे रहित्य) क्षमा, करुणा, आत्मज्ञान, निष्कपट, (निन्दित कर्मोंमें घृणा ' विनय, सदैव धर्मका आदर, (अथवा निद्रारहित, स्पृहारहित और निष्काम, ऐसी क्रियाको कर्म कहते हैं) उसका करनेवाला, ए सतोगुण युक्तवाले मनके गुण हैं ।

रजोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

क्रोधस्ताडनशीलताचबहुलंदुःखंसुखेच्छाऽधिका
दम्भः कामुकताप्यलीकवचनंचाधीरताऽहंकृतिः ॥
ऐश्वर्य्यादभिमानिताऽतिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं
प्रख्याताहिरजोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥ २ ॥

अर्थ—क्रोध, किसीको मारना अत्यंत दुःख, सुखकी अधिक इच्छा, दंभ, कामी, अथवा कामना रखनी, मिथ्या बोलना, अधीरता, अहंकारी, ऐश्वर्यसे अधिक अभिमान, अत्यंत आनन्द, सर्वत्र देश विदेशोंमें डोलना ' अधृति अर्थात् चित्तका डमाडोल होना, अकरुण, अर्थात् निर्दयता, यह सुश्रुतमें अधिक पाठ है ' ये लक्षण रजोगुणयुक्त चित्तके हैं । दंभ नाम बकवृत्ति अर्थात् बगला भगतको कहते हैं ।

तमोगुणयुक्त मनके लक्षण ।

नास्तिक्यंसुविषण्णताऽतिशयिताऽऽलस्यंचदुष्टामतिः
प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणिसदानिद्रालुताऽहर्निशम् ।

अज्ञानंकिलसर्वतोपिसततंक्रोधान्धतामूढता
प्रख्याताहितमोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥

अर्थ-नास्तिकता (यह लोक परलोक, शास्त्र और ईश्वर नहीं है) अत्यंत खेद, अति आलस्य, दुष्टबुद्धि, निन्दित कामोंमें तथा निंदित सुखमें निरंतर प्रीति, दिन-रात निद्रावान्, अज्ञान, निरंतर सर्वत्र क्रोधसें अंध होजाना, मूढता ये सब तमोगुणसहित चित्तके लक्षण हैं ॥ अब पंचमहाभूतोंके गुण कहते हैं ।

आकाशके गुण ।

आन्तरिक्षाःशब्दःशब्देन्द्रियंसर्वच्छिद्रसमूहोविविक्तताच।

अर्थ-आकाशके गुण । शब्द तथा शब्देन्द्रिय, तथा सर्वच्छिद्रसमूहोंकी विविक्तता अर्थात् सर्वशरीरसंबंधी जे पदार्थ शिरा, स्नायु, हड्डी, पेशी, इत्यादिक उनको जातिव्यक्ति करके पृथक् २ करना इतने गुण हैं ।

वायुके गुण ।

वायव्याः स्पर्शःस्पर्शेन्द्रियंसर्वचेष्टासमूहःसर्वशरीरस्पन्दनंलघुताच ।

अर्थ-वायुके गुण । स्पर्श, स्पर्शेन्द्रिय, तथा सर्व चेष्टासमूह, तथा सर्व देहका स्पन्दन होना, तथा लघुता (हलकापना) ये गुण जानने ।

तेज (अग्निके गुण) ।

तैजसाः रूपंरूपेन्द्रियंवर्णः सन्तापोभ्राजिष्णुतापक्तिरमर्षःतैक्ष्णमाशुक्रियाशौर्यविक्रान्तता ।

अर्थ-तेजके गुण कहते हैं । रूप, नेत्रइन्द्री, वर्ण, संताप (गरमी) कांति, पक्ति (उदराग्नि करके अन्नका पाक) अमर्ष (क्रोध) तैक्ष्ण (तीखापना) तथा सर्व कर्मोंमें शीघ्रता और शूरवीरता ।

जलके गुण ।

आप्यारसोरसनेन्द्रियंसर्वद्रवसमूहोगुरुताशैत्यंस्नेहोरेतश्च ।

अर्थ-जलके गुण कहते हैं । रस, जिह्वा इंद्री, सर्वद्रवसमूह, गुरुता (भारीपना) शीतलता, स्नेह और रेत ।

पृथ्वीके गुण ।

पार्थिवास्तुगंधोगन्धेन्द्रियंसर्वमूर्त्तिसमूहोगुरुताचेति ।

अर्थ-पृथ्वीके गुण कहते हैं । गंध, गंधेंद्रिय (नासिका), सर्व मूर्तिसमूह तथा भारीपना और कठिनता ये पृथ्वीके गुण कहे । अब आकाशादि पंचमहाभूतोंको सत्वादिगुणमयत्व दिखाते हैं ।

आकाशके धर्म ।

तत्रसत्ववहुलमाकाशंप्रकाशकत्वात् ।

अर्थ-आकाश प्रकाशक है, इसीसें उसमे सतोगुण बहुत है ।

पवनके धर्म ।

रजोवहुलोवायुश्चलत्वात् ।

अर्थ-वायु चंचल हैं, इसीसें उसमे रजोगुण अधिक है ।

अग्निके धर्म ।

सत्वरजोवहुलोग्निः प्रकाशकत्वाच्चलत्वाच्च ।

अर्थ-तेज प्रकाशक और चंचल है इसीसें उसमें सतोगुण रजोगुण बहुतहै ।

जलके धर्म ।

सत्वतमोवहुलाआपःस्वच्छत्वात्प्रकाशकत्वाद्गुर्वाचरणत्वात् ।

अर्थ-जल स्वच्छ, तथा प्रकाशक, तथा भारी हैं । इसीसें उसमें सतोगुण और तमोगुण बहुत है ।

पृथ्वीके धर्म ।

तमोवहुलापृथ्वीअत्यन्तावरकत्वात्

अर्थ-पृथ्वी अत्यंत भारी है । इसीसें उसमें तमोगुण बहुत है ।

अथ पञ्चीकरणम् ।

अन्योन्यानिप्रविष्टानिसर्वान्येतानिनिर्दिशेत् । स्वे स्वेद्रव्येषुसर्वेषांव्यक्तंलक्षणमिष्यते ॥

अर्थ-आकाशादि पञ्चमहाभूत अन्योन्य मिले हुए हैं उन्होंके लक्षण अपने अपने द्रव्योंमें प्रगट हैं (वेदान्तके मतसें पंचीकरण इस प्रकार है जैसें मानो कि, एक पृथ्वी सेरभरकी है । उसके भाव २ सेरके दो विभाग कीने, उनमेंसें आध सेरके १ टुकडेको तो पृथक् धरा, और दूसरे आध सेरके टुकडेके आध आध पाके ४ टुकडे करके, अग्नि, जल पवन और आकाश, इन चारोंमें मिलाय दिये

तो देखो पृथ्वीमें आधा तो अपनाही विभाग है और चार विभाग आध २ पावके अग्नि, जल, पवन और आकाशके हैं । इसी रीतेसें अग्निमें आधा अपना हिस्सा है बाकीके जल, पवन, आकाश और पृथ्वीके विभाग हैं, इसी रीतेसें औरभी जल, पवन, आकाशके विभाग करनेसें और उसी रीतिसें आपसमें मिलनेसें पंचीकरण कहाते हैं ।)

कारणगुणकीकार्यमेंव्याप्तिकहतेहैं ।

तत्रशब्दगुणमाकाशंमारुतेप्रविष्टंशब्दस्पर्शगुणत्वंमारुतस्य ।

अर्थ–वैद्यकका मत कहते हैं । तहां शब्दगुण आकाश, पवनमें प्रवेश हुआ, इसीसें वायुमें शब्द गुण आकाशका है । तथा स्वनिष्ठ स्पर्श ऐसें दो गुण हैं । तथा आकाश पवन ये दोनों अग्निमें प्रवेश हुए, इसीसें शब्द, स्पर्श और तेजका गुण रूप, ये तीन गुण अग्निमें हैं । आकाश, वायु, तेज, ये जलमें प्रवेश हुए, इसीसें शब्द, स्पर्श, रूप तथा स्वनिष्ठ रस, ऐसे चार गुण जलमें हैं । तथा आकाश, वायु, तेज, जल, ये पृथ्वीमें प्रवेश हुए उससें पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा स्वनिष्ठ गुण गंध ऐसें पांच गुण हैं ।

एवंव्योमानिलानलजलोर्वीणांपरस्परप्रवेशकत्वानुप्रवेश
कत्वेतावत्स्थितानामन्योन्यानुप्रवेशकत्वमुक्तम् ।

अर्थ–इस प्रकार आकाशादि पंचमहाभूत परस्पर आपसमें प्रविष्ट अनुप्रविष्ट होकर रहते हैं उन्को अन्योन्यानुप्रविष्टत्व कहा है । अन्य आचार्य (अन्योन्यानुप्रविष्टानि) इस पदका औरही प्रकारसे व्याख्यान करते हैं ।

तत्राकाशेपिभूरेणुरूपेणावस्थितासूक्ष्मरूपेण
तोयेतेजोनुगतस्यमारुतस्यसंचरणादाकाशेपव
नदहनतोयान्यपिबोद्धव्यानि ।

अर्थ–तहां आकाशमें, पृथ्वी अणुरूप करके रहती है । और पवन सूक्ष्मरूप करके रहती है । जल और तेज इन्में संचार करते हैं । इसीसें आकाशमें पवन, तेज, जल और पृथ्वीभी रहती है ऐसा जानना ।

तथावायावप्याकाशंव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ–उसी प्रकार व्यापक होनेसें पवन आकशमें स्थिति है ।

इस विषयमें प्रमाण ।

अनुष्णशीतस्पर्शोऽयंद्रव्यज्ञैर्वायुरिष्यते ।
दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥

अर्थ-न गरम और न शीतल ऐसा जिस्का स्पर्श, उसको नव द्रव्यके जाननेवाले पवन कहते हैं परंतु वह पवन, तेजयुक्त होनेसें गरमी करती है। अर्थात् गरम मालूम होती है। और सोम (चन्द्र) के संबन्धसें शीतलता करती है। अर्थात् सूर्यके सम्बन्धसें गरमी करे है और चंद्रके संबंधसें शीतलता करे है। अथवा सोम (जलसंयुक्त होनेसें) सरदी करे है। इससें यह सिद्ध हुआ की। पवन, जल और तेज मिली हुई है। तथा पवनमें पृथ्वी परमाणुरूपसें रहती है। उसी प्रकार व्यापक होनेसें, अग्निमें आकाश भी रहता है। और प्रेरणात्मक होनेसें उस अग्निमें पवन भी रहता है। तथा अग्निमें जल भी अनुमान होता है। इस्का कारण यहहै, कार्य और कारणका ऐक्य है। अर्थात् जल कारण और अग्नि कार्यरूप है। जलसें अग्नि प्रगट होती है, ऐसें अनेक प्रमाण हैं। दूसरे समुद्रमें वाड़वाग्नि रहती है ऐसें लोकप्रसिद्ध भी है।

भूमिरपिभौमादिरूपेणतेजसिव्यवस्थिता ।

अर्थ-पृथ्वी भी भौमादिरूप करके तेजमें रहती है।

अथ कार्यमें कारणकी व्याप्ति ।

अथतोयद्रव्येप्याकाशंवाव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ-व्यापक होनेसें जलमें आकाश भी रहता है तथा पवन तरंग बबूला आदिका कारण है इसीसें जलमें रहती है। अग्नि भी जलसें उत्पन्न है इसीसें उसमें रहती है।

इस्में प्रमाण ।

अद्भ्योग्निर्ब्रह्मनःक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ।
एवंसर्वत्रगंतेजःस्वासुयोनिषुशाम्यति ॥

अर्थ जलसें अग्नि, ब्रह्मसे क्षत्र, पत्थरसें लोह, उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सर्वत्र रहनेवाले तेज, अपने २ कारणमें शांत होते हैं।

पृथ्वी जलमेंकैसेंरहतीहै ।

भूमिरपितोयद्रव्येऽणुरूपेणव्यवस्थिता

अर्थ-पृथ्वी जलमें परमाणुरूपसें रहती है।

तथापृथिव्यामपिआकाशपवनदहनेतायान्येवंभू मेःप्रविभागीयेपञ्चविधायाभूमेःप्रोक्तत्वात् ।

अर्थ-पृथ्वीमें भी आकाश, पवन, अग्नि, और जल रहते हैं । इसमें प्रमाण है कि, जिस स्थलमें पृथ्वीके विभाग कहे हैं, उस जगे पांच प्रकारकी भूमि कही है । इस प्रकार पंचमहाभूतोंको अन्योन्यानुप्रविष्टत्व कहा है । इसीको वेदांतवादी पंचीकरण कहते हैं । (स्वस्वद्रव्येषु सर्वेषामिति) अर्थात् अपनी २ द्रव्यमें आकाशादिकोंके प्रगट लक्षण हैं । जैसें आकाश द्रव्यमें आकाशलक्षण शब्द प्रगटहै । उसी प्रकार सर्वत्र जानना सबका उपसंहार ।

अष्टौप्रकृतयःप्रोक्ताविकाराःषोडशैवतु । क्षेत्रज्ञश्चसमासेनस्वतन्त्रपरतन्त्रतइति ।

अर्थ-अव्यक्त, महान्, पंचतन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृति कही हैं । तथा कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग, और मन, ये ग्यारे इन्द्री । तथा आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी, ये पंचमहाभूत, ये सोलह विकार कहे । स्थूल, सूक्ष्म, शरीरको जो जाने उसको क्षेत्रज्ञ और उसी क्षेत्रज्ञको पुरुष कहते हैं । इस प्रकार पच्चीस तत्वका निरूपण [स्वतंत्र] कहिये शल्यतन्त्रसें और [परतंत्र] कहिये शालाक्यतंत्रसें अथवा परतंत्र कहिये सांख्यशास्त्रमें करा है ।

शारीरेनिबन्धसंग्रहस्य भाषायां सर्वभूतचिंता शारीराध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे सौश्रुतशारीरे पंचमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

चिकित्सामें पुरुषको मुख्यता है, वह पुरुष शुक्रशोणितके संयोगसें प्रगट होता है, यह प्रथम अध्यायमें कहि आये हैं । परंतु इस जगे शुद्ध शुक्रशोणित (रुधिर) सें गर्भोत्पत्ति होती है इससें शुक्रशोणितकी शुद्धीका प्रतिपादन करते हैं ।

अथातः शुक्रशोणितशुद्धिशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-पच्चीस तत्व निरूपणके अनंतर, शुक्रशोणित शुद्धीशारीरको कहते हैं ।

शुक्रशोणित इन्होंमें शोणितशब्द स्त्रियोंके आर्त्तव संज्ञक रुधिरका बोधक जानना। शुद्धि कहिये दुष्ट वात पित्त कफादिकोंका मिलाप न होना, वह शुद्धि वातादिकों से दुष्ट हुआ जो शुक्र उसीकी जानना ।

दुष्टशुक्रके लक्षण ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रन्थिपूतिपूयक्षीणरेतसःप्रजोत्पादनेनसमर्थाः ॥

अर्थ–वात, पित्त, कफ, रुधिर इनसे दूषित वीर्य जिस्का, तथा कुणप (मुर्दाकीसी) गंधि, बहुत तथा गांठदार, दुर्गंधवान्, राधके सदृश, अर्थात् दुर्गंधयुक्त राधके समान, तथा क्षीणवीर्य ऐसे पुरुष संतान प्रगट नहीं कर सक्ते । तहां कहते हैं कि, यह जो लिखा है कि दुष्टवीर्य वाले, संतान नहीं कर सक्ते सो नहीं है, किंतु शुद्ध संतानोत्पत्ति नहीं कर सक्ते, ऐसा जानना क्योंकि रोगोसे जो अशुद्ध तथा वातादिसे दूषित शुक्रवालोंकेभी जन्माध, बहरे, गूंगे, लंगड़े लूले, आदि पुत्र होते हैं ।

वातादिसेंदुष्टशुक्रकेलक्षण ।

तत्रवातवर्णवेदनंवातेन, पित्तवर्णवेदनंपित्तेन, श्लेष्मवर्णवेदनंश्लेष्मणा, शोणितवर्णापित्तवेदनंरक्तेन, कुणपगंध्यनल्पञ्चरक्तेन, ग्रंथिभूतंश्लेष्मवाताभ्यां, पूतिपूयानिभंपित्तश्लेष्मभ्यां, क्षीणशुक्रंप्रागुक्तं, पित्तमारुताभ्यांमूत्रपुरीपगंधिःसर्ववर्णवेदनंसन्निपातेन ।

अर्थ–दुष्ट वातादि दोष इन्होंमें, वादी से दुष्टशुक्र वातके वर्ण काला लाल आदि रंग, और तोदादि पीडासहित होता है । यद्यपि वातका कोई वर्ण नहीं है, तौ भी वातसे दूषित मनुष्यमें कृष्ण लाल कृष्ण अरुणादि वर्ण भासते है, वे वायुके वर्ण जानने ।

शिष्य एक वातसे अनेक पीड़ा तोदभेदादिक कैसे होती है ?

गुरु–इस्का यह कारण है कि "बहुकारणप्रकोपस्य" अर्थात् वायुकोप होनेके अनेक कारण है । इसीसे अनेक प्रकारके विकार होते है । गंध पवनकी नहीं है, तथा पित्त करके दूषित हुए शुक्रमें गरमी, दाह और पीत नील वर्ण तथा मुर्देकीसी तथा दुर्गंधयुक्त राधके सदृश होता है । और कफसे दूषित शुक्रका कफकार्ण, और कफके विकारयुक्त होता है । तथा रुधिरसे दूषित शुक्र लाल रंग,

और पित्तविकारोंसें शुक होता है । तथा रुधिरसें दूषित शुक्रमें मुर्देकीसी गंध, और वहुत होता है। (यद्यपि रुधिर औरोंको दूषित नहीं कर सक्ता, क्यों कि रुधिरहीको वात पित्त और कफ ये तीनों दोष दूषित करते हैं। परंतु इस जगे रुधिरसें दूषित शुक्रका ऐसे व्यवहार होता है । जैसें घृत, तैलसें दुग्ध हुआ, तात्पर्य यह है कि जैसें घृत तैल आदि अग्निसें तते होकर दूसरे मनुष्यको पजारतेहैं । इसी प्रकार रुधिर, वातादिकों से दूषित होकर शुक्रको दूषित करता है) कफ और वादीसें दूषित शुक्र गांठवाला होता है । तथा पित्त कफसें दूषित शुक्र दुर्गंधयुक्त राधके समान होता है।तथा पित्त वायु सें दूषित कफ क्षीण होता है।इस क्षीणशुक्रके लक्षण प्रथम सूत्र स्थानमें दोष धातु मल क्षय वृद्धि विज्ञानीयाध्यायमें कह आयेहैं। सन्निपातसें दूषित शुक्र मूत्र विष्ठाकीसी दुर्गंधवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व दोषोंके विकारयुक्त होता है।

दुष्टशुक्रमेंसाध्यासाध्य।

तेषुकुणपग्रन्थिपूयक्षीणरेतसःकृच्छ्रसाध्याः मूत्रपुरीषरेतसोऽसाध्याः।

अर्थ-पूर्वोक्त दूषित शुक्रोंमें कुणप, ग्रंथी, पूय, और क्षीण, ये चार प्रकारके शुक्र कृच्छ्रसाध्य। और मूत्र पुरीष गंधवाले शुक्र असाध्य । और बाकीके साध्य हैं।

आर्त्तवके दोष।

आर्त्तवमपित्रिभिर्दोषैःशोणितश्चतुर्थैःपृथग्द्वंद्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजंभवति।

अर्थ-आर्तवभी, वात पित्त कफ दोषोंसें, और रुधिरसे, तथा द्वंद्वज दोषोंसें, तथा समस्त दोषोंके मिलनेसे, दूषित हुआ गर्भ धारण करनेके योग्य नहीं रहता है।

आर्त्तवकी परीक्षा।

तदपिदोषवर्णवेदनाभिर्ज्ञेयम्।

अर्थ-दूषित आर्तवके लक्षण पूर्वोक्त वातादिकोंके वर्ण और विकार करके जानने, अर्थात् जो शुक्रके वर्णभेद कहे हैं वही आर्तवकेभी जानने।

आर्तवकेसाध्यासाध्यलक्षण।

तेषुकुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यंसाध्यम न्यच्चेति । आर्त्तवदोषायाप्यानभवन्ति ॥

अर्थ–आर्तव दोषोंमें कुणपगंधि आर्त्तव, ग्रंथि आर्त्तव, दुर्गंधयुक्त आर्त्तव, राधके सदृश आर्त्तव, क्षीण आर्त्तव, मूत्र और पुरीष गंध वालें आर्त्तव, ये असाध्य हैं । और बाकीके साध्य जानने । आर्त्तव दोष व्याधिके स्वभावसें याप्य नहीं होते, अब आगे शुक्रदोषकी चिकित्सा कहते हैं ।

शुक्र दोष चिकित्सा ।

तेष्वाद्यान्शुक्रदोषांस्त्रीन्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् । क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथाचोत्तरबास्तिभिः

अर्थ–तिन शुक्र दोषोंमें, पहले कुणपगंधादिक तीन दोष, घृतादि स्नेह पान, पसीने, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, तथा उत्तरबस्ती करकें दूर करे । (निरूहादिबस्ति कहिये मळ मूत्रादि द्वारोंमें होकर चिकनाई मिली कषायादिकोंकी पिचकारी छुटानेके प्रयोग) ये सब यथा यथा प्रकर्णमें वर्णन करे जावेंगे। पुनः उत्तरबस्ति कहनेसें विशेष करकें उत्तरबस्तिको सर्वउपचारोंमें श्रेष्ठता दिखाई है ।

" कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टेस्वौषधम् ।

अर्थ–वातादि दूषित शुक्रमें वातादिहरण कर्त्ता औषध करनी चाहिये. तहां वातकुपितमें वातहरण कर्त्ता चिकनाई घृतादि गरम औषध, खट्टे, नोंनके पदार्थ आदि, पित्त कुपितमें, मीठे, शीतल, कसेले, आदि पदार्थ, कफ कुपितमें कडुए, रूखे, कसेले पदार्थ देने चाहिये ।

विशेष करके वातज शुक्र दोषमें, यव, थूहर, सेंधानोंन, त्रिफला, और खटाई, डालके घृतमें सिद्ध करे इसमें जवाखार मिलाके पीना चाहिये । तथा बेलगिरी, विदारीकंद, करके सिद्ध घृतमें दूध मिलाय कें निरूहणबस्ती देवे । तथा दूध, कुलीरके रस करके सिद्ध कराहुआ तेलसें अनुवासन और उत्तरबस्ति करनी चाहिये ।

पित्त दूषित शुक्रमें, तालमखाने, गोखरू, और गिलोय, इन्के काढेसें सिद्ध और मूर्वा, मुलेटी डाला हुआ घृतको पीवे । तथा निसोतका चूर्ण मिला घृतसें जुलाब देना, छाछ, और श्रीपर्णीके रससें सिद्ध घृतमें दूध मिलाय निरूहबस्ती, मुलेटी, काकमुद्गा करके सिद्ध तेळ करके अनुवासन और उत्तरबस्ति कर्म करने चाहिये ।

कफ दूषित शुक्रमें, पखानभेद, दुपतिया और आमले इन्के काढे करके सिद्ध, पीपर और मुलहटीका चूर्ण, मिला हुआ घृतका पान । मैनफलके क्वाथ करके वमन कराना, दंती और वायविडंगके चूर्णको तैलमें मिलायकर पीने करके जुल्लाव देना । अमलतास और मैनफलके काढेसे निरूह बस्ती, मुलहटी, पीपल करके सिद्ध करे हुए तैलसे अनुवासन, और उत्तरवस्ती लेनी चाहिये ।

कुणपरेतवालेपुरुषकीचिकित्सा ।

पाययेत्तंनरंसर्पिर्भिपक्कुणपरेतसि ।
धातकीपुष्पखदिरोदाडिमार्ज्जुनसाधितम् ॥
पाययेदथवासर्पिः शालसारादिसाधितम् ।

अर्थ–जिस पुरुषके वीर्यमें मुर्दे कीसी दुर्गंध आवे, उसको वैद्य धायके फूल, खैरसार, अनारकी छाल और कोहकी छालका काढा अथवा कल्क करके सिद्ध करा गौका घृत पिवावे । अथवा रालका कल्क काढा आदि करके उसमें घृतको सिद्ध कर पिवाना चाहिये ।

ग्रंथिवान्रेतकीचिकित्सा ।

ग्रन्थिभूतेशठीसिद्धं पालाशेवापिभस्मनि ॥

अर्थ–जिस्का वीर्य गांठसदृश होवे, उसको कचूरके कल्क अथवा क्वाथ करके सिद्ध कराहुआ घृत पिवावे । अथवा ढाकके खार करके सिद्ध घृतको पिवावे । तहाँ प्रमाण कहते हैं, ढाककी भस्म १ आढक, (२५६ तोले) जल ६ आढकमें ओटावे, जब चतुर्थांश रहे, तब उस्को उतारके कपडेमें छान लेवे पीछे गौघृत १ प्रस्थ उसमे मिलाय, चूल्हे पर चढावे जब सब जल जरजाय घृत मात्र शेष रहे तब उतार लेवे, इस प्रकार घृत सिद्ध सर्वत्र करना चाहिये ।

पूयरेतकीचिकित्सा ।

परूपकवटादिभ्यांपूयरेतस्येचसाधितम् ।

अर्थ–परूपकादि "परूपकवराद्राक्षा" तथा न्यग्रोधादिगण "न्यग्रोधपिप्पलेति" ये प्रथम सूत्र स्थानमें कहे आए हैं, इन औषधोंके कल्क, अथवा काढेमें घृत सिद्ध करके राधके समान वीर्यवाले पुरुषको पीना चाहिये ।

क्षीणरेतउपचार ।

प्रागुक्तंवक्ष्यतेयच्चतत्कार्यंक्षीणरेतसि ।

अर्थ-जिस्का वीर्य क्षीण हो गया हो, उस पुरुषको पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धन द्रव्य, तथा आगे वाजीकरणाधिकारमें क्षीण वीर्यवालोंको जो औषध कहेंगे, वो देनी चाहिये ।

मलगंधिशुक्रकाउपाय ।

विट्प्रभेतुपिबेत्सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ।

अर्थ-जिस पुरुषका वीर्य मल मूत्रकी गंधसमान हो गया हो, उस पुरुषको चित्रक, उसीर, और हींग, इन्का कल्क अथवा काढा कर उस्सें गौका घृत सिद्ध कर पीवे । यद्यपि मल मूत्र गंधवान् शुक्र रोग असाध्यहै तथापि विष्ठादि गंध दूर करनेको यह उपचार करे । सर्वथा यह रोग नहीं जाता, परंतु किसी आचार्यका यह मत है कि मल गंधवान् शुक्र साध्य हैं, इस्से इस जगे मल शब्दसे विष्ठाका ग्रहण है, मूत्रका नहीं है । अर्थात् मल गंधवान् शुक्र अच्छा होसक्ता है परंतु मूत्र गंधवान् शुक्र तो सर्वथा असाध्य है । इसीसें ग्रंथ कर्त्ताने इस्का उपायभी नहीं कहा । मल गंधवान् शुक्र पर वैद्य संग्रहवाला कुछ विशेष लिखे है*

शुक्रदोषमेंसामान्यउपचार ।

स्निग्धंवान्तंविरिक्तञ्चनिरूहमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्त्तंसम्यगुत्तरबस्तिना ।

अर्थ-जिस पुरुषका वीर्य कुणप (मुर्दे) कीसी दुर्गंधयुक्त हो जावे उस पुरुषको स्नेह, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, और उत्तरबस्ति इत्यादि उपचारको करना चाहिये ।

शुद्धशुक्रके लक्षण ।

स्फटिकाभंद्रवंस्निग्धं, मधुरंमधुगंधिच शुक्रमिच्छन्ति ।

अर्थ-जो शुक्र स्फटिकसदृश निर्दोष हो कर कुछ पतला तथा स्निग्ध, मधुर, तथा जिस्में मद्यकीसी गंध आती होवे, वह शुक्र गर्भधारण विषयमें उत्तम जानना । "केचित्तुतैलक्षौद्रनिभंतथा" कोई आचार्य कहता है कि तैल तथा छोटी मक्खीके सहतसदृश जो शुक्र है वह गर्भ धारणके योग्य है ।

तथाचवाग्भटे ।

शुक्रंशुक्लंगुरुस्निग्धं मधुरंबहुलंबहु ॥ घृतमाक्षिकतैलाभंसद्गर्भायेति

---

*हिंगुशीरचित्रकप्रियंगु समंगामृणालसिद्धं त्वगेलाचोचचूर्णप्रतिवापघृतंपाययेदिति ।

अर्थ--जो शुक्र सपेद, भारी, चिकना, मीठा, बहुत, तथा घृत, सहत और तेलकीसी कांतिवाला उत्तम गर्भके अर्थ होता है। वह दूधमें जैसे घृत रहता है, ईखमें जैसें रस रहता है, इसी प्रकार शुक्र, देहमें शुक्रधरा कलाका आश्रय करके सर्वांगमें व्याप्त होकर स्थित है। वह मज्जा, मुष्कस्तनोंमें हर्षके होनेसें, संघट्टन करके हृदयमें आवेश होनेसें, पिंडीभूत होकर अंगसें अंगमें जाता है तब गर्भ होता है, इस जगे घृतके तैल, सहतके सदृश कहनेका औरभी प्रयोजन है अर्थात् जो शुक्र घृतके समान होता है उससें जो गर्भ रहे वह गौरवर्ण होता है। सहतके वर्ण शुक्रसें गर्भका रंग स्याम अर्थात् कुछ ललोंही लिये स्याम होता है और तेलके समान जो शुक्र होता है उस्से जो गर्भ रहे वह काले रंगका होता है। और मिश्रितवर्णसें गर्भकेभी मिश्रित वर्ण होते हैं।

आर्त्तवदोषके सामान्य उपचार।

विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्य्यादार्त्तवसिद्धये।
स्त्रीणांस्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु।
कुर्य्यात्कल्कान्पिचूंश्चापिपथ्यान्याचमनानिच।

अर्थ-स्त्रियोंके वात, पित्त, कफ और रुधिर इन चार आर्तवपीडाओंके दूर करनेको स्नेह, वमन, विरेचनादि, उत्तरबस्तीपर्यंत उपचार वातादि रोगोंके तारतम्यके सदृश करे। तथा वातादि दोष हरण कर्ता द्रव्योंके कल्क, काढेसें, योनिका प्रक्षालन करना लेप, तथा पिचू कर्म करे (पिचु कहिये तेल, कल्क, काढा आदि कर कपडा भिजो उस्का फाया धरनेका प्रकार) यह प्रकार नेत्र, तलुआ, योनि, मुख इत्यादिक ठिकाने करते हैं, सो आगे लिखेंगे तथा वातादि हारक काढा, घृतादि स्नेह करके निरूहवस्ती, अनुवासनवस्ती प्रयोग करने चाहिये। तथा उसी प्रकार सर्व प्रकारोंमें उत्तरबस्ति प्रयोग करने चाहिये। गयी आचार्य (चतसृषु) इस पदमें चतुर्थशोणित प्रकृतिभूत जो बस्तगंधी उस्को शोणितार्त्तवार्ति मानता है। क्योंकि यह बस्तगंधी शोणितार्ति मात्र साध्य है, कुणपगंधि आर्त्तव साध्य नही है, इसीसे वातादि दोषहरण कर्त्ता द्रव्य संबंधी कल्कादिकयोनिदोष प्रकरणोक्त देने चाहिये।

आर्त्तवदोषमें सामान्यउपचार।

ग्रन्थिभूतेपिवेत्पाठां त्र्यूपणंवृक्षकानिच। दुर्गन्धेपूयसं
काशे मज्जतुल्येतथार्त्तवे॥ पिवेद्भद्रश्रियंक्वाथं चन्दन

क्काथमेवच । शुक्रदोषहराणाञ्च यथास्वमवचारणम् ॥ यो गानांशुद्धिकरणं शेषास्वमप्यार्त्तवार्त्तिषु ।

अर्थ–जिस स्त्रीका आर्त्तव गांठदार हो गया हो, वह पाढ, सोंठ, मिरच, पींपल और कूडाकी छाल, इन औषधोंका काढा करके पीवे । और मूत्रपुरीषगंधि, तथा दुर्गंधियुक्त, राधके समान, कफ पित्त करके दुष्ट तथा मज्जाके सदृश, अर्थात् त्रिदोषसें दूषित, ऐसा आर्त्तव होनेसें सपेद चंदन तथा लाल चंदनका, काढा करके पीवे । (गयी आचार्य) कहता है कि, सपेद चंदन, और लाल चंदनके कहनेसें इस जगह गोरोचन लेना चाहिये, क्योंकि लाल चंदनमें दुर्गंध दूर करनेकी शक्ति नहीं है । इसीसें गोरोचन लेवे, तथा दुर्गंध कहिये कुणपगंधि, ऐसा व्याख्यान करता है । यद्यपि कुणपगन्ध्यादि पांच आर्त्तव असाध्य हैं, तथापि दुर्गंधनाशनार्थ चिकित्सा कही है । और जो वातादि संबंधी आर्त्तव दोष हैं उन्में पूर्वोक्त शुक्र हरण कर्त्ता उपचार करने चाहिये । जैसें वातज पुष्प दोषमें, भारंगी, देवदारु, सिद्धघृतपान । अथवा कंभारी, और इन्द्रायणसें सिद्ध घृत पीवे, अथवा मुलहटी, पिठवणका कल्क दूध, घृत, सहत, फूल प्रियंगू और तिलकल्कको योनिमें धारण करे अथवा शरल और मुद्गपर्णीके काढेसें भगका प्रक्षालन करे ।

पित्तके आर्त्तव दोषमें, कांकोली, क्षीरकांकोली, विदारीकी जडका क्काथ, अथवा उत्पल (नीलाकमल) और पद्माखका क्काथ अथवा मुलहटीके फूल, कंभारीके फलका क्काथमें मिश्री डालके पीवे।अथवा सपेद चन्दन का क्काथ करके उस्में सहत डालके पीवे तो पित्त आर्त्तव दूर होवे । इत्यादि आयुर्वेद संग्रहमें औषध लीखीहै।

सर्वआर्त्तवदोषोंकीपथ्यकहतेहैं ।

अन्नंशालियवंमद्यं हितंमांसंचपिच्छलम् ।

अर्थ–शाली (चामर) और यव ये अन्न, तथा मद्य, मांस और पिच्छल पदार्थ ये सब आर्त्तवदोषमें पथ्य हैं ।

शुद्धआर्त्तवकेलक्षण ।

शशास्रप्रतिमंयच्चयद्वालाक्षारसोपमम् ।
तदार्त्तवंप्रशंसंतियद्वासोनविरञ्जयेत् ॥

अर्थ–स्त्रियोंके महिनेकी महिने जो भगद्वारा तीन दिन पर्यंत रुधिर निकले हैं, उस्को आर्त्तव कहते हैं । तहां शुद्ध आर्त्तवके लक्षण कहते हैं । जो आर्त्तव, शशे-

के रुधिरके समान लाल होवे, अथवा लाखके रंगसदृश लाल होवे, और कपडा-पर गिरनेसैं दाग न पडे, वस्त्र धोनेसै स्वच्छ हो जावे, उस आर्त्तवको निर्दोष सद्गर्भके योग्य जानना।

रक्तप्रदरकेलक्षण।

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि।
असृग्दरं विजानीयादतोन्यद्रक्तदर्शनात्॥

अर्थ-वही आर्त्तव अति प्रसंग करके निकलनेसें अर्थात् विना ऋतुकालके बहुत निकलनेसें असृग्दर जानना। परंतु पूर्व कहि आये जो शुद्ध आर्त्तवके लक्षण [शशासृक्प्रतिमं] इत्यादि उनके विना अन्य लक्षण होवे। जैसें झागदार, शीघ्रगामी, खुजली, इत्यादि लक्षण होनेसें असृग्दर जानना।

असृग्दरकेदोषसंबंधकृततथाव्याधिस्वभावकृतसामान्यलक्षणकहतेहैं.

असृग्दरो भवेत्सर्वः साङ्गमर्दः सवेदनः।
तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा॥
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः।

अर्थ-सर्व प्रकारके असृग्दरोंमें, अंगोंका टूटना, शूलका होना, ये लक्षण होते हैं। और जब इस रोगकी अत्यंत वृद्धि होती है, अर्थात् आर्त्तव अत्यन्तस्र-वनेसें दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, (मद्यपान अथवा धतूरेके बीजखानेके समान अव-स्था) प्यास, तथा देहमें दाह, प्रलाप (बकाद) देहका पीलापना, तन्द्रा और वात के रोग आक्षेपक, इत्यादि उपद्रव होते हैं।

रक्तप्रदरमेंअवस्थापरत्वउपचार।

तरुण्याहितसेविन्यास्तदल्पोपद्रवं भिषक्।
रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत्॥

अर्थ-जो स्त्री तरुण (सोलह वर्षकी) हो तथा हितपदार्थका सेवन करे, उसके असृग्दर अल्प उपद्रवयुक्त होनेसे रक्त-पित्त संबंधी उपचार करके वैद्य जीते।

आर्त्तवकीअप्रवृत्तिलक्षणविकृति।

दोषैरावृत्तमार्गत्वादार्त्तवं नश्यति स्त्रियाः।

अर्थ-मूलमें [दोषैः] के लिखनेसें दोषशब्द करके इस जगे कफ और वदी, अथवा बादी, कफ मिले हुएनका ग्रहण हैं। पित्तका ग्रहण नहीं है, कारण

यह है कि, पित्तसें तो आर्त्तवकी अत्यंत प्रवृत्ति होती है, इसीसें इन वात कफ दोषोंसें आर्त्तवका मार्ग रुकनेसें स्त्रियोंका आर्त्तव नष्ट होता है । अर्थात् सर्वथा क्षय नहीं होता है किंतु निकलता हुआ नहीं दीखे ।

चिकित्सा ।

तत्रमत्स्यकुलत्थाम्लतिलमाषासुराहिता ।
पानेमूत्रमुदश्विच्च दधिसूक्तञ्चभोजनम् ॥

अर्थ–जिस स्त्रीका आर्त्तव अर्थात् जो स्त्री रजोधर्म होनेसें बंद हो जावे, उस्को मछली, कुलथी, अम्ल (कांजी) तिल, उड़द और मद्य पीना हितकारी होता है । तथा गोमूत्रका पीना, उदश्वित् कहिये आधापानी, और आधादहीको मथ कर करा हुआ मट्ठेका पीना, तथा दही, और सूक्त कहिये चूकाका साग (जो पालकके समान होता है) ये सर्वपदार्थ भोजन करने चाहिये ।

क्षीणंप्रागीरितंरक्तं सलक्षणचिकित्सितम् ॥
तथाप्यत्रविधातव्यं विधानंनष्टरक्तवत् ॥

अर्थ–यद्यपि क्षीण रक्तके लक्षण, और चिकित्सा प्रथम दोष धातु मल क्षय वृद्धि विज्ञानीयाध्यायमें कहि आये हैं । तथापि इस जगे उसका ग्रहण करा है, इसीसें नष्टरक्तमें जो उपचार (मत्स्यकुलित्थादिक) कहे हैं, सो इस जगे करने चाहिये । अब प्रकरण प्रयोजनका, उपसंहार कहते हैं । " एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्त्तवाच " इस प्रकार अदुष्टवीर्य पुरुष, और शुद्ध आर्त्तववाली स्त्री होती है ।

ऋतुकालमेंसुपुत्रोत्पादकस्त्रियोंकेआचार ।

ऋतौप्रथमदिवसप्रभृतिब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाऽश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदन प्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान्परिहरेत् ।

अर्थ–स्त्रीको रजोदर्शन होनेसे प्रथम दिनसें लेकर तीन रात्रि पर्यंत ब्रह्मचर्यमें रहना, तथा तीन दिन तक निद्रा, कज्जल लगाना, रुदन, स्नान, चंदन आदि अनुलेपन, उपटना, नखोंका काटना अथवा कुंतरना, बहुत डोलना फिरना, बहुत हँसना, बहुतसा बोलना, तथा अति शब्दका सुनना, लेखन, पंखे आदिसें अत्यंत हवा करना, इत्यादिक कर्म वर्जित हैं इन्होंका कारण भावप्रकाशमें कहते हैं ।

नियम नपालनेके दोष ।

अज्ञानाद्वाप्रमादाद्वा लोभाद्वादैवतश्चवा । साचेत्कुर्यान्निषि

द्धानि गर्भोदोषांस्तदाप्नुयात् ॥ एतस्यारोदनाद्गर्भोभवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदेनकुनखी कुष्ठीत्वभ्यङ्गतोभवेत् ॥ अनुलेपात्तथास्नाना दुःखशीलोऽञ्जनादहक् । स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलःस्यात्प्रधावनात् । अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरःखलुजायते ॥ तालुदन्तोष्ठजिह्वासु श्यावोहसनतो भवेत् । प्रलापीभूरिकथनादुन्मत्तस्तुपरिश्रमात् ॥ स्खलतेभूमिखननादुन्मत्तोवातसेवनात् ।

अर्थ–अज्ञानसें, अथवा प्रमादसें, अथवा लोभसें अथवा दैववशसें, जो रजस्वला स्त्री निषिद्ध कर्म करे, तो उससें गर्भ (बालक) को दोष प्राप्त होते हैं। इस रजस्वला स्त्रीके रुदन करनेसें, खोटे नेत्रवाला बालक होता है नखोंके कतरनेसें, बालक खोटे नखवाला होता है। तेल फुलेल आदिके लगानेसें बालक कुष्ठरोगी होवे। चंदन आदिके लगानेसें, तथा स्नान करनेसें दुःख युक्त आचरणवाला होवे। काजरआदिके लगानेसें, अंधा बालक होवे। दिनमें सोनेसें, अत्यंत निद्रालु होवे। बहुत डोलनेसें, चंचल होवे। बहुत ऊंचे स्वरके सुननेसें, बालक बेहरा होवे। अत्यंत हसनेसें, बालकके तालू, दांत, होंठ और जीभ काली हो बहुत बोलनेसें, बालक बकवादी होवे। अत्यंत परिश्रमके करनेसें बालक उन्मत्त (बावला) होवे। पृथ्वी खोदनेसें, जहां तहां गिरपडे ऐसा होय, और रजस्वला स्त्रीके अत्यंत पवन खानेसें बालक उन्मत्त होता है।

अथमरजोदर्शमेंशुभमासादि।

आद्यंरजःशुभंमाघमार्गराधेषफाल्गुने।
ज्येष्ठश्रावणयोःशुक्के सद्वारेसत्तनौदिवा॥

अर्थ–माघ, मार्गशिर, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, जेठ और सावन इन महिनों तथा शुक्लपक्ष, श्रेष्ठवार, उत्तम लग्न और दिनमें स्त्रीका प्रथम रजोदर्शवती होना शुभ कहा है * विशेष फल ज्योतिषके ग्रन्थोंसें लिखते हैं।

रजोदर्शमेंमासफल।

* चैत्रेस्यात्प्रथमर्तौतुनारीवैधव्यभागिनी। वैशाखेधनपुत्राढ्या ज्येष्ठेरोगान्वितातथा ॥१॥ शुचौमृतप्रजाप्रोक्ता श्रावणेधनधान्यदा। नभस्येदुर्भगा क्लिष्टा आश्विनेचतपस्विनी ॥ २॥ ऊर्जेप्यायुष्मतीनारी मार्गशीर्षेबहुप्रजा। पौषेतुपुंश्चलीनारी माघेपुत्रसुखान्विता। फाल्गुनेश्रीमतीसाध्वी क्रमान्मासफलंस्मृतम् ॥ ३ ॥

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौसिताम्बरे ।
मध्यंचमूलादितिभे पितृमिश्रेपरेष्वसत् ॥

अर्थ-श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और स्वातीनक्षत्र इन नक्षत्रोंमें तथा सफेद वस्त्र पहने हुए, जो स्त्री प्रथम रजोदर्शवती होवे, तो शुभ है। और मूल, पुनर्वसु, मघा, विशाखा, तथा कृत्तिका, इन नक्षत्रोंमें आद्यरजोदर्श मध्यम है । और भरणी, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, तीन्हों पूर्वा, इनमें आद्यरजोदर्श होना अशुभ जानना ।

कृष्णपक्षशुक्लपक्षमेंरजोदर्शनहोनेकाफल ॥

शुक्लपक्षेसुशीलास्यात्कृष्णेसाकुलटाभवेत् । कृष्णस्यदशमीं यावन्मध्यमंफलमादिशेत् ॥४॥

वारपरत्वेनफलम् ॥

आदित्येविधवानारी सोमेचैवमृतप्रजा । भौमेचम्रियतेनारी कन्याप्रसविनीबुधे ॥ ५ ॥
गुरौपुत्रप्रसविनी शुक्रेकन्यातनुप्रसूः । शनौचपुंश्चलीवंशे प्रथमंपुष्पदर्शनात् ॥ ६ ॥

लग्नफलम् ॥

मेषेसाव्यभिचारास्याद् वृषभेपरभोगिनी । मिथुनेधनभोगाढ्या कर्कटेव्यभिचारिणी ॥ ७ ॥
पुत्राढ्यासिंहराशौतु कन्यायांश्रीमतीभवेत् । विचक्षणातुलायाञ्च वृश्चिकेतुपतिव्रता ॥ ८ ॥
दुश्चारिणीधनुःपूर्वे अपरेचपतिव्रता । मकरेमानहीनाच कुंभेनिर्धनबंधुता ॥ ९ ॥ मीनेविलक्षणालग्ने अहसंस्याविवाहवत् ॥

कालपरत्वेनफलम् ॥

प्रातःकालेतुसधना सायाह्नेसर्वभोगिनी । मध्याह्नेचभवेद्वेश्या निशीथेविधवाभवेत् ॥ १० ॥

नक्षत्रफलम् ॥

सुभगाचैवदुःशीला वंध्यापुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ताव्रतघ्नीच परसंतानमोदिनी ॥ ११ ॥
सुपुत्राचैवदुष्पुत्रा पितृवेश्मरतासदा । दीनाप्रज्ञावतीचैव पुत्राढ्याचित्रकारिणी ॥ १२ ॥
साध्वीपतिव्रतानित्यं सुपुत्राकष्टकारिणी । स्वकर्मनिरताहिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता ॥ १३ ॥
नित्यंधनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खार्थाढ्यागुणवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥ १४ ॥

वस्त्रपरत्वेनफलम् ॥

सुभगाश्वेतवस्त्रास्याद् दृढवस्त्रापतिव्रता । क्षौमवस्त्राक्षितीशास्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥
दुर्भगाजीर्णवस्त्रास्याद्रोगिणीरक्तवाससा । नीलांबरधरानारी विधवापुष्पितायदि ॥ मलिनांबरतोनारी दरिद्रास्याद्रजस्वला ॥

बिन्दुफलम् ॥

वस्त्रेस्युर्विंपमास्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यका चेति फलंस्यात्प्रथमार्तवे ॥

निन्द्यरजोदर्शकहतेहैं ।

भद्रानिद्रासंक्रमेदर्शरिक्ता संध्यापष्ठीद्वादशीवैधृतेषु ।
रोगेष्टम्यांचन्द्रसूर्य्योपरागे पातेचाद्यंनोरजोदर्शनंसत् ॥

अर्थ-भद्रामें, निद्रामें, संक्रांतिमें, अमावस में ४-९-१४-६-१२-८ इन तिथियोंमें, संध्यामें, वैधृति योगमें, रोगकी अवस्थामें चंद्र सूर्यके ग्रहणमें, और व्यतीपातमें, प्रथम रजोदर्श अशुभ है। अशुभ रजोदर्शकी शांति धर्मशास्त्रोक्त कर्त्तव्यहै।

रजस्वलाकोनियम।

आर्त्तवस्नानदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी।
शयीतदर्भशय्यायां पश्येदपिपतिंनच ॥
करेशरावेपर्णेवा हविष्यंत्र्यहमाचरेत्।

अर्थ-रजोदर्श स्नानके दिनसे लेकर तीनदिनपर्यंत, स्त्रीको इस प्रकार वर्त्तना चाहिये। हिंसा न करे, ब्रह्मचर्यमें रहे, कुशाकी शय्यापर सोवे, और तीन दिनपर्यंत पतिको भी न देखना चाहिये, हाथोंमें, पात्रमें, अथवा पत्तलमें, हविष्य आहार· अर्थात् घृत, शाल्योदनादि, अथवा क्षीर संस्कृतयवान्नादिकका भोजन करना चाहिये।

तथाचवाग्भटे।

ततःपुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायनीत्र्यहम्।मृजालङ्काररहिता

अन्यच्च।

स्नमार्जनकाग्रक्षणासिशर्पात् हस्तेक्ष्यात्तकुल्यात्ततम्मात्।
तल्पोपभोगेरहासिस्थिताचेत् दृष्टरजोभाग्यवतीतदास्यात् ॥

स्थलभेदेनफलम्।

ग्रामाद्बहिः पराग्रामे वाचेत्स्याद्व्यभिचारिणी। पतिव्रतापातिस्थाने सुशीलागृहमध्यमे ॥ ग्राममध्येचवृद्धिश्च विधवाचादिगम्बरा। उपरागेचदुःशीला आयुष्यजलसन्निधौ। धनमध्येतुकन्याया धनधान्यसमृद्धिदा। प्रथमार्त्तवेस्यादितिशेषः।

अत्राशुभफलापवादमाह।

अशुभमपिसमस्तचार्त्तवसम्भूतम् सुगुरुसितयुक्तेर्वं क्षतेवाथलग्ने। तिमिरमिवकठोरज्योतिरुत्पत्तिकाले क्षयमथसमुपैतिम मुशादीप्सितानि-कठोरज्योतिःसूर्यः।

दर्भसंस्तरशायिनी ॥ क्षैरेयंयावकंस्तोकं कोष्ठशोधनक र्पणम् । पर्णेशरावेहस्तेवा भुञ्जीतब्रह्मचारिणी ॥

अर्थ–स्त्री रजोदर्शके होतेही तीन दिनपर्यंत शुभचिंतवन करनेवाली होवे । तथा स्नानआदि क्रिया, अलंकार (हार, कुंडल, पायजेब, कोधनी, कडे, आदि) का धारण करना, अथवा अलंकारशब्दसें फूलोंके गहने आदिका धारण करना, चंदन, काजर, सुरमा, मिस्सी, आदिका लगाना त्याग देवे । कुशाकी सेजपे सोवे, दूधके और जवके अथवा दूधके अथवा दूधसें सिद्ध करे जवके पदार्थ कोठंको (गर्भाशयको) शुद्ध करनेवाले और तदंगोंके कर्षण करनेवाले पदार्थ, थोडे थोडे पत्तल, शराव, (मिट्टीका पात्र) अथवा हाथोंमें रखकर, भोजन करे, और ब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुनादिक करनाभी तीन दिनपर्यंत त्याग देवे ।

तदुक्तंभरद्वाजसंहितायाम् ।

प्रथमेहनिचाण्डाली द्वितीयेब्रह्मघातिनी ।
तृतीयेरजकीज्ञेया चतुर्थेहनिशुद्ध्यति ॥
पंचमेहनियोग्यास्याद्दैवेपित्र्येचकर्माणि ।

अर्थ–पुरुषोंको जिस प्रकार रजस्वला स्त्रीसंग वर्जित है । वो इस प्रकार कि, प्रथम दिन चांडाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजोदर्शवती स्त्रीकी धोवन संज्ञा है, और चतुर्थ दिन शुद्धि होती है । परंतु देवकार्य और पित्रीश्वरोंके कार्य योग्य पांचवें दिन होती है । इसीसें ४ रात्रि स्त्रीगमन निषेध है ।

इच्छेतांयादृशंपुत्रं तद्रूपचरितांश्चतौ।
चिंतयेतांजनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ॥

अर्थ–स्त्री पुरुष जैसे पुत्रकी कामना करे उनको तद्रूप चरित जनपदोंका करना चाहिये । तथा तदाचारपरिच्छद होना चाहिये । अर्थात् जैसे पुत्र या पुत्रीकी इच्छा होय उस इच्छाके सदृश रूप (वर्ण, प्रमाण, और आकृति आदि,) तथा चरित (श्रद्धा, श्रुत, सत्य, नम्रता, दान, दया, चतुराई, और स्वभावादिक) तथा कुल, देशके अनुसार आचार, और परिच्छद (मनुष्य, गौ, घोडा, धन, धान्य, वस्त्र, भूषण, रत्न, गृह, बाग, वीणा, पणव, गान, शय्या, आदि) का ध्यान कर्त्तव्य है ।

तदुक्तंबृहत्संहितायाम् ।

चित्तेनभावयतिदूरगताऽपियंस्त्रीगर्भंबिभर्त्तिसदृशंपुरुषस्यतस्य।

अर्थ-मैथुनके समय दूरस्थितभी स्त्री, चित्तसें जिस पुरुषका ध्यान करे उसी-के सदृश गर्भधारण कर्त्ती है । उसी प्रकार चरकमें लिखा है " गर्भोपपत्तौतुमनः स्त्रिया यं जंतु व्रजेत्तत्सदृशंप्रसूते " ।

ततःशुद्धस्नातांधौतवाससमलंकृतां
कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनंभर्तारंदर्शयेत् ।

अर्थ-तीन दिन व्यतीत होनेके पश्चात् शुद्ध कहियेसंचित (इकट्ठा) हुआ पुराना रुधिर, उसके निकल जानेसें प्राप्त हुआ है नवीन आर्त्तव जिस्को, इसीसें स्त्री शुद्ध कहाती हैं, जैसे लिखा है " नवेऋतौचसंजाते विगतेजीर्णशोणिते । नारी भवतिसंशुद्धा पुमांसंसृज्यतेतदा ॥ " अर्थात् नवीन आर्त्तव प्राप्त होने सें और जीर्ण संचित रुधिरके निकल जानेसें स्त्री शुद्ध होती है, उस समय पुरुषसें संयोग करने योग्य होती है । ऐसी शुद्ध स्त्री चतुर्थ दिवस, स्नान करके धुले हुए वस्त्रोंको पहन, हरिद्रा, रोरी, केशर, सिंदूर, आदि तथा सर्व भूषणोंको और पुष्पादिनसें शृंगार करके तथा मंगल कराया है (गीतवाद्यादिक) जिसे और स्वस्तिवाचन जिसे ऐसे भर्त्ताको वैद्य उस स्त्रीको प्रथम दिखावे । अर्थात् स्नान करके प्रथम स्त्री-को पतीकाही दर्शन कराना चाहिये ।

प्रमाण।

पूर्वंपश्येदृतुस्नाता यादृशंनरमङ्गना ।
तादृशंजनयेत्पुत्रं भर्तारंदर्शयेत्ततः॥

अर्थ-ऋतुस्नान करके स्त्री प्रथम जैसे पुरुषको देखे वैसेही पुत्रको प्रगट कर-ती है । इसीसें प्रथम भर्त्ताकोही देखे, इस जगे भावमिश्र इस श्लोकके अंतका चरण (ततः पश्येत्प्रियंपतिं) ऐसा लिखकर अर्थ करते हैं कि, प्रथम भर्त्ताको देखे यदि भर्त्ता समीप न होय तो प्रिय कहिये पुत्रादिक उन्कोभी प्रथम देखे, इस जगे स्नानकें कहनेसे चरकोक्त पुष्पस्नानभी करानां चाहिये ।

यथा ।

एताभिश्चैवौषधीभिःपुष्येपुष्येस्नानंसदाचसमालभेत।

अर्थ-इन पूर्वोक्त औषधियोंसें, पुष्पनक्षत्रमें रजोदर्शवतीको सदैव स्नान कर-ना चाहिये ।

तच्चोक्तंवराहमिहिरेण ।

नदिनत्रयंनिषेवेत्स्नानंमाल्यानुलेपनंचस्त्री ॥ स्नायाच्चतुर्थेदिवसेशास्त्रोक्तेनोपदेशेन ॥ १ ॥ पुष्पस्नानौषधयोयःकथितास्ताभिरम्बुमिश्राभिः॥स्नायात्तथात्रमन्त्रःसएवयस्तत्रनिर्दिष्टः॥२

अर्थ-रजस्वला स्त्री ३ दिनपर्यंत स्नान न करे । फूलमाला पहनना और चंदनआदिका लगाना त्याग देवे । चौथे दिन शास्त्रोक्त विधिसें स्नान करे । पुष्पस्नानके प्रकरणमें जो औषधी कही हैं । उनको जलमें मिलायके स्नान करे । और पुष्पस्नानमें जो मंत्र कहा है, वही मंत्र यहांभी पढना चाहिये ।

उक्तऔषधियोंकोकहतेहैं ।

ज्योतिष्मतींत्रायमाणामभयामपराजिताम् । जीवांविश्वेश्वरींपाठां समङ्गांविजयांतथा ॥ १ ॥ सहांचसहदेवींच पूर्णकोशांशतावरीम्।अरिष्टकांशिवांभद्रां तेषुकुम्भेषुविन्यसेत् ॥ २ ॥ ब्राह्मींक्षेमामजांचैव सर्वबीजानिकाञ्चनीम् ॥ मंगलानियथालाभं सर्वौषधिरसांस्तथा ॥ ३ ॥ रत्नानि सर्वगन्धांश्च बिल्वंचसविकंकतम्।प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो हिरण्यमङ्गलानिच ॥ ४ ॥

अर्थ-मालकांगनी, त्रायमाण, हरड, अपराजिता, (शमी) जीवंती, विश्वेश्वरी, पाठ, मजीठ, विजया, मुद्गपर्णी, सहदेई, पूर्णकोशा, शतावर, नीम, आमरे और श्वेतदूर्वा, इन्को स्थापित कुंभोमें (घडो) में डाले, ब्राह्मी, क्षेमा, अजा, सर्वौषधि, हलदी और मंगलकर्त्ता जो जो औषधि मिले सो डाले । रत्न (हीरा, पन्ना, आदि) डाले, (चंदन, केशर, कपूर, खस, आदि) सर्व सुगंधित वस्तु डाले । बेल, विकंकत वृक्षके फल, तथा जिन्के सुंदर नाम (जैसे जया, पुत्रजीवा, अमृतवल्ली, पुनर्नवा आदि) औषधि और सुवर्ण, (गोरोचन, सरसों, दूर्वा, आदि) मंगल वस्तु ये सब उन कलशोंमें डाले । जिनको पुष्पस्नानकी विशेष विधि देखनी हो वे, बृहत्संहिताकी ४८ वीं अध्यायमें देख लेवे । चरकमुनिने जो औषध कही है वो यह है, ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतावर, सपेददूब, हरी दूब, पादल, आमरे, नागबला, धाय्रपुष्पी, (केशर ३ भाग, उशीर १ भाग चंदन २ भाग) और विश्वक्सेनकांता इत्यादि ।

साचेदेवमाशासीत । बृहन्तमवदातं हर्य्यक्षमोजस्विनंशु चिसत्वसंपन्नंपुत्रमिच्छेयमिति । शुद्धस्नानात्प्रभृत्यस्यैनि न्यमवदातयवानांमधुसर्पिभ्यांसंसृज्य श्वेतायागोःसवत्सा याःपयसालोड्यराजतेकांस्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहंसततंप्र यच्छेत् । पानायप्रातश्चशालियवान्नविकारान् दधिमधुस र्पिभिःपयोभिर्वासंसृज्यभुंजीत ।

अर्थ-यदि स्त्री ऐसी इच्छा करे कि, मेरे श्रेष्ठ और उज्ज्वल सिंहके समान तेजस्वी, पवित्र और सत्वसंपन्न ऐसा पुत्र होवे । तो शुद्ध स्नानसे लेकर नित्य इसको शुद्ध जवोंको सहत घृतमें मिलाय बछडावाली श्वेत गौके दूधमें भिजोय, चांदी अथवा कांसेके पात्रमें समयसमयमें सात दिन प्रातःकाल पीनेको देवे । तथा चावल, जो, के पदार्थोंको दही, सहत और घृतके साथ अथवा दूधके साथ भोजन करे ।

तथासायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणाचस्यात् । शश्वत्श्वेतंमहान्तमृषभमाजानेयंहरिचन्दनाङ्कितंपश्येत् । सौम्याभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीतसौम्याकृतिवचनोपचार चेष्टाश्चस्त्रीपुरुषानितरानपिचेन्द्रियार्थानवदातान्पश्येत् । सहचर्य्यश्चैनांप्रियहिताभ्यांसततमुपचरेयुः । तथाभर्त्तानच मिश्रीभावमापद्येयातामित्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्टमे ऽहन्याप्लुत्यसशिरस्काभर्त्रासहाहतानिवस्त्राण्याच्छादयेत् अवदातानिअवदातश्चस्रजोभूषणानिबिभृयात् ॥ 25224

अर्थ-उसी प्रकार सायंकालमें स्वच्छ शैय्यापर सोना, शुभ आसन पर बैठना तथा सुंदर सवारी, वस्त्र, भूषण, आदिका आश्रय लेना चाहिये । और सायंकाल तथा प्रातःकाल निरंतर श्वेतवर्ण और महान् बैलका तथा कुंकुमागर चंदनसे पूजित उत्तम घोडेका दर्शन करे । सौम्य और मनके अनुकूल ऐसी स्त्री इसके समीप रहा करे । तथा सुंदर है स्वरूप, वचन, उपचार, और चेष्टा, जिनकी ऐसे स्त्री पुरुष तथा अन्य (पशुपक्षी आदि) इन्द्रियोंके अर्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आदि उज्ज्वल पदार्थोंको देखे । तथा इसकी सहेली प्यार और हितसे निरंतर इसका उपचार करे । तथा इसके पतिको इससे मिलाप न होने देवे, इस प्रकार सात रात्रि-

पर्यंत रह कर आठवें दिन सशिरस्क स्नान करके पतिके साथ उज्ज्वल वस्त्र, भूषण' फूलोंके हार, आदिको धारण करे ।

ततोविधानंपुत्रीयं उपाध्यायःसमाचरेत् ॥

अर्थ-ऋतु कालके अनन्तर, मङ्गलपूर्वक आगे जो विधि कहते हैं उस्को करे। जैसे कि, अथर्वण वेदका जानने वाला उपाध्याय (पुरोहित) पुत्रके निमित्त विधि-पूर्वक इष्टी करे, विधिपूर्वक कहनेका यह प्रयोजन है कि, जिस प्रकार वेदमें लिखा है उसी प्रकार करे न्यूनाधिक न करे । सो आगे लिखते हैं । यह प्रकरण चरककी ८ वीं अध्यायमें लिखा है ।

अथ पुत्रेष्टिविधिः ॥

तत्राचार्येब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुपहतवस्त्रसंवीतश्चार्षभेचर्मण्युपाविष्टोराजन्यप्रयुक्तोवैयाघ्रे आनडुहेवावैश्यप्रयुक्तोरौरवेबास्तेयेवाचतुरस्रंस्थंडिलंगोमयोदकाभ्यामुपलिप्योल्लिख्य दर्भैरास्तीर्य्य । वेणुपूर्वदक्षिणेनब्रह्माणंव्यवस्थाप्यशुक्लकुसुमगन्धबलिभिरभ्यर्च्याग्निप्रणीय संस्कृत्य पालाशीभिः समिद्भिरग्निमुपसमाधाय मंत्रोदकपूर्णपात्रमग्नेरग्नेस्थापयित्वा पुत्रजन्माशंस्याज्यं जुहुयान्महाव्याहृतिभिर्योपित्पुत्रार्थिनीसहभर्त्रापश्चिमतोग्नेर्द्वित्विजोदक्षिणतः समुपविशेत् । ततोस्याब्राह्मणः प्रजापतिमुद्दिश्य यथाभिलषितसम्पादनाय मनसायोनौकाम्यामिष्टिंनिर्वपेत् " अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशत्विति " ततश्चाज्येनस्थालीपाकमभिनिर्वाप्यनिर्जुहुयात् । यथाम्नायंचोपमन्त्रितमुदकपात्रमस्मैदद्यात् । सर्वानुदकार्यान्कुरुष्वेति । ततः समाप्तेकर्मणिपूर्वंदक्षिणंपादमभिहितंतीव्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत । ततः परिक्रम्यब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वासहभर्त्रा आज्यशेषंमाश्नीयात् । पूर्वंपुमान्जघन्यंस्त्रीनचोच्छिष्टमवशेषयेत् इतिपुत्रीयविधानम् ।

अर्थ-तहां आचार्य रजोदर्शन सें १६ दिन रात्रि ऋतुसंबंधी होते हैं इन्में चार रात्रिको त्याग कर शुभ दिन, घडी, मुहूर्त्त, नक्षत्र, और शुभ वारमें पुत्रेष्टी करावे । पुत्रेष्टी कर्त्ता, प्रातःकाल स्नानादि कर्म करके तथा पत्नीभी नवीन उदक-सें स्नान कर मंगलीक वस्त्र भूषणोंको धारण कर स्वस्तिवाचन अभ्युदयिक कर्म करके, फिर संकल्प करावे " श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रेष्टिंचकरिष्ये " तहां ब्राह्मणके योग्य नवीन वस्त्रसें आच्छादित बैलके चर्मका आसन, राजाके योग्य व्याघ्र अथवा बैलके चर्मका आसन, वैश्यको रुरु बकराके चर्मका आसन है, उसपै स्थिति हो चौकोन वेदीको लीप कुशासें रेखा कर उसपै कुशा बिछावे । पीछे पीले बांसका स्तंबको खडा करे, और वेदीके दक्षिणमें ब्रह्माको स्थापित करे । सपेद फूल, चंदन, बलिदान आदिसें पूजन करे । पीछे वेदीके पंचभूसंस्कार करके, अग्नि स्थापन

करे। ढाककी समिधासें अग्निको प्रज्वलित करे, मंत्रित जलके पूर्णपात्रको अग्निके आगे स्थापन करे, तदनंतर पुत्रजन्मके लिये प्रशंसनीय आज्य (घृत) को (ओं-भूर्भुवःस्वः) इत्यादि महा व्याहृतियोंसे हवन करे, उसी प्रकार स्त्रीभी पुत्रकी इच्छासें पतिके साथ अग्निके पश्चिममें बैठे, और ऋत्विज अग्निके दक्षिणमें बैठे, पीछे उस स्त्रीको ब्राह्मण प्रजापतिके उद्देशसें वांछित कामनाके अर्थ मन करके कुंडमें काम्यइष्टीको इन मंत्रोंसे हवन करावे "अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतु, आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भंदधातुतेस्वाहा ॥ ओंगर्भंधेहिसिनीवालिगर्भंधेहिसरस्वति॥ गर्भंतेअश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजास्वाहा" तदनंतर चरु और घृत मिलायके ब्रह्मा, विष्णु, के नामसे प्रधानाज्यहोम करे । इस प्रकार सात सात आहुती देवे। पीछे सब ब्राह्मण पूर्वोक्त पूर्णपात्रका जल लेके दोनों स्त्री पुरुषोंका "अपनः शोशुचेति" इन मंत्रोंसे मूर्धाभिषेक करे। पीछे अग्निका और सूर्यका उपस्थान करना चाहिये, तदनंतर अपने कुलरीत्यनुसार उदकपात्र इस पुरुषको देवे। "सर्वानुदकार्थान्कुरुष्वेति" इस प्रकार कर्मकी समाप्तिमें प्रथम दक्षिण पैरको धरती हुई तीव्र ज्वालावाली अग्निकी परिक्रमा करे, पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढाय ब्राह्मणोंको भोजनदक्षिणासे प्रसन्न कर, आशीर्वाद लेवे । तदनंतर आज्य और चरुशेषको पतिके साथ प्रथम पुरुष और पीछे स्त्री भोजन करे । उच्छिष्ट बाकी न छोडनी चाहिये। इस प्रकार पुत्रेष्टी त्रिवर्णको करनी चाहिये।

नमस्कारपरायास्तु शूद्रायामंत्रवर्जितम् ।
अवंध्यएवंसंयोगः स्यादपत्यंचकामतः ॥

अर्थ–शूद्रकी स्त्रीको नमस्कार है प्रधान जिस्में ऐसी पूर्वोक्त पुत्रेष्टी मंत्ररहित करानी चाहिये। अर्थात् शूद्रा स्त्रीको पुराण आदिके मंत्रोंसे अथवा "ब्रह्मणेनमः" "विष्णवेनमः" इत्यादि नाममंत्रोंसे इष्टी करानी चाहिये, इस प्रकारकी इष्टी करके संयोग करे तो संयोग सफल हो और जैसे पुत्र कन्याकी इच्छा करे उसी प्रकारकी संतान होवे।

यातुस्त्रीश्यामंलोहिताक्षंव्यूढोरस्कंमहाबाहुंपुत्रमाशासीत ।
यावाकृष्णंकृष्णमृदुकेशंशुक्लाक्षंशुक्लदन्तंतेजस्विनमात्मवन्त
मेषएवानयोरपिहोमविधिः । किंतुपरिबर्हेवर्णवर्ज्यःस्यात् ।

अर्थ–जो स्त्री श्यामवर्ण लालनेत्र, विस्तीर्ण छाती, और लंबी भुजावाले पुत्रकी इच्छा करे, तथा जो स्त्री कृष्णवर्ण रूपमें काले और नम्र केश, श्वेत नेत्र, श्वेत दांत, तेजस्वी, और आत्मवेत्ता ऐसे पुत्रकी कामना करे इन दोनोंको

पूर्वोक्त होम करना चाहिये, किंतु परिवर्द्धवर्ण (ग्रह सामग्री) वर्जित कर्त्तव्य है और पुत्रवर्णानुरूप आशीर्वाद लेने चाहिये ।

कर्मान्तेचकर्मंह्येतमारभेत्रविचक्षणः ।

अर्थ-इस प्रकार पुत्रेष्टी कर्मके अनंतर, आगे जो विधि कहते हैं उसको बुद्धिवान् पुरुष करे ।

गर्भाधानमेंनियम ।

ततोपराह्णेपुमान्मासंब्रह्मचारीसार्पिः
स्निग्धःसर्पिःक्षीराभ्यांशाल्योदनंभुक्त्वा

अर्थ-तदनंतर १ महिने पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाला पुरुष, सायंकालको शरीरमें घृत मर्दन करके सुगंधित जलसें स्नान कर घृत और दूधसें स्निग्ध साठी चावलोंका भात भोजन करके स्त्रीके समीप जावे ।

गर्भाधानमेंस्त्रीकेनियम ।

मासंब्रह्मचारिणीतैलस्निग्धांतैलमाषोत्तराहा
रांनारीमुपेयाद्रात्रौसामभिर्निश्वास्य

अर्थ-एक महिने पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत करनेवाली स्त्री, सुगंधित तैलका मालिस कर स्नान करे पीछे तिलके पदार्थ और उरदके पदार्थ प्रधान ऐसा भोजन करा जिसने ऐसी स्त्रीके समीप रात्रिमें पुरुष प्राप्त होकर, प्रिय, वचनोंसें उसको प्रसन्न कर, गमन करे । [मासंब्रह्मचारिणी] इसके कहनेसे यह प्रयोजन है कि-१ महिनेतक मनकरकेभी पुरुषकी इच्छा न करे ।

तथाचवाग्भटे ।

शुद्धशुक्रार्त्तवंस्वस्थं संरक्तंमिथुनंमिथः ।
स्नेहैःपुंसवनैःस्निग्धं शुद्धंशीलितबस्तिकम् ।

अर्थ-शुद्ध शुक्रार्त्तवके लक्षण कहकर अब गर्भसंभवके पूर्व कर्त्तव्यकर्मको कहते हैं । शुद्ध है शुक्र और आर्त्तव जिन्होंके, और किंचिन्मात्रभी रोग जिन्के देहमें होवे नहीं, तथा परस्पर अनुरागयुक्त अर्थात् अन्योन्य दर्शनमात्रसेंही कामबाणों करके विद्ध हृदय जिन्होंका ऐसे स्त्री पुरुष पुंसवन कर्त्ता (फलघृत, कल्याणघृत और प्रसारणी घृत आदि) स्नेहोंसें देहको स्निग्ध करे, तथा वमनादिद्वारा देह शुद्ध करे, और अभ्यास करके बस्तीका अनुष्ठान करना चाहिये ।

इस जगे (संरक्त) कहनेका यह प्रयोजन है कि, प्रीतवाली स्त्रीका सेवन करे. प्रीतरहित स्त्रीके सेवनसें अनेक दुःख और मरणआदिका भय होता है । जैसें लिखा है ।

शस्त्रेणवेणीविनिगूहितेन विदूरथंस्वांमहिषींजघान ।
विषप्रदिग्धेनचनूपुरेण देवीविरक्ताकिलकाशिराजम् ॥
एवंविरक्ताजनयंतिदोषान्प्राणच्छिदोऽन्यैरनुकीर्त्तितैःकिम् ।
रक्ताविरक्ताःपुरुषैरतोऽर्थात्परीक्षितव्याःप्रमदाःप्रयत्नात् ॥

अर्थ-विदूरथ महाराजकी राणी, विदूरथ महाराजको बालोंमें छिपे हुए शस्त्र (छुरी) से मारती हुई । उसी प्रकार काशीनरेशको उन्की राणी विषलिप्त नूपुर (पायजेम) सें वध करती हुई । इस प्रकार विरक्त स्त्री प्राणनाशक दोषोंको प्रगट करती है । और बहुत कहना क्या है ! पुरुषको चाहिये कि अनुरक्त और विरक्त स्त्रीकी परीक्षा करके पश्चात् संभोग करना उचित है ।

पृथकपृथकउपचारकहतेहैं ।

नरंविशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ।

अर्थ-इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषोंकी तुल्य कर्त्तव्यता कह कर, अब इन दोनोंका पृथक्पृथक् उपचार कहते है । जैसें कि पुरुषको विशेष करके मधुरप्राय मधुर प्रभाववाली जीवनीयादि औषधोंसे संस्कार करे हुए दूध घृतोंका सेवन करना चाहिये [विशेषण] इस पदके कहनेसें यह प्रयोजन है कि संस्कृत दूध घृतका पुरुषकोही सेवन करना चाहिये स्त्रीको इन्का सेवन नहीं करना चाहिये ।

नारींतैलेनमाषैश्च पित्तलैःसमुपाचरेत् ।

अर्थ-स्त्री तेल और माष (उरद) के पदार्थों का तथा पित्तल पदार्थोंका सेवन करे । पित्तल पदार्थ रुधिरकी वृद्धिके हेतु सेवन कर्तव्यहै, अब इस जगे यहभी जानना उचित है कि स्त्री पुरुषका संयोग कितनी अवस्थामें होना उचित है यह सुश्रुतकी दशवीं अध्यायमें लिखा है परंतु हमारी समझ में इसी जगे लिखना अच्छा है सो लिखते है ।

अथास्मैपञ्चविंशतिवर्षायद्वादशवर्षापत्नीमावहेत् ।

अर्थ-विद्यासंपन्न पच्चीस वर्षकी अवस्था होने पर पुरुषको बारह वर्षकी अवस्था वाली पत्नी होनी उचित है । परंतु वाग्भट इससें विपरीत कहते है ।

पूर्णषोडशवर्षास्त्री पूर्णविंशेनसंगता । शुद्धेगर्भाशयेमार्गे रक्तेशुद्धेऽनिलेहृदि ॥ वीर्यवंतंसुतंसूते ततोन्यूनाब्दयोःपुनः । रोग्यल्पायुरधन्योवा गर्भोभवतिनैववा ॥

अर्थ-पूर्ण १६ वर्षकी स्त्री, २० वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके साथ संग करनेसें, शुद्ध गर्भाशय और गर्भाशयका मार्ग तथा रुधिर, वीर्य, पवन और हृदयके शुद्ध होनेसें स्त्री सामर्थ्यवान् पुत्रको प्रगट करे, [परंतु वाग्भटकृत संग्रहमें वाग्भटही लिखते हैं कि, १६ वर्षकी स्त्री २५ वर्ष वाले पुरुषके साथ पुत्र होनेके निमित्त संग करे] इससे न्यून अवस्था वाले अर्थात् १५ वर्ष और १८ वर्ष के स्त्री पुरुषके संयोग होनेसें रोगी, अल्पायु, और दुष्ट बालक होता है अथवा ऐसी अवस्था वाले पुरषों के संग सें गर्भ नहीं भी होता है ।

अल्पावस्थामेंसंगकरनेकेअवगुणसुश्रुतमेंभीलिखेहैं ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तपञ्चविंशतिः । यद्याधत्तेपुमान्गर्भं कुक्षिस्थःसविपद्यते ॥ जातोवानचिरंजीवेज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानंनकारयेत् ॥

अर्थ-जिस स्त्री की १६ वर्ष की अवस्था न हुई हो, उसमें २५ वर्ष की अवस्थासें न्यूनवाला पुरुष गर्भस्थापन करे तो, वो गर्भ कूखमेंही नष्ट हो जावे; यादि गर्भसें जीके उत्पन्नभी होवे तो बहुत जीवे नहीं, और जीवे तो दुर्बलइन्द्रीवाला होवे । इसी कारण अत्यंत बाल्य अवस्थावाली स्त्रीमें पुरुषको गर्भाधान करना न चाहिये । सुश्रुतमें जो किसीने बारह वर्षकी अवस्थावाली स्त्रीमें गर्भाधान करना लिखा है सो सर्वथा असत्य है क्यों कि वाग्भट और मनु महाराजसें विरुद्ध है इसको ऐसा निश्चय होता है कि यह पाठ किसी आधुनिक पोप महात्माका कल्पित है ।

तथाप्रमाणान्तर ।

चतस्रोवस्थाशरीरस्यवृद्धिर्यौवनंसंपूर्णताकिञ्चित्परिहारिणिश्चेति । आशोडषाद्वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतःसम्पूर्णता । ततःकिञ्चित्परिहारिणिश्चेति ॥

अर्थ-इस शरीरकी चार अवस्था हैं, १ वृद्धि २ यौवन ३ संपूर्णता और ४ किंचित्परिहारिणि । जन्मसें ले १६ वर्षतक वृद्धि अवस्था कहाती है । अर्थात् सोलह वर्षतक अवस्था बढती है, और २५ में ले ४० वर्षपर्यंत संपूर्णता अवस्था

कहाती है। तिस्के उपरांत अर्थात् ४० वर्ष से उपरांत पारिहाणि अर्थात् कुछ कुछ अवस्था घटने लगती है, इसीसे लिखा है।

पञ्चविंशेततोवर्षे पुमान्नारीतुषोडशे ।
समत्वागतवीर्यौतौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥

अर्थ-पुरुष २५ वर्षका हो, और स्त्री १६ वर्षकी हो, इस प्रकार समान अवस्थावाले स्त्री पुरुषोंके (प्राप्त हुआ) वीर्य कुशल वैद्य जाने।

तथाचमनुः ।

त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमतीसती ।
ऊर्ध्वन्तुकालादेतस्मा द्विन्देतसदृशंपतिम् ॥

अर्थ-रजोदर्शवती कुमारी जिस दिनसे रजोदर्श होवे, उस्से तीन वर्ष पर्य्यंत नियम से स्थित रहे, इस कालके उपरात अर्थात् ३ वर्षके उपरात सदृश पतिको प्राप्त होवे यह मनुका वाक्य है।

गमनयोग्यपुरुष ।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोर्चितः । भुक्तपुष्पः सुवसनः सुवेषसमलंकृतः ॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः।पुत्रार्थीपुरुषोनारी मुपेयाच्छयनेशुभे ॥

अर्थ-स्नान करके, चन्दन लगाय, अतरआदि सुगंधित पदार्थोंसे देहको सुगंधित कर, भोजन करके, पुष्पोंकी मालाआदि धारण करे हुए, उज्ज्वल वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा दिव्य भूषण धारण कर ताम्बूल (बीडा) मुखमें जिस्के, और अपनी प्रिया स्त्रीमे चित्त जिस्का और अत्यत कामोद्दीपित पुरुष पुत्रकी इच्छा करके दिव्य सेजपर स्त्रीके पास जावे। इस जगे [भोजनशब्द करके वीर्यपुष्ट कर्त्ता जो वाजीकरणाधिकारमें रस, पाक, चूर्ण, और गोली, आदि लिखी है सो जानना] क्योंकि पेट भरे पुरुषको मैथुन करना वर्जित है और [अनुरक्तोधिकस्मरः । पुत्रार्थीपुरुष.] ये तीन पदोंके धरनेका यह प्रयोजन है कि, जिस स्त्रीमें चित्त न हो, तथा कामोद्दीपन जब तक स्वत. न होवे तावत्कालपर्य्यंत स्त्रीगमन नकरे। इस प्रकार गमन करनेसे आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती, और इस्मेंभी पुत्रकी इच्छा करके गमन करना चाहिये व्यर्थ वीर्यको न खर्च करे।

मैथुनकरनेमेवर्ज्यपुरुष ।

में प्रवेश होकर मनुष्यको उन्मत्त करदेती है तथा अत्यंत सेवनसे सूजाक, गरमी आदिके अनेक असाध्य रोग प्रगट होते हैं जिनसे प्राणी किसी प्रकार नहीं बचसके ।

चतुर्थादिदिवसेऽपिरजोनिवृत्तौस्त्रीपत्यासङ्गच्छे न्नतुरजोनिवृत्तौ । यतआह ।

अर्थ-रजोदर्शनिवृत्ति होनेमें पुरुष स्त्रीगमन करे, किंतु रजोदर्श होनेमें स्त्रीगमन न करे जैसे लिखा है ।

त्रिरात्रिस्त्रीवर्जनेमेंयुक्ति ।

नचप्रवर्त्तमानेरक्तेबीजंप्रविष्टंगुणकरंभवति । यथानद्यांप्रति स्रोतःप्लाविद्रव्यंप्रक्षिप्तंप्रतिनिवर्तते नोर्ध्वंगच्छति । तद्वदे वद्रष्टव्यं तस्मान्नियमवतींत्रिरात्रंपरिहरेत् ।

अर्थ-जब तक योनिसें रुधिर स्रवे तावत्कालपर्यंत स्त्रीसंग न करे, क्योंकि ऐसें समयमें जो वीर्य योनिमें गिरे वह गुण कर्त्ता नहीं होय, अर्थात् गर्भधारण कर्त्ता नहीं होवे । जैसें नदीके प्रवाहमें वहनेवाला काष्ठ आदि पदार्थ वहि जाता है । ऊपरको नहीं प्राप्त हो उसी प्रकार वहते हुए रुधिरमें वीर्य सिंचन करनेसें वीर्य वहकर बाहर गिर जाता है । भीतर गर्भाशयमें नहीं रहे । अतएव नियमपूर्वक स्त्रीगमनमें तीन रात्रि वर्जित है. गयी आचार्य लिखे हैं कि, (तत्रप्रथमदिवस इत्यादि) यावत् आगेकी तीसरी अध्याय है उसमें यह सिद्धान्त करा है कि द्वादशाहं ऋतुकाल स्त्रियोंके बारह दिनपर्यंत रहता है ।

उत्तरोत्तरदिवसोंमेंगमनकाफल ।

एपूत्तरोत्तरंविद्यादायुरारोग्यमेवच । प्रजा सौभाग्यमैश्वर्यं बलंचाभिगमात्फलम् ॥

अर्थ-पूर्वोक्त चतुर्थ आदि रात्रियोंमें गमन करनेसें उत्तरोतर आयु, आरोग्य, संतान, सुभगता, ऐश्वर्य और बल इन्की प्राप्ति होती है । अर्थात् चतुर्थ रात्रिमें गमन करनेसें, आयुष्य और आरोग्यकी प्राप्ति होवे । छटवीं रात्रिमें पुत्रकी प्राप्ति, आठवींमें सुभगता, दशवींमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति, और वारवीं रात्रिमें गमन करे तो बलकी प्राप्ति होवे, और कन्याकी इच्छा करके विषम रात्रि, अर्थात् ५-७-९-११ इन रात्रियोंमें गमन करना चाहिये [त्रयोदशप्रभृतयोनिंद्याः] तेरवीं रात्रि सें आदि ले १४-१५-१६ इत्यादि रात्रि स्त्री गमनमें वर्जित हैं ।

तथाचवाग्भटे।

ऋतुस्तुद्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्रश्चनिन्दिताः।
एकादशीचयुग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासुकन्यका॥

अर्थ-रजोदर्श होनेसे लेकर, १२ रात्रिपर्यन्त ऋतुवती स्त्री रहती है। अर्थात् तीन दिनही ऋतुवती होती है, ऐसा नहीं किंतु, बारह रात्रिपर्यन्त रजोदर्श होता है। इन बारह रात्रियोंमें पहली तीन रात्रियोंमें गमन करना निषेध करा है। इन्में उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गमन न करे। इसीसे पुरुषको ब्रह्मचर्य करना लिखा है। और उसी प्रकार ग्यारवीं रात्रिभी निषेध है। और इस श्लोकमें जो (च) है उससे तेरवीं रात्रिभी निषेध है। अर्थात् तेरवीं रात्रिमें गमन करनेसे नपुंसक संतान होती है ऐसे कोई आचार्य कहते हैं। समरात्रि ४, ६, ८, १०, १२, में गमन करनेसे पुत्र होता है, अर्थात् इन रात्रियोंमें स्त्रीके आर्त्तव थोड़ा होता है. और विषम ५, ७, ९, रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्या प्रगट होती है, इन रात्रियोंमें पुरुषके वीर्य थोडा होता है, सम रात्रियोंमें रज (रुधिर) का थोडा होना और विषम रात्रियोंमे वीर्यका थोडा होना इन दोनोंका कारण अचिंत्य है, अर्थात् यह नहीं कह सक्ते कि सम रात्रियोंमें रज थोडा कौन कारणसे होता है। और विषम रात्रियोंमें वीर्य थोडा होनेका कौन कारण है। यदि आहार विहारादि द्वारा विषम रात्रिमें शुक्र अधिक हो जावे और सम रात्रिमें शुक्र थोडा होनेसे जो पुत्र होय वह पुरुष, स्त्रीके सदृश आकारवाला दुर्बल अथवा हीन अंगवाला होवे, सो लिखाभी है, "स्त्रियाःशुक्रेऽधिकेस्त्रीस्यात्पुमान्पुंसोऽधिकेभवेत्। तस्माच्छुक्रविवृद्ध्यर्थंपुंस्निग्धंचसेवयेत्॥ एकादशीत्रयोदश्योस्तुनपुंसकाभिति" और पुत्रकी इच्छा करके सम रात्रिमें पुंसवनादिक कर्म करे। और कन्याकी इच्छा करके स्त्री पुरुष दोनों विषम रात्रिमें पुंसवनादि संस्कार करे।

ततःसायंकालीननित्यकर्मकृत्वोभौशुक्लाम्बरानुलेपन
माल्याभरणादिभिरलंकृतौस्वलंकृतंधूपितंगंधमाल्या
मलदीपयुक्तंगृहंप्रविशेताम्।

अर्थ-तदनंतर सायंकालको नित्य कर्म करके दोनों स्त्री पुरुष, सपेद वस्त्र, चंदन, माला, भूषण, आदिसे शृंगार कर, झाड फनूस गिलोना चित्राम पटदे आदिसे सजे हुए, और अगर केशर आदि अष्टांग षोडशांग धूप (धूनी) से धूपित, तथा दीपावलियुक्त ऐसे परम सुंदर अटा अटारी चित्रसारी सुखकारी गृहमें प्रवेश करे।

ततोभर्त्ताअभग्नंजंतुवर्जितंसुखस्पर्शवितानोपरिमंडितंम
ञ्चकंशोभनेमुहूर्त्तेसप्रियमारुह्यवक्ष्यमाणविधिमाश्रयेत ।

अर्थ-तदनंतर भर्त्ता अभग्न (टूटी न हो) और खटमल आदि जीवोंसे रहित जिस्के स्पर्शमात्रसे सुख होवे, तथा चंदोवा आदि जिसपे तन रहा हो, ऐसी परम सुंदर सेजपर उत्तम महूर्त्तमे अपनी स्त्रीसहित प्राप्त हो आगे जो विधि कहेंगे उस्को करे. शय्याके लक्षण बृहत्संहितामें लिखे है सो देख लेना * वाग्भट कुछ विशेष कहता है ।

वाग्भटे ।

कर्मान्तेचपुमान्सर्पिःक्षीरशाल्योदनाशितः । प्राग्दक्षिणे
नपादेन शय्यांमौहूर्तिकाज्ञया ॥ आरोहेत्स्त्रीतुवामेन त
स्यदक्षिणपार्श्वतः । तैलमाषोत्तराहारांतत्रमंत्रंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ-पूर्वोक्त पुत्रेष्टी कर्म करके पुरुष दूध भातका भोजन कर, ज्योतिषीकी आज्ञासे शय्यापर प्रथम दहना पैर धरके स्थित होय, और तैल, उडद, आदिके पदार्थोंका भोजन कर स्त्री बांयापैर प्रथम रख कर पतिके दहनी तरफ बैठे. फिर पति ये मंत्र पढे । * प्रसंग वशसे स्त्रीगमनका मुहूर्त्तभी लिखते है ।

ईयाद्रजोदर्शनकालतोनरो वशामहःपञ्चकमर्कसावनम् ।
विहाययुग्मासुविभावरीष्वतो ह्यूर्ध्वंसुदायादफलातिकामः ॥

अर्थ-रजोदर्शके प्रथम ५ दिन त्यागकर, उपरांत सम रात्रियोंमें सुंदर संतानरूप फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्रीगमन करे ।

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्चसन्ध्या भौमार्कार्कीनाद्यरात्र्यश्चतस्रः ।
गर्भाधानंत्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपेसत् ॥
केन्द्रत्रिकोणेषुशुभैश्चपापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने।ओजांशकेऽब्जेपिचयुग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विपुमध्यमंस्यात् ॥

अर्थ-भद्रा छट्ट, पर्व (१४ ८-३०-१५-ये तिथी और संक्रांत), ४ -९-१४-ये तिथी, प्रात:काल और सायंकाल ए दोनों संध्या, तथा मंगल, सूर्य, शनि,

---

* असनस्यदनचदनहरिद्रासुरदारुतिन्दुकीशालाः । काश्मर्यञ्जनपद्मकशाकावाशिंशपा चशुभाः॥प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात्कुलविनाशः । व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्चनैकविधाः ॥ इत्यादिचिंतनीयम् ।

येवार [कोई आचार्य बुधवार नपुंसक होनेसे उसकोभी वर्जित करते है] तथा रजोदर्श होनेकी प्रथम चार रात्रि ये स्त्रीगमनमें निषेध है * तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, मृगशिर, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा इन नक्षत्रो में गर्भाधान करना उत्तम है ॥ २ ॥ अब लग्नवल कहते है, केन्द्र (१ ४ ७ १०) त्रिकोण (५ ९) स्थानों में शुभ ग्रह बैठे होने, और ३ ११ ६ इन स्थानों मे पाप ग्रह पडे हो, तथा, पुरुष ग्रहों करके वीक्षित लग्न हो, और विषम राशि के नवांशक में चंद्रमा पडा हो, तथा, सम रात्रियों (६ ८ १० १२) मे पुत्र की इच्छावाला, और विषम रात्रियों में कन्या की इच्छावाला पुरुष स्त्रीगमन करे अर्थात् गर्भाधान करे । और चित्रा, पुनर्वसु, तथा अश्विनी इन नक्षत्रो में गर्भाधान करना मध्यमफल देता है । अब गर्भाधान म वर्जित स्त्री पुरुष कहते हे ।

यथाचरके ।

तत्रान्याचिताक्षुधितापिपासिताभीताविमनाशोकार्त्ताक्रुद्धान्यञ्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचाभिकामानगर्भंधत्तेविगुणांवाप्रजांजनयतिअतिबालामतिवृद्धांदीर्घरोगिणीमन्येनविकारेणोपसृष्टावर्जयेत् पुरुपस्याऽप्येतएवदोषाः ।

अर्थ—अन्य पुरुष से रक्षित, क्षुधावाली, प्यासी, भयभीत, संभोगकी इच्छा रहित, शोचसे व्याकुल, क्रोधयुक्त, अन्य पुरुषकी इच्छा करनेवाली, और जो केवल मैथुनसुखके निमित्त सग करा चाहे, ऐसी स्त्री गर्भ नही धारण करे। यदि गर्भ रहभी जाय तो दुष्टसन्तानको प्रगट करती है । अतिबाल्य अवस्थावाली, अतिवृद्ध, बहुत दिनों की रोगिणी, और अन्य विकारों से दूषित, ऐसी स्त्रियों का सग करना वर्जित है । और जो दूषण स्त्रियों के कहे है वोही दूषणवान् पुरुषभी स्त्रियों के लिये वर्जित हे ।

अतः सर्वदोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसंसृज्येयातां । सजातहर्षौ मैथुनेचानुकूलाविष्टगंधंस्वास्तीर्णं सुखशयनमुपकल्प्य

---

* गडान्तत्रिविधस्यजन्मनिधनजन्मर्क्षंचमूलान्तक दास्रपौष्णमथोपरागदिवसपाततथावैधृतिम् । पित्रा श्राद्धदिनदिवाचपरिघाद्यर्धस्वपत्नीगमे भान्युत्पातहतानिमृत्युभवनंजन्मर्क्षत पाप भम् ॥ १ ॥ मुहूर्तमार्तण्डेतुश्राद्धदिवसस्यात्राग्दिनमपिगर्भाधानेपरिहृतम् ।

मनोज्ञंहितमशनमशित्वानात्याशितौदक्षिणपादेन पुमा न्स्त्रीवामेनारोहेत् तत्रमंत्रंप्रयुंजीत ।

अर्थ–अतएव इष्ट सुगंधित पदार्थों से व्याप्त, ऐसी सुखशय्या को विछाय, तथा चित्तको प्रिय ऐसे पदार्थों को भोजन करके और अत्यन्त भोजन न करा होय तथा प्राप्त हुआ है दर्प जिनको मैथुन में अनुकूल ऐसे सर्व दोष वर्जित दोनों स्त्री पुरुष मिलकर शय्याके ऊपर चढें, तहां पुरुष प्रथम दहना पैर रक्खे और स्त्री वाम पैर धरके चढे, तदनन्तर आगे जो मंत्र कहे हैं उनको पढे ॥

दक्षिणकरेणपतिर्वध्वाउपस्थमभिमृश्यजपति ।

ॐपूपाभगंसवितामेददातु रुद्रःकल्पयतुललामगुंविष्णु योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतुआसिंचतु प्रजापति धातागर्भंदधातुमे।

अर्थ–पति दहने हाथ से स्त्रीका भग स्पर्श कर ये मंत्र पढे ।

तदनन्तरपतिपूर्वमुख अथवा उत्तरमुखबैठकर
इनमंत्रोंसें स्त्रीको अभिमंत्रितकरे ।

ॐअहिरसिआयुरसिसर्वतःप्रतिष्ठासिधातात्वांदधातु विधा तात्वांदधातु ब्रह्मवर्चसाभवेति । ब्रह्माबृहस्पतिर्विष्णुःसो मः सूर्यस्तथाश्विनौभगोथमित्रावरुणौ वीरंददतुमेसुतं

सांत्वयित्वाततोऽन्योन्यं संविशेतांमुदान्वितौ ॥
उत्तानातन्मनायोपि तिष्ठेदङ्गैःसुसंस्थितैः ॥

अर्थ–मंत्रपाठके अनन्तर प्रिय वचन कह प्रीत उत्पन्न करके मैथुन भावको प्राप्त होय, तथा हर्षपूर्वक स्त्री पति में मनको लगाय, सर्व अवयवोंको यथावस्थित करके उत्तान (सीधी) लेट जावे, चित्त लेटनेका प्रयोजन कहते हैं ।

तथाहिबीजंगृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।

अर्थ–वातादि दोषों को अपने २ स्थानमें स्थित रहने से स्त्री को उसी प्रकार वीर्य ग्रहण करना चाहिये ।

तथाचसंग्रहेचोक्तम् ।

नचासावधस्तिष्ठेत् । तथाहिस्त्रीचेष्टः पुमान्जायते पुंचेष्टा

वास्त्रीच। नचन्युब्जांपार्श्वगतांवासेवेत। न्युब्जायावातो बलवान्सयोनिंपीडयति। दक्षिणपार्श्वगायाःश्लेष्मापीडि तश्च्युतोऽपिदधातिगर्भाशयम्। वामपार्श्वगायास्तत्पित्तंवि दहतिरक्तशुक्रे। तस्मादुत्तानाबीजंगृह्णीयात्। तस्याहिय थास्थानमवतिष्ठन्तेदोषाः पर्यन्तेचैनांशीतोदकेनपरिषिंचेत्

अर्थ–पुरुष को स्त्री के नीचे रहकर मैथुन करना वर्जित है इस प्रकार मैथुन-से जो गर्भ रहता है, उस से स्त्री कीसी चेष्टावाला लड़का उत्पन्न होता है। अथवा पुरुषकी चेष्टावाली कन्या होती है, तथा कुबडी होकर जो स्त्री समीप प्राप्त हो उससें मैथुन न करे। क्योंकि कुबडी स्त्रीके वात प्रबल रहती है, वह वात योनिको पीडित करती है, इसी से गर्भ नहीं रहता। तथा दहनी करवटवाली स्त्रीके कफ पीडित होकर गिरता है उसीसे गर्भाशय भर जाता हैं। और वांई कर-वटवाली स्त्रीके रक्त शुक्रको पित्त दहन (भस्म) कर देता है। इसी से स्त्री उत्तान अर्थात् चित्त (सीधी) लेट कर वीर्य ग्रहण करे। सीधी लेटने वाली स्त्रीके सर्व दोष अपने अपने स्थानमें स्थिर रहत हैं।। जब वीर्य ग्रहण कर चुके तब इसको शीतल जलसे सेचन करे।

प्रसंगवशभगकीतीननाड़ियोंकेवर्णन।

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रोभवन्तिप्रमदाजनानाम्।
समीरणाचन्द्रमुखीचगौरी विशेषमासामुपवर्णयामि॥

अर्थ–कामगृह (भग) के मुखमें स्त्रियोंके तीन प्रकारकी नाड़ी होती हैं। तिनमें एक समीरणा, दूसरी चन्द्रमुखी और तीसरी गौरी, इनके भेद अब हम वर्णन करते हैं।

प्रधानभूतामदनातपत्रे समीरणानामविशेषनाडी।
तस्यामुखेयत्पतितंतुवीर्यं तन्निष्फलंस्यादितिचन्द्रमौलिः॥ २॥

अर्थ–मदनरूपी छत्रमें प्रधान भूत ऐसी जो समीरणानामकी विशेष नाड़ी है, उस नाड़ीके मुखमें जो वीर्य गिरता है, वह निष्फल जाता है। ऐसे चन्द्रमौलि आचार्य कहता है।

याचापराचान्द्रमसीचनाडी कन्दर्पगेहेभवतिप्रधाना।
सासुन्दरीयोषितमेवसूते साध्याभवेदल्पतरोत्सवेषु॥ ३॥

अर्थ–दूसरी चान्द्रमसी नामक नाड़ी कामगृहमें प्रधान होती हैं । उस नाडीमें वीर्य पड़ने से वह स्त्री कन्या उत्पन्न करती हैं और वह थोडेही संभोग उत्सव सें प्रसन्न हो सक्ती हैं ।

गौरीतिनाडीयदुपस्थगर्भे प्रधानभूताभवतिस्वभावात् । पुत्रंप्रसूतेवहुधाङ्गनासा कष्टोपभोग्यासुरतोपविष्टा ॥ ४ ॥

अर्थ–स्त्रीकी भगमें स्वभावसे प्रधानभूत ऐसी गौरी नामक नाड़ी है । [उसमें वीर्य पडनेसें] वह स्त्री बहुधा करके पुत्र प्रगट करती है और संभोगके समय पुरुषसे बड़े कष्ट सें प्रसन्न होती हैं ।

गर्भाशयकास्वरूप ।

शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्तासाप्रकीर्त्तिता । तस्यास्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ यथारोहितमत्स्यस्य मुखंभवतिरूपतः । तत्संस्थानांतथारूपां गर्भशय्यांविदुर्बुधाः ॥ २ ॥

अर्थ–स्त्रीकी भग शंखके समान तीन त्रिवलीद्वार होती हैं, उसके तीसरे आर्त्तव (आंटे) में गर्भ शय्या प्रतिष्ठित है । जैसी रोहित मछलीके मुखकी छवि होतीहै, उसीकि प्रमाण और उसीके सदृश रूप गर्भाशयका पण्डित कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जैसें रोहित मछली जलमें रहती है उसी प्रकार गर्भाशयकी स्थितिभी पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें है । और जैसा रोहित मछलीका मुख छोटा और आशय बडा होता है, उसी प्रकार गर्भाशयका मुख छोटा और आशय बडा होता है । गर्भाशयका १ नम्बरका चित्र देखो ।

एवंतामभिसङ्क्रम्य पुनर्मासाद्व्रजेदसौ।मासादूर्ध्वमितिशेषः।अर्व्वागगमनेनगर्भद्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसङ्गः स्यात् । केचित्तुपुनःपुष्पदर्शनेनगर्भालाभनिश्चयेमासादूर्ध्वंगच्छेत् लब्धगर्भनगच्छेदिति ।

अर्थ–इस प्रकार एकवार स्त्री गमन करके, फिर एक महिना होनेके उपरांत गमन करना चाहिये, कारण यह है कि महिनेके भीतर गमन करनेसें गर्भद्वार छुट कर गर्भ गिर जाता है । कोई आचार्य कहते हैं कि महिना होने सें यदि स्त्री रजोदर्शनी होय तो जाने कि गर्भ नहीं रहा इसी कारण पूर्वोक्त विधि सें फिर स्त्री गमन करे और यदि स्त्री कपड़ों सें न होय तो फिर गमन नहीं करना चाहिये।

गर्भ रहने सें स्त्रीसंग त्याज्य है और गर्भ न रहने सें स्त्री गमन करना योग्य है, इसी सें सद्योगृहीतगर्भा स्त्रीके लक्षण कहते हें।

शुक्रशोणितयोर्योनेरस्रवोऽथश्रमोद्भवः ।
सक्थिसादः पिपासाच ग्लानिः स्फूर्तिर्भगेभवेत् ॥

अर्थ-शुक्र और रुधिरका योनि सें स्राव न होय, श्रम होय (जैसा मेहनत करने सें परिश्रम होता हें) जंघाओंका जिकड़ना, प्यासका लगना, ग्लानि होय, और योनिमें स्फूर्ति (फडकना) होय, इन लक्षणों सें गर्भ रहा जानना । विशेष लक्षण तृतीयाध्यायमें कहेंगे ।

गर्भवतीकाआचारकहतेहें ।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसुलक्ष्मणावटशुङ्गासहदेवाविश्वे देवानामन्यतमाक्षीरेणाभिषुत्यत्रींश्चतुरोवापिबिन्दून्दद्यात् दक्षिणेनासापुटेपुत्रकामानताऩ्निष्ठीवेत् ।

अर्थ-स्त्री गर्भवती होनेके उपरांत उसी दिन लक्ष्मणा वनस्पति, तथा वडकी कोंपल, तथा पीले पुष्पकी कंगही, और गुडशकरी, (अथवा सुपेद फूलकी बला) इनमें किसी एकको दूध सें पीस, तीन वा चार बूंद पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री की नासिकाके दहनें नथनेमें सिंचन करे । उसे स्त्रीको थूकना न चाहिये ।

लक्ष्मणाकास्वरूप ।

तत्रकाकारिरक्ताल्पबिन्दुभिर्लक्षितच्छदा ।
लक्ष्मणापुत्रजननी वस्तगंधाकृतिर्भवेत् ॥

अर्थ-लक्ष्मणा वनस्पतिके पत्ते पर पृष्ठके रुधिर समान लाल २ बूंद थोडी २ सर्वत्र होती है । और आकृतिमें वनतुलसीके सदृश होती है । उसको पुत्र कर्त्ता जानना ।

उखाडनेऔरलानेकीविधि ।

तांशरत्कालेपुष्पफलोपेतांहस्ताशनिदिनेसंध्यायां तस्या श्चतुर्षुभागेषुखदिरकीलकान्निखाद्यापरेद्युर्हस्तमूलपुष्येर्यो गंगतेसवितरिमंत्रवद्गृहीत्वासमानवर्णवत्सगोक्षीरेणायथा विधिनस्यंदद्यात् ।

अर्थ–लक्ष्मणाको शरद् ऋतुमें पुष्प फल संयुक्त देख कर, शनिवारके सायंकालको उस्के चारों कोनोंमें खैरकी लकडीकी चार कील गाड़ देवे, और, धूप, दीप, रोरी, अक्षत और नैवेद्य सें पूजन कर निमंत्रण कर आवे, फिर जब हस्त, मूल अथवा पुष्य नक्षत्रपर सूर्य आवे उस दिन जाय कर औषध उखाड़नेके जो मंत्र हैं उन्हों सें उस्को जड़ सुद्धां उखाड कर घरले आवे पिछाड़ी फिरकर न देखे । पीछे बछडावाली एकरंग गौके दूधमें पीस पुत्रकी इच्छावाली स्त्रीको दहने नथनेमें, और कन्यावालीको वाम नथने सें विधिपूर्वक नस्य देवे ।

वाग्भटेविशेषमाह ।

अव्यक्तःप्रथमेमासि सप्ताहात्कललोभवेत् ।
गर्भंपुंसवनान्यत्र पूर्वंव्यक्तेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ–सात दिनके प्रथम गर्भ गोलक, कफ सें पिंडीभूत होता है । और सात दिनके उपरांत एक महिने पर्यंत गर्भ कलल अर्थात् कीचके समान अव्यक्तरूप होता है इसी कलल स्वरूप गर्भमें जबतक स्त्री पुरुषादि चिन्हकी उत्पत्ति न होय तिस्के पूर्व (प्रथम महिनेमें) पुंसवनादि (स्त्री पुरुष प्रगट कर्त्ता औषधोंके प्रयोग) करने चाहिये ।

शिष्य–(शुद्धेशुक्रार्त्तवेसत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः । गर्भःसंपद्यतइत्युक्तं) अर्थात् आप पहले यह बात कह आए हो कि शुद्धवीर्य और आर्त्तवमें कर्मप्रेरित जीव गर्भरूप को प्राप्त होता है । यदि पूर्वकर्मानुसार स्त्री होना लिखा है तो, अनेक यत्न करने सें भी उस गर्भ को पुरुष नहीं कर सक्ते, इसी सें हे गुरो ! मेरी समझ में पुंसवन कर्म करनाही असत्य है ।

गुरु–तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इस का यह उत्तर है कि, " बली पुरुषकारोहिदैवमप्यतिवर्त्तते " अर्थात् बलिष्ठ पुरुषार्थ निर्बल दैव को जीत लेता है।और उसी प्रकार बलिष्ठ कर्म पुरुषार्थ को जीत अपना फल करता है,इसी सें पूर्वजन्मकृत बलिष्ठ कर्म करके प्राप्त जो कन्या गर्भ, उस्का पुंसवनादि कर्म रूप पुरुषार्थ हजारो करने सें भी कदाचित् पुरुष नहीं कर सक्ते । जैसें लिखा हैं ।

दैवंपुरुषकारेण दुर्बलंह्युपहन्यते ।
दैवेनचेतरत्कर्मप्रकृष्टेनोपहन्यते ।

अर्थ–बलिष्ठ पुरुषार्थ (उद्योग) सें दुर्बल दैव नष्ट होता है, और बलिष्ठ दैव (प्रारब्ध) सें बलहीन पुरुषार्थ नष्ट होता है, अतएव पुंसवनादि क्रियाओंके करने सें सिद्ध असिद्धके अनुमान सें पूर्वजन्मकृत कर्मका हीनबल और प्रबल-

ताका निश्चय होता है। तात्पर्य यह है कि, पुंसवनादि क्रिया करनेसें यदि गर्भाधान हो कर पुत्रोत्पत्ति होनेसें पूर्वजन्मके कर्मको हीन बली जाने, और पुंसवनादि कर्म करनेसें संतान न होवे तो दैव (पूर्व जन्मके संस्कारको) प्रबल जानना, परंतु हमारी समझमें तो पुरुषार्थही मुख्य है यदि पुरुषार्थ करनेसें जो कार्य सिद्ध न होय तो जाने कि हमारे पुरुषार्थमेंही कुछ कसर रही है। यदि ऐसा न मानोंगे तो फिर आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) को सर्वथा असत्यता आवेगी। कदाचित् तुम यह कहो कि अनेक मनुष्य औषध सेवन करते करते मर गए ऐसा हमने प्रत्यक्ष देखा है, तो ऐसें बुद्धिवालों सें हमारा यही उत्तर है कि, जो औषध खाते खाते मर गए उन्होंने अपना निदान यथार्थ नहीं करा, यदि निदान ठीक हो जाता तो वह रोग कदाचित् न रहता. यथार्थ निदान करके जो औषध दीनी जाती है वह अपना चमत्कार शीघ्र दिखाय देती परंतु आज कल यथार्थ निदानके जाननेवाले क्या इस भारतवर्षमें और क्या दुसरी विलायतोंमें थोडेही जहां तहां निकले और नहीं भी निकले, इस निदानकी विशेष व्याख्या निदान प्रकरणमें करी जावेगी।

कदाचित् तुम कहो कि ऐसाही तुम मानते हो तो फिर मनुष्य औषधों सें अपने मरणरूप रोगका उपाय क्यों नहीं कर लेवे, इस्में हम इतना कहते हैं कि "अतोमृत्युरवार्यःस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत्" अर्थात् रोग दूर हो सके हैं परंतु मृत्यु दूर नहीं हो सके, यह शार्ङ्गधर कहते है।

अथपुंसवनप्रयोग।

पुष्येपुरुषकंहैमं राजतंवाथवायसम्। कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरेतस्यांजलिंपिबेत् ॥

अर्थ—पुष्पनक्षत्रमें सोने वा चांदीका अथवा लोहका पुतला बनावे, उस पुतलेको अग्निमें डाल कर खूब धमावे, जब अग्निके समान लालवर्ण हो जावे, तब निकाल कर दूधमें बुझावे, उस दूधको ४ पल स्त्रीको पिलाना चाहिये तो उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होय।

गौरदण्डमपामार्गंजीवकर्षभशैर्यकान्। पिबेत्पुष्येजलेपिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः ॥ *

---

* क्षीरेणश्वेतबृहतीमूलंनासापुटेस्वयम्। पुत्रार्थंदक्षिणेसिंचेद्वामेदुहितृवांछया ॥

अर्थ-सफेद दंडका ओंगा, तथा जीवक, ऋषभ और कटसरैया, इन्को पृथक् २ अथवा दो दो, अथवा सबको एकत्र कर जलमें पीस पुष्य नक्षत्रमें पीवे तो सुन्दर संतानकी प्राप्ति होय ।

पयसालक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदं । नासयास्ये नवापीतं वटशुङ्गाष्टकंतथा ॥ औषधीर्जीवनीयाश्चबा ह्यान्तरुपयोजयेत् ॥

अर्थ-दूधमें लक्ष्मणा औषधकी जडका कल्क करके पीने से, अथवा नास लेने से जिस स्त्रीके पुत्र न होता हो उसके पुत्र होवे और जिसके होता हो परंतु मर जाता हो उसके चिरंजीव पुत्र हो । उसी प्रकार आठ बडके नवीन अंकुर, दूधमें पीनेसे दीर्घायुवाला पुत्र होय । (प्रभावको अचिंत्य होनेसे यहां बडके आठ अंकुरोंका ग्रहण है) उसी प्रकार जीवनीय (काकोलीक्षीरकाकोली आदि) औषधोंको बाह्य और अभ्यंतर योजना करे । तहां बाहर स्नान, उबटने आदि द्वारा कायामें लेवे, और खाने, पीने आदि भीतरके प्रयोगमें लेनी चाहिये ।

यच्चान्यदपिब्राह्मणाब्रूयुराप्तावापुंसवनमिष्टंतच्चानुष्ठेयम् ।

अर्थ-और जो अन्य औषध ब्राह्मण अथवा सत्पुरुष, इष्ट पुंसवन बतावें जैसे (शिवलिंगी का बीज, मोरशिखा आदि हैं) उसको भी करना उचित है, विशेष पुंसवन की औषध वंध्याकी चिकित्सा में लिखेंगे ।

केवल शुक्र शोणित सेही गर्भ धारण होता है ऐसा नहीं है, किंतु अन्य सामग्रीभी गर्भधारण में अपेक्षित हैं उनको कहते हैं ।

ध्रुवंचतुर्णांसान्निध्याद्गर्भःस्याद्विधिपूर्वकः ।
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरोयथा ॥

अर्थ-ऋतु (वर्षा काल आदि) पृथ्वी, जल, और बीज, (चावल गेहूंआदि) इन चारों के संयोग से अंकुर (कुरा) उत्पन्न होता है । उसी प्रकार ऋतु कहिये (पुष्प) क्षेत्र कहिये (गर्भाशय) जल कहिये (जठराग्नि से अन्नका पाक होकर शरीर पालनीय रस उत्पन्न होता है सो) और बीज कहिये (आर्त्तव, शुक्र) इन चारों के विधिपूर्वक संयोग होने से गर्भ उत्पन्न होता है ।

शुद्धेशुक्रार्त्तवेसत्त्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः ।
गर्भःसंपद्यतेयुक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥

अर्थ–शुद्ध शुक्र आर्त्तव में अपने कर्म और क्लेशों कर प्रेरित जीव युक्तिवश-से गर्भ को प्राप्त होता है। जैसे अरणी से अग्नि। अर्थात् जैसे मथ्य, मंथन और मंथान सामग्री के विना अग्नि नहीं होती उसी प्रकार गर्भ भी यथोक्त सामग्री के विना नहीं होता। इस जगे स्त्री मथ्यस्थानीय है, पुरुष मंथनस्थानीय है, और गर्भाशय मंथानस्थानीय जानना चाहिये। अरनी भी युक्तिपूर्वक मथने से अग्नि प्रगट करे है। विना युक्तिके नहीकरे, उसी प्रकार स्त्री पुरुष भी विधिपूर्वक संग करने से संतान प्रगट करसके हे। इस श्लोक मे [स्वकर्मक्लेशचोदितः] इस कहने-से यह प्रयोजन है कि जिन्हों का चित्त राग द्वेष अविद्या से बँधाहुआहै, उन्ही को गर्भवास है। वीतरागवाले महात्माओं कातो जन्म होना असंभव है। क्योंकि वे कर्म-क्लेशों से रहित है जैसे लिखाहै, "चित्तमेवहिससारि रागक्लेशादिदूषितम्। तदेव तै-र्विनिर्मुक्तं भवान्तइतिकथ्यते"।

विधिपूर्वकहोनेवालेगर्भकाफल।

एवंजातारूपवन्तः सत्ववन्तश्चिरायुषः।
भवन्त्यृणस्यमोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणोहिताः॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधिपूर्वक जे पुरुष उत्पन्न होते हे वे रूपवान्, सत्वगुणसम्पन्न, चिरायुषी, ऋणलेकर न खानेवाले, अर्थात् सपत्तिवान्, माता पिताको सुख देने-वाले ऐसे सत्पुत्र होते हे।

शरीरकेकालेगोरेहोनेकाकारण।

तत्रतेजोधातुवर्णानांप्रभवःसयदागर्भोत्पत्तौअब्धातुप्रायोभवति तदागर्भगौरंकरोति। पृथ्वीधातुप्रायःकृष्णश्यामः। तोयाकाशधातुप्रायः गौरश्यामः। (समसर्वधातुप्रायः श्यामवर्णकरः)

अर्थ–सर्व देहके वर्ण होने का कारण तेज धातु है। यदि गर्भाधानके समय जल धातु अधिक होय तो उस गर्भ से गौर वर्ण बालक प्रगटहोय। पृथ्वीधातु अ-धिक होने से कृष्ण और श्याम वर्णका बालक होय। जल आकाश धातुके अधिक होने से बालक का वर्ण गौर श्याम होता है और गर्भाधानके समय सर्वधातु समान होय तो बालक का श्यामवर्ण होता हे किसी चरककी पुस्तक में ऐसाभी लिखा है कि पृथ्वी धातु केवल कृष्ण वर्ण करती है। कृष्ण वर्ण कौआके सदृश, और श्याम वर्ण दूबके समान जानना।

इसविषयमेंमतमतांतर ।

याद्दग्वर्णमाहारमुपसेवेतगर्भिणीताद्दग्वर्णप्रसवा भवतीत्येकेभाषन्ते ।

अर्थ–कोई आचार्य कहते हैं कि, गर्भवती जैसे २ स्वेत, पीत, कृष्णादि वर्णके पदार्थोंका सेवन करती है, उसके उसी वर्णका बालक होता है ।

विवृत्तशायनीनक्तंचारिणीचोन्मत्तंजनयत्यपस्मारिणम्पुनः कलिकलहशीलाव्यवायशीलादुर्वपुपमह्रीकंस्त्रैणंवा शोकनित्याभीतमपचितमल्पायुषंवाअभिध्यात्रीपरोपतापिनमीर्ष्युंस्त्रैणंवास्तेनान्वायासबहुलमतिद्रोहिणमकर्म्मशीलंवा अमर्पणाचण्डमौपधिकमसूयकंवा स्वप्ननित्यातन्द्रालुमबुधमल्पाग्निंवा ।

अर्थ–गर्भवतीके उलटे सोनेसें तथा रात्रिमें डोलने सें उन्मत्त,और मृगी रोगवाला बालक प्रगट करती है। कठिन कलह करने सें तथा मैथुन करने सें दुष्ट देह और निर्लज्ज तथा स्त्रैण बालक होता है, शोक करने सें डरपनेवाला, कृश, तथा अल्पायु संतान होती हैं। और बुरा ध्यान करने वालीके औरोंको दुःख देनेवाला ईर्षी, तथा स्त्रैण संतान है । चोरीकी इच्छा करनेवाली स्त्री अति परिश्रमी, अतिद्रोही, और खोटे कर्मका करनेवाला पुत्र प्रगट करती है । क्रोध करनेसें चंड, उपाधि कर्त्ता और निंदक संतान हो । निद्रा सें तन्द्रालु मूर्ख और मंदाग्निवान् संतति होती है ।

मद्यनित्यापिपासालुमनवस्थितंवा गोधामांसप्रायाशार्करिणमश्मरिणंशनैर्मेहिनंवा वाराहमांसप्रायारक्ताक्षङ्क्रथनमतिपरुपरोमाणंवा मत्स्यमांसनित्याचिरनिमिषंस्तब्धाक्षंवा मधुरनित्याप्रमेहिनंमूकमतिस्थूलं वा अम्लनित्यारक्तपित्तिनंत्वगक्षिरोगिणंवा लवणनित्याशीघ्रवलीपलितंखालित्यरोगिणंवा कटुकनित्यादुर्वलमल्पशुक्रमनपत्यंवातिक्तनित्याशोपिणमबलमपचितंवा कषायनित्याश्यावमनाहितमुदावर्त्तिनंवा यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेर्निदानमुक्तंतत्तदासेवमानान्तर्वत्नीतद्विकारबहुलमपत्यंजनयति ।

अर्थ–गर्भवतीके मद्य सेवन करने सें तृषावान्, तथा स्वल्पचित्तवाला बालक हो। गोधामांसके खानेसें शर्करा, और पथरी तथा शनैः प्रमेहरोगवाला होवे। सूकरके मांस खानेसें बालक लाल नेत्र, कसाई और अत्यंत कठोर रोमांचवाला होवे। मछलीके मांस खाने सें चिर निमिष (देरमें पलक लगे) तथा विकट नेत्र-वाला हो। गर्भवतीके नित्य मिष्ट रस खाने सें बालक प्रमेही, गूंगा और अति-स्थूल होता है, खट्टे रस खाने से रक्तपित्ती कुष्ठरोगी, नेत्र रोगवान् हो, अत्यंत नोन-के पदार्थ खानेसें थोडी अवस्थामें वली (गुजलट) और पलित (सपेद बाल) तथा खालित्य (शिरोरोगविशेष) वाला होवे। चरपरे पदार्थ सेवनसें दुर्बल, अल्प वीर्यवान्, और जिस्के संतान न होय ऐसा बालक होवे। कडुए पदार्थ से-वन सें अतिशुष्क, निर्बल, पुष्टतारहित बालक हो। और गर्भवती स्त्रीके अत्यंत कसेले पदार्थोंके सेवन करनेसें काला, और उदावर्त्त रोगी बालकको प्रगट करती है। जिस जिस रोगके निदानमें जो जो वस्तु सेवन सें जैसा जैसा रोग होना लिखा है, उसी पदार्थके सेवन से गर्भवती स्त्रीके तद्विकारबहुल संतान प्रगट होती है।

यदास्त्रियादोषप्रकोपनोक्तान्यासेवमानायादोषाः प्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्तः शोणितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्ते नच कात्स्र्न्येनशोणितगर्भाशयोदूषयति तदायंगर्भलभतेस्त्री तदातस्यगर्भस्यमातृजादीनामवयवानामन्यतमोवयवो वि कृतिमापद्यते।

अर्थ–दोषप्रकोपोक्त पदार्थों के सेवन करने से दोष कुपित होकर जब स्त्रीके शरीरमें विचरते हुए रुधिर गर्भाशय में प्राप्त होते है तब स्त्रीके रज और गर्भाशय को नष्ट करते हैं। यदि रज और गर्भाशय संपूर्ण को दूषित न करे उस समय यदि गर्भको धारण करे, तो उस गर्भ के मातृज अवयवोंमेंसे कोईसा अवयव विकृति को प्राप्तहो। अर्थात् जो माता के अङ्ग है उसी अङ्ग का विकृतिवान् बालक होता है।

एकोऽथवानेकोह्यस्ययस्यह्यवयवस्यबीजेबीजभागेवा दोषाःप्रकोपमापद्यन्ते तंतमवयवंविकृतिराविशति।

अर्थ–एक अथवा अनेक दोष इस पुरुष के जिस जिस अवयव (अंग) के बीज में अथवा बीजके किसी भागमें कोपको प्राप्त होते हैं, तो गर्भके उसी उसी अंगकी विकृति होती है।

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयबीजभागः प्रदोषमापद्यते त दावंध्यांजनयति । यदापुनरस्याः शोणितेगर्भाशयबीज भागावयवःस्त्रीकराणाञ्चशरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदो षमापद्यते । तदास्याकृतिभूयिष्ठामस्त्रियांवार्त्तानाम्नीं जनयतितांस्त्रीव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ-जिस समय स्त्रीके रज, गर्भाशय और बीजभागदोषों से दूषित होय,तब स्त्री वन्ध्या कन्या प्रगट करे । अर्थात् उस स्त्रीके जो पुत्री होय सो वंध्या होवे । और यदि स्त्री के रज गर्भाशय और बीजभागका कोईसा अवयव अथवा स्त्रीके करने- वाले शरीर बीजभागों का कोईसा एकदेश दूषित होय तो उसके स्त्री की आकृति जिसमें अधिक ऐसी (अस्त्री वार्त्ता नामक) प्रगट करे उसको स्त्रीव्यापद अर्थात् स्त्रीव्याधि कहते हैं ।

एवमेवपुरुषस्ययदाबीजेबीजभागः प्रदोषमापद्यतेतदावंध्यंज नयति । यदापुनरस्यबीजेबीजभागावयवः प्रदोषप्रतिप्र जंजनयति । यदात्वस्यबीजेबीजभागावयवः पुरुषकराणांच शरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यतेतदापुरुषाकृतिभू यिष्ठपुरुषंतृणपूलिनामजनयति तांपुरुषव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ-उसी प्रकार पुरुष के वीर्यमें अथवा वीर्यके किसी भागमें दोष प्राप्त होते हैं तब उस पुरुषके वीर्य से वंध्य पुत्र होता है।अर्थात् जो संतान प्रगट न करसके ऐसा पुत्र होय।और जिस समय इस पुरुष के वीर्य तथा वीर्य भागके किसी एक अवयव में दोष कुपित हो तो प्रतिप्रज पुत्र प्रगट करे, यदि इस पुरुष के बीजमें अथवा बीजभाग के अवयवों में तथा पुरुषकर्त्ता शरीर बीजभागों का एक देश दोषों से दूषित होवे, तो उस पुरुष से पुरुषाकृति जिस में अधिक ऐसा अपुरुष (तृणपूलि नामक) प्रगट करे, उसको पुरुषव्यापद अर्थात् पुरुषव्याधि कहते हैं ॥

जन्मांध तथा लाल पीले सफेद और विकृत ऐसे नेत्र होनेके कारण कहते हैं ।

तन्नदृष्टिभागामप्रतिपन्नंतेजोजात्यन्धंकरोति तदेवरक्तानुगतंरक्ताक्षं पित्तानुगतंपिङ्गाक्षं श्लेष्मा नुगतंशुक्लाक्षं वातानुगतंविकृताक्षमिति ।

अर्थ-तहां पूर्वोक्त तेज चतुर्थ महिने इन्द्रियो के विभाग काल मे पूर्व जन्म के-दुष्कर्म करके दृष्टि भागमें न प्राप्त होनेसे गर्भको जन्मान्ध करे है। उसीप्रकार वही तेज रुधिरसे मिलकर दृष्टिभाग मे जानेसे गर्भवाले बालकके लाल नेत्र होतेहैं उसी प्रकार पित्त से मिलकर दृष्टिभागमे जानेसे पीले नेत्र करे है। और कफ-संयुक्त होनेसे गर्भ के श्वेत नेत्र करे है, वादीसे मिलकर दृष्टि भागमे तेज पहुं-चने से विकृताक्ष अर्थात् कांणा, भेड़ा, ऐंचाताने नेत्र करे है (और दो तीनदोषोंके मिलाप होनेसे, कंजा, गुलाबी, तथा धूंधरे आदि नेत्रवाला गर्भ होता है।)

शिष्य-पुराना आर्त्तव जो इकट्ठा हुआ है, सो तो तीन दिन मे स्रवकर निवृत्त होजाता है, और जो नवीन आर्त्तव है, सो थोड़ा होता है वह प्रवृत्त नही होसके, फिर आर्त्तव का संचार होकर शुक्रसे मिलकर केसे गर्भाशय मे प्राप्त हो गर्भरूप होता है।

गुरु-इसका यह कारण है।

घृतकुम्भोयथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते।
विसर्पत्यार्त्तवंनार्यास्तथापुंसांसमागमे॥

अर्थ-जैसे जमे हुए घृतका घड़ा अग्निके संयोगमें पिगलता है उसी प्रकार दोनों इन्द्रियोंके संघर्षणसे प्रगट जो ऊष्मा (गरमी) उस करके स्त्रियोंका आर्त्तव पतला हो, शुक्रसे मिल कर गर्भाशयमे प्राप्त होवे तदनंतर जीवांशसे मिल गर्भ होनेका कारण होता है। जेसे पुरुषके शुक्र होता है उसी प्रकार स्त्रीके भी शुक्र हो-ता है यह प्रमाण आगे ३ अध्यायमे लिखेगे।

ऋतौस्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः।
मेढ्रयोन्याभिसंघर्षाच्छरीरोष्मानिलाहतः॥
पुंसःसर्वशरीरस्थं रेतोद्रावयतेऽथतत । वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यङ्गनाभगे॥ तत्संश्रुतव्यात्तमुखं यातिगर्भाशयं प्रति। तत्रशुक्रवदायाते आर्त्तवेनयुतंभवेत्॥

अर्थ-ऋतुमें जिस समय स्त्रीपुरुषका संयोग होता है, तब कामदेवके वेग से और लिंग योनिके परस्पर घिसनेसे, शरीरकी गरमी वायुसे ताडित हो, पु-रुषके सर्व देहमे रहनेवाला जो वीर्य है उसको पतला कर बहाता है। वह मेढ़ कर एकत्र होता है, उसको वायु लिंगेन्द्री द्वारा स्त्रीकी भगमें गेरता है। वह वीर्य खु-ले मुखवाले गर्भाशयके प्रति जाता है उसमे वीर्यके सदृश आनेवाले रुधिरसे मिल जाता है।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ।
गर्भःसंपद्यतेनार्यः सजातोबालउच्यते ॥

अर्थ—कामसे स्त्री पुरुषोका संयोग होनेके अनंतर शुद्ध शोणित और वीर्यसे स्त्रीको जो गर्भ होता है, वो जन्म लेने से बालक कहाता है। पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रुधिर यदि शुद्ध होय तो गर्भ शुद्ध होता है। और अशुद्ध होने सें गर्भ भी अशुद्ध होता है। इस्में प्रमाण लिखते है।

दम्पत्योःकुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यंतयोर्जातं ज्ञेयंतदपिकुष्ठितमिति ॥

अर्थ—जिन स्त्री पुरुषोंके कुष्ठ नामक भारी रोग होने से, रुधिर तथा वीर्य बिगड गये हों, उन कुष्ठवाले स्त्री पुरुषों सें जो संतान होय वह भी कुष्टरोगी होय है।

शिष्य—हे गुरो! यमल (जोडा) होनेका क्या कारण है।

गुरु—यमल होनेका कारण पवन है। यथा।

बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वेबीजे ॥ कुक्षिमाश्रिते ।
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥

अर्थ—बीज कहिये मिश्रित शुक्र शोणित, वे दोनों भीतरकी पवन से दो भाग होकर गर्भाशयमें गर्भरूप हो कर रहते है, उन्को यमल (जोहडले) कहते है। वे दोनों धर्मके पुरोगामी है परंतु [गयी आचार्य] ऐसा अर्थ करे हैं कि, धर्म से इतर अधर्मके पुरोगामी है। क्योंकि श्रुतिस्मृतियोमें सर्वत्र यमलकी उत्पत्ति अधर्म सेही कही है। इसी से यमल (जोडा) होनेमें प्रायश्चित्त कहा है। किसी किसीके तीन चार आदि भी बालक होते है। २ नम्बरका चित्र देखो।

शुक्राधिकेंद्वयमुपैतिबीजं यस्याः सुतौसासहितौप्रसूते ।
रक्ताधिकंवायदिभेदमेति द्विधासुतेसासहितेप्रसूते ॥ भि
नत्तियावद्बहुधाप्रपन्नशुक्रार्त्तवंवायुरतिप्रवृद्धः । तावन्त्य
पत्यानियथाविभागं कर्मात्मकान्यस्ववशात्प्रसूते ॥

अर्थ—शुक्रकी अधिकता से जिस स्त्री की कूखमें बीजके दो विभाग हो जाये वह एक साथ दो पुत्र प्रगट करे। उसी प्रकार रुधिरके दो विभाग होने से एक साथ दो कन्या उत्पन्न करती है। अतिबली दुष्ट पवन शुक्र आर्त्तवके जितने विभे-

प विभाग करे, उतनीही संतान यथा विभाग पूर्वक स्त्री प्रगट करती है। यदि शुक्र अधिकके पवन अनेक विभाग करे तो अनेक पुत्र होवें, और स्त्री का रुधिर अधिक होय उसके जितने विभाग करे उतनीही कन्या प्रगट होती है। यदि शुक्र और रुधिरके न्यूनाधिक मिल कर दो टुकडे होय तो एक कन्या एक पुत्र होवे शूकर और कुत्तोंकी जातिमें सदैव विशेष संतान होनेका यही कारण है, ३ नम्बरका चित्र देखो।

कर्मांशकत्वाद्विषमांशभेदाच्छुक्रासृजौवृद्धिमुपैतिरूक्षौ ।
एकोऽधिकान्यूनतरोद्वितीया एवंयमेप्यभ्यधिकोविशेषः॥

अर्थ-पूर्वजन्मोपार्जित कर्मांशकी विषमतासे शुक्र और रुधिर रूक्ष वृद्धिको प्राप्त होते है, तब एककी अधिक वृद्धि होती है दूसरेकी न्यून होती है, इसीसे एक बालक मोटा होता है और एक पतला होता है।

शिष्य-कभी कभी संतानवाली स्त्री भी देरीमें संतती क्यो प्रगट करती है तथा किसी किसी स्त्रीके गर्भ हो कर नष्ट हो जाता है, परंतु नष्ट होता हुआ नहीं मालूम हो इसका क्या कारण है सो कहो?

गुरु-इसका यह कारण है सो सुनो।

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छुक्रासृगाहारविहारदोषात् ।
अकालयोगाद्बलसंक्षयाच्चगर्भंचिराद्विन्दतिसप्रजाऽपि ॥
असृङ्निरुद्धं पवनेननार्यागर्भंव्यवस्यन्त्यबुधाः कदाचित् ।
गर्भस्यरूपंहिकरोतितस्यास्तदस्रमस्रावीविवर्द्धमानम् ॥

अर्थ-योनिके दोषसे, मनके तापसे, वीर्य रुधिर और आहार विहारके दोष से दुष्ट समयके योग से, बल क्षीण होने से, इन कारणों से संतानवालीभी स्त्री देरीमें गर्भ धारण करती है। किसी किसी स्त्रीके पवन करके रुधिर रुकजाने से पेटमे गोलासा हो जाता है। उसको मूर्ख मनुष्य गर्भ बताते है। यह रुधिरके एकत्र होने से गर्भके से लक्षणवाला दिन २ प्रति बढता है।

तदग्निसूर्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवाप्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वासृगेकेनचगर्भसंज्ञाः केचिन्नराभूतहृतंवदन्ति॥

अर्थ-पूर्वोक्त रुधिर, अग्नि, सूर्य, परिश्रम, शोक, और रोगों से तथा गरम अन्न पान करके तपायमान हो निकलने लगे उसको देख कर कोई मनुष्य कहते है

कि इसको गर्भ नहीं है, और उसीको कोई मूर्ख मनुष्य भूत हत अर्थात् भूतबाधा से गर्भ नष्ट हो गया ऐसा कहते हैं ।

पंचपंडोंकीउत्पत्तिकाकारणकहतेतिनमें
आसेक्यपंड (नपुंसक)के लक्षण ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यःपुरुषोभवेत् ।
सशुक्रंप्राश्यलभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥

अर्थ-गर्भाधानके समय माता पिताके अत्यंत अल्प वीर्य होने से जो गर्भ रहना है, उससे आसेक्य नामा पंड उत्पन्न होता है । वह अपने मुखमे दूसरेके मैथुन करने से जो प्रगट वीर्य, उसको भक्षण करे तब उसकी लिंगेन्द्री उठे उसका दूसरे नाम मुखयोनी है ।

सौगंधिकपंड ।

यःपूतियोनौजायेत ससौगंधिकसंज्ञितः ।
सयोनिशेफसोर्गन्धमाघ्रायलभतेबलम् ॥

अर्थ-दुर्गंध योनिवाली स्त्री से जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह सौगंधिक महापंड कहाता है वह लिंग और योनिको सूंघे तब लिंग चैतन्य होय, उसका दूसरा नाम नासायोनि जानना ।

कुम्भिकपंडके लक्षण ।

स्वेगुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीपुपुंवत्प्रवर्तते । कुम्भिकः सतुविज्ञेयः ॥

अर्थ-जो पुरुष प्रथम अपनी गुदा भंजन करावे, तब उसके लिंग में चैतन्यता प्राप्त होने से स्त्रियों में पुरुष के समान प्रवृत्त हो । उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं । [कोई आचार्य] ऐसा अर्थ करते हैं, कि प्रथम स्त्रियों की गुदामें पशुके समान पिछाड़ी चटकर शिथिल लिंग से उन्होंकी गुदा भंजन करे, किस निमित्त की [ब्रह्मचर्यात्] ब्रह्मचर्य करने से जो नपुंसकता प्राप्त हुई उसके दूर करने को यह कर्म करता है, अतएव इस विकृति के करने से जब लिंग चैतन्य हो तब स्त्रियों में पुरुष के सदृश प्रवृत्त हो, उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं । इसी का दूसरा नाम गुदयोनि है । इस की उत्पत्ति का कारण ग्रन्थान्तरों में इस प्रकार लिखा है ।

मातुर्व्यवायप्रतिमेनवक्रीस्याद्बीजदौर्बल्यतयापितुश्च ।

अर्थ-गर्भाधान के समय माताके विपरीत मैथुन करने से और पिताके वीर्य निर्बल होने से कुंभिक संतान होती है । [गयी आचार्य] कुंभिककी उत्पत्तिके हेतु में काश्यपोक्त श्लोक कहता है । यथा

अरजस्कायदानारी श्लेष्मरेताव्रजेद्यतौ ।
अन्यसक्ताभवेत्प्रीतिर्जायतेकुम्भिलस्तदा ॥

अर्थ-गर्भाधान के समय अल्प रजवाली स्त्री में, कफरेता अर्थात् शिथिल रेतवाला पुरुष गमन करे, उस पुरुष से उस स्त्री की काम शांति न होने से अन्य पुरुष के साथ मैथुन करने की इच्छारहे, उस कालमें जो गर्भ रहे उससें कुंभिल पंढ उत्पन्न होता है ।

ईर्ष्यकके लक्षण ।

ईर्ष्यकंशृणुचापरम् ॥ दृष्ट्वाव्यवायमन्येषांव्यवाये
यःप्रवर्त्तते ॥ ईर्ष्यकःसतुविज्ञेयोदृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥

अर्थ-अब ईर्ष्यक के लक्षण सुनो । जो पुरुष औरों को मैथुन करता देखकर आप मैथुन करने को प्रवृत्त हो, (अर्थात् जब तक दूसरे को मैथुन करता हुआ न देखे तबतक लिंग खडा न हो) उसको ईर्ष्यक पंढ कहते हैं, तथा दृग्योनि यह इसका दूसरा नाम है ।

अत्रापितंत्रांतरपठितोहेतुर्यथा ।

ईर्ष्याभितापावपिमन्दहर्षादीर्ष्याह्वयस्यापिवदन्तिहेतुम् ।

अर्थ-गर्भाधान के समय दोनों स्त्री पुरुष, परोत्कर्ष के असहन करके पराभव को प्राप्त हो चिंतातुर होकर मैथुन करने को प्रवृत्तहोंवे, उस समय जो गर्भ रहे उससे ईर्ष्यक पंढक होता है ।

स्त्र्याकृतिपंडकेकारणऔरलक्षण ।

पंडकंशृणुपञ्चमं॥योभार्यायामृतौमोहादङ्गनेव
प्रवर्त्तते । ततस्त्रीचेष्टिताकारो जायतेपंडसंज्ञितः ॥

अर्थ-पंचम पंढ (नपुंसक) के लक्षण सुन । जो पुरुष मूर्खता से ऋतुकाल-में भार्य्या के विषे आप नीचे स्त्री के सदृश चित्त लेटकर मैथुन करावे, उस

काल में पुरुष के वीर्य से स्त्री कीसी चेष्टावाला षंढ उत्पन्न होता है । यह स्त्री के सदृश आप नीचे सोयकर अपने शिश्न (लिंग) पर अन्य पुरुष से वीर्य गिराताहै तब इसकी शांति होतीहै । इसप्रकार नरषंढ कहकर अब नारीषंढ कहते हैं ।

स्त्रीषंढकेलक्षण ।

ऋतौपुरुषवद्वापि प्रवर्तेताङ्गनायदि ।
तत्रकन्यायदिभवेत्साभवेन्नरचेष्टिता ॥

अर्थ–जो स्त्री, पुरुष को नीचे सुलाय आप पुरुष के सदृश ऊपर चढ़के मैथुन करे, उस समय जो गर्भ रहे उस गर्भ से जो कन्या होय वो पुरुष कीसी चेष्टावाली होवे । अर्थात् वह स्वयं स्त्रीरूपभी है, परन्तु पुरुषके सदृश दूसरी स्त्री के ऊपर चढ़ उसकी योनिसे अपनी योनिको घर्षण करे ।

शिष्य–स्त्री षंढ और पुरुष षंढमें अंतर कुछ भी नहीं मालूम हो, अर्थात् दोनोंमें स्त्री ऊपर चढ कर मैथुन करती है । फिर दो प्रकारके षंढ कैसे होते हैं । और मेरी समझमें तो दो पाठ भी न लिखने चाहिये ।

गुरु–तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इन दोनों षंढोंमें स्त्री पुरुषोंका मन कारण है । अर्थात् पुरुष षंढमें पुरुष अपनी इच्छा से स्त्रीको ऊपर चढ़ा कर मैथुन करता है, और स्त्री षंढमें स्वयं स्त्री पुरुषके ऊपर चढ़कर मैथुन करती है । अतएव दो भेद होते हैं और इसी से ग्रन्थकर्त्ताने पाठभी पृथक् पृथक् लिखे हैं । अब कहे हुए षंढोंके स्मरण रहनेके लिये संग्रह एक श्लोक से कहते हैं ।

षण्ढसंग्रहश्लोक ।

आसेक्यश्चसुगंधीच कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
सरेतसस्त्वमीज्ञेया अशुक्रःषंडसंज्ञितः ॥

अर्थ–आसेक्य, सुगंधी, कुंभिक, और ईर्ष्यक, इन चार षंढोंमें तो वीर्य है । और स्त्री कीसी चेष्टावाला जो पांचवा षंढ है, उसमें सर्वथा वीर्य नहीं होता ।

शिष्य–यदि आप इन्होंमें शुक्र कहते हो तो फिर षंढ कहना नहीं हो सके क्योंकि जो शुक्रवान् है वह षंढ कदाचित् नहीं होता ।

गुरु–इसका कारण यह है ।

अनयाविप्रकृत्यातु तेषांशुक्रवहाः शिराः ।
हर्षात्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत् ॥

अर्थ–पूर्वोक्त चार षंढोंके भी शुक्र नहीं है, परंतु इनकी विरुद्ध चेष्टा (वीर्य

भक्षण, योनि लिंगका सूंघना, गुदा भंजन, और परमैथुन देखना) इन कर्मोंके करने सें उन पुरुषोंकी शुक्र वहनेवाली शिरा हर्षयुक्त होकर फूलती है, इसी सें लिंग चैतन होता है। किंतु वीर्यके बल सें लिंग नहीं उठे अतएव इनको भी षंढ़ कहते हैं। यह नपुंसक दोष स्त्रियोंमें भी होते हैं। इस विषयमें चरकका प्रमाण (नरनारी पण्ढाइत्युक्तम्)।

अनुक्तदेहवाणीऔरमनइनकेभेदकाहेतुकहतेहैं।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिःसमन्वितौ।
स्त्रीपुंसौसमुपेयातां तयोःपुत्रोपितादृशः॥

अर्थ-माता पिता जैसें आहार, आचार और चेष्टा इन सें युक्त हो मैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, उसी उसी प्रकारके गुण उनकी संतानमें होते हैं (निर्लज्ज, लज्जावान्, हास्यप्रिय, और आलस्ययुक्त इत्यादिकोंका यही पूर्वोक्त कारण है)

अति पाप करके पंड सें भी निकृष्ट गर्भ उत्पन्न होता है
उनके कारण कहते हैं।

यदानार्यावुपेयातांवृषस्यन्त्यौकथञ्चन।
मुञ्चन्तःशुक्रमन्योऽन्यमनास्थिस्तत्रजायते॥

अर्थ-जिस कालमें दो स्त्री अति दुर्जय काम सें पीडित हो, मैथुन करनेकी इच्छा करती हुई आपसमें मिल कर योनि सें योनिको मिलाय, परस्पर अपने अपने वीर्यको किसी प्रकार सें त्याग करे। उस कालमें उन सें अनस्थि (हड्डीरहित) गर्भ उत्पन्न होता है। अनस्थिके कहने सें थोडी और कोमल हड्डी होती हैं ऐसा जानना क्योंकि इस जगे ईषदर्थमें नञ् शब्द है।

स्वप्नमैथुनसेंगर्भसंभवकहतेहैं।

ऋतुस्नातातुयारी स्वप्नेमैथुनमावहेत्। आर्त्तवंवायुरादाय स्वप्नेगर्भकरोतिच।मासिमासिविवर्द्धेत गर्भिण्यागर्भलक्षणम्। कललंजायतेतस्या वर्जितंपैतृकैर्गुणैः॥

अर्थ-ऋतुस्नाता स्त्री चतुर्थ दिवस सें लेकर बारह रात्रिपर्यंत कदाचित् स्वप्न में मैथुन करे, उस समय उस स्त्रीके शुद्ध आर्त्तव कोही पवन लेकर गर्भाशयमें गर्भ स्थापन करे है। उस गर्भ करके गर्भिणीके लक्षण प्रति महिनेके महिने बढते हैं। और उस गर्भ सें कलल उत्पन्न होता है तथा पिताके लक्षण (केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु और धमनी) इन लक्षण करके रहित मनुष्याकृति (मां-

सका लोथडा सा होय है उसको कठल कहते हैं) ये दोनों श्लोक जेज्जट सुश्रुतकी टीकाकारने नहीं लिखे ।

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयस्तुये ।
गर्भास्त्वेवंविधास्त्वेते ज्ञेयाःपापकृतोभृशम् ॥

अर्थ-सर्प, विच्छु, कूष्मांड (गोलासा) इनके सदृश तथा विकृतस्वरूपवाले (जैसे विकराल अति लम्बे, अत्यंत छोटे, अधिक अंगवाले, छंगा आदि न्यून अंगवाले चार चार तीन तीन उंगली आदि के, तथा बंदर, बिलाव, आदि की सूरतवाले, इत्यादि) ये सब गर्भ प्रसूताके पाप, करने से होते हैं ३ नम्बर का चित्र देखो ।

कुब्जादिगर्भोंकेकारणकहतेहैं ।

गर्भोवातप्रकोपेन दोहदेवाविमानिते ।
भवेत्कुब्जःकुणिःपङ्गुर्मूकोमिम्मिणएवच ॥

अर्थ-वात के कोपसे, तथा माता के दोहद के अपचारकरके गर्भ कुबड़ा, टोंटा पांगुरा, गूंगा, और मिनमिना बोलने वाला, अथवा तोतला होता है ।

शिष्य-आपने जो कुबडे, गूंगे आदि होने कहे सो माता पिताके अपराधसे होते हैं कि स्वकृत दुष्कर्म से अथवा वातादि दोषोंसे होते हैं ।

गुरु-इसका कारण इस प्रकार है ।

मातापित्रोस्तुनास्तिक्यादशुभैश्चपुराकृतैः ॥
वातादीनांचकोपेन गर्भोवैकृतिमाप्नुयात् ॥

अर्थ-माता पिताके नास्तिकपने से (अर्थात् पाप पुण्य वेद ईश्वरको न मानना) तथा पूर्व जन्म के दुष्कृत करके वातादि दुष्ट होते हैं उन वातादि की दुष्टता से गर्भ विकृत होता है, विकृत शब्द करके आडे तिरछे शल्यरूप मूढ गर्भ भी जानने चाहिये, अर्थात् मूढ गर्भ भी माता पिता और स्वकृत अपराधसे होता है ।

शिष्य-गर्भाशय में बालक मल मूत्रादि क्यों नहीं करे ।

गुरु-मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोःपक्वाशयस्यच ।
वातमूत्रपुरीषाणि नगर्भस्थःकरोतिच ॥

अर्थ-गर्भ के शरीर में मल अल्प है, तथा पक्वाशयसम्बन्धी पवन न

होने से (अर्थात् थोडे होने से) गर्भाशयस्थ प्राणी वात, मूत्र, मल इन का परित्याग नहीं करे।

शिष्य-गर्भ में बालक क्यों नहीं रोता है।

गुरु-जरायुणामुखेछन्ने कण्ठेचकफवेष्टिते ।
वायोर्मार्गनिरोधाच्च नगर्भस्थःप्ररोदिति ॥

अर्थ-जरायु करके मुख आच्छादित होने से, और कंठ कफ करके वेष्टित होने से तथा वायु के मार्ग रुकने से गर्भस्थित बालक नहीं रोता है। इस जगे वायुका मार्ग रुकजाना इस कहने से शब्दजनक पवन का ग्रहण है। निःश्वासादिरूप वायु का निकलना तो आगे कहेंगे, क्योंकि विना श्वास के तो गर्भ का जीवनही दुर्लभ है।

शिष्य-यदि आप गर्भ को श्वास लेना मानों गे तो प्रमाण दीजिये कि वह कैसे श्वास लेता है, क्योंकि गर्भाशय में श्वास लेने को इतनी पवन नहीं है।

निश्वासोच्छ्वाससंक्षोभात्स्वप्नान्गर्भोधिगच्छति ।
मातुर्निःश्वाससंश्वास संक्षोभात्स्वप्नसंभवात् ॥

अर्थ-गर्भ के श्वास, उच्छ्वास, तथा चलन, वलन, निद्रा इत्यादिक क्रिया माता के श्वासादिक करके होती है, अर्थात् माता जो जो श्वासादिक चेष्टा करती है वही गर्भ भी करे है।

शरीरजन्यअवयवोंकेसन्निवेशादिकाहेतुकहते हैं।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्भवौ ।
तलेष्वसम्भवोयच्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ-गर्भके अवयवोंकी रचना विशेष, तथा दांतोंका उत्पन्न होना और गिरना तथा हथेली में रोमका न होना ये सर्व स्वभाव करके होते हैं।

पूर्वजन्माभ्यासकेसदृशबुद्ध्यादिकहोती हैं।

भावितापूर्वदेहेषु सततंशास्त्रबुद्धयः । भवन्तिस
त्वभूयिष्टाः पूर्वजातिस्मरानराः ॥

अर्थ-पूर्व देहमें जिस गुणका अत्यंत अभ्यास था, वेही गुण वर्त्तमान देहमें होते हैं, तथा जिस पुरुषका अंतःकरण पहली देहमें जिस शास्त्रमें संस्कारविशेष करके तन्मय हुआ होगा, वो पुरुष वर्त्तमान देहमें उसी शास्त्रका ज्ञाता होगा तथा जे पूर्व देहमें

सतोगुण प्रधान थे वो इस वर्त्तमान देहमें सतोगुण बहुल होते हैं । तथा व्यतीत जन्मकी जातिके स्मरण रखने वाले होते हैं । शरीर, वाणी, और मन इनके पूर्वोक्त जाति स्मरणादिक गुण वे स्वभावादि करके सिद्ध होते हैं ।

यद्यपिसर्वस्वभावादिसिद्धभीहैतथापिकर्महीमुख्य है ।

कर्मणानोदितोयेन तदाप्नोतिपुनर्भवे । अभ्य
स्ताःपूर्वदेहेये तानेवभजतेगुणान् ॥

इति सौश्रुतशारीरे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ-पूर्व जन्मोपार्जित कर्मका प्रेरा हुआ, ऐसा पूर्व देहमें जिस गुणमें अभ्यास पड़ा होगा उन्हीं गुणोंको इस वर्त्तमान देहमें पाता है । (तथापि असत्कर्मों से बचना चाहिये ।)

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे पष्टस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

शुद्ध शुक्रार्त्तव से गर्भका होना संभव है, इसीसे शुक्रार्त्तवकी शुद्धि कहनेके अनंतर गर्भकी अवतरणक्रिया करना उचित है, अतएव उसी अवतरणक्रियाको कहते हैं ।

अथातोगर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-अब कहिये शुद्ध शुक्रार्त्तवकी शुद्धि कहनेके अनंतर गर्भकी अर्थात् गर्भाशयमें रहने वाला हो कर आत्मा और प्रकृति इन करके संमूर्च्छित हुआ ऐसा जो शुक्रार्त्तवोंका संयोग उसको गर्भ ऐसा कहते हैं । उसकी अव क्रांतिकहिये अवतरण अर्थात् गर्भाशयमें प्राप्त हो । उसमें अवयववान् होना वह अ-क्रांति जिसमें है ऐसी शारीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

गर्भकेमूलकारणशुक्रआर्त्तवहै, इसीसेंशुक्रार्त्तवकास्वरूपकहतेहैं ।

सौम्यंशुक्रमार्त्तवमाग्नेयम् ॥

अर्थ-वीर्य सौम्य (उदक) गुणविशेष है, और स्त्रियोंका पुष्प तेज गुण विशेष है ।

शिष्य-शुक्रार्त्तव तो आप पंचभूतात्मक कह आए हो फिर इस जगे जल और तेजरूपही कैसे कहते हो ।

गुरु---इतरेषामपिभूतानांसान्निध्यमस्त्यणुनाविशेषेण।

अर्थ-दोनो शुक्र आर्त्तव वे [इतर कहिये] पृथ्वी, पवन, और आकाशआदि तत्वोंकाभी सूक्ष्म रूप करके आश्रयत्व हे।

इसकाकारणकहतेहैं।

परस्परोपकरणात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च॥

अर्थ-पृथिव्यादिक पंचमहाभूत अपने अपने गुण, परस्पर एक दूसरेको दे कर आपसमें उपकार करते हे। [स्पष्टार्थ यह है कि पृथ्वीका गुण धारण उस करके इतर आकाशादिको पर उपकार करे है। जलका गुण संहरण उस करके वो औरों पर उपकार करे हे। तेजका गुण परिपाक करना, पवन का गुण अव्यूह, आकाश का गुण अवकाश देना, ऐसे उपकार करते हैं। तात्पर्यार्थ यह है कि घटादि पार्थिव द्रव्यमें पृथिव्याख्य भूत एक बली है, और जल पवन आदि चार भूत दुर्बल हैं, तथापि वे अपना आश्रय दे कर उसपर अनुग्रह करते हे [उसी प्रकार जल आकाशादि अन्न द्रव्यमें उदकादिक इतर चार द्रव्य अपने अपने में बलिष्ठ होकर बाकी जो पृथिव्याख्य भूत हे उन पर अनुग्रह करते हे] तथा परस्पर अन्योन्य प्रविष्ट हे [अन्योऽन्याऽनुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत्] इस वाक्य करके प्रथम कह आए हे, इसी से गर्भजननविषयमें अन्य भूतोंका सान्निध्य है ऐसे जानना चाहिये।

गर्भकीअवतरणक्रियाकहतेहैं।

तत्रस्त्रीपुंसयोः संयोगेतेजःशरीराद्वायुरुदीरयति ।
ततस्तेजोनिलसन्निपाताच्छुक्रंच्युतंयोनिमभिप्र
तिपद्यतेसंसृज्यतेचार्त्तवेन।

अर्थ-तहां (स्त्री पुरुष संयोग) कहिये, स्त्री पुरुषोंकी स्पर्श विशेषकी इच्छा करके आरंभ करा प्रयोग अर्थात् मैथुन उसमें (तेज) कहिये स्त्री पुरुष दोनोंकी इन्द्रीके संघर्षण करके उत्पन्न हुआ जो ऊष्मा उस से वायु शरीर से उठता हे, तदनंतर उस तेज करके पुरुषका रेत पतला हो कर वायुके योग करके स्वस्थान से छूट योनिमे गिर फिर सर्वयोनिमें व्याप्त हो आर्त्तव से मिलता है।

ततोग्नीषोमसंयोगात्संसृज्यमानोगर्भाशयमनुप्रतिपद्यते।
क्षेत्रज्ञोवेदयितास्प्रष्टाघ्राताद्रष्टाश्रोतारसयितापुरुषः स्र

प्रागन्तासाक्षीधातावक्ताय-कोसावित्येवमादिभिः पर्याय वाचकैरभिधीयते देवसंयोगात् । अक्षयोव्ययोचिन्त्योभू तात्मनासहाचक्षसत्त्वरजस्तमोभिर्देवासुरैश्चभावैर्वायुनाच प्रेर्यमाणोगर्भाशयमनुप्रविश्यावातिष्ठते ।

अर्थ–शुक्रार्त्तव करके योनिके तीसरे आवर्त्तमें पंचभूतात्मक और छटवां चेतना, धातुके संयोग करके इसकी गर्भत्व संज्ञा है । उस संयोगको दिखाते हैं ततइत्यादि-तहां (अग्नीषोम) कहिये शुक्र आर्त्तवोंका संयोग होनेके अनंतर उसी क्षणमें (क्षे, त्रज्ञ) कहिये पंचमहाभूतोंका रचित शरीर रूप क्षेत्रका जानने वाला कर्म पुरुष-वह शुक्रार्त्तव संयोगके विषे प्रतिबिम्बित होकर गर्भाशयके प्रति जाता है । वह कौनके साथ जाता है सो कहते हैं, सूक्ष्म लिंग शरीरके सह वर्त्तमान जाता है । और सत्व, रज, तम, स्वरूप प्राकृत गुणों करके युक्त तथा ब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, गंधर्व, यम, और ऋषि इन सात देवोंके सात्विक भाव तिन करके किंवा असुर, सर्प, शकुनी, राक्षस, पिशाच, और प्रेत, ये छः असुरादिक राजसी भाव करके अथवा पशु, मत्स्य, और वनस्पति ये तीन तामस भाव करके युक्त मनहुआ गर्भाशयके प्रति जायकर रहता है ।

कौनरहताहै, यहकहते हैं ।

यःकोसावित्यादि ।

अर्थ–मुनीश्वर जिसको यः, कः, असौ, इत्यादिक पर्यायवाचक करके बोलते हैं । इस जगे आचार्यने (यः कः) ये सर्वनाम बोधक दो पद कहे हैं; इन से ऐसी सूचना करी है कि, क्षेत्रज्ञ परम दुर्बोध है, और सर्वगामी है, उस क्षेत्रज्ञका ज्ञान सद्गुरुके उपदेश बिना नहीं होता है । ऐसा दिखाया है । अब उसके नामोंको कहते हैं । (वेदयिता) कहिये मनका प्रवर्त्तक, (स्प्रष्टा) कहिये त्वगिन्द्रियको स्पर्शज्ञान देने वाला, (घ्राता) घ्राण (सुंघने) वाला (द्रष्टा) रूपेन्द्रियद्वारा रूपका बोधक, (श्रोता) कर्णेन्द्रिय द्वारा शब्द जाननेका कारण वह क्षेत्रज्ञ ऐसा है, तथा क्षेत्रज्ञ पुरुष(पुरिमांतिरेशरीरेवसतीतिपुरुषः; अर्थात् पुर कहिये देह उसमें जो वास करे उसको पुरुष कहते हैं इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाता है, तथा चेतना योग करके उसी को कर्तृत्व है ।

तदुक्तंचरके ।

चेतनावान्यतश्चात्मा ततः कर्त्तानिरुच्यते ।

अर्थ—आत्मा कहिये क्षेत्रज्ञ, वह चेतनायुक्त है । इसी से उसको कर्त्ता कहते हैं, तथा [गंता] गमन करने वाला [साक्षी] जानने वाला [धाता] शरीरादि संयोग के धारण का हेतु (वक्ता) कहिये बोलता है, क्षेत्रज्ञ इस कहने से यह सूचना करी कि कर्मेन्द्रियों का भी वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग, और आनंद का प्रवर्त्तक यही हेतु है ।

शिष्य—यदि वह क्षेत्रज्ञ वेदयिता ज्ञाता इत्यादि स्वरूपेपेत परमर्षियों करके कहाजाता है तो फिर क्लेशकारी गर्भाशय में क्यों वास करता है ।

गुरु—दैवसंयोगादिति

अर्थ—[दैवसंयोगात्] कहिये प्राकृत कर्मों के सम्बन्ध करके आत्मा [अक्षय] कहिये क्षीण नहीं होवे तथा नष्ट नहीं होवे, जो चिंतवन करने में भी नहीं आवे, यद्यपि ऐसा है, तथापि गर्भाशय में प्राप्तहो गर्भरूप करके रहता है ऐसे जानना ।

शिष्य—सत्व कूख में प्रवेश होने से गर्भ को प्राप्त होता है, ऐसा आपने कहा है परन्तु इसका प्रवेश होना प्रगट नहीं दीखे ।

गुरु—इसका समाधान वाग्भटने इस प्रकार लिखा है ।

तेजोयथार्करश्मीनां स्फटिकेनतिरस्कृतम् ।
नेन्धनंदृश्यतेगच्छत्सत्वोगर्भाशयंतथा ॥

अर्थ—जैसे स्फटिक मणिकरके व्यवहित सूर्य की किरणों का तेज उस मणी के नीचे स्थित ईंधन में जाता हुआ नही दीखे जब ईंधन में अग्नि प्रगट हो जाती है तब प्रतीत होती है उसी प्रकार सत्व (जीव) गर्भाशय में जाता हुआ नहीं दीखे। इस जगे सत्वका तो लक्षण मात्र है किंतु गर्भ में प्रवेश करते पंच महाभूत भी नहीं दीसे । परन्तु कार्य करके जाने जाते हैं । उसीप्रकार सत्वके अनुयायी पंचमहाभूतों करके गर्भ कूख में बढ़ता है, केवल पंचमहाभूतों करकेही नहीं बढ़सके इस में दृष्टांत जैसे मरा देह ।

जीवप्रमाणमाहवैष्णवागमे ।

वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्यच ।
भागोजीवःसविज्ञेयः सचानन्त्यायकल्पते ॥

अर्थ—जीव का प्रमाण वैष्णवागम ग्रंथ में इसप्रकार लिखा है कि एक वालके अग्रभागके सौ टूक कर, उस में से एक टुकड़े के फिर सौ टूक करने से जैसा एक टूक होता है, उतनाही जीवका प्रमाण है, वही जीव अनंत कल्पना करा जाता है. भावप्रकाश में भी लिखा है । यथा

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैवखलुजायते । जीवस्तदैवविशति युक्तःशुक्रार्त्तवांतरः ॥ सूर्यांशोःसूर्यमणितोऽनुभयस्मा द्युताद्यथा । वह्निः संजायतेजीवस्तथाशुक्रार्त्तवाद्युतात् ॥

अर्थ–जब शुक्र और आर्त्तव का संयोग होता है, तभी वीर्य और आर्त्तव में युक्त रहने वाला जीवभी प्रवेश करे है । इस में दृष्टान्त है कि, जैसे सूर्य की किरण में रहने वाला अग्नि, तथा सूर्यकांत (स्फटिक मणि आदि) में रहने वाला अग्नि है, परन्तु पृथक् पृथक् रहने से अग्नि प्रगट नहीं होसके, किंतु सूर्य की किरण और सूर्यकांत मणिके एकत्र होने से उसी समय जैसे अग्नि प्रगट होती है । उसीप्रकार वीर्य और रज पृथक् पृथक् रहने से जीव नहीं प्रगट होसके किंतु दोनों के संयोग से जीव प्रगटे हैं । इस में भी यदि सूर्यकिरण तीखी हो, और स्फटिक मणि स्वच्छ हो, तो अग्निहोना संभवहै । अन्यथा नहीं, उसी प्रकार शुक्र आर्त्तव में भी बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिये ।

शिष्य–जीव पंचभूतानुग एक रूप है, फिर मनुष्य, घोड़ा,सर्प, हाथी, वानर आदि अनेक जातियों की आकृति कैसे धारण करे हैं।

गुरु–इसकाभी समाधान वाग्भट ने लिखा है । यथा,

कारणानुविधायित्वात्कार्याणांतत्स्वभावता।
नानायोन्याकृतीःसत्वो धत्तेऽतोद्रुतलोहवत् ॥

अर्थ–कारणके तुल्य स्वभाव वाले सर्व कार्य होते है । इसी हेतु सें कार्योंको तत्सादृश्य है । अतएव कार्य कारणके सादृश्य हेतु सें जीव पंचमहाभूतानुग एक, रूपभी अनेक रूप नाना योनिकी आकृति (प्रतिबिंब विशेषोंको) धारण करे है-कैसें धारण करता है, इसमें दृष्टांत है जैसें, तपा हुआ लोहा अर्थात् जैसें सोना गलने पर एक रूप हो जाता है फिर उसी सोनेको मृत्तिका आदिके बने हुए सं, चेमें पहुंचने सें, जैसा हाथी, घोड़ा, मनुष्य का संचा होवा है उसीके सदृश सोनेका रूप हो जाता है । इसी प्रकार जीव एक रूप है परंतु जैसी जैसी देहोंकी भावना करता है वैसें वैसें रूपोंको धारण करता है । वास्तव सें विचारो तो जैसें, सोनेको मनुष्य दि रूप नहीं है उसी प्रकार इस जीवकाभी कोई रूप नहीं है केवल अविद्या कल्पित भानमात्र है ।

स्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकाकारण ।

अतएवचशुक्रस्य बाहुल्याज्जायतेपुमान् ।
रक्तस्यस्त्रीतयोःसाम्ये क्लीबःस्यात् ।

अर्थ-[अतएव] कहिये पूर्वोक्त कार्य कारण के सदृश हेतु से पुरुष के वीर्य-बाहुल्यता से पुरुष होता है। और स्त्री के रज (रुधिर) की अधिकता से स्त्री होती है। और स्त्री पुरुष दोनोंके शुक्र आर्त्तव समान होने से नपुंसक संतान होती है। इस प्रकार पिताका शुक्र स्त्री के रुधिर से मिल कर गर्भका कारण होता है, केवल पिताका वीर्य अथवा माता का रज मात्रही गर्भका कारण नहीं होवे इस पर दारुवाही आचार्यका प्रमाण है।

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेयद्यादौविसृजेत्पुमान्।शुक्रंततःपुमान्वीरोजायतेबलवान्दृढः॥अथचेद्वनितापूर्वविसृजेद्रक्तसंयुतम्। ततोरूपान्विताकन्याजायतेदृढसंहता॥

अर्थ-स्त्री पुरुषके संयोगमें यदि प्रथम पुरुष शुक्रका परित्याग करे तो बलिष्ठ और दृढ पुरुष उत्पन्न होवे, और यदि स्त्री रक्त मिश्रित शुक्रका पहले परित्याग करे तो परम सुंदर रूपवती दृढ कन्या होवे।

स्त्रीपुरुषयोरेकदैवयदाविसृष्टिर्भवेत् तदापंढोजायते।

उक्तंचवसिष्ठेन।

स्त्रीपुंसयोर्विसृष्टिश्चेदेकदैवभवेद्यदा। पंडस्तदाप्रजायेत इतिमेनिश्चितामतिः॥

अर्थ-यदि स्त्री पुरुष दोनों एकही समय स्खलित होवे तो पंढ (नपुंसक) होवे यह मेरी निश्चित मति है।

अतएव पुत्र गर्भ किंचित् माता के अनुहार होते हैं और कन्या के गर्भ किंचित् पिताके अनुहार होते हैं।

अत्रयुग्मायुग्मातिथिशुक्ररजोवृद्धौदैवहेतुस्तत्रवैखानसमतम्।

यथाबहुलपक्षेपुमस्तुलुङ्गोऽधिकायते। नतथाजायतेशुक्लेस्वभावश्चात्रकारणम्॥

अर्थ-इस जगे समविषम तिथियोंमें शुक्र रजकी वृद्धि होनेमें दैव कारण है, तहां वैखानस ऋषिका मत कहते हैं कि जैसे कृष्णपक्षमें मस्तुलुंग (बिजौरे) की अधिक वृद्धि होती है परंतु शुक्ल पक्षमें उस प्रकारकी नहीं होती (इसी प्रकार वीर्य रज की वृद्धि में समविषम दिन जानने) इन दोनों में स्वभावही कारण है।

शिष्य-आप शुक्र बाहुल्य से पुत्रोत्पत्ति कहते हो यह बात मेरी समझ में नहीं आती क्यों कि सदैव आर्त्तवको अधिकता है। यथा,

मज्जामेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक् । रसोजलञ्चदेहे ऽस्मिन्स्त्वेकैकाञ्जलिवर्द्धितम् ॥ पृथक्स्वप्रसृतंप्रोक्तमो जोमस्तिष्करेतसाम् । द्वावञ्जलीतुस्तन्यस्य चत्वारोरज सःस्त्रियाः ॥ समधातोरिदंमानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः । ›

अर्थ–इस मनुष्य की देह मे मज्जा से आदि ले जलपर्यंत द्रव्य एक एक अंजली की अधिकता से है (जैसे मज्जा १ अंजली मेदा २ वसा ३ मूत्र ४ पित्त ५ कफ६विष्ठा ७ रुधिर ८ रस ९ और जल१०अंजली है) तथा ओज, मस्तिष्क (घृत के तुल्य पदार्थ जो मस्तक में होता है) और रेत (वीर्य) ये तीनों इस देह में प्रत्येक अपने अपने पस्से भर है (दोनों हाथो के मिलाने से जो होता है उस को पस्सा कह ते है) स्त्री का दूध २ अंजली है, रज संबंधी स्त्री का रुधिर ४ अंजली है, सम धातु वाले देह में यह प्रमाण जानना, विषम प्रकृति में यह मान नही है । यह मज्जादिकों के क्षय वृद्धि का प्रमाण समान प्रकृति में जानना चाहिये, विषम प्रकृति अर्थात् (विषम धातु मे) यह प्रमाण यथार्थ नही रहता है । इस प्रमाण द्वारा शुक्र से आर्त्तव सदैव अधिक रहता है। फिर आप शुक्राधिक्य से पुत्रोत्पत्ति कैसे कहते हो ।

गुरु–इस का कारण यह है कि जितना आर्त्तव मल रहित गर्भाशय मे गर्भजनन के लिये चाहिये उस से शुक्र की अधिक और न्यूनता लेनी चाहिये । अथवा अपने अपने प्रमाण की अपेक्षा शुक्र आर्त्तवों की अधिकता और न्यूनता इस जगे विवक्षित है । इस का यह कारण है कि चित में अत्यंत हर्ष होने से, तथा दूध, घृत आदि शुक्र कर्त्ता पदार्थों के सेवन करने से शुक्र (वीर्य) की अधिकता के कारण कभी गर्भाशय में अधिक गिरता है । और कभी शोकाक्रांत वैमनस्य (दुःख) आदि संयुक्त चित्त होने से शुक्र थोडा गिरता है, इसी प्रकार आर्त्तव को भी जानना चाहिये ऐसे सब में प्रसिद्ध है । अन्य आचार्य कहते है कि शुक्रार्त्तवों का न्यूनाधिक्यपना तथा समानता पराक्रम करके होता है । तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरुषो की शरीरशक्ति न्यून अधिक जैसी होय तैसेही शुक्र आर्त्तव होते है ।

शिष्य–हे गुरो! " रसाद्रक्तंततोमांसंमांसान्मेदस्ततोऽस्थिच।अस्थ्नो मज्जाततःशुक्रंशुक्राद्गर्भःप्रजायते „ अर्थात् रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जासे शुक्र और शुक्र से गर्भ की उत्पत्ति होती है । ऐसा लिखा है. कदाचित् आप यह कहो कि स्त्री के शुक्र नहीं होता है पुरुष केही शुक्र होता है । तो यह कहना भी असत्य है क्योंकि इस श्लोक में तथा अन्यत्र यह कहीं नहीं लिखा कि पुरुष के शुक्र होता है स्त्री के नही हो, कदाचित् आप ऐसा-

नहीं माने तो स्त्री के सातवी धातु कौन सी है?यदि आप रज (रजो धर्म के रुधिर-को शुक्रस्थानीय मानोगे तो रुधिर तो प्रथमही लिख आए हे रसाद्रक्तं फिर दूसरे कहन से पुनरुक्ति दूषण आता है। अतएव मेरी समझ में तो शास्त्रद्वारा यह निश्चय होता है कि दानों स्त्री पुरुष सप्त धातु वाले हे, जब सप्त धातुवाले स्त्री पुरुष दोनाहेतो फिर गर्भाधान में स्त्री को पुरुष की कुछ आवश्यकता नही है। स्वयं स्त्रीही कामदेव से पीडित हो केवल पुरुष के स्मरण स्पर्श और दर्शन मात्र सेही चलायमान वीर्य जिस का उसवीर्य को गर्भाशयमे प्राप्त होने से, और रज संबंधी रुधिर के मिलने से गर्भवती क्यों नही होती। क्योंकि गर्भ होने मे शुक्र और आर्त्तवही कारण हैं। सो दोनों स्त्री के समीपही हे, अतएव गर्भ होना संभव है फिर क्यों नही होवे।

गुरु-तुम्हारा कहना बहुत ठीक है परन्तु सुनो भाई इस में पुरुषवीर्यही मुख्य है। जब पुरुष का वीर्य स्त्री के रुधिर से मिलता है उसी समय गर्भ होता है, विना पुरुष वीर्य के स्त्री का वीर्य गर्भ नही करसक्ता। सो रजो दर्शवती स्त्रीके समीप न होने से वे स्वयं अपने वीर्यसे गर्भ धारण नही करसक्ती इसका प्रमाण संग्रह में इसप्रकार लिखा है।

योषितोऽपिस्त्रवन्त्येवशुक्रंपुंसांसमागमे । गर्भस्य
तुनतत्किंचित्करोतीतिनचिंत्यते ॥

अर्थ-स्त्री भी पुरुष के संयोग मे शुक्र को स्रवती है, अर्थात् परित्याग करती है। परन्तु उन्होका वीर्य गर्भाधान के कुछ प्रयोजन का नही है । अतएव उसका वर्णन भी नही करते।

शिष्य-यदि आप शुक्रकी आधिक्यता से पुत्र होता है ऐसा कहोगे तो फिर पुत्रेष्टी आदि पुत्रीकरण जो कहा है उसको व्यर्थता आवेगी।

गुरु-पुत्रेष्टी कर्मके कहने से हमने यह नही कहा कि इस कर्म से पुत्र होवे, किंतु पुत्रेष्टी आदि पुण्य कर्मोंके करने से बालक रूपवत चिरायु और सत्वादि गुणसंपन्न होता है। इसमें प्रमाण पूर्वोक्त कहतेहे।

एवंजातारूपवंतः सत्ववन्तश्चिरायुषः ।
भवन्त्यनृणभोक्तारःसत्पुत्राःपुत्रिणोहिताः ॥

अर्थ-इस वचन से पुत्रीकरण संस्कारादिकों से संस्कृत गर्भ रूपवान्, बलवान्, चिरायु, स्वभुजोपार्जितका खाने वाला, सत्पुत्र माता पिताको आनन्ददायक होता है।

हे वत्स पूर्वोक्त शुक्रार्त्तवका जो प्रमाण कहा है (४ अंजली आर्त्तव और १ पसेभर शुक्र) ये ठीक नहीं है क्योंकि इसी सुश्रुतग्रंथमें लिखा है यथा ।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैवच ।
दोषधातुमलादीनां परिमाणंनविद्यते ॥

अर्थ-देहधारियोंकी विलक्षणता (लंबे, ठिगने, कृश, स्थूल, आदि भेदोंसे) तथा देहके अस्थायित्व (अर्थात् अवस्थादिन रात्रि और ऋतुके भोग होनेसें समान नहीं रहती) इन कारणोंसें, दोष (वातादि) धातु (रस रुधिर वीर्यादि) और मल इत्यादिकोंका परिणाम नहीं है ।

अपत्यजनककालकहतेहैं ।

ऋतुस्तुद्वादशरात्रंभवतिदृष्टार्त्तवः ।

अर्थ-जिस कालमें स्त्री रजोदर्शवती हो, उस कालको ऋतु कहते हैं । वह ऋतुकाल बारह दिवस रहता है । इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि ऋतुके १६ दिन हैं परंतु उनमें तीन दिन प्रथमके और तीन दिन पिछलें योनिसंकोचके त्यागकर १२ दिनहीं ग्रहणयोग्य है ।

अदृष्टार्तवऋतुकहते हैं ।

अदृष्टार्त्तवोप्यस्तीत्येकेभाषन्ते ।

अर्थ-कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, जैसें दृष्टार्त्तव होता है उसी प्रकार अदृष्टार्त्तव भी होता है । अर्थात् रुधिर न निकलने सें भी ऋतुवती स्त्री होती है ।

अदृष्टार्तवऋतुमतीकेलक्षण ।

पीतप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्ममुखद्विज । नरकामप्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजां ॥ स्फुरद्भुजस्तनश्रोणिनाभ्यूरुज घनस्फिजं । हर्षौत्सुक्यपरांचापिविद्यादृतुमतींस्त्रियम् ॥

अर्थ-जिस स्त्रीका मुख पीत वर्ण, तथा प्रसन्न दीखे, और देहके तथा मुख, और दांतोंके मसूडे ये अत्यंत पसीजते हों, और पुरुष संबंधी तथा काम संबंधी वार्त्ता प्यारी लगे, और कूख नेत्र तथा केश ये सिथिल होवे, तथा भुजा, स्तन, कमर, नाभि, ऊरू, जंघा, और कूले ये जिसके कंपित हों, । तथा मैथुन करनेकी अत्यंत इच्छा हो, ये पूर्वोक्त लक्षणों से स्त्रीऋतुमती जाननी । अर्थात् इसके अं-

तरगत रजोदर्श हुआ है ऐसा जानना, वाग्भटमें (क्षाम) शब्द अधिक है, अर्थात् विना कारणके देह कृश होवे । यद्यपि श्लोकमें द्विजशब्दके कहने सें दांत कहे हैं, परन्तु दांतोंको पसीजना असंभव है इसी सें दंतवेष्टक (मसूढे) जानने ।

संकुचितयोनिमेंबीजप्रवेशनहींहोयइसमेंदृष्टांत ।

नियतेदिवसेतीते संकुचत्यम्बुजंयथा ।
ऋतौव्यतीतेनार्यास्तु योनिःसंव्रियतेतथा ॥

अर्थ–जैसे फूलनेके पांच सात दिन पीछे कमल स्वयं मुरझाय जाता हैं । यद्वा जैसे दिनमें फुला हुआ कमल सायंकालको स्वयं मुंद जाता है । उसी प्रकार ऋतुके व्यतीत होने सें अर्थात् १२ रात्रि व्यतीत होने से स्त्री की योनि (गर्भाशय) संकुचित होती है । इसी से वीर्य ग्रहण नहीं करे ।

आर्तवमासिकाकाल और स्वरूप ।

मासेनोपचितंकाले धमनीभ्यांतदार्त्तवम् ।
ईषद्रक्तंविवर्णंच वायुर्योनिमुखंनयेत् ॥

अर्थ–आर्त्तव का काल द्वादश वर्ष से ले साठ वर्ष पर्यंत रहता है, वह महिने के महिने संचित हो वायु के योग से दोनों धमनीमार्ग करके किंचित् लाल अथवा [ईषत्कृष्णं] अर्थात् कुछ लाल, और दुष्ट वर्ण, अथवा (विगन्ध) कहिये गंध रहित योनिके मुख प्रति प्राप्त होता है अर्थात् निकलता है । गर्भ रूप फल प्रगट करने से इस आर्त्तव की पुष्प संज्ञा है । इसी कारण ऋतुवती स्त्री को पुष्पवती कहते हैं ।

आर्त्तवकेप्रवृत्तिनिवृत्तिहोनेकाकाल ।

तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्त्तमानमसृक्पुनः ।
जरापक्वशरीराणां यातिपंचाशतःक्षयम् ॥

अर्थ–[आहार रस से उत्पन्न होने वाला रज] रुधिर बारह वर्ष से प्रगट होकर तदनन्तर जैसे जैसे शरीर में सप्तधातु बढकर शरीर बढे है, तैसे तैसे वो रज बढकर महिने की महिने प्रवृत्त होता है । और पंचास वर्ष की अवस्था होनेके उपरांत बुढापासे शरीर तथा धातु पक्व होकर उत्तरोत्तर जैसे जैसे बढाथा उसीप्रकार क्रम से क्षीणहोकर साठ वर्षके करीब नष्ट होता है ।

समविषमदिवसभेदकरकेगर्भभेद ।

युग्मेपुतुपुमान्प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाबला ।
पुष्पकालेशुचिस्तस्मादपत्यार्थिस्त्रियंव्रजेत् ॥

अर्थ–ऋतु सम्बन्धी सम दिवस ४.६. ८.१०. १२.१४. इन में स्त्री संग करने से पुत्र होता है । और विषम दिवस ५. ७. ९. ११. १३. १५. इन में गमन करने से कन्या होती है । इस प्रकार विचार कर जिस पुरुष को सन्तानकी इच्छा, होवे और जिसका काम शुद्धहो उस पुरुष को उसकी इच्छानुसार उसी उसी दिवस में स्त्रीसंयोग करना उचित है । अर्थात् पुत्रेच्छु सम दिनों में और कन्या की इच्छावाला विषम दिनों में गमन करे । किसी आचार्य का यह मत है कि, पांचवें दिन गमन से भी पुत्र होता है ।

शिष्य–शुक्र की आधिक्यता से पुत्र और रजकी आधिक्यता से कन्या होती है । ऐसा आप पूर्व कह आए हो फिर, सम विषम दिनों में पुत्र कन्या होना असंभव है क्यों कि पुत्र कन्या होने में रज और शुक्र की आधिक्यताही कारण है । यदि विषम दिनों में शुक्र अधिकहोवे तो पुत्र होवेगा कि कन्या ।

गुरु–इसका यह कारण है कि सम दिवसों में ही पुरुष के शुक्र अधिकहोता है और स्त्रियों के रज अल्प रहता है, इसी से पुत्र होता है और विषम दिवसों में स्त्री के रज अधिक होता है और पुरुषों के वीर्य अल्प रहता है, इसी से विषम दिनों स्त्री संग करने से कन्या होती है, इस में विदेह का वचन है । यथा,

युग्मेपुदिवसेष्वासां भवत्यल्पतरंरजः।संयोगंतत्रयाग
च्छेत्सापुमांसंप्रसूयते ॥ अयुग्मेपुदिनेष्वासां भवेद्बहु
तरंरजः । संयोगंतत्रयागच्छेत्सातुकन्यांप्रसूयते ॥

अर्थ–पूर्वोक्त सम दिवसों में स्त्री के आर्त्तव अत्यंत अल्प होता है, इसी से इन दिनों में जो स्त्री पुरुष संग करे तो पुत्र प्रगट करे, और विषम दिनों मे आर्त्तव अधिक होता है । इसी से जो स्त्री पुरुष संगकरे तो कन्या उत्पन्न होवे ।

शिष्य–सम दिनों में पुत्र और विषम दिवसों में कन्या होती है, परन्तु नपुंसक कौनसे दिवसों में होता है । नपुंसक होनेका कोई दिन नहीं कहा ।

गुरु–नपुंसक होने का प्रमाण भोज आचार्यने इस प्रकार लिखा है ।

अयुग्मेस्त्रीपुमान्युग्मे संध्ययोस्तुनपुंसकम् । शुक्रा

धिक्यात्तुपुरुषः प्रमदारजसोधिकात् ॥ शुक्रशो
णितयोःसाम्यात्तृतीयाप्रकृतिर्भवेत् ।

अर्थ-पूर्वोक्त विषम दिनोंमें कन्या, और सम दिवसोंमें पुत्र, तथा सम विषम दिवसों की संध्यामें स्त्री गमन करनेसे नपुंसक संतान होती है । उसी प्रकार शुक्राधिक्यसे पुरुष, और रजकी अधिकतासे कन्या, तथा शुक्र रज दोनों के समान होने सें [तृतीयाप्रकृति] कहिये नपुंसक होवे, (आगे ईश्वर की इच्छा है.)

सद्योगृहीतगर्भाकेलक्षण ।

श्रमोग्लानिःपिपासा सक्थिसदनंशुक्रशोणितयो
रनुबंधःस्फुरणञ्चयोनेः ।

अर्थ-तत्क्षण गर्भधारण करनेवाली स्त्री के ये लक्षण हैं । विना कारण श्रम, ग्लानि, प्यास का लाना, जीवों का जिकडना, तथा शुक्र शोणित का रुकना, अर्थात् विषय करके जब स्त्री उठे उस समय वीर्य और रज बाहर न निकले, तथा योनिका स्फुरण (फडकना) ।

तथाचवाग्भटे ।

लिंगंतुसद्योगर्भायायोन्यांबीजस्यसंग्रहः । तृप्तिर्गुरुत्वंस्फुरणंशु
क्रास्रानुबन्धजम्॥हृदयस्पन्दनंतन्द्रातृड्ग्लानिर्लोमहर्षणम् ।

अर्थ-तत्क्षण गर्भधारण करा हो उस स्त्री के ये लक्षण हैं । योनिमें बीज (शुक्रार्त्तव) का संग्रह, तृप्त के सदृश तृप्ति होना, कूख का भारीपना, और स्फुरण होना । शुक्र और आर्त्तव का योनि सें बाहर न निकलना, हृदयकंप, तन्द्रा, प्यास, ग्लानि, और हर्षके होने सें रोमांचोंका खडा होना ।

गर्भरहनेकेपश्चात्लक्षण ।

स्तनयोःकृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा । अक्षिपक्ष्माणि
चाप्यस्याः संमील्यन्तेविशेषतः ॥ अकामतश्छर्दयातिगं
धादुद्विजतेशुभात् । प्रसेकसदनंचापि गर्भिण्यालिङ्गमुच्यते ॥

अर्थ-स्त्री गर्भवती होनेके पश्चात् उसके ये लक्षण होते हैं । स्तनके अग्रभाग काले होते जावें, अंगमें रोमांच खडे हों, नेत्रों के पलक वारंवार खुलें मिचें, विना कारण वमन होना, उत्तम सुगंधसे डरपना, मुख से पानी छूटे, शरीर जिक्डासा हो, अथवा कृश हो, ये गर्भवती के लक्षण हैं (स्तनोंमें दूध का होना, अरुचीहो खटाई खानेकी

इच्छा, विशेष करके अनेक प्रकारके भावोंमें श्रद्धा का होना, होठों पर कालोंच का आना, पैरों पर किंचित् सूजन का होना, योनिमें जाले से प्रतीत हो, इतने लक्षण चरकमें अधिक हैं)।

गर्भवतीकेउपचार ।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्राभृत्यैश्चगर्भधृक् ।
नवनीतघृतक्षीरैः सदाचैनामुपाचरेत् ॥

अर्थ–पति और नोकरों करके, प्रिय तथा हित (पथ्य) ऐसें आहार विहार करके गर्भवती का उपचार करने सें, स्त्रीगर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है। तथा मक्खन, घृत, और दूध इन करके इस स्त्री के आत्मा के अनुकूल सदा उपचार करने चाहिये ।

गर्भवतीकेवर्जितआचार ।

अतिव्यवायमायासं भारंप्रावरणंगुरुम् । अकालजागरस्व प्रकठिनोत्कटकासनम् ॥ शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धा विधारणं । उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टंभिभोजनम् ॥ रक्तंनिवसनंश्वभ्रकूपेक्षांमद्यमामिषम् । उत्तानशयनंयच्च स्त्रियोनेच्छन्तितत्त्यजेत्॥तथारक्तस्रुतिंशुद्धिं वस्तिमामा सतोऽष्टमात् । एभिर्गर्भःस्रवेदामां कुक्षौशुष्येन्म्रियेतवा॥

अर्थ–अत्यंत मैथुन करना, परिश्रम, भारी बोझ का उठाना, कुसमय सोना और जागना, कठिन बिछया पर बैठना । घोटुओंके बल बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, इनका धारण करना । तथा मल, मूत्र, अधोवायुआदि वेगोंका रोकना । व्रतोंका करना, मार्ग चलना, तथा तीक्ष्ण, भारी और विष्टंभी पदार्थोंका भोजन, लाल वस्त्रोंका धारण करना, खाई, बावडी और कूएका देखना, मद्य पीना, मांस खाना, और उत्तान शयन (सीधा सोना) इनसबका अत्यन्त सेवन गर्भवती स्त्री त्याग देवे । केवल इनहीं आहार विहार आदि को न त्यागे किंतु जो अनेकवार बालक जन चुकी हो, और संपूर्ण गर्भवतियों के व्यवहार में कुशल हो, वे स्त्री जिसकर्मको वर्जित करे वो भी गर्भवती स्त्री को त्याज्य हैं । तथा फस्त खोलना, और रुधिरकी वमन विरेचन द्वारा शुद्धिकरना, तथा अष्टम महीनेके पूर्व अनुवासन वस्ति कर्म करना वर्जित है, अष्टम महिने के पूर्व वस्ति कर्म न करे किंतु अष्टम महिनेमें तो करनाही चाहिये, ये पूर्वोक्त वर्जित वस्तुओंके सेवन करनेसे कच्चा

गर्भ गिरपड़े। अथवा कूखमें ही सूखजावे, अथवा गर्भमें बालक मरजावे। (देवता राक्षस और इनके अनुचरोंसे रक्षाके अर्थ लालवस्त्रको न धारण करे यह चरक मुनि लिखतेहैं) तथा सर्व इन्द्रियोंके विरुद्धभावों को त्यागदेवे। और जिस कर्मको वृद्ध वर्जित करे उसको भी न करे।

गर्भवतीकेदुःखसेगर्भकोदुःखहोताहै।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या योयोभागःप्रपीड्यते।
ससभागःशिशोस्तस्या गर्भस्थस्यप्रपीड्यते॥

अर्थ-वातादि दोष तथा लकड़ी आदिके प्रहार इन करके गर्भिणी का जो जो देह का अवयव पीड़ित होता है, वही वही अवयव गर्भमें रहनेवाले बालक का दुखता है।

गर्भवतीकासामान्यचिकित्सा।

व्याधींश्चास्यामृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत्।

अर्थ-इस गर्भवती के जो व्याधि प्रगट होवे, उन को मृदु (सुकुमारों के योग्य) और सुखकारक अर्थात् प्यारी तथा अतीक्ष्ण (जो तीखी न हो) ऐसा औषधों करके जीते।

शिष्य-मृदु कह कर फिर अतीक्ष्ण कहने का क्या प्रयोजन है, क्योंकि मृदु कहनेसें भी अकर्कश का बोध होताहै, और अतीक्ष्णकहने से भी अकर्कश का बोध होता है, दोनों के नामभेद हैं वास्तव में अर्थ एकही है।

गुरु-मृदु और अतीक्ष्ण के कहने का यह प्रयोजन है कि, जैसे शर्करादिक औषध हैं वे मृदु और तीक्ष्ण हैं। इनकी शक्ति भी उत्कृष्ट है। और कालीमिरच आदि केवल अतीक्ष्ण है, तथा तीक्ष्ण और अतीक्ष्ण गुणवाली राई आदि औषध दोष और उत्क्लेश कर्त्ता जाननी चाहिये, इसी से मृदु और अतीक्ष्ण दोनों का कहना ठीक है, जैसे तंत्रांतरों में लिखा है।

इत्यनात्ययिकेव्याधौ विधिरात्ययिकेपुनः।
तीक्ष्णैरपिक्रियायोगैः स्त्रियंयत्नेनपालयेत्॥

अर्थ-यह जो कहाहै कि, मृदु और अतीक्ष्ण औषधों करके गर्भवती की व्याधि हरण करे, सो यह विधि अनात्ययिक अर्थात् जहां अतिआवश्यकता न हो तहां जाननी, और जहां अति आवश्यकता होवे तहां तीक्ष्ण औषधभी देकर गर्भवती स्त्री-का यत्नसे पालन करे। अतएव सामान्य व्याधिमें तीक्ष्ण औषधोंसे गर्भवती स्त्री-

की सदैव रक्षा कर्त्तव्य है, जैसा अति व्यवायादिक करनेसे भय नहीं होता कि जैसा तीक्ष्ण औषधसे गर्भवतीको हानि होती है।

अवगर्भकीमासपरत्वअवस्थाकहते हैं ।

तत्रप्रथमेमासिसंमूर्च्छितःसर्वधातुकलुपीकृतः खेटभूतोभवतिअव्यक्तविग्रहः ॥

अर्थ-तहां प्रथम महिनेमें शुक्र शोणित संमूर्च्छित हो, तथा सर्व धातुओं करके कलुपीकृत खेट भूत अर्थात् कफरूप कलल अवस्थाको प्राप्त होता है, और अव्यक्त विग्रह होता है ।

द्वितीयेशीतोष्मानिलैरभिपच्यमानानांमहाभूतानांसंप्राप्तोघनःसंजायते ।

अर्थ-दूसरे महिनेमें कफ, पित्त और वायु इन करके परिणाम दशा को प्राप्त हुए जे पंचमहाभूत उन्होंका शुक्र शोणितात्मक जो समूह सो कुछ कठिण अवस्था को प्राप्त होता है।

पुरुषस्त्रीनपुंसककीपरीक्षा ।

यदिपिण्डःपुमान्स्त्रीचेत्पेशीनपुंसकंचेदर्बुदमिति ।

गर्भ में पुरुष स्त्री नपुंसक की परीक्षा इसप्रकार करे । यदि गर्भ गोल पिंड के अथवा गोलाके समान स्पर्श करने से मालूम होवे, तो पुरुषगर्भ जानना; और यदि गर्भ पेशी के सदृश लंबा प्रतीत होवे तो गर्भ में कन्या जाननी । और गोल फल के अर्द्धभाग के समान प्रतीत होने से नपुंसक गर्भ जानना चाहिये ।

गयीभोजवचनसेपिंडादिकोंकास्वरूप विपरीत कहते हैं ।

चतुरस्राभवेत्पेशी वृत्तःपिण्डोघनःस्मृतः ।
शाल्मलीमुकुलाकारमर्बुदंसंप्रचक्षते ॥

अर्थ-चौकोन पेशी होती है, और गोलपिंडके आकार घन कहावाहै, तथा सेमरकी कलीके आकार हो उसको अर्बुद कहते हैं, इन्हों के क्रमसे स्त्री पुरुष और नपुंसक गर्भ जानने ।

तृतीयमासमें गर्भकास्वरूप ।

तृतीयेहस्तपादशिरसांपञ्चपिण्डानिवर्त्तन्ते । अङ्गप्रत्यङ्गविभागश्चसूक्ष्मोभवति ।

अर्थ–तीसरे महिने में दो हाथ, दो पैर, और १ मस्तक, ये पांच पिंड एकही समयमें उत्पन्न होते हैं । और, अङ्ग तथा प्रत्यंग विभागभी अत्यंत सूक्ष्म उत्पन्न होते हैं । तहां हाथ, पैर, मस्तक, छाती, पीठ, और पेट ये अंग कहाते हैं । और ठोडी, नाक, होठ, कान, उंगलीटकना इत्यादि प्रत्यंग कहाते हैं । इन अंगोंमें कोई माता के अंग से और कोई पिताके अंगों से प्रगट होते हैं सो आगे कहेंगे । और महाभूतों के विकारों से जो शब्दादिक प्रगट होते हैं वो शारीरककी प्रथमाध्यायमें कह आए हैं । इस तिसरे महिनेमें जो दोष धातु मलादिक देहमें प्रगट होते हैं वो प्रकृति कहाते हैं । और पश्चात् दोष धातु आदिका न्यूनाधिक होना वह विकृति कहलाती हैं ।

औरभीस्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकीपरीक्षाकहते हैं ।

क्लैब्यंभीरुत्वमवैशारद्यंमोहावस्थानम अधोगुरुत्वमसहनंशैथिल्यंमार्दवंगर्भाशयबीजभागस्तथायुक्तानिचापराणि स्त्रीकराणि । अतोविपरीतानिपुरुषकराण्युभयभागभावानिनपुंसककराणि ॥

अर्थ–कायरता, भययुक्त, मूर्खता, मोह, वश होना, नीचेका भाग भ... ... गरमी सरदी आदिका सहन सकना, शिथिलता, और जिस स्त्रीका गर्भाशय बीज भाग नम्र होवे, इत्यादि और भी चिन्ह स्त्री प्रगट कर्त्ता जानने । इन चिन्हों से विपरीत अर्थात् पुरुषार्थीपना, निर्भयता, चतुरता इत्यादि लक्षण पुरुष कर्त्ता जानने और कुछ पुरुषके और कुछ स्त्रीके चिन्ह मिले होनेसे नपुंसक बालक होता है ।

चतुर्थमास ।

चतुर्थेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागःप्रव्यक्तोभवति ।

अर्थ–चौथे महिने में पूर्वोक्त सूक्ष्म अंग, और प्रत्यंग स्पष्ट होते हे । और इस महिनेमें गर्भके हृदय प्रगट होने के पश्चात् उनमें प्रतिबिंबित आत्माके योग करके हृदय फुरने लगे है । इसका कारण यह है कि हृदय आत्माका स्थान है ।

प्रसंगवशभावप्रकाशसेंअंगऔरउपांगोंकोकहते हैं ।

आद्यमङ्गंशिरःप्रोक्तं तदुपाङ्गानिकुन्तलाः । तस्यान्तर्म

स्तुलुङ्गश्च ललाटंभ्रुयुगंतथा ॥ नेत्रद्वयंतयोरन्तर्वर्त्तते द्वेकनीनिके । दृष्टिद्वयंकृष्णगोलौ श्वेतभागौचवर्त्मनी । पक्ष्माण्यपाङ्गौशंखौच कर्णौतच्छष्कुलद्वियं ॥ पालिद्वयं कपोलौच नासिकाचप्रकीर्त्तिता । ओष्ठाधरौचसृक्किण्यौ मुखंतालुहनुद्वयं ॥ दन्ताश्चदन्तवेष्टश्चरसनाचिबुकङ्गलः ।

अर्थ-प्रथम अंग मस्तक है । उस के उपांग केश (बाल) हैं, उस माथेके भीतर मस्तुलुंग है (अर्थात् जो मस्तकमें घृतके सदृश चिकनाई होती है) ललाट, दोनों भोंह, दो नेत्र, उनके भीतर दो तारे हैं, दो दृष्टि दो कृष्ण गोलकोंके ओरपास दो सपेद भाग हैं, दो नेत्रोंके पलक, दो वत्र्मी दो नेत्रोंके प्रांत, दो कनपटी, दो कानों के बाहर पोल के ओरपास के भाग, दो पाली, दो कपोल (गाल) एक नासिका, दो ओष्ठ, दो अधर, दो होठों के दक्षिण वाम प्रांत मुख, तालुआ, दो जावड़ा, दांत, दांतों के वेष्टक, अर्थात् जिस मांससे दांत ओरपाससे टकरहें हैं (मसूढे) जीभ, ठोडी और गला, इतने उपांग मस्तकसे संबंध रखते हैं अर्थात् ये मस्तकसंबंधी हैं ।

द्वितीयअंगकावर्णन ।

द्वितीयमङ्गंग्रीवातुययामूर्द्धाभिधार्यते ॥

अर्थ-दूसरा अङ्ग ग्रीवा, अर्थात् नाड है । जिसकरके मस्तक धारण करसक्ताहै।

तीसरेअंगकावर्णन ।

तृतीयंबाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथब्रुवे । तत्रोपरिमतौस्कंधौ प्रगण्डौभवतस्त्वधः॥कफोणियुग्मंतदधःप्रकोष्टयुगलंतथा । मणिबंधौतलेहस्तौ तयोश्चाङ्गुलयोदश ॥ नखाश्चदशतेख्याता दशच्छेद्याःप्रकीर्त्तिताः ।

अर्थ-तीसरा अंग दोनों भुजा है । उनके उपांगोंको अब कहते हैं, उन दोनों भुजाओंके ऊपर दो स्कंध (कंधा) है, तिसके नीचे दो प्रगंड (कंधेका नीचेका भाग और कोहनीके ऊपरका भाग) है, उसके नीचे दो कफोणि (कोहनी) है, उसके नीचे प्रकोष्ठ (पहुंचे से ऊपर और कोहनीसे नीचे का भाग) है, उसके नीचे मणिबंध अर्थात् दो पहुंचे है, उसके नीचे-दो-हथेली और उनका पिछला भाग, उन हाथोंमें पांच पांच उंगली मिलके दश उंगली है. उन उंगलियोंमें दश दश नाग

हैं, और उनमें दश छेद्य अर्थात् कटने वाले नख (नाखुन) हैं इतनेउपांग भुजा से सम्बन्ध रखते हैं ।

चतुर्थअंगकावर्णन ।

चतुर्थमङ्गंवक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथब्रुवे॥स्तनौपरस्तथा नार्याविशेषउभयोरयं॥यौवनागमनेनार्याःपीवरौभवतः स्तनौ । गर्भवत्याःप्रसूतायास्तावेवक्षीरपूरितौ॥ हृद यंपुण्डरीकेण सदृशंस्यादधोमुखं।जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तुनिमीलति॥आशयस्तत्तुजीवस्य चेतनास्था नमुत्तमम्।अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनःप्रस्वपन्तिहि॥ कक्षयोर्वक्षसःसन्धी जत्रुणोःसमुदाहृते।कक्षेउभेसमाख्या ते तयोःस्यातांचवंक्षणौ ॥

अर्थ—चतुर्थ अंग वक्षस्थल (छाती)है, उसके उपांगोंको कहते हैं । पुरुषके तथा स्त्रीके दो दो स्तन हैं. इन दोनोंमें विशेषता यह है कि, स्त्री की यौवन अवस्था आने पर वेही स्तन पुष्ट हो जाते हैं और जब स्त्री गर्भवती तथाप्रसूता (बालक होने से) दोनों स्तन दूधसे परिपूर्ण होजाते हैं, छाती के समीप भीतर हृदय है, वह कमल के सदृश तथा नीचे को मुखवाला है, जब मनुष्य जागता है तब वो खिल जाताहै और जब प्राणी सोते हैं तब वह कमल मुद जाता है, यह जीवके रहनेका स्थान है । और चेतनाशक्तिका उत्तम स्थान है । जिस समय इस हृदयमें तम (अन्धकार अज्ञान) व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं. दोनों कांख, और छाती की सन्धियों को जत्रु (हसली) कहते हैं । वह जत्रु, और दोनों कंधे, उन दोनों कंधेनके वंक्षण अर्थात् जोड, ये सब वक्षस्थलके उपांग हैं । इस अङ्गके वर्णन-में जो कहा है कि [चेतनास्थानमुत्तमम्] इस कहने का यह प्रयोजन है कि, शकल * शरीर चेतना का स्थान है परंतु सर्व देहके अपेक्षा हृदय विशेष चेतना का स्थान है ।

पंचमषष्ठऔरसप्तमअङ्गकावर्णन ।

उदरम्पञ्चमञ्चाङ्गं षष्ठंपार्श्वद्वयंमतम् । सप्तमवंशंपृष्ठन्तु समस्तंसप्तमंस्मृतं॥उपाङ्गानिचकथ्यन्ते तानिजानीहि

---

* चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्चसेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रंच मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥

यत्नतः । शोणिताज्जायतेप्लीहा वामतोहृदयादधः ॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलंख्यातोमहर्षिभिः । हृदया द्वामतोऽधश्च फुप्फुसोरक्तफेनजः ॥ अधोदक्षिणत श्चापि हृदयाद्यकृतःस्थितिः । तत्तुरञ्जकपित्तस्य स्था नंशोणितजंमतम् ॥ अधस्तुदक्षिणेभागे हृदयात्क्लोम तिष्ठति । जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥

अर्थ-पांचवां अङ्ग उदर (पेट) है । छठा अङ्ग दोनों पसवाडे हैं।सांतवां अङ्ग पीठका बांस और समस्त पीठ है । अब इन पंचम, षष्ठ और सप्तम अङ्गों के उपांग कहता हूं उन को तू यत्नपूर्वक जान, हृदयके नीचे वाम भागमें रुधिरसें प्लीहा (फिहा) उत्पन्न होती है । वह रुधिर के वहने वाली नाडियोंका मूल है । ऐसे महर्षियोंनें कहा है । हृदय के नीचे वामभागमें फुप्फुस (फेफडा) है । यह रुधिर के झाग से प्रगट हुआ है। हृदय के नीचे दहनी तरफ यकृत् (कलेजे) का स्थान है । वह रुधिर से उत्पन्न रंजक (रंगने वाले) पित्तका स्थान है. हृदयसें नीचे दहनी तरफ क्लोम (प्यास का स्थान) है । यह जल वहनेवाली नाडियोंका मूलाधार है । और तृषा का आच्छादन कर्त्ता कहते है । तथा इसकी वातरक्त से उत्पत्ति कहते है । यह वाग्भट में लिखा है " रक्तादनिलसंयुक्तात् कालीयकसमुद्भवः" परंतु कोई लिखता है कि, वात और रक्त मिलकर कलेजा उत्पन्न हुआ है ।

मेदःशोणितयोःसाराद् वृक्कयोर्युगलंभवेत् । तौतुपु ष्टिकरौप्रोक्तौ जठरस्थस्यमेदसः ॥ उक्ताःसार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामंत्राणिसूरिभिः । अर्द्धव्यामेनहीना नि योषितोऽन्त्राणिनिर्दिशेत् ॥ उन्दुकश्चकटीचापि त्रिकंवस्तिश्चवंक्षणौ । कण्डराणांप्ररोहःस्यात्स्था नंतद्वीर्यमूत्रयोः ॥ सएवगर्भस्यधानं कुर्याद्गर्भाशये स्त्रियाः । शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्तासाप्रकी र्तिता॥ तस्यास्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता॥ वृषणौभवतःसारा कफासृङ्मांसमेदसाम् ॥ वीर्यवा हिशिराधारौ तौमतोपुरुषावहौ ।

अर्थ-मेदा और रुधिर से दोनों अंडकोश बने हैं, ये दोनों उदरमें रहनेवाली मेदाको पुष्ट-करनेवाले हैं। विद्वान् पुरुषोंने इस पुरुष के आंतडे साढ़ेतीन व्याम लम्बे कहेहैं। और स्त्रियों के आंतडे पुरुषकी अपेक्षा अर्द्ध व्याम न्यून है। (उँगली सहित दोनों हाथों को तिरछे फैलाने के विस्तार को व्याम कहते हैं) नाभि, कमर, और त्रिक (पीठ के बांस को धारण कर्त्ता तीन हड्डी सें बने हुये स्थान को त्रिक कहते हैं) बस्ति (मूत्राशय और वंक्षण कहिये जांघोंकी दोनों सन्धि अर्थात् पेड़ू और मोटे नसोंके अंकुर ये वीर्य और मूत्रके स्थान हे। वही स्त्रीके गर्भाशयमें गर्भको स्थापन करे हैं। शंखकी नाभिके सदृश तीन आंटेवाली स्त्रीकी योनि होती है। उसके तीसरे आंटेमें गर्भाशय है। कफ, रुधिर, मांस और मेदाके सार सें वृषण (अंडकोश) बने हैं। ये दोनों वीर्यके वहनेवाली नाडियोंके आधार भूत हैं। और पुरुषार्थके देने वाले भी येही हैं।

गुदस्यमानंसर्वस्य सर्वस्याचतुरंगुलम्। तत्रस्युर्वलयस्तिस्रःशंखावर्त्तनिभास्तुताः ॥ प्रवाहिणीभवेत्पूर्वा सार्धांगुलमितामता। उत्सर्जनीतुतदधः सासार्धांगुलसंमिता॥ तस्याअधःसंवरणी स्यादेकांगुलसंमिता। अर्धांगुलप्रमाणन्तु बुधैर्गुदमुखंमतम्॥ मलोत्सर्गस्यमार्गोऽयं पायुर्देहेविनिर्मितः। पुंसःप्रोथौस्मृतौयौतुतौनितम्बौचयोषितः॥ तयोःककुन्दरेस्यातां-

अर्थ-सर्व गुदाका विस्तार चार अंगुल है। उस गुदामें तीन वलय (आंटे) शंखकी नाभिके आकार हैं। प्रथम आवर्तका नाम प्रवाहिणी है यह मलको नीचेकी तरफ ढकेलता है, विस्तार इसका डेढ़ अंगुलका है। उसके नीचे दूसरा उत्सर्जनी नामका आंटा है, यह मलको गुदासे बाहर गेरता है, इसका विस्तार भी डेढ़ अंगुल है। उसके नीचे तीसरा संवरणी नामा आंटा है, यह मल गिरनेके पश्चात् ज्योंका त्यों गुदाको कर देता है, इसका विस्तार १ अंगुलका है, और पण्डितोंने गुदाका मुख आधे अंगुलका कहा है। मलके उत्सर्ग करनेका मार्गरूप यह गुदास्थान शरीरमें निर्माण करा है। पुरुषोंके [प्रोथ] अर्थात् जिनको कूले कहते हैं, उन्हींको स्त्रीके नितंब कहते है। नितंबके समीप दो ककुंदर है। (अर्थात् उन दोनों कूले अथवा नितंबके बीचको ककुंदर ऐसे कहते हैं.)

अष्टमअङ्गकावर्णन।

सक्थिनीत्वङ्गमष्टमम्। तदुपाङ्गानिचप्रोक्तानि जानुनीपिण्ड

काद्वयम् ॥ जंघेद्वेघुटकेपार्ष्णी तलेचप्रपदेतथा ॥ पादांगुल्यस्तत्र दशतासांनखादश ।

अर्थ-दोनों सक्थि (निरोह वा ऊरू) ये आठवां अङ्ग है । उसके उपांग हम तुम से कहते हैं । दो घोटू दो पिंडिका, (पिंडरी) दो जंघा (पींडिरी से नीचेका भाग) दो टकना, दो एडी, दो (तल) तरवा और दो पैर, दोनों पैरोंकी दश उंगली, उन दशों उंगलियोंके दश नख, ये सब सक्थिके उपांग हैं । अर्थात् सक्थि से संबंध रखते हैं । इस प्रकार आठ अङ्ग कहे हैं इनका विस्तार आगे कहेंगे । आठ अङ्गों और उनके उपाङ्गोंको कहकर फिर गर्भवतीकी मासपरत्व दशा वर्णन करते हैं ।

तस्माद्गर्भश्चतुर्थेमासेअभिप्रायमिन्द्रियेषुकरोति

अर्थ-इस प्रकार चतुर्थ महिनेमें जीव प्रगट होता है, इसीसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन विषयोंमें मन चलता है ।

गर्भवतीकानामान्तर ।

द्विहृदयांनारींदौहृदिनीमित्याचक्षते ।

अर्थ-चतुर्थ महिनेमें स्त्रीके दूसरा हृदय प्राप्त होता है । इसीसें उसको द्विहृदया अथवा दौहृदिनी कहते हैं ।

मातृजंह्यस्यहृदयं मातुश्चहृदयेनतत् । सम्बद्धंतेन गर्भिण्या नेष्टंश्रद्धाविधारणम् ॥ देयमप्यहितंतस्यै हितोपहितमल्पकम् । श्रद्धाविघाताद्गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेववा ॥

अर्थ-गर्भके बालकका जो हृदय है वह मातृज है, इसीसे गर्भका हृदय माताके हृदय करके संयुक्त होता है । अतएव गर्भिणीका हृदय संतप्त होने सें गर्भ में जो बालक होता है उसका भी हृदय संतप्त होता है,इसीकारण गर्भिणी द्विहृदया होने से दौहृदनी कहाती है। इसी से गर्भवती का हृदय पराधीन होनेसें उसकाल में अपनी स्वभावोचित इच्छा को त्याग अनेक प्रकार की अभिलाष करे हैं इसी सें गर्भवती की अभिलाषा परिपूर्ण न करना बुरा है । अतएव उस द्विहृदया गर्भवती को पथ्यके साथ मिलाय कर अपथ्य (दाह कर्त्ता विष्टंभी आदि) पदार्थ भी देने चाहिये (अपि शब्द) से पथ्य पदार्थ यथेच्छ देवे और अपथ्य पदार्थ

बहुत थोड़े देने चाहिये । यदि आप अपथ्य कहते हो तो फिर कैसे देना कहते हो इस लिये कहते हैं, कि द्विहृदा स्त्रीकी श्रद्धा भङ्ग करनेसे गर्भ विकृतहो, अथवा वह गर्भ नष्ट होजावे । तात्पर्य यह है कि, गर्भिणीकी इच्छा पूर्ण न करनेसे यदि गर्भ बहुत दिनका होवे तो बालक वैरूप्य होवे और थोडे दिनका होवे तो वह गर्भ गिर जावे । इसी प्रमाण को पुष्ट करते हैं ।

विकृतिगर्भहोनेकेऔरभीप्रमाण।

दौहृदविमानात्कुब्जंकुणिंपण्ढंवामनंविकृताक्षंवानारीसुतं जनयति । तस्मात्सायदिच्छेत्तत्तस्यैदेयम् ॥ लब्धदौहृदा वीर्यवन्तंचिरायुषम्पुत्रंजनयति ॥

अर्थ–स्त्री की दौहृदेच्छा परिपूर्ण न होने से, वह स्त्री कुबडा, टोंटा, पंढ, बौना और विकृत नेत्रवाला, (तथा खंजा, खल्वाट, तिरछी भुजावाला) ऐसा पुत्र प्रगट करती है । इसीसे गर्भवती स्त्री जिस जिस पदार्थकी इच्छा करे वह उसको देना चाहिये । क्योंकि लब्धदौहृदा स्त्री वीर्यवान्, बडी उमरवाला पुत्रको प्रगट करती है । अब गद्योक्त अर्थको पद्यसे कहते हैं ।

स्त्रीकादौहृदकैसेपरिपूर्णकरनाचाहिये, इसमेंप्रमाण ।

इन्द्रियार्थान्प्रियान्यांस्तु भोक्तुमिच्छतिगर्भिणी । गर्भ बाधाभयात्तान्वै भिषगाहृत्यदापयेत् ॥ साप्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेतगुणान्वितम् । अलब्धदौहृदागर्भेलभेदा त्मनिवाभयम् ॥

अर्थ–गर्भवती स्त्री. गान आदि का सुनना और अलङ्कार (भूषणों) का उपभोग, देवतादिकों का दर्शन, षड्रस भोजनादिक, भक्षणीय पदार्थ का सेवन, अतरआदि सुगन्ध वस्तुओंका सूंघना, इनमेंसे जिस वस्तुकी इच्छा करे, वह वस्तु वैद्य लायकर दौहृद न मिलने से कदाचित् गर्भकी विकृति न होजावे इस भयसे उस स्त्रीको देवे । गर्भवतीकी इच्छा परिपूर्ण करनेसे उत्तम प्रकारके पुत्रको प्रसव करती है और जिसको दौहृद न मिले उसके गर्भको अथवा उसके शरीरको भय होता है ऐसे जानना चाहिये ।

इन्द्रियोंकेअपमानसेगर्भकीविकृति ।

येषुयेष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदेयाविमानता ।
प्रजायतेसुतस्यार्त्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तदिन्द्रिये ॥

अर्थ-कान, नाक, जीभ, नेत्र और त्वचा, इन पांच इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांचविषय हैं । जिनमें जिस विषयसे जो इन्द्री तृप्त न हुई हो उसी इन्द्री में गर्भवाले बालकके पीड़ा होतीहै । उसका उदाहरण दिखाते हैं । जैसे गर्भवतीकी इच्छा गान सुनने की हो और कदाचित् वो गान न सुने तो उस की श्रोत्र इन्द्री (कान) तृप्त नहीं हुआ अतएव गर्भगत बालक की कर्ण इन्द्री पीडित होती है । इसीप्रकार इच्छित वस्तुको न देखने से बालक की नेत्र इन्द्री पीड़ित होती है । इसीप्रकार और इन्द्रियोंके विषयमें जानना ।

दौहृदद्वारागर्भकेलक्षण ।

राजसंदर्शनेयस्या दौहृदंजायतेस्त्रियाः । अर्थवन्तंमहा भागंकुमारंसाप्रसूयते ॥ दुकूलपट्टकौशेय भूषणादि षुदौहृदात् । अलङ्कारैषिणंपुत्रं ललितंसाप्रसूयते ॥

अर्थ-जिस स्त्री को राजा के दर्शन करने का दौहृद (इच्छा) होवे वह स्त्री द्रव्यवान् महाभाग (पुण्यवान्) ऐसें कुमार को प्रगट करे । तथा महीन, उत्तम, वस्त्र अथवा पट्ट वस्त्र, तथा पीतांबर इत्यादिकों के धारण करने की इच्छा जिस स्त्री की हो, वह अलङ्कारों का भोगने वाला और रूपवान् पुत्र को प्रगट करे ।

आश्रमेसंयतात्मानं धर्मशीलंप्रजायते ।
देवताप्रतिमायान्तु प्रसूतेपार्षदोपमम् ॥

अर्थ-जिस स्त्री को मुनि ऋषियों के आश्रम देखनेकी तथा उस जगह रहनेकी अभिलाषा होवे, वह स्त्री धर्मशील जितेन्द्रिय पुत्र को प्रगट करे । और जिस स्त्रीकी इच्छा देवमूर्तिके पूजनेकी अथवा दर्शन करने की हो, वह [पार्षद] अर्थात् सभा के अधिकारीके समान पुत्रको उत्पन्न करे ।

दर्शनेव्यालजातीनां हिंस्रालुंसाप्रसूयते । गोधामांसा शनेपुत्रं सुषुप्तंधारणात्मकम् ॥ गवांमांसेतुबलिनं सर्व क्लेशसहंतथा॥माहिषेदौहृदाच्छूरं रक्ताक्षंलोमसंयुतम्॥ वाराहमांसात्स्वप्नालुं शूरंसंजनयेत्सुतम्॥मार्गाद्विक्रान्त जंघालं सदावनचरंसुतम् ॥

अर्थ-जिस स्त्रीको सर्प, सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओंके देखनेकी सर्वदा इच्छा रहे वह स्त्री दुष्ट घातक ऐसे पुत्र को उत्पन्न करे । जिसको गोहके मांस

खाने की इच्छा होवे, वह स्त्री निद्रा का दुराग्रही अथवा बहुत सोने वाला और जिद्दी ऐसे पुत्र को प्रगट करे। जिस स्त्रीको गोमांस खानेकी इच्छा होय, वह मलिन और सर्व क्लेशों का सहने वाला हो, और जिस को भैंसे के मांस खाने की इच्छा होय, वह स्त्री शूर वीर, लाल नेत्र और जिस के अङ्ग में बहुत रोम (बाल) हो, ऐसे पुत्र को प्रगट करे। जो सूअर के मांस खाने की इच्छा करे, वह निद्रावान्, शूर वीर पुत्र को प्रगट करती है। और जिस स्त्रीकी इच्छा मार्ग चलने की हो, वह जल्दी चलने वाला और सदैव वन में विचरने वाले पुत्र को प्रगट करे।

सृमरोद्विग्नमनसं नित्यंभीतंचतैत्तिरात्।

अर्थ–जिस स्त्रीको [सृमर] कहिये महासूकर (जंगली वा बरेली सूकर) खाने की इच्छा हो, अथवा इस जगे [सावरोद्विग्नमनसं] ऐसा भी पाठ मानते हैं, अर्थात् जो बारह सींगा के मांस खाने की इच्छा करे, वह उद्विग्न मन (चंचल चित्त) वाले बालक को प्रगट करे। जो स्त्री तीतरके मांस खाने की इच्छा करे वह डरपोका बालक प्रगट करती है। कोई [नित्यंशीलंचतैत्तिरात्] ऐसा पाठ मानते हैं, इसका यह अर्थ है जिस स्त्री के तित्तर पक्षी के मांसखानेका दौहृद होवे वह शीलवान् बालक को प्रगट करे। शूद्रादि नीच वर्ण पूर्वकालमेंभी मांस खातेथे।

अनुक्तगर्भदौहृदसंग्रहश्लोक।

अतोनुक्तेपुयानारी समभिध्यातिदौहृदम्।
शरीराचारशीलैः सा समानंजनयिष्यति॥

अर्थ–जो पदार्थ नहीं कहे उनकी इच्छा करे, वह स्त्री उसी पदार्थ के शरीर, आचार और स्वभाव करके तत्समान पुत्र को प्रगट करे। जैसे बहुतसी गर्भवती स्त्रियों का मन राख, मिट्टी, खिपडे, आदि खाने को चलता है। तो उन के पुत्र भी निर्धन, रोगी और कुरूप होता है। इसी प्रकार जो दिव्य पदार्थ भोजन करने की तथा दिव्य फूल, माला, चंदन, वस्त्रादि कों के धारण करने की इच्छा करने सें, दिव्य भोगों का भोगने वाला सत्पात्र बालक प्रगट करती है।

दौहृदोंमेंप्रारब्धकारणकहते हैं।

कर्मणानोदितंजन्तोर्भवितव्यंपुनर्भवेत्।
यथातथादैवयोगाद्दौहृदंजनयेद्धृदि॥

अर्थ–प्राणियों के प्रारब्ध कर्म करके प्रेरित भवितव्य, जैसे आगे होनहार होती

है उसी प्रकार के दौहृद दैव वश करके होते हैं । अर्थात् दुष्ट बालक के दौहृद भी दुष्ट होते हैं और उत्तम के भी दौहृदउत्तम होते हैं। चरकमुनि ने तीसरे महिने में ही स्त्री को द्विहृदा कही है । परंतु सुश्रुत के मत सें चतुर्थ महिने में दौहृदवती स्त्री होती है । अब चरकमतानुसार चतुर्थ मास का वर्णन करते हैं ।

चतुर्थमासेस्थिरत्वमापद्यतेगर्भस्तस्मात्तदागर्भिणीगु-
रुगात्रत्वमापद्यते ।

अर्थ-चतुर्थ महिनेमें गर्भ स्थिर होता है, इसी कारण गर्भिणीका देह इस महिनेमें भारी हो जाता है ।

पंचममास ।

पञ्चमेमनःप्रतिबुद्धतरंभवति [विशेषेणपञ्चमेमा
सिगर्भस्थमांसशोणितोपचयोभवत्यधिकमन्येभ्यो
मासेभ्यस्तदागर्भिणीकार्श्यमापद्यते]

अर्थ-पांचवे महिनेमें गर्भ के मन, अर्थात् चेतना प्रगट होती है। और चरकमुनि कहते हैं कि विशेष करके पंचम महिनेमें गर्भके मांस, रुधिरका संग्रह और महिने सें इस महिनेमें अधिक होता है । इसी सें गर्भिणी इस महिनेमें कृश हो जाती है ।

षष्ठमास ।

षष्ठेबुद्धिः [विशेषेणषष्ठेमासिगर्भस्यबलवर्णोपच
योभवत्यधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भि
णीबलवर्णहानिमापद्यते]

अर्थ-छटवे महिनेमें गर्भके बालकके बुद्धि उत्पन्न होती है। चरक मुनि कहते हैं कि, विशेष करके छटे महिनेमें गर्भके बल और वर्णका संग्रह अन्य महिनोंकी अपेक्षा अधिक होती है । इसी सें गर्भिणीके बल वर्णकी हानि होती है, परंतु वाग्भट इन दोनों सें विपरीत कहता है ।

यथा ।

षष्ठेस्नायुशिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ।

अर्थ-छटवे महिने गर्भके बालकके अव्यक्त रूप जो स्नायु, नाडी, रोम, बल, वर्ण, नख और त्वचा, ये प्रगट होते हैं । अर्थात् छटवे महिने सूक्ष्म रूप सें स्थूल रूप होते हैं ।

सप्तममास ।

सप्तमेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरोभवति ।

अर्थ-सातवें महिनेमें गर्भकेसर्व अङ्ग (हाथ, पैर, मस्तक, आदि) और प्रत्यंग (नाक, कान, नेत्रादि) विभाग अच्छी रीति से प्रगट होते हैं (इसी से गर्भवती अत्यंत खेदित होती है) वाग्भटने छटवें महिनेमें जो स्नायु शिर आदिका प्रगट होना लिखा है सो सुश्रुत, चरक से विरुद्ध है तथापि सर्वाङ्गसंपूर्णता गर्भकी सातवें महिने में ही होती है । क्यों कि, वाग्भटही लिखते हैं कि, सर्वाङ्गसंपूर्णभाव सप्तम महिने में ही होता है ।

अष्टममास ।

अष्टमेस्थिरीभवत्योजस्तत्रजातश्चेन्नजीवेतानिरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागधेयत्वाच्चततोबलिमांपौदनमस्मैदापयेत् ।

अर्थ-आठवें महिनेमें हृदय में रहने वाला सर्व धातु संबंधी तेज स्थिर होता है। अतएव इस आठवें महिने में उत्पन्न हुआ बालक नहीं बचे, उसका यह कारण है कि यह तेज पूर्ण नहीं जमता, और वह राक्षसों का भाग (राक्षसों के लिये श्रीशिवजी ने बालकों में भाग दिया है यह कुमारतंत्र में लिखाहै) है इसी से इस महिने में राक्षसों को उड़द, तथा भात इन का बलिदान देवे यह श्रीशिवजीकी आज्ञा है।

ओजेऽष्टमेसंचरति मातापुत्रौमुहुःक्रमात् ।
तेनतौम्लानमुदितौ तत्रजातोनजीवति ॥
शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारीसंशयिताभवेत् ।

अर्थ-सर्व धातुओं का तेज, माता और पुत्र में संचार (गमन) करता है । क्रम से कभी गर्भिणी का तेज संचार करे, कभी गर्भ गत बालक का तेज संचार करे, इसी से दोनों म्लान (कुमलाए हुए से) और मुदित (प्रसन्न) होते हैं । अर्थात् गर्भ और गर्भिणी के रस वहनेवाली नाड़ियों में पूर्वोक्त ओज संचार करता है, यदि गर्भ और गर्भिणी दोनोंका तेज गर्भगत बालक में संचारकरे उस समय गर्भ प्रसन्न होता है और गर्भिणी मुरझाई सी होती है और यदि पूर्वोक्त दोनों का तेज गर्भिणी में संचार करे तो उस ओज संपत्तिसे गर्भिणी प्रसन्न रहती है और बालक म्लान (मुरझाया सा) होता है। अतएव ओजके एकत्र स्थित न होनेसे इस महिने में जन्माहुआ बालक नहीं जीवे, इसी से स्त्री संशय वाली होती है, अर्थात् यह बालक जीवेगा या न जीवेगा यह संदेहयुक्त रहती है ।

तस्मिंस्त्वेकाहयातेपि कालःसूतेरतःपरम् ।

अर्थ-अष्टम महिने के एक दिनभी व्यतीत होनेहीसे उपरान्त प्रसूत होनेका काल है, ऐसा जानना, अपिशब्द से अष्टम महिने के व्यतीत होने से उपरान्त प्रसूतकाही काल जानना चाहिये । एक वर्ष के उपरान्त गर्भ में बालक पवनके विकार से रहता है ।

नवमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते अतोन्यथाविकारीभवति ।

अर्थ-नवम, एकादश और द्वादश कहिये बारवां महिना, इन में से किसीएक महिने में बालक उत्पन्न होता है । इन महिनों में बालक न प्रगट होनेसे विकृत हुआ ऐसा जानना । चरक मुनि दश महिने पर्यंत प्रसूतका समय कहतेहैं, उपरांत बालक को गर्भ में रहना विकार से लिखा है ।

गर्भकासन्निवेशभीसंग्रहमेंलिखाहै ।

गर्भस्तुमातृपृष्ठाभिमुखोललाटे कृतांजलिःसंकुचिताङ्गो गर्भकोष्ठेदक्षिणंपार्श्वमाश्रित्यावतिष्ठतेपुमान् वामंस्त्री मध्यंनपुंसकम् ।

अर्थ-गर्भ माता के पीठकी तरफ मुख करके जुडे हुए हाथों की अंजली मस्तकपर धर सब शरीर को समेट, गर्भ कोष्ठमें दहनी बगल आश्रय करके पुरुष रहता है । और कन्या बाईं बगल का आश्रय कर रहती है । और नपुंसक बीच में रहता है ।

शिष्य-भोजन के विना गर्भ कैसे गर्भ में जीता रहे हैं, अर्थात् मुखतो जरायु और कफ से बन्द रहता है, फिर यह कैसे आहार को भोजन करता है और आहार के विना जीवन नहीं होसके ।

गुरु-इसका यह कारण है । यथा-

मातुस्तुरसवाहायांनाड्यांगर्भनाडीप्रतिबद्धा । सास्यमा तुराहारंसवीर्यमभिवहतितेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति

अर्थ-माता के रस वहने वाली नाड़ी, उससे गर्भ की नाभिनाडी बंधी हुई है, वह नाडी माताके आहार वीर्य से कुछ स्नेहका अंश लेकर गर्भको बढ़ाती है । पूर्वोक्त अङ्ग प्रत्यंग विभाग प्रगट होने के अनंतर गर्भ का उक्त प्रकार पोषण

होता है, परंतु अङ्ग प्रत्यङ्ग विभाग होने से पूर्व गर्भ का कैसे पोषण होता है । इस शङ्का को दूर करते हैं ।

अंगविभागपूर्वपोषणकाज्ञान ।

असंजाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिषेपात्प्रभृतिसर्वशरीरावयवानुसारिणीनांरसवहानांतिर्यग्धमनीनामुपस्नेहोजीवति ॥

अर्थ–जिस गर्भ के अङ्ग प्रत्यङ्ग विभाग, न प्रगट हुये हों उस गर्भ के सर्व शरीर में आपाद मस्तक पर्यंत जाने वाली, तथा उसी उसी अवयवों में रसके पहुंचाने वालीं बारीक, मोटी, बांकी, तिरछीं, धमनियों का उपस्नेह गर्भ को पोषण करे हैं । जैसे नदीतट के वृक्षों को नदी का पानी भीतरी मार्ग से पहुँच कर पोषण करता है ।

पूर्वोक्तविषयमेंभोजकावाक्य ।

गर्भोरुणद्धिस्रोतांसि रसरक्तवहानिवै । रक्ताज्जरायुर्भवति नाडीचैवरसात्मिका ॥ सानाडीगर्भमाप्नोति तथा गर्भस्यवर्त्तनं।यद्यदश्नातिमातास्य भोजनंहिचतुर्विधं॥ तस्मादन्नाद्रसीभूतं वीर्यत्रेधाप्रवर्त्तते।भागःशरीरंपुष्णाति स्तन्यंभागेनवर्द्धते॥गर्भःपुष्यतिभागेन वर्द्धतेचयथाक्रमम् । गर्भकुल्येवकेदारं नाडीप्रीणातितर्पतेति ॥

अर्थ–गर्भ माता के उदर में रहता हुआ, उस के रस रक्त वहने वाली नाडियों को निरोध करता है । उस रक्त सें गर्भ वेष्टित होता है । और उस रस सें नाभि नाल उत्पन्न होती है । वह नाडी गर्भ के बालक के नाभि नाल होकर रहती है । उस सें गर्भ का इधर उधर को हलना, चलना नहीं होता. तथा माता जो जो भक्ष, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि चतुर्विध पदार्थों को भोजन करती है । उस भोजन करे हुए अन्न सें रस उत्पन्न होता है । उस रस के तीन विभाग होते हैं, तिन में सें एक विभाग सें तो माता का शरीर पोषण होता है, दूसरे विभाग सें उस स्त्री के स्तनों में दूध बढता है, और तीसरे रस के भागसें गर्भ के बालक का पोषण होकर क्रम करके धीरे धीरे गर्भ बढता है । जैसें पानी वरहा के मार्ग हो कर खेत में जाय उस खेतको तृप्त करता है । और धीरे धीरे वृद्धि करता है उसी प्रकार यह नाडी (नाल) माता के शारीर रस को लेकर आप तृप्त हो गर्भ को तृप्त करे हैं ।

गर्भवृद्धेरुपायमाह ।

गर्भस्यनाभिमध्येतु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतम् । तदाधमति वातश्च देहस्तेनास्यवर्द्धते ॥ ऊष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः।ऊर्ध्वांतिर्यगधस्ताच्च स्रोतांसितुयथातथा ।

अर्थ–गर्भगत बालक की नाभि में ज्योति स्थान है । उस में पवन जब चलती है, उस सें इस बालक का देह बढता है । जैसें जैसें उष्मा करके सहित पवन ऊपर नीचे तिरछे इस बालक के छिद्रों को विस्तारित करता है, उसी उसी रीति सें इस बालक का देह बढता है ।

गर्भकेजोप्रथमअङ्गहोताहै उसकोकहते हैं ।

शिरोभवतिचाङ्गस्य पूर्वमित्याहशौनकः । शिरस्यैवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणियत् ॥ हृदयंजायतेपूर्वं कृतवीर्योवदन्मुनिः । बुद्धेश्चमनसश्चापियतस्तत्स्थानमीरितं ॥ पाराशर्यइतिप्राह पूर्वंनाभिसमुद्भवः । प्राणोयत्रस्थितोदेहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ पाणिपादंभवेत्पूर्वं मार्कण्डेयमुनेर्मते । देहिनःसकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रयायतः ॥ प्रथमंजायतेकोष्टं ततःसर्वाङ्गसंभवः । एततुकथयामासगौतमोमुनिपुङ्गवः ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत्संभवन्तिहि । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्तेमतंधन्वन्तरेरिदम् ॥

आम्रस्यानुफलेभवन्तियुगपन्मांसास्थिमज्जादयो ।
लक्ष्यन्तेनपृथक्पृथक्त्वणुतया पुष्टास्तएवस्फुटाः ॥
एवंगर्भसमुद्भवेत्ववयवाः सर्वेभवन्त्येकदा ।
लक्ष्याः सूक्ष्मतयानतेप्रकटतामायान्तिवृद्धिंगताः ॥

अर्थ–अन्य अवयवों के प्रथम, गर्भ के मस्तक उत्पन्न होता है । ऐसे शौनक ऋषि कहता है । कारण यह है कि, सर्वेन्द्री मस्तक सें ही होती हैं (अर्थात् सर्व ज्ञानेन्द्रियों का मूल मस्तक है) कृतवीर्यमुनि कहता है कि, प्रथम गर्भ के हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि मन और बुद्धि इन दोनों का स्थान हृदय ही है । पाराशर ऋषि कहते हैं कि, प्रथम बालक के नाभि उत्पन्न होती है, क्यों कि

नाभि में ही प्राण पवन रहती है। वह ऊष्मा संयुक्त देह को बढाती है। मार्कंडेय ऋषि कहता है कि, प्रथम हाथ पैर उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सकल देहधारी पुरुष की चेष्टा हाथ पैरों के ही आश्रित है। प्रथम कोष्ठ (पेट) उत्पन्न होता है, तदनंतर सर्व अङ्ग प्रगट होते हैं, ऐसे गौतम मुनिपुंगव कहते हैं। परंतु वृद्ध सुश्रुत में लिखा है कि, प्रथम शरीर उत्पन्न होता है, ऐसें सुभूति और गौतम ऋषि कहते हैं। क्यों कि सर्व अवयव देह में बँधे हुये बढते हैं। सर्व अङ्ग और उपाङ्ग एकही काल में उत्पन्न होते हैं। परंतु अत्यंत सूक्ष्म होने सें दृष्टिगोचर नहीं होते यह धन्वन्तरि का मत है।

जैसें आम्रफल की उत्पत्ति में एक काल में ही मांस मज्जा और अस्थि आदि होते हैं। परंतु परमाणुरूप होने सें पृथक्पृथक् नहीं दीखने में आते, जब आम्र पुष्ट हो जाता है तब वे ही पूर्वोक्त मांस, मज्जा और अस्थि पृथक्पृथक् स्पष्ट दीखने लगती हैं। इसी प्रकार गर्भ की उत्पत्ति में सर्व अवयव एकही काल में होते हैं। परंतु अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण नहीं दीखते। जब बढकर बडे हो जाते हैं तब अलग अलग प्रतीत होने लगते हैं। इस आम्र में मांस स्थानी गूदा, मेदा स्थानी रस, और अस्थि स्थानी गुठली जाननी चाहिये। [मज्जादयः] इस पद में आदि शब्द के कहने सें त्वचा, केशर, मज्जा, छाल, अंकुर और वृंत (जिस में कली बँधी हुई होती है) इन सब का ग्रहण है। अर्थात् ये सब भी उत्पत्ति के समय नहीं मालूम होते हैं।

शरीरकेपितृजभाग।

गर्भस्यकेशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनिरेतः-
प्रभृतीनिस्थिराणिपितृजानि।

अर्थ–गर्भ के केश, डाढी, मूछ, लोम, नख, दांत, नस, नाडी, धमनीनाडी, और शुक्र इत्यादिक कठोर पदार्थ पिता सें उत्पन्न होते हैं।

मातृजन्य।

मांसशोणितमेदोमज्जाहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदर-
प्रभृतीनिमृदूनिमातृजानि।

अर्थ–गर्भ के बालक के मांस, रुधिर, चरबी, मज्जा, हृदय, नाभि, कलेजा, प्लीहा, आंतडी, और उदर इत्यादिक मृदु (नरम) पदार्थ माता सें उत्पन्न होते हैं।

रसजन्य।

शरीरोपचयोबलंवर्णःस्थितिर्हानिश्चरसजानि।

अर्थ–गर्भ के शरीर की वृद्धि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि इत्यादिक रस सें प्रगट होते हैं ।

आत्मजन्यपदार्थ ।

इन्द्रियाणिज्ञानविज्ञानमायुःसुखदुःखादिकंचात्मजानि ।

अर्थ–नेत्र आदि इन्द्री, ज्ञान, विज्ञान (अपरोक्ष ज्ञान) आयुष्य, सुख, दुःख, इत्यादिक आत्मा के सन्निकर्ष करके होते हैं । साक्षात् आत्मा सें ही नहीं होते क्यों कि, आत्मा निर्विकार और प्रकृति करके अनुपपत्ति है ।

सात्विक, राजस, तामस, जन्यपदार्थ ।

सात्विकंशौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः ।
राजसंबहुभाषित्वं मानक्रुदम्भमत्सराः ॥
तामसंभयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यंविषादिता ।

अर्थ–पवित्रता (दैहिक, मानसिक, और वाणी के भेद सें तीन प्रकार की है । मिट्टी जल आदि सें शास्त्रोक्त शुद्धि को कायिक कहते हैं । और सर्व जगत् सें प्रीत करना मानसिक । तथा सब सें प्रिय बोलना वाणी की पवित्रता कहाती है) आस्तिकता, कपटरहित धर्म में रुचि कहि ये भक्ति और बुद्धि का रखना, ये सब सतोगुण सें होते हैं । बहुत बोलना, अभिमान, क्रोध, दंभ, और मत्सरता ये रजो गुण सें होते हैं । भय, अज्ञान, निद्रा, आलस्य, और विषाद, ये गर्भ के तामसजन्य होते हैं ।

सात्म्यजपदार्थ ।

सात्म्यजंत्वायुरारोग्य मनालस्यंप्रभाबलम् ॥

अर्थ–सात्म्य तीन प्रकार का है। जैसें व्याधिसात्म्य,देशसात्म्य और देहसात्म्य इन्होंमें व्याधिसात्म्य का यहां पर ग्रहण नहीं है । आत्मा के अनुकूल को सात्म्यज कहते हैं वो ये हैं, जीवन, आरोग्य, (धातुओं की समानता) अनालस्य (सर्व- चेष्टाओं में उत्साह) कांति, और बल (तथा अलोलुपत्व, इन्द्रियों की प्रसन्नता, स्वर, वर्ण, वीर्य, तेज और हर्षादिक ये सब सात्म्यज ही हैं) ।

अथगर्भिणीकें जिनलक्षणोंकरके पुत्र, कन्या, नपुंसक और यमल उत्पन्न होनेकाअनुमानकराजायउनकोकहते हैं ।

यस्यादक्षिणस्तने प्राक्पयोदर्शनंभवति दक्षिणमाहत्वञ्च
पूर्वंचदक्षिणसक्थिउत्कर्षयति । बाहुल्याच्चपुन्नामधेयेषु

द्रव्येषुदौहृदमभिध्यायतिस्वप्नेषुचोपलभतेपद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनिपुन्नामान्येवप्रसन्नमुखवर्णाचभवति तांविद्यात्पुत्रमियंजनयिष्यति ॥

अर्थ-जिस के दहने स्तनमें प्रथम दूध दीखे, तथा दहना नेत्र कुछ बडा मालूम हो, तथा दहनी सक्थि (ऊरू) गर्भ के भार करके उच्च सी प्रतीत हो, तथा जो पुरुषसंज्ञक द्रव्य (आंब, केला, घोडा, हाथी आदि) में प्रीत करै, तथा स्वप्नमें सपेद कमल, सूर्य कमल, कमोदनी, और अंबाडे इत्यादिक पुरुषनाम के पुष्प फल देखे, तथा जिस का मुख सर्व काल में डहडहा दीखे, उस को जाने कि यह स्त्री पुत्र प्रगट करेगी। । इस सें विपरीत लक्षण कन्या के जानने चाहिये ।

वाग्भटेऽपि ।

प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वंतत्पार्श्वचेष्टनी । पुन्नामादौहृदप्रश्नरतापुंस्त्वप्रदर्शिनी ॥ उन्नतेदक्षिणेकुक्षौ गर्भेचपरिमण्डले । पुत्रंसूतेऽन्यथाकन्यां याचेच्छतिनृसङ्गतिम् ॥ नृत्यवादित्रगांधर्वगन्धमाल्यप्रियाचया ।

अर्थ-जिस गर्भवतीके प्रथम दहने स्तनमें दूध प्रगट हो, तथा दहनी तरफ करके सर्व चेष्टा करे (अर्थात् चले तो प्रथम दहने पैर को उठावे, सोवे तो दहनी करवट सोवे) तथा दौहृद (गर्भवती की इच्छा) भी पुरुषसंज्ञक वस्तुओं में चले (जैसें लड्डू, पेडा, आम, आमरूद, केला, आदि) तथा प्रश्न करे तो भी पुरुषसंज्ञक प्रश्नों को करे (अर्थात् वारम्वार पुरुष संज्ञा वाले नामों को लेवै) और स्वप्नमें भी पुरुष संज्ञक (घोडा, हाथी, शूकर, आम, अनार, अशोक, आदि वृक्ष, फूल, फल, देवता, पक्षी, मनुष्य आदि) देखे तथा जिसकी दहनी कूख ऊँची होवे, तथा गर्भस्थान गोल होवे, इन लक्षणों सें गर्भवती पुत्र प्रगट करती है ।

और पुत्र उत्पन्न करने वाले लक्षणों सें विपरीत लक्षण होवें, (जैसें वाम स्तनमें प्रथम दूध हो, सर्व चेष्टा वाम अङ्ग सें करे, स्त्री नाम वाले पदार्थोंकी इच्छा करे, स्वप्नमें भी स्त्रीवाचक पदार्थों को देखे, और वांई कूख जिस की ऊँची होवे, तथा जो स्त्री पुरुषसंग करने की इच्छा करे और जिसके चित्त को नाचना, गाना, बाजे बजाना, और चन्दन लगाना, फूल माला का धारण करना, आदि प्रिय लगे वो कन्या प्रगट करती है ।

नपुंसकगर्भके लक्षण ।

यस्याःपार्श्वद्वयमुन्नतंपुरस्तान्निर्गतमुदरंप्रागाभिहि
तंलक्षणंचतस्यानपुंसकंविद्यात् ।

अर्थ-जिस की दोनों कूख ऊँची सी प्रतीत हों, और आगे की तरफ पेट बराबर सपाट दीखे, और पूर्वोक्त दोनों पुत्र तथा पुत्री होनेके जो लक्षण कहे वो मिलते हों, वो स्त्री नपुंसक बालक को प्रगट करे हैं । (भावमिश्र कहते हैं कि नपुंसक बालक पेटमें होने सें पेट अर्बुद के सदृश होता है और आगे को भारी प्रतीत होता है) ।

जोडाहोनेवालेगर्भलक्षण ।

यस्यामध्येनिम्नंद्रोणीभूतमुदरंसायुग्मंप्रसूयते ॥

अर्थ-जिस का पेट बीचमें नीचा होकर द्रोणी (जल के पात्र) समान दीखे. वो स्त्री जोडा अर्थात् दो बालक प्रगट करे ।

अथान्तरेच ।

रोमराजिर्भवेन्निम्ना यस्याःसासूयतेयमौ ।

अर्थ-जिस की रोमपंक्ती गर्भ के कारण नीची हो, अर्थात् जिस गर्भवती के रोमांच नीचे को झुके हों वो दो बालक प्रगट करती है ।

गर्भवती के कायिक, वाचिक, मानसिक, लक्षणों से
पुत्रके गुण कहते हैं ।

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारविवर्जिता ।
महागुणंप्रसूयेत विपरीतांस्तुनिर्गुणान् ॥

अर्थ-जो स्त्री देवता, ब्राह्मण पूजनादि सदाचार, तथा दंत धावन (दांतौन) और स्नानादि शौचाचार युक्त होय, वह महागुणवान् पुत्रको प्रसव करती है । और पूर्वोक्त से विपरीत आचरण करे तो निर्गुण पुत्रों को प्रगट करे हैं ।

विकृतअवयवहोनेकाकारण ।

अङ्गप्रत्यङ्गनिवृत्तौ येभवन्तिगुणाऽगुणाः ।
तेतेगर्भस्यविज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ।
इति श्रीसौश्रुतशारीरे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ-पूर्व कहे जो हस्त पादादि अङ्ग और अंगुल्यादि प्रत्यङ्ग इन के उत्पत्ति के समय जो उत्तम और दुष्टता का होना वह शुभाशुभ कर्म करके होता है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

गर्भ की अवतरणक्रिया कहने के अनंतर उत्पन्न हुए गर्भका वर्णन करते हैं ।

॥ अथातोगर्भव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-गर्भ की अवतरणक्रिया कहने के अनन्तर, गर्भ का वर्णन जिसमें है ऐसी शारीराध्याय की व्याख्या करते हैं ।

गर्भ के वर्णन में प्राण और त्वचा आदि करके वर्णनीय पदार्थों में प्राण सब शरीरका उत्तम रीतिसे पोषण करते हैं, अतएव प्रथम प्राणों का वर्णन करते हैं ।

प्राणवर्णन ।

आग्निःसोमोवायुःसत्वंरजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणिभूतात्मेतिप्राणाः ॥

अर्थ-अग्नि, सोम, पवन, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, पंचेन्द्री और भूतात्मा ये प्राण है । प्राण शब्द करके इस जगे शरीर के पोषण करने वाले तथा कांत्यादिक देने वाले जानने, अग्नि शब्द करके पाचक, भ्राजक, आलोचक, रंजक, साधक, ऐसे भौतिक पांच ऊष्मा और सर्वधातुगत ऊष्माओं को शक्ति देनेवाला होकर वाणी का अधिदैवत जानना; तथा सोमपद करके श्लेष्मा (कफ) रस, शुक्र,आदिशब्द करके रसात्मक पदार्थ । रसेन्द्रियों को शक्ति देने वाला मनका अधिदैवत जानना; वायु शब्दकरके प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ऐसे पांच प्रकार के पवन जानना । सत्व, रज, और तम ये पूर्वोक्त अष्टविध प्रकृतिके गुण हैं । पंचेन्द्री करके श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण आदि पंचभूतात्मा शुभाशुभ कर्म करके परिगृहीत कर्म पुरुष जानना चाहिये । ये अग्न्यादिक प्राणों को प्रीणन अर्थात् जिमाते हैं इसी से इन को प्राण कहते हैं ।

अग्न्यादिक प्राण कौनसे कर्म से शरीर का प्रीणन अर्थात् पालन करते हैं सो कहते हैं ।

तत्राग्निस्तावदाहारपाकादिकर्मणाप्रीणयति ॥

अर्थ-तिनमें अग्नि आहार पाकादिकों से शरीर का प्रीणन करे हैं

सोमश्चसौम्यधातोरोजःप्रभृतेःपोषणेन ॥

अर्थ-चन्द्र सौम्य धातु का प्रीणन सारभूत तेजादिकों का पोषण करके शरीर पालन करे है।

वायुश्चदोषधातुमलादीनांसंचारणेनोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यांच ॥

अर्थ-वायु, वात, पित्त, कफ, तथा सप्तधातु और मल, मूत्र इन के संचार करके और ऊर्ध्वश्वास निश्वास करके शरीर का पोषण करे है।

सत्वंरजस्तमश्चमनोरूपतयापरिणतम् ॥

अर्थ-सत्व, रज, तम गुण ये मनोरूप करके परिणाम को प्राप्त हो कर कर्म पुरुष के शरीरांतरग्रहण के हेतु होकर पोषण करते हैं।

अबयहशरीरअन्यजिनजिनसमवायि*कारणकरकेउत्पन्न होताहैउनसबकोभावप्रकाशसेंकहतेहैं ।

अथदोपाःप्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनंतरम् । आहारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्चवक्ष्यते ॥ आर्त्तवंचाथधातूनां मलास्तदुपधातवः । आशयाश्चकलाश्चापि मर्माण्यथचसन्धयः ॥ शिराश्चस्नायवश्चापि धमन्यःकण्डरास्तथा । रन्ध्राणिभूरिस्रोतांसि जालेःकूर्चाश्चरज्जवः ॥ सेविन्यश्चाथसंघाताः सीमन्ताश्चतथात्वचः । लोमानिलोमकूपाश्च देहएतन्मयोमतः ॥

अर्थ-अब दोषों को कहेंगे पश्चात् धातु, तत्पश्चात् आहार की गति और आहार का परिणाम कहेंगे। पीछे आर्त्तव, धातुओं के मल, उपधातु, आशय, कला, मर्मसंधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कंडरा, जिस में अत्यंत छिद्र हैं ऐसे रंध्र, कूर्चा (डाटी मूछ) रज्जू, चार मोटी शिरा जिन को सेवनी कहते हैं। हड्डी, केश, त्वचा, रोम, रोमकूप, इन सबका वर्णन यथाक्रम करा जायगा, क्योंकि यह देह एतन्मय है। अर्थात् यह देह इन्हीं पूर्वोक्त पदार्थों सें बना है। बहुत सें पदार्थ

* जो कारण कार्य में मिला हुआ होय उस को समवायिकारण जानना, जैसें वस्त्र के कारण तंतु हैं वे वस्त्र में मिले हुए हैं इसी सें वे तंतु वस्त्र के समवायि कारण हैं। इसी प्रकार दोष धातु मलादिक मिल कर देह उत्पन्न हुआ है। अतएव दोष धातु आदि देह के समवायि कारण हैं।

तो इसी चतुर्थ अध्याय में कहेंगे और बाकी अन्य अन्य अध्यायों में वर्णन करे जावेंगे ।

शार्ङ्गधरेतु ।

कलाःसप्ताशयाः सप्त धातवःसप्ततन्मलाः । सप्तोपधातवः सप्तत्वचःसप्तप्रकीर्तिताः ॥ त्रयोदोपानवशतं स्नायूनां संधयस्तथा । दशाधिकंचद्विशतमस्थ्नाञ्चत्रिशतंमतम् ॥ सप्तोत्तरंमर्मशतं शिराःसप्तशतंतथा । चतुर्विंशतिराख्याता धमन्योरसवाहिकाः ॥ मांसपेश्यःसमाख्याता नृणां पञ्चशतंबुधैः । स्त्रीणांचविंशत्यधिकाः कण्डराश्चैवषोडश ॥ नृदेहेदशरन्ध्राणि नारीदेहेत्रयोदश । एतत्समासतःप्रोक्तं विस्तरेणाऽधुनोच्यते ॥

अर्थ-सात कला, सात आशय, सात धातु, सात धातुओं के मल, सात उपधातु, सात त्वचा, तीन दोष, नौसे नाडी, तथा दोसे दश सन्धि, तीन सौ हड्डी, एक सौ सात मर्म, सात सौ छोटी शिरा अर्थात् नस, चोवीस रस के रहने वाली धमनी नाडी, मांसपेशी ५०० स्त्रियों के मांसपेशी पुरुष से बीस अधिक हैं. सोलह कण्डरा, पुरुष के देह में यंड छिद्र दश हैं और स्त्रियों के १३ हैं । यह संक्षेप सें शारीरक कहा है । अब इसीको विस्तारपूर्वक कहते हैं । सर्व देह त्वचा सें आच्छादित है इसी सें सुश्रुत में प्रथम त्वचा का वर्णन है इसी सें त्वचा का वर्णन करते हैं ।

सप्तत्वचा ।

तस्यखल्वेवंप्रवृत्तस्यशुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्यक्षीरस्येवसान्तानिकाःसप्तत्वचोभवन्ति ॥

अर्थ-इसप्रकार भूतात्मा के योग करके पचन होनेवाला शुक्र शोणितोंके विकार से सात त्वचा उत्पन्न होतींहैं जैसे दूधके औटाने से मलाई उत्पन्न होती है ऐसे देहमें त्वचा प्रगट होती है ।

ग्रंथान्तरेच ।

त्वचायमखिलःकायः संवृतोविश्वकर्मणा । बाह्योपद्रवसंघाताद्रक्षितःसाधुतिष्ठति ॥ स्तरद्वयवतीयंत्वक् तद्बाह्यश्चर्मकथ्यते । स्तरोनाप्रोच्यतेन्तस्त्वग भूमिःस्पर्श

न्द्रियस्यसा ॥ उपर्य्युपरिविस्तीर्णस्तरसप्तकसंहतेः । एषात्वगखिलाजाता कैश्चिदितिचमन्यते ॥ तोयानिला दिसंकर्षः स्वेदस्यचविनिर्गमः । दैहिकस्योष्मणोरक्षा त्वचासंपाद्यतेध्रुवम् ॥

अर्थ-विश्वकर्मा (परमात्मा) करके इस त्वचाके द्वारा यह संपूर्ण देह ढकी हुई है । और देहके बाहर होने वाले उपद्रवसमूहो से रक्षा करती है । इस त्वचा के दो पुरत है । बाहरके पुरत को चर्म (चाम) कहते है । और भीतर की त्वचा के पुरतको अंतस्त्वक् अर्थात् भीतर की त्वचा कहते है । ये त्वचा स्पर्शेन्द्रियका आधार है । कोई कोई आचार्य ऐसा कहते है कि एकके ऊपर दूसरी इस प्रकार सातपूर्त मिलकर यह त्वचा बनी हुई है । इस त्वचा से यह प्रयोजन है कि, त्वचा द्वारा जल पवन आदिका शोषण (सूखना), पसीनो का निकलना, तथा दैहिक ऊष्मा की रक्षा संपादन होती है ।

त्वचाकेभेद कहते है ।

तासांप्रथमावभासिनीनामयासर्ववर्णानवभासय तिपंचविधांछायांप्रकाशयति ॥

अर्थ-सात त्वचाओं में पहली त्वचा का नाम अवभासिनी कहते है । यह भ्राजक अग्निके योग करके गोर कृष्ण आदि सर्व वर्ण प्रतीत करे है, और पंचमहाभूतों की करी हुई जो पाच प्रकारकी छाया और प्रभा इन दोनोंको प्रकाशित करे है ।

शिष्य-छाया ओर प्रभा में क्या भेद है ।

गुरु-आसन्नालक्ष्यतेछाया प्रभादूरात्प्रकाशते ।

अर्थ-छाया पास से मालूम होती है और प्रभा दूरसे ही प्रकाशित होती है यह दोनों में भेद है ।

अवभासिनीत्वचाकाप्रमाणआदि ।

साव्रीहेरष्टादशभागप्रमाणासिध्मकण्टकाधिष्ठाना ।

अर्थ-सर्व त्वचाओ के प्रमाण विषय में यव (जों) के विस्तार के बीस भाग कल्पना करे इन में अवभासिनी त्वचा का प्रमाण अठारह भाग है । और यह अवभासिनी त्वचा सिध्म (सिभूती) तथा कंटक आदि चर्म रोगों के उत्पन्न होने की जगह है ।

द्वितीयत्वचा ।

द्वितीयालोहितानामषोडशभागप्रमाणातिलकाल कन्यच्छव्यङ्गाधिष्ठाना

अर्थ-दूसरी त्वचा लोहिता नामक है, इस त्वचाका प्रमाण यव (जौं) का सोलह भाग है । यह तिल, न्यच्छ और व्यंगरोग (ये क्षुद्र रोगों में लिखेंहैं) इनके उत्पत्ति होनेकी जगह है ।

तृतीयत्वचा ।

तृतीयाश्वेताद्वादशभागप्रमाणाचर्मदलाजगल्लिका मशकाधिष्ठाना ।

अर्थ-तीसरी त्वचा का नाम श्वेता है । इसका प्रमाण यवके बारह भागहैं । यह चर्मदलकुष्ठ, तथा अजगल्लिका और मस्सा, इन के होनेकी जगह है ।

चतुर्थत्वचा ।

चतुर्थीताम्रा अष्टभागप्रमाणाकिलासकुष्ठाधिष्ठाना ।

अर्थ-चौथी त्वचा का नाम ताम्रा है। उस का प्रमाण जवका आठ भाग हैं यह किलास कुष्ठ होनेका स्थान है ।

पंचमत्वचा ।

पञ्चमीवेदनीनामपञ्चभागप्रमाणाकुष्ठविसर्पाधिष्ठाना ।

अर्थ-पांचवीं त्वचा का नाम वेदनी है, उस का प्रमाण पांच भाग, तथा कुष्ठ, विसर्प, आदि चर्म रोगों की जन्मभूमि है ।

षष्ठत्वचा ।

षष्ठीलोहिताव्रीहिप्रमाणाग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगल- गंडाधिष्ठाना ।

अर्थ-छटवीं त्वचा लोहिता नामक है । उस का प्रमाण एक जव है, यह गांठ, अपची, अर्बुद रोग, श्लीपद, गलगंड और गंडमाला इन रोगों की उत्पत्तिका स्थान है ।

सप्तमत्वचा ।

सप्तमीमांसधराव्रीहिद्वयप्रमाणाभगन्दरविद्रध्यर्शोऽधिष्ठाना ।

अर्थ-सातवीं त्वचा मांसधरा है । उस का प्रमाण दो जव है, यह भगंदर, विद्रधि, और बवासीर, आदि रोगों के उत्पन्न होने की जगह है । इस प्रकार सात त्वचाओं के नाम और प्रमाणादिक कहे हैं । परंतु यह प्रमाण मांसल देश अर्थात् जिस जगे अधिक मांस हो उस जगे जानना (जैसें उदर, ऊरू, जंघा, आदि की त्वचा हैं) किंतु ललाट ऊँगली इत्यादि सूक्ष्म देशों में यह त्वचा का प्रमाण न जानना क्यों कि आगे लिखते हैं ।

यथा ।

स्थूलअवयवोंकीत्वचाकाप्रमाण ।

उदरेत्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढंविध्येदिति ।

अर्थ-उदर में अंगुष्ठोदर प्रमाण एक सें एक त्वचा लिपट रही है, इसी सें पेट में एक अंगुष्ठोदर प्रमाण छेदे ऐसें कहा है । तात्पर्य यह है कि, सात त्वचा मिलकर अंगुष्ठोदर प्रमाण हैं । (अंगुष्ठोदर कहिये छः यव और एक का विसवां भाग ६$\frac{१}{२०}$ को कहते हैं) इस प्रकार सात त्वचाओं का वर्णन कर, अब सात कलाओं का वर्णन करते हैं, क्यों कि त्वचा के भीतर कलाओं का स्थान हैं ।

कलाकास्थान।

कलाःखल्वपिसप्तधात्वाशयांतरमर्यादाः

अर्थ-कला भी सात हैं (कला को भाषा में झिल्ली कहते हैं) वे धातु और आशयों की मर्यादा अर्थात् सीमा है । इस जगे धातु शब्द कर के रक्त मांसादि और कफ, पित्त, मल इत्यादि धातुओं के अवस्थानप्रदेश के मध्य में सीमा के समान है ।

कलाकाज्ञानप्रत्यक्षनहींहोताइसीसेंदृष्टांतकरकेकहते हैं ।

यथाहिसारःकाष्ठेपुच्छिद्यमानेपुदृश्यते ।
तथाहिधातुर्मांसेपुच्छिद्यमानेपुदृश्यते ॥

अर्थ-जैसें वृक्षों की लकडी का सार छाल सें आच्छादित होने के कारण नहीं दीसे, परंतु उस लकडी के छेदन करने सें प्रत्यक्षही दीखता है उसी प्रकार धातु मांसादिकों के छेदन करने सें दीसे हैं ।

कलाअदृश्यहै इसविषयमेंप्रमाण ।

स्नायुभिश्चपरिच्छन्नान्सततांश्चजरायुणा ।
श्लेष्मणावेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तुतान्विदुः ॥

अर्थ-कला भाग विशेष स्नायुओं सें आच्छादित और जरायु कहिये गर्भवेष्टन-सदृश पदार्थ है उस को कलावेष्टक कहते हैं । उस सें उत्तम प्रकार करके व्याप्त तथा कफ सें वेष्टित हैं । इसी सें दीखती नहीं हैं, कला का स्वरूपविशेष वृद्धवाग्भट मेंलिखा है ।

प्रथमकला ।

तासांप्रथमामांसधरायस्यांमांसेशिरास्नायु-धमनीस्रोतसांप्रतानानिभवन्ति ।

अर्थ-सात कलाओं में प्रथम मांसधरा नाम कला है । जिस कला के आधार करके रहने वाले मांस में शिरा, स्नायु, धमनी, स्रोतस् [छिद्र] इत्यादि फैले हुए हैं ।

मांसमेंशिरारहनेकादृष्टांत ।

यथाबिसमृणालानि विवर्द्धन्तेसमंततः ।
भूमौपङ्कोदकस्थानि तथामांसेशिरादयः ॥

अर्थ-जैसें पृथ्वी की कीच तथा जल इन में होने वाले कमल की जड, तंतु और पत्ते इत्यादि चारों तरफ फैले हुए होते हैं उसी प्रकार कलाश्रित मांस में शिरा आदि फैली हुई हैं ।

शिष्य-रस सें रुधिर,रुधिर सें मांस होता है, ऐसा आप कह चुके हो, फिर प्रथम रक्तधरा कला कहनी उचित थी फिर आपने मांसधरा कला क्यों कही? ।

गुरु-रस सें रुधिर और रुधिर सें मांस यह क्रम पोषण का है, धारण का नहीं है । इसी सें लिखा कि जिस कला के आधार करके रहने वाले मांसमें शिरा आदि फैली हुई है ।

द्वितीयकला ।

द्वितीयारक्तधरामांसस्याभ्यन्तरतस्तस्यांशोणितंवि-शेपतश्चशिरायकृत्प्लीहाश्चभवन्ति ।

अर्थ-दूसरी कला रक्तधरा है । यह मांस के भीतर है उस में रुधिर और विशेष करके शिरा, यकृत और प्लीह ये होते हैं ।

---

* यस्तुधात्वाशयान्तरेषुक्लेदोऽवतिष्ठते सयथास्वमूष्मभिः विपक्कः स्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्नःका-ष्ठइवसारोधातुरसशेषोऽल्पत्वात्कलासंज्ञ इति ।

रक्तादिरहनेकेविषयमेंदृष्टांत ।

वृक्षाद्यथाभिप्रहितात्क्षीरिणःक्षीरमास्रवेत् ।
मांसादेवंक्षतात्क्षिप्रं शोणितंसंप्रसिच्यते ॥

अर्थ-जैसें दूधवाले वृक्षों की डाली पत्ता आदि टूटने सें दूध बहने लगे हैं, इसी प्रकार मांस में घाव होने सें शीघ्र रुधिर निकलने लगता है ।

तृतीयकला ।

तृतीयामेदोधरा मेदोहिसर्वभूतानामुदरस्थोण्वस्थिषुच ।

अर्थ-तीसरी कला का नाम मेदोधरा है । मेद (चरबी) सर्व प्राणियों के उदर में और बारीक हड्डीओं में रहे हैं, और बडी हड्डीओंमें मज्जा रहती है ।

इसविषयमेंप्रमाण ।

स्थूलास्थिषुविशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरेस्थिता ।
अस्थ्यन्तरेषुसर्वेषु सरक्तोमेदउच्यते ॥

अर्थ-बडी हड्डियों के भीतर बहुधाकरके मज्जा रहे हैं और इतर सर्व हड्डियों में रक्त सहवर्त्तमान मेदा रहता है, इसी प्रकार वसा है।मेदोमज्जानुकारी उपधातुवसा कौन सी है इस लिये कहते हैं ।

वसाकास्वरूपकहते हैं ।

शुद्धमांसस्ययःस्नेहः सावसापरिकीर्त्तिता ।
तप्यमानस्यवास्नेहो मेदसांसावसामता ॥

अर्थ-शुद्ध मांस का अथवा तपायमान होकर मेदा सें निकला घृत तेल इनके समान पदार्थ उस को वसा कहते हैं ।

चतुर्थकला ।

चतुर्थीश्लेष्मधरासर्वसन्धिषुप्राणभृतांभवति ।

अर्थ-चौथी कला का नाम श्लेष्मधरा है । यह सर्व प्राणियों की सन्धी में रहकर कफ को धारण करती है, इस कफ करके सन्धियों का चलना हलना निर्विघ्नता सें होता है ।

सन्धिचलनविषयमें दृष्टान्त ।

स्नेहाभ्यक्तेयथैवाक्षे चक्रंसाधुप्रवर्त्तते ।
सन्धयः साधुवर्त्तन्ते संश्लिष्टाःश्लेष्मणातथा ॥

अर्थ-रथ के धुरा और छिद्र में तथा चाक की मोगली में, घृत तेल आदि चिकनाई लगाने सें जैसा पैया और चाक का फिरना निर्विघ्नता सें होता है। उसी प्रकार संधी कफलिप्त होने सें निर्विघ्नता सें फिरती है। ऐसा जानना।

पांचवीं कला।

पञ्चमीपुरीषधरानामयान्तःकोष्ठेमलमभिविभजति पक्काशयस्था।

अर्थ-पांचवीं कला का नाम पुरीषधरा है। यह पक्काशय में स्थित हो कोष्ठ में रहने वाले मल का तथा मूत्रका विभाग करे हैं।

कोष्ठोंकोकहते हैं।

स्थानान्यामाग्निपक्कानांमूत्रस्यरुधिरस्यच ।
हृदुन्दुकः फुप्फुसश्च कोष्ठइत्यभिधीयते ॥

अर्थ-आमाशय, तथा अग्न्याशय, तथा पक्काशय, तथा मूत्रस्थान, तथा यकृत् और प्लीहा तथा हृदय ओर गुदा तथा गुदा में मल के लानेवाले मोटे आंतडे तथा फेंफडा इन को कोष्ठ ऐसा कहते हैं।

पांचवींकलाकोकोष्ठाश्रितत्वस्पष्टकहते हैं।

यकृत्समंतात्कोष्ठंच तथान्त्राणिसमाश्रिता ।
उंदुकस्थंविभजते मलंमलधराकला ॥

अर्थ-मलधरा पांचवीं कला यह यकृत्, प्लीह, हृदय, फुप्फुस, तथा आंतडे, इन सब के अवयवों में व्यापक हो रहकर उंदुकस्थ मल का विभाग करे हैं। कोष्ठ की मर्यादा ऊर्ध्वप्रदेश में हृदयपर्यंत तथा अधोभाग में गुदापर्यंत इन का आश्रय करके रहति है। उंदुक को लोक में पोट्टलक कहते हैं। परंतु चरक में पुरीषांत्र करक उंदुक कहा हैं।

छटवीं कला।

षष्ठीपित्तधरानाम चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्त-भामाशयात्प्रच्युतंपक्काशयोपरिस्थतंधारयति।

अर्थ-छटवीं कला का नाम पित्तधरा है। यह भोजन करे हुए चतुर्विध अन्न पानी इन को आमाशयद्वारा पक्काशय में पित्तस्थान के प्रति प्राप्त हुए उन को पक्क होने के उपरांत धारण करे हैं।

उक्तश्लोककोस्पष्टकहते हैं ।

असितंखादितंपीतं लीढंकोष्ठगतंनृणाम् ।
तज्जीर्यंतियथाकालं शोषितंपित्ततेजसा ॥

अर्थ-[असित] कहिये विशेष दंत व्यापार के विना भक्षण करा हुआ तथा [खादित] कहिये दांतों से तोडकर खाया जाय जैसें चना आदि, तथा [पीत] जो पिया जाय जैसें दुग्धादि और [लीढ] कहिये जो चाटा जावे जैसें सोंठ अवलेह, आदि ये चारों प्रकार के अन्न मनुष्य के कोष्ठ में पहुँचने के उपरांत पित्त-के तेज करके शोषित हो मंद, मध्य, तेज, ऐसी त्रिविध अग्नि के विषे उचित काल तथा मात्रा लघु, गुरु, इन के विषय में उचित काल के व्यतीत न होने से पचता है । अर्थात् आमाशय और कफाशय से भ्रष्ट हो पक्वाशय में उपस्थित अर्थात् पि-त्तस्थान में प्राप्त हुए अन्न को पाक करने के अर्थ धारण करती है इसी से इस को पित्तधरा कला कहते है ।

इसविषयमेंसंग्रहकाप्रमाण है ।

षष्ठीपित्तधरानाम याकलापरिकीर्त्तिता ।
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीपरिकीर्तिता ॥

अर्थ-छटवीं पित्तधरा कला पक्वाशय तथा आमाशय के मध्य में अग्नि के अ-धिष्ठानरूप करके रहती हुई, पूर्वोक्त चतुर्विध अन्न को पित्तके तेज करके पक्व क-रती है । इसी सें इस छटवीं कला को ग्रहणी कहते हैं ।

सातवींकला ।

सप्तमीशुक्रधरानामसर्वप्राणिनांसर्वशरीरव्यापिनी ।

अर्थ-सातवीं कला का नाम शुक्रधरा है । यह कला सर्व प्राणियों के सर्व देह में रहनेवाले शुक्रको धारण करे है ।

शुक्रसर्वाङ्गव्यापकहोनेमेंदृष्टान्त ।

यथापयसिसर्पिस्तु गूढश्चेक्षौरसोयथा ।
शरीरेषुतथाशुक्रं नृणांविद्याद्भिषग्वरः ॥

अर्थ-जैसे दूधके सर्व परमाणुओं में घृत, तथा ईखके सब अवयवों में रस,गुप्त-रूप होकर रहता है । उसी प्रकार शरीर में शुक्र धातु रहती है ।

शुक्रकागमनमार्गकहते हैं।

व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वे बस्तिद्वारस्यचाप्यधः।
मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्यप्रवर्तते॥

अर्थ-मूत्राशय द्वार के अधोभाग में दहनी तरफ दो अंगुल पर जो मूत्रवाहिनी नाडी है, उस मार्ग के समीप से पुरुष का वीर्य प्रवृत्त होता है। इस विषय में प्रमाण कहते हैं।

तदुक्तंवृद्धवाग्भटे।

सप्तमीशुक्रधराद्व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वेबस्तिद्वारस्यचाधो-
मूत्रमार्गमाश्रितासकलशरीरव्यापिनीशुक्रंप्रवर्तयति।

अर्थ-सातवीं शुक्रधरा कला बस्तिद्वार के अधोभाग में दो अंगुल पर दक्षिण बाजू में, मूत्रमार्गका आश्रय करके सर्व शरीर में व्याप्तहो शुक्रको प्रवृत्त करतीहै। यह वृद्धवाग्भट में लिखा है।

वीर्यक्षरणकहते हैं।

कृत्स्नदेहाश्रितंशुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।
स्त्रीपुव्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते॥

अर्थ-जिस पुरुष का चित्त क्रोधादिक करके रहित, तथा स्त्री के साथ मैथुनादि शरीरायास (परिश्रम) करे उस पुरुष के सर्व देहमें व्याप्तहोकर रहनेवाला शुक्र सुख से प्रवृत्त होता है।

गर्भवतीकेआर्त्तवकानिषेधकहते हैं।

गृहीतगर्भाणामार्त्तववहानांस्रोतसांवर्त्मान्यवरुध्य-
न्तेगर्भेणतस्माद्गृहीतगर्भाणामार्तवंनदृश्यते।

अर्थ-जब स्त्री गर्भवती होती है तदनन्तर आर्तव बहनेवाली नाडियों के मुख गर्भ से रुक जाते हैं, इसीसें उन गर्भवती स्त्रियों के आर्तव नहीं दीसे है।

स्तनदुग्धोत्पत्ति।

ततस्तदधःप्रतिहतमूर्ध्वमागतमपरांचापचीयमानमपरे
त्यभिधीयते शेषंचोर्ध्वान्तरमागतंपयोधरावभिप्रतिपद्य-
ते तस्माद्गर्भिण्यःपीनोन्नतपयोधराभवन्ति।

अर्थ—गर्भ धारण के पश्चात्, वह आर्तव अधोभाग में जाने से रुककर ऊपरके भागमें जाय संचित होकर आवर रूप होता है और शेषभाग ऊपर स्तनों में प्राप्त होता है इसी से गर्भवतीके स्तन पुष्ट और उन्नत्त (ऊँचे) होते हे ।

अथगुहः ।

शरीरंत्रिगुहंप्रोक्तं करोटिहृदयोदरैः । करोटौमस्तकस्नेहो वक्षस्युण्डुकफुप्फुसौ ॥ हृत्कोष्ठश्चोदरेसन्ति यकृतपित्ता मधामनी । क्लोमस्कन्धोधामनीकः क्षुद्रांत्रंस्थूलमंत्रकम् ॥ प्लीहावृक्कद्वयंमूत्रनाडीवस्तिर्गुदंतथा । मत्तःशृणुतसर्वेषामुक्तानांगुणकर्माणि ॥

अर्थ—इस मनुष्य देह में करोटि, वक्षस्थल और उदर ये तीन गह्वर (गुफा) के सदृश स्थान है । इसी कारण इस देह को त्रिगुह कहते हैं । इन में ऊर्ध्व गुहा अर्थात् करोटी (मस्तक की हड्डी) में मस्तिष्क, अर्थात् घृत के सदृश पदार्थहै । इसी के घटने से मस्तकपीडा आदि अनेक रोग होते हैं । और मध्य गुहा अर्थात् वक्षस्थल में उंडुक, फुप्फुस, और हृत्कोष्ठ है उसी प्रकार नीचे की गुहा अर्थात् उदर में यकृत, पित्ताशय, आमाशय, क्लोम, धमनी, स्कंध, छोटी आंतडी, बडे आंतडे, प्लीहा, वृक्कद्वय, मूत्रनाडी, वस्ति और गुदा (बडे आंतडों के नीचे का भाग) है । इन में प्रत्येक के गुण और कर्म क्रमसें वर्णन करते हैं उन को सुनो ।

मध्यगुहा ।

त्रवीम्यूर्द्धगुहांपश्चादिदानींमध्यमामया । सकोष्ठावर्ण्यतेवत्सा निशामयतत्तत्वतः ॥ उरोऽस्थिपर्शुकोपास्थि पर्शुका अभितःस्थिताः । पार्श्वयोपर्शुकाः सन्ति पश्चात्पृष्ठकशेरुकाः ॥ पर्शुकाग्रोर्द्धपट्टुश्च शिरस्यस्याभिवर्तते । आस्तेऽधस्तात्तथावक्षस्थलपेशीचवक्षसः ॥

अर्थ—ऊर्ध्व गुहा का वर्णन स्नायु के वर्णन में करेंगे । अब मध्य गुहा का अर्थात् कोष्ठ सहित वक्षस्थल का वर्णन करा जायगा उस को श्रवण करो । इस गुहा के सन्मुख भाग में उरोस्थि (छाती की हड्डी) है, पर्शुकोपास्थि (पांशुओं के समीप रहने वाली छोटी हड्डी) है, पर्शुका गण (पांशुओं का समूह) दोनों पखवाडे, पीछे के अर्थात् पीठ की तरफ पृष्ठकशेरुका संपूर्ण है । ऊपर के भाग में प्रथम पर्शुका, तथा ऊर्ध्व पट्टु (वक्षस्थल के ऊपर ढका हुआ वस्त्रवत् पदार्थ विशेष) उसी प्रकार नीचे के भाग में वक्षस्थल पेशी जाननी ।

गर्भेगुहायाएतस्या हृत्कोष्ठोण्डुकफुप्फुसाः ।
सन्त्यमीपांत्रयाणाञ्च ब्रवीमिगुणकर्मणी ॥

अर्थ-इसी मध्य गुहा में हृत्कोष्ठ, उंडुक और फुप्फुस हैं, इन तीनों के गुण तथा कर्म क्रम से हम कहते हैं।

हृत्कोष्ठः (हृदय.)

उरोमध्यगतःकोष्ठो लवनीफलवर्तुलः । रक्ताधारश्चतुर्गर्भ आवरण्यासमावृतः ॥ तिर्यक्स्थोधमनीभूमिः फुप्फुसद्वयशीर्षकः । स्फीत्याकुञ्चनशीलोऽसौ हृत्कोष्ठइतिकीर्तितः ॥ ऊर्द्धंगर्भद्वयंतस्य निम्नतश्चापितद्वयम् । ऊर्द्धस्थेदक्षिणेगर्भे शिरासङ्गमजेशिरे ॥ अर्पयतोमहत्यौ द्वे रक्तंगुणविवर्जितम् । अधःस्थाद्वामगर्भाच्च धमनीमूलमुत्थितम् ॥ सर्वेष्वपिचगर्भेषु रक्तंक्रमसमागतम् । दोषहीनंगुणैर्युक्तं जन्तुंजीवयतेगुणैः ॥ अनिशंस्फायतेकोष्ठः प्रकृत्यासंकुचत्यपि । आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्यु सर्वस्यदेहिनः ॥ तदाकुञ्चनतोरक्तं महताखलुरंहसा । प्रविशेद्धमनीमूलं ततोभ्रमतिविग्रहम् ॥ स्फायनाकुञ्चनेतस्य विरमेतांक्षणंयदि । सहसैवभवेन्मृत्युर्नास्तिकोऽप्यत्रसंशयः ॥

अर्थ-हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय वक्षस्थल के मध्य स्थान में तिरछा होकर रहता है। इस हृत्कोष्ठ की आकृति हरफारेवडीफलके सदृश है तथा एक प्रकार की आवरणी (ढकने के पदार्थ) से आच्छादित है।इसके ऊपर दो शिरवाली फुप्फुस हैं (अर्थात् एक फुप्फुस वामांस और एक दक्षिणांस के भेद से दो भेद हैं,यह हृत्कोष्ठ शुद्ध रुधिर का आधार है। इसी जगे से धमनी नाडी उत्थित है अर्थात् इसी से धमनी नाडी लगी हुई है, इस जगे चार प्रकार के गर्भ प्रकोष्ठ हैं दो ऊपर की तरफ, और दो नीचे की तरफ, प्रथम लिख आए हैं। ये जितनी शिरा हैं सब मिल कर दो बडी शिरा रूप परिणाम को प्राप्त हुई हैं। ये दोनों शिरा ऊपर स्थित दक्षिण हृद्गर्भ से मिली हुई हैं,ये दोनों शिरा शरीर के दुष्ट रुधिर को शुद्धि करती है, अधःस्थ वाम गर्भ से मूल धमनी उत्पन्न हुई है, दूषित रुधिर इन गर्भचतुष्टयों में प्राप्त होने से शुद्ध हो कर

देहको आत्मगुण देकर जीव को जीवाता है । यह हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय स्वभाव सेही एक वार खिलता है और एक वार संकुचित अर्थात् मुंदता है । जीव के गर्भ सें निकल पृथ्वी के स्पर्श करतेही जबतक मृत्यु होती है तबतक बराबर हृदय- के खुलने मुँदने की क्रिया निरंतर होती रहती है । हृत्पिंड के खुलते ही उस जगे रहने वाला रुधिर अति वेग सें उस हृत्पिंड में प्रवेश कर तदनंतर धमनी समूह- के मार्ग में प्रवेश हो सर्व देह में विचरे है । यदि एक क्षणमात्र भी हृदय का खुलना मूंदना बंद हो जावे तो उसी समय यह मनुष्य मर जावे इस में कुछ सन्देह नहीं है ।

फुप्फुस (फेंफडा.)

फुप्फुसस्तुद्विधाभिन्नौ वामदक्षिणभेदतः । पेश्यांवक्षस्थ- लस्थायां समासन्नोऽनुशीर्षकः ॥ अधोविशालोबहुभिः कोपैरिवमधुक्रमः । दुष्टशोणितसंशुद्धिकोपोऽयंपरिकी- र्तितः ॥ तरुणास्थिमयीनाडी जिह्वामूलात्प्रधाविता । अधःशाखाद्वयवती फुप्फुसद्वयमागताः ॥ ततःशाखाद्व- यात्तस्माद्बह्वयःशाखाविनिःसृताः । कोपेषुफुप्फुसस्थेषु सुसूक्ष्माःसमुपस्थिताः ॥ नासामुखसमाकृष्टः पवनःश्वा- सकर्मणा । श्वासनाड्यातयासर्वांस्तान्कोपान्प्रविश- त्यसौ ॥ महाशिराभ्यांहृत्कोष्ठं संप्राप्तंदुष्टशोणितम् । नाडीविशेषोनियतं तदानयतिफुप्फुसम् ॥ श्वासाकृष्टो ऽनिलस्तत्र समर्प्यात्मगुणंततः । निर्दोषंशोणितंकुर्य्या- त्सुखोष्णंचसुलोहितम् ॥ तद्रक्तंहृदयंभूयः प्रविष्टंधम- नीगणैः । निरन्तरंमहारंहो देहान्तर्देहिनांभ्रमेत् ॥

अर्थ—फुप्फुस अर्थात् फेंफडा दो विभागों में विभक्त है, एक वाम फुप्फुस और दूसरा दक्षिण फुप्फुस, यह वक्षस्थलस्थ पेशीके ऊपर स्थित है, इस के ऊ- पर का भाग छोटा है और नीचे का भाग विशाल है, अर्थात् बडा है । जैसा मधुक्रम अर्थात् मोहार की मक्खी का कोष होता है, उसीप्रकार इस का अ- संख्य कोष है । यह फुप्फुस दुष्ट रुधिर के शोधन करने का कोष्ठ है । जिह्वा मूल के नीचे सें तरुणास्थिमयी एक प्रकार की नाडी नीचे को मुख किये का ऐसी क्रम से गमन करती हुई अधोभाग में दो शाखा के बीच विभक्त होकर दोनों

फुप्फुस पर्यंत चली गई है, और इन दोनों शाखाओं में से बहुतसी छोटी छोटी शाखा प्रशाखा निकल कर फुप्फुस के प्रत्येक कोष में विद्यमान हैं । नासिका और मुख द्वारा भीतर को खींची हुई बाहर की पवन श्वास नाडियों में प्रवेश करके प्रत्येक कोष में प्राप्त होती है । पूर्व लिख आए हैं कि, ये जितनी शिरा हैं, वो मिलकर दो शिराओं में परिणाम को प्राप्त हो दक्षिण हृद्गर्भ में मिली हुई हैं । इन दोनों शिराओं के द्वारा प्राप्त हुआ दुष्ट रुधिर हृत्कोष्ठ में प्राप्त होकर पश्चात् अन्य नाडियों के द्वारा फुप्फुस में प्राप्त होता है । तहां यह रुधिर श्वास करके भीतर लीनी हुई पवन द्वारा विशुद्ध और सुखोष्ण तथा लोहित वर्ण होकर हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय में फिर प्राप्त होता है । फिर इस हृत्कोष्ठ में से धमनी नाडियों के मार्ग हो कर अतिप्रबल वेग से सर्व देह में विचरे हैं । पांचवे नम्बर का चित्र देखो ।

श्वासाकृष्टोऽनिलोऽस्राय समर्प्यात्मगुणाञ्छुभान् । अशुभां श्वसमादाय फुप्फुसादथनिःसरेत् ॥ असौश्वासक्रियासाच कालेनयावतायदि । वारान्प्रवर्ततेनाड्याः स्पंदसंख्याच याभवेत् ॥ इत्याद्यानिखिलाभावाः नाडीज्ञानेपुरामया । वर्ण्यतेशृणुतेदानीं हेतुंवाचांप्रवर्तने ॥

अर्थ-श्वासद्वारा लीनी हुई पवन फुप्फुस में जायकर उस जगे उस रुधिर को अपने उत्तमगुण देकर और उस रुधिर के दुष्ट गुण लेकर फुप्फुस में से निकलती है । इसी पवनके भीतर बाहर जाने आने को श्वासक्रिया कहते हैं । यह श्वासक्रिया जितने काल में जितनी वार होवे उतने काल में उतनी वार नाडीका फडकना होता है । (जितनी देर में मनुष्य एक श्वास लेता है उतने समय में नाडी ४ वार फडकती ऐसा जानना) इत्यादि संपूर्ण नाडी की स्पंदन (फडकने की संख्याआदि भावों को आगे नाडीज्ञानमें हम वर्णन करेंगे । अब बोलने की प्रवृत्तिके हेतु को वर्णन करते हैं उसको सुनों ।

वाणीकेप्रवर्तनकाहेतु ।

ऊर्ध्वांशःश्वासनाड्याहि वाग्यंत्रमितिकीर्तितः । तरुणास्थिधरारज्जू पेशीस्नायुकलागणैः ॥ निर्मितंकण्ठदेशेतत्पुरस्तादभिवर्त्तते । तस्योपास्थिविशेषस्य द्वेपक्षेपक्षिपक्षवत् ॥ कण्ठोत्सेधंजनयतो मिलित्वाचपरस्परम् । लक्ष्यतेचक्षुपैवैप क्षीणानांचविशेषतः ॥ तस्मादुपरिवाग्यंत्रा दुपजिह्वाभिव-

र्तते । अन्नग्रहणकालेया श्वासरन्ध्रंप्रगोपयेत्॥ जनयन्वाक्य-यंत्रस्य हेतूनांसमवायिनाम् । जन्तुभेदानवस्थायाः स्वराञ्ज-नयतेवहून् ॥ सिंहशार्दूलखड्गानां रवैर्मूर्च्छंतिजन्तवः । वि-हङ्गगीतध्वनिभिः कोनमुह्यतिजन्तुषु ॥ द्रवीकरोतिहृदयं बालानांसुखदः स्वरः । क्रंदनध्वनिभिःकस्य नगलत्यश्रुनेत्र-तः ॥ सुखैरमृतनिःस्यन्दैः कोमलैःकामिनीश्वरैः । सुरासुरन-रेष्वेषु कोनमुह्यतिसर्वथा ॥ जिह्वोष्ठतालुदन्ताद्यैरन्योन्याऽभिहतैःस्वरः । कण्ठोद्भिन्नः कादिवर्णभेदेनाथप्रकाशते ॥ ननरादितरेषांतद्यंत्राङ्गानांसुसंस्थितिः । निर्मितिश्चेद्दशीतेऽतो नवदेरन्यथानरः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त श्वास नाडी के ऊर्द्ध भागको वाग्यंत्र ऐसे कहते हैं । यह वाग्यंत्र तरुणास्थि, धमनी, रज्जू, पेशी, स्नायु और कला आदि समूह से बना हुआ है । यह कंठदेशके अग्र भागमें विद्यमान है । उस एक प्रकार के उपास्थिविशेष वाग्-यंत्र के परेवा के तुल्य दो पंख (पर) हैं । वे दोनों पांख परस्पर मिलकर कंठो-त्सेध (अर्थात् कंठ से उत्तम स्वर को) प्रगट करे हैं ये दोनों पंख नेत्रद्वारा वि-शेष करके क्षीण देहवाले मनुष्यों के प्रत्यक्ष दीखते हैं । इस वाग्यंत्र के ऊपर उपजिह्वा (छोटी जीभ) है, यह उपजिह्वा जिस समय मनुष्य भोजन करता है उस समय श्वास आने जाने के छिद्र को आच्छादन (ढक) लेती है । कि जिससे भोजन कराहुआ अन्न जल आदि श्वास के छिद्र में जाने न पावे (दैव वश कदा-चित् भोजन करते समय अन्न का ग्रास अथवा पानी आदि वस्तु इस श्वास छिद्रमें गिर जावे तो अत्यंत खांसी प्रगट होकर उसको उस श्वासछिद्रमेंसे निकालकर बाहर पटकदेती है । इसी को धांस गई कहते हैं) यह वाग्यंत्र के समवायि कारण अर्थात् उपादान कारण समस्त जीवों के अवस्था विशेष करके अनेक प्रकार के स्वरों-को प्रगट करेहैं।जैसे सिंह, शार्दूल, गेंडे आदिके घोर शब्द से सब प्राणी मूर्च्छित होते हैं। विहङ्ग (कोयल, तोता, मैना, कबूतर, आदि) के बोलने सुनने को कौन मोहित नहीं होवे?छोटे छोटे बालकों का सुखदायक मिष्ट स्वर हृदयको द्रवीभूत करता है, दुखिया जीवों का क्रन्दन अर्थात् रुदन सुनकर किस मनुष्य के नेत्रों से आंसू नहीं गिरते ? कंठ कामिनी (नवयौवना स्त्रियों) के सुखदायक अमृततुल्य कोमल स्वरको सुनकर ब्रह्मांड के देवता, दैत्य, मनुष्यों में कौन मोहित न होगा ? कंठ-

नाडी के सदृश जीभ, होंठ, तालू और दांत आदि वाग्यंत्रके अङ्ग कहातेहें। कंठसे निकलाहुआ स्वर इन पूर्वोक्त जीभ होठ और वाग्यंत्रादि द्वारा परस्पर ताडित हो-कर क, च, ट, त, प, इत्यादि वर्ण स्वरूप करके प्रकाशित होते हैं। मनुष्यों के वाग्यंत्र की जैसी स्थिति और जैसी बनावट है एसी इतर प्राणी (सिंह, व्याघ्र, कुत्ता, बिल्ली, वानर आदि) के नहीं हें, इसी सें जैसा मनुष्य बोलता है ऐसें कुत्ता बिल्ली आदि जीव नहीं बोल सक्ते।

उण्डुकः।

शोणितकिट्टप्रभवउंडुकः।

अर्थ-रुधिर के मैल सें उंडुक प्रगट होता है।

फुप्फुसस्यावरण्योद्वे ऊर्णुतस्तद्वयंतयोः।
उण्डुकःशैशवेमध्ये मध्यास्तेमहतांनहि॥

अर्थ-दो आवरनी द्वारा फुप्फुसद्वय ढकी हुई है। इन के मध्य भाग में बालक-अवस्था में उण्डुक होता है। अवस्था के बढने सें बाल्य अवस्थाके साथही यह उण्डुक नष्ट हो जाता है। गांठ के सदृश एक प्रकार का पदार्थ होता है उस को उण्डुक बोलते हें।

अधोगुहा।

गुहानांतिसृणांज्ञेया गुहाधःस्थामहत्तमा। बहुयंत्राण्ड वद्वृत्ता स्थानंपाकादिकर्मणाम्॥ ऊर्ध्ववक्षस्थलस्थास्याः पेशीवस्तिरधःस्थिता। पार्श्वयोश्चाभितःपेश्यः पश्चात्पेश्यःकशेरुकाः॥

अर्थ-तीनों गुहान में नीचे की गुहा अर्थात् उदर गहर बहुत बडा है। इस में अनेक शारीर यंत्र हे, यह अंडा के सदृश गोलाकार है, इस में अन्न परिपाकादि क्रियाओं का स्थान है, इस गुहा के ऊपर वक्षस्थलस्थ पेशी है। और अधोभाग में बस्तिदेश है, पार्श्व (पसली) दोनों तथा सन्मुख. उदर की पेशी है, इसी प्रकार पीछे की तरफ औदरीय पेशी और कशेरुका गण है।

आंतडेआदिकीउत्पत्ति।

असृजःश्लेष्मणश्चापि यःप्रसादपरोमतः। तंपच्यमानं पित्तेन वातश्चाप्यनुधावति॥ ततोंत्राणिप्रजायन्ते गुदं

वस्तिश्चदेहिनः । उदरेपच्यमानानामाध्मानाद्रुक्मसार वत् ॥ कफशोणितमांसानां सारान्मज्जाप्रजायते ।

अर्थ-रुधिर, तथा कफ, इन का उत्कृष्ट पदार्थ पित्त की ऊष्मा करके पचन होने सें इन में वायु आनकर मिलता है, तिन सबों के मिलने से आंतडी, वस्ति और गुदा ये होते हैं । तथा उदर में देह की अग्नि के योग सें पच्यमान कफ, रुधिर, मांस के सार सें मज्जा होती है । जैसे सुवर्ण को तपाते तपाते उस सें सार पदार्थ अर्थात् शुद्ध सुवर्ण प्रगट होता है. गर्यी आचार्य उदर के स्थान में हृदय ऐसा पाठ कहता है अर्थात् हृदय में देह की अग्नि सें पच्यमान कफ रुधिर ।

ऊष्मोत्पत्ति ।

यथार्थमूष्मणायुक्तो वायुःस्रोतांसिदारयेत् ।

अर्थ-पित्त सें मिली हुई वायु, जैसा जिस का कार्य है तैसा रस, रुधिर, वीर्य, शब्द इत्यादिकों को वहने वाली नाडियों को करे हैं ।

पेश्युत्पत्ति ।

अनुप्रविश्यपिशितं पेशीर्विभजतेतथा ॥

अर्थ-वायु मांस में प्रवेश होकर पेशीयों का विभाग करे है । मांस के चौकोन तथा कोई लंबे ऐसी मांस की बोटियों को पेशी कहते हैं । इन की संख्या आगे पंचम अध्याय में कहेंगे ।

पेशियोंकास्वरूप ।

पेश्यस्तुलोहिताः सौत्राः सर्वकायसमाश्रिताः । ताःसङ्को चनशीलाश्च समन्तात्कलयावृताः । स्पन्दनाग्निप्रवर्ति न्यो द्विधाताःपरिकीर्त्तिताः । स्वेच्छाधीनश्चकाश्चित्स्युः स्वाधीनाःकाश्चिदेवहि ॥ सक्थिबाह्वादिपुज्ञेया इच्छा धीनास्तथापरा।अंत्रोपस्थादिपुप्रोक्तामुनिभिर्देहवेत्तृभिः॥ धमन्यस्थिशिरास्नायु सन्धयश्चशरीरिणाम् । पेशीभिःसंवृताः सर्वे भवन्तिबलिनोह्यतः ॥

अर्थ-सब पेशी लाल रंग की बहुत बारीक बारीक सूतसदृश पदार्थ सें बनी हुई सर्व देह में व्याप्त हैं और सर्वत्र झिल्ली से आच्छादित हैं, ये पेशी संकोचन-शील अर्थात् इन्हों का सिमटने का स्वभाव है, और स्पंदन (फडकना आदि)

क्रियाओं की प्रवर्त्तक हैं। पेशी दो प्रकार की हैं, एक स्वाधीन, दूसरी इच्छाधीन, तिन में सक्थि, भुजा, आदिमें इच्छाधीन पेशी हैं और आंतडी तथा उपस्थ (भग, लिंग,) प्रभृति आदि में स्वाधीन पेशी हैं। मनुष्यों के हड्डी, धमनी, शिरा, स्नायु, (पट्ठे) और सन्धि ये सब पेशियों के द्वारा बँधी हुई होने से सुरक्षित और बलवान् रहती हैं। पेशी का दूसरा नाम मांस है बकरी आदि के मांस में प्रत्यक्ष दीखती है नेत्रों में जो लाल लाल डोरे हैं वे भी पेशी जाननी।

स्नायुकीउत्पत्ति।

मेदसःस्नेहमादाय शिरास्नायुत्वमाप्नुयात्।
शिराणांतुमृदुःपाकः स्नायूनांतुततःखरः॥

अर्थ—वायु, मेदा के स्नेह को लेकर पूर्वोक्त ऊष्मा सें पक करके शिरा (रग) और स्नायु (पट्ठे) इन को उत्पन्न करे हैं।

शिष्य—आपने कहा कि मेदा के स्नेह सें शिरा और स्नायु प्रगट होती हैं सो मुझ को सन्देह है कि एक प्रकार के पदार्थ से दो प्रकार के पदार्थ कैसें बनते हैं।

गुरु—इसका यह कारण है कि शिराओं के स्नेह का थोडा नम्र पाक होता है और स्नायुओं के स्नेह का अधिक पाक होता है। इसी सें दो प्रकार के पदार्थ बनते हैं, जैसें ईख के रस सें राब और कंद होता है।

आशयोत्पत्ति।

आशयाभ्यासयोगेन करोत्याशयसम्भवम्।

अर्थ—वायु अपनी स्थिती करके अपने सहवास करके आशयों को करे हैं।

सप्ताशयानाह।

उरोक्ताशयस्तस्मादधश्लेष्माशयःस्मृतः। आमा-
शयस्तुतदधस्तल्लिंगंचरकोवदत्॥

अर्थ—उरःस्थल रक्ताशय कहाता है, उस उर (छाती) के नीचे कफाशय है, उसके नीचे आमाशय है, उस के लक्षण चरक में इस प्रकार लिखे हैं।

नाभिस्तनान्तरंजन्तोराहुरामाशयंबुधा इति।

अर्थ—मनुष्य के नाभि और स्तनों के बीच में, पंडितजन आमाशय कहते हैं।

आमाशयादधःपक्काशयादूर्ध्वंतुयाकला। ग्रहणीनामि-
कासैव कथितःपावकाशयः॥ ऊर्ध्वमग्न्याशयोनाभेर्मध्य-

भागेव्यवस्थितः । तस्योपरितिलंज्ञेयं तधदःपवनाशयः ॥ पक्काशयस्तुतदधः सएवतुमलाशयः ॥ तदधःकथियोव- स्तिःसहिमूत्राशयोमतः ॥

अर्थ-आमाशय के नीचे और पक्काशय के ऊपर जो कला (झिल्ली) है, उस- को ग्रहणी कहते हैं उसी को पावकाशय भी कहते है । नाभि के ऊपर मध्यभाग में अग्न्याशय है उस के ऊपर तिल है, उसके नीचे पवनाशय है, उस के नीचे पक्काशय है, उसी को मलाशय कहते हैं, उसके नीचे वस्ति है, उसी को मूत्राशय कहते हैं ।

आशयोंकाअनुक्रमवाग्भटमेंइसप्रकारलिखाहै ।

रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफाऽऽमपित्तवातानामाशयाम- लमूत्रयोः । पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥ धरागर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्काशयांतरे । स्तनौप्रवृद्धौतावे- व बुधैःस्तन्याशयोमतः ॥

अर्थ-रक्ताशय के नीचे क्रम से, कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, पवनाशय, मलाशय और मूत्राशय ये आशय हैं । पुरुष की अपेक्षा स्त्री के तीन आशय अ- धिक हैं । पित्ताशय और पक्काशय के बीच के स्थान को गर्भाशय कहते हैं । तथा दोनों स्तन जब बढ़ते हैं तब उन्हीं दोनों स्तनों को पंडित स्तन्याशय मानते हैं ।

रक्तमेदप्रसादाद्वृक्कौ ।

अर्थ-रुधिर और मेदा इन के सार से वृक्क (कुक्षिगोलक) होते हैं । कूख में दो मांस के पिंड होते हैं उनको वृक्क कहते हैं ।

वृषणोत्पत्ति ।

मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ ।

अर्थ-मांस, रुधिर, कफ और मेद इन के सार से वायु के योग करके पूर्व- वत् वृषण (अण्डकोश) उत्पन्न होते हैं ।

अथाण्डद्वयम् ।

रेतःसूत्रसमाबद्धं कोपगर्भेऽवतिष्ठति । रेतःस्राव्यण्डयुगुलं ग्रंथ्याभंचाण्डवर्तुलं ॥ भ्रूणस्योदरवेष्टिन्याः पश्चादुदरग

ह्वरे । तिष्ठेत्प्राक्स्पर्शनाद्भूमेः कोपमायातितद्वयं ॥ दक्षिणस्मात्स्थूलतरं वामाण्डंनिम्नलम्बिच । वामं रैतसिकंसूत्रं यतोदीर्घतरंपरात् ॥ उपर्य्युपरिसंस्थानस्तरद्वंद्वेननिर्मितः । कोपोरैतसिकेसूत्रे धत्तेऽण्डयुगुलंतथा ॥ तयोराभ्यन्तरोरक्तः संकोचनगुणान्वितः । स्तरोवाह्यश्चर्ममयो लोमभिःकतिभिश्चन ॥ स्तरास्तिरष्करण्यान्तरेकयाभिद्यतेद्विधा । तद्गर्भद्वयमध्यास्ते पुंसोऽण्डयुगुलंनतु ॥ उदराद्रेतसःसूत्रे पश्चाद्भागमथाण्डयोः । नियतं समनुप्राप्ते धरास्नाय्वादिनिर्मिते ॥

अर्थ–दोनों अण्ड रेत सूत्र से बँधे हुए कोप के भीतर रहते हैं, इन दोनों का स्वरूप अंडे के सदृश गोलाकार है । इन्हीं दोनों अण्डकोषों में से वीर्य गिरता है, गर्भावस्था के समय अर्थात् जिस समय बालक गर्भ में होता है इस समय इस बालक के उदर गव्हर में उदरवेष्टनी के पिछाडी रहते हैं । बालक के पृथ्वी स्पर्श-करने के पूर्व दोनों अण्ड दोनों कोषों में उतर आते हैं । बाँया अण्ड दहने अण्ड की अपेक्षा कुछ बडा और उसी प्रकार वाम रेत सूत्रके अधिक लम्बे होने से कुछ अधिक नीचे को लटकता है । इन का आवरण कर्त्ता कोप एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार के दो परतों से बना हुआ है । इन कोषों में दो रेत सूत्रों के नीचे ये दोनों अण्ड लटके हुए हैं । इन दोनों परतों में भीतर का परत सङ्कोचन गुणवाला है, अर्थात् (अंडों को खींचने से अथवा सरदी पाने से तथा स्वतः स्वभाव सुकड जाता है, कभी कभी वारंवार सुकडते है और फिर लटक कर लम्बे हो जाते हैं) तथा भीतर के परत का लाल रङ्ग हैं । बाहर का परत चर्म मय है । यह परत बहुत से रोमांचों से व्याप्त हैं, भीतर का परत एक तिरष्करनी (अर्थात् पर्दा के सदृश एक प्रकार के पदार्थ से) दो विभागों में विभक्त होकर दो गर्भों में परिणत है । इन्हीं दोनों गर्भों में दो अण्ड रहते हैं । रेतसूत्र दोनों उदर से लेकर दोनों अंडों के पिछाडी के भाग पर्यंत विस्तारित है । ये रेतसूत्र धमनी और स्नायुप्रभृति द्वारा निर्मित हैं। प्रसङ्गवश मूत्रयंत्र और पुंजननेन्द्रियों को कहते हैं ।

अथ मूत्रयन्त्राणि ।

वृक्कौद्वौमूत्रनाड्यौद्वेतथावास्तिश्चमूत्रणे । ज्ञेयानीमानियंत्राणि रंध्रमेपास्थिकंतथा॥शिम्बीवीजनिभौवृक्कौ यकृत्प्ली-

ह्नोरधःस्थितौ । पश्चादुदरवेष्टिन्याः कटिदेशगतौमतौ ॥ अत्रस्रोतांसिभूयांसि धमन्यस्रादयःसदा । गृह्णन्तिदोपसाहितास्तेनास्त्रंशुद्धतांव्रजेत् ॥ वुक्कफुप्फुसचर्माणि धमनीशोणितादयः । सदोपाःसम्यगादाय शोधयन्त्यनिशंहितत् ॥ वुक्काङ्गनिःसृतेनाड्यौ वस्तिपृष्ठमधोगते । वुक्कसंचितमूत्राणि वस्तिमानयतःशनैः ॥

अर्थ—दो वुक्क, दो मूत्रनाडी, वस्ति तथा उपस्थ (लिंग तथा योनि) रन्ध्र ये सब मूत्रयंत्र के नाम हैं । दोनों वुक्कों का आकार, सेंमके बीजकासा है । ये दोनों कटिदेश (कमर) में यकृत् तथा प्लीहा के नीचे उदरवेष्टनी के पिछाड़ी रहते हैं । वुक्कस्थ स्रोतो नाडीसमूह जो है सो धमनी नाडियामें रहनेवाले रुधिर में जो दूषित जलका भाग है उसको खींचकर रुधिर को निर्दोष करती है। वही रुधिर का दूषित जलभाग जो है सो मूत्रनामसे विख्यात होता है ।

वुक्क॰ फुप्फुस तथा चर्म ये रुधिर का दूषित भाग ग्रहण करके सदैव उस रुधिर को विशुद्ध करते रहते हैं । दोनों वुक्क के अंग से दो नाडी निकल कर वस्ती के पृष्ठभागके नीचे जायकर मिल गई है । ये दोनों नाडी वुक्कस्थ मूत्रकोष में संचित हुए मूत्रको धीरे धीरे उस मूत्रको वस्ती में मिलाती है ।

अथवस्तिः ।

कलापेश्यात्मिकावस्तिर्गुदस्यपुरतःस्थिता । पश्चादौपस्थिकास्थ्नोश्चमूत्राशयइतिस्मृतः ॥ वस्तेरूर्ध्वंमुखंरज्ज्वा नाभौसंवद्धमेकया । अपराभिर्निवद्धाच वस्तिःस्थानेऽवतिष्ठते ॥ स्त्रीपुयोनिर्धराचापि गुदस्यपुरतःस्थिता । तयोस्तुपुरतोवस्तिर्विशेषोऽयमुदीरितः ॥ वस्तेःसंकुचितंनिम्नं मुखंरन्ध्रेणसंयुतं । औपस्थिकेनमूत्रस्य वाहिर्निःसरणायहि ॥ आशयेसंचितंमूत्रमतिमात्रंयदाभवेत् । तदौपस्थिकरन्ध्रेण रंहसानिःसरेद्वहिः ॥

अर्थ—वस्ति (अर्थात् मूत्राशय) पेशी और कला इन दोनों से बनी है । वह गुदाके सन्मुख तथा उपस्थिका की हड्डी के पिछाडी स्थित है । यह मांसमयी एक छिद्र द्वारा नाभी से बँधी हुई है । उसीप्रकार और भी कितने छिद्रों से सम्बद्ध

हो अपने ठिकाने पर स्थित हैं । स्त्रियों की देह में गुदाके सन्मुख योनि तथा जरायु विद्यमान हैं । इन दोनों के सन्मुख बस्ति विद्यमान है, बस्ती का नीचे को मुख सुकड़ा हुआ और उस जगे उपस्थिक (लिंग योनि) के छिद्र काके संयुक्तहै । जब मूत्राशय में प्रमाण से अधिक मूत्र इकट्ठा संचय होजाता है, तब उपस्थके छिद्र करके अतिवेगसे बाहर निकलता है ।

अथ जननेन्द्रियम् ।

जीवस्रोतसिहेतुर्यद्यद्वतेतस्यसंहतिः । इन्द्रियंजननाख्यंतदुपस्थश्चेतिकथ्यते ॥ उत्पत्तौजीवसंघस्य द्वारंनान्यद्धिविद्यते । बलाद्धिहीनेतत्सङ्गे जीवोत्पत्तिः खिलीभवेत् ॥ यंत्रंविचित्रनिर्माणमहोधात्राविर्तार्किणा । ध्यात्वा ध्यात्वेवरहसि विहितंनिपुणेनतत् ॥ अहोयंत्रस्यशक्तितां कोवदेच्छक्तिमान्भुवि । सम्यग्जानातिविश्वात्मातत्त्वैवहितद्गुणं ॥ यस्यशक्त्याजगत्यस्मिन् पाशैरिवबलीमुखाः । नृत्यन्तिजन्तवोनित्यमवशामुग्धमानसाः । नित्यमानंदसंतान उत्साहःकरुणाक्षमा । शांतिर्दाक्षिण्यमास्तिक्यं मैत्रीचेहविराजते ॥ तदिन्द्रियभवंजीवा नित्यंभुंजंतियत्सुखं । विचेतनाइवस्वर्ग्यं तस्यनास्त्युपमाभुवि ॥ वनालयाश्चमुनयोभूपाःप्रासादवासिनः । कुटीरस्थादरिद्राश्चसर्वेतेनजिताध्रुवं ॥ पुमांसोनिखिलालोके यौवनस्थाः स्त्रियस्तथा । जन्तुष्वश्रान्तमवशाःकामयन्तेसुखंनुतत् ॥ शान्तोतदिन्द्रियंहेतुर्विद्रोहेचमहत्यपि । महिमानमतस्तस्यकःस्याद्गमितुमीश्वरः ॥ जीवप्रवाहरक्षार्थंशांतिसंस्थापनायच । इदमेवंगुणंधात्रा विहितंविश्वकर्मणा ॥ शक्तिर्महीयसीयंचेन्नस्यादस्यावलीयसी । इयमानन्दनिलयोधन्वेवधरणीभवेत् ॥ आलोच्यभावंनिखिलंतदीयमुन्मीलिताक्षानुमूढजीवाः । अपास्यसंदेहमहोहिसत्तां शक्तितथेक्ष ध्वमचिंत्यशक्तेः ॥

अर्थ–ये इन्द्री जीवस्रोतोविषय अर्थात् जीवों के आनेका कारण है, उसी प्रकार इस जननेन्द्री के व्यतिरिक्त जीव का संहार जानना, अर्थात् विना जननेन्द्री के जीव किसी रीति सें नहीं प्रगट हो सक्ता, इसी कारण इस को जननेन्द्री कहते हैं। जननेन्द्री का दूसरा नाम उपस्थ है, इस के विना जीव के उत्पन्न होने का दूसरा रास्ता नहीं है, यदि दोनों स्त्री पुरुष प्रतिज्ञापूर्वक संग करना छोड देवें तो जीवोत्पत्ति का होना वन्द हो जावे; इस जननेन्द्री रूप यंत्र का निर्माण अति विचित्र है! यह विधाता ने अपूर्व कौशलतापूर्वक निर्माण करा है। इस के अङ्ग प्रत्यङ्ग समुदाय का परस्पर संबंध तथा विशेषकारित्व शक्ति अनिर्वचनीय है। इस यंत्र की इस शक्ति से ब्रह्मांडस्थ जीवगण अवश तथा मुग्ध मानस हो डोरी सें बंधे हुए (बंदर) की तरह निरंतर नाचते हैं। पृथ्वी में ऐसा कौन सामर्थ्यवाला है जो इस यंत्रशक्ति का वर्णन करे, इस के गुण तो वोही विश्वप्रकाशक सृष्टि का रचनेवाला जानता है। इसी के प्रभाव से, आनन्दप्रवाह, कर्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, चातुर्य, आस्तिक्य और मैत्री, पृथ्वीमंडल में नित्य विराजमान रहती है, जीवगण नित्य विचेतनसे होकर इस इन्द्री से उत्पन्न हुए स्वर्ग के सुख सदृश इस अपूर्व सुखको संभोग करते हैं। इस सुख की पृथ्वी में कोई उपमा नहीं है। वनवासी ऋषीश्वर महलों में रहनेवाले राजा महाराजा, और कुटी (झोंपडी) में रहने वाले दरिद्री मनुष्य ए सब इस विषय सुख से जीते गए हैं। यावन्मात्र मनुष्यों में यौवन अवस्था वाले पुरुष और यावन्मात्र नवयौवना स्त्री है, सब सुख की निरंतर आकांक्षा करे हैं यही इन्द्री अत्यंत शान्ति और अत्यंत द्रोहका कारण है। जीव प्रवाह की रक्षार्थ और शान्ति संस्थापनार्थ विश्व कर्त्ताने इस इन्द्री को ऐसी अद्भुत शक्ति दीनी है, यदि इस इन्द्री में ऐसी प्रबल तथा अलंघ्य शक्ति न होय तो यह आनंदधाम धरणी, थोडे ही काल में मरुभूमि (जंगल) के सदृश हो जावे।

हे मूढ जीवगण जननेन्द्रिय संबंधी सर्व भाव को विचार कर चिरसंचित सन्देह को दूर कर और बोध रूप नेत्रों को खोल कर, अचिंत्य शक्ति संपन्न जगदीश्वर का सत्व और शक्ति को देखो।

आधारकारभेदेन पौंस्नःस्त्रैणइतिद्विधा । विशिष्यतउपस्थःस चेतनावानिवस्थितः ॥ शिश्नोमेढ्रोध्वजलिङ्गमेहनं शेफशेफसी । पुरुषेन्द्रियनामानि ध्वजोपस्थौचसाधनम् ॥ स्त्रीन्द्रियस्यतुनामानि योन्युपस्थौभगोधरे । तत्त्वंवच्म्यनयोःसम्यगुभयोरप्युपस्थयोः ॥

अर्थ–आधार और आकार भेद करके उपस्थ दो प्रकारकी है, पुरुषाधार पौंस्न और स्त्री आधार स्त्रैण उपस्थ कहाती है । दोनों उपस्थ चेतनासंयुक्त के सदृश प्रतीत होती है । शिश्न, मेढ्र, व्यंग, लिंग, मेहन, शेफ, शेफः (स्) ध्वज, उपस्थ, और साधन, ए पुंजननेन्द्रिय अर्थात् पुरुषकी उपस्थ इन्द्री के नाम है । और योनि, उपस्थ, भग और अधर, इतने स्त्री जननेन्द्री के नाम है । दोनों उपस्थों के कार्य साधन मुष्कादि (पुरुषों के) और डिंबकोष आदि (स्त्री जाति के) जननेन्द्रिय-पदवाच्य इन दोनों प्रकार की जननेन्द्रियों का स्वरूप क्रम से वर्णन करते हैं ।

अथपुंजननेन्द्रियाणि ।

मेढ्रभूमि ।

यत्रोपस्थिसमायोगादस्थिनीमिलितेउभे । उपस्थिके अधस्तस्मात्पश्चाद्यास्तिगुदाशना ॥ दृढाग्रन्थिनि भापांडुः संवेष्ट्यवस्तिकंधराम् । मूत्रस्रोतोऽन्तरस्थश्च सामेढ्रभूमिरुच्यते ॥

अर्थ–जिस स्थान में औपस्थिक दोनों हड्डियों का उपस्थि संयोग परस्पर मिला हुआ है, उसी के नीचे और पश्चात् भाग में गुदा के ऊपर स्थित दृढ़, तथा पीले रङ्ग का ग्रन्थि (गांठ) सदृश पदार्थ को मेढ्रभूमि कहते हैं । यह वस्ती की ग्रीवा को तथा भीतर के मूत्र छिद्रों को वेष्टन कर रही है ।

कलायिकाद्वयम् ।

मेढ्रभूमिसमीपेद्वे कलायपरिमण्डले ।
आयुषोह्रासशीलेस्तो गुटिकेतेकलायिके ॥

अर्थ–मेढ्रभूमि के निकट मटर के समान गोल दो गुटिका (गोली) के सदृश पदार्थ हैं, इन दोनों का जैसें आयुष्य का घटना होता है उसी के साथ क्रम सें इन का भी ह्रास होता है, इन को कलायिका कहते हैं ।

मेढ्रः ।

मेढ्रभूमिसमारभ्य दीर्घःशृंगारसाधनः । उपस्थास्न्योःस काशाच्च मेढ्रसमभिवर्त्तते ॥ मूलादयमुपस्थास्न्योः कौपिकेणचचर्मणा । संसक्तोवेष्टितश्चापि परंमूर्द्धनिकेवल म् ॥ आवृतोनचसंसक्तस्तस्मिन्नग्रीयचर्मणि । पश्चादा

कुष्ठलिंगस्य मुंडंव्यक्तंप्रकाशते ॥ कदलीकुसुमाकारं लिङ्गमुण्डंसचेतनम् । ततःपश्चाल्लिंगसरिल्लिंगग्रीवाचसोच्यते ॥ तत्रश्चान्तंरसःपूतिर्निःस्रवेत्क्षारधर्मवान् । ततश्चर्मसमासक्तं गात्रंलिङ्गस्यवर्त्तते ॥ ततोगुदसमीपेच लिङ्गमूलमवस्थितम् । वस्तितोमौत्रिकंस्रोतो लिङ्गपुण्डाद्बहिर्गतम् ॥ मेढ्रोऽहृष्टस्यपुंसःस्याच्छिथिलंस्तंभवर्तुलम् । जातेहर्षेसएवस्याद्दृढस्त्रिभुजसन्निभः ॥

अर्थ–उपस्थ की दोनों हड्डियों के समीप मेढ्रभूमि सें मेढ्र (लिंग) की उत्पत्ति है, अर्थात् इतनी लम्बाई को लिंग कहते हैं । यही संगम साधन इन्द्री है, यह लिंग, उपस्थ की दोनों हड्डियों के मूल भाग सें लेकर ऊपर पर्यंत अण्डकोष के ढकने वाले चर्म सें मिला और लिपटा हुआ है । परंतु मुंडांशभाग जिस को कि, सुपारी कहते हैं, वह चर्म सें ढका हुआ है । किंतु उस चर्म में मिला हुआ नहीं है । इस लिंग के ढकने वाले चर्म को पिछाडी खींचने सें लिंग का मुख उघड कर दीखने लगे हैं. लिंग के मुख का अर्थात् सुपारीका आकार केला के फूल के सदृश और चैतन्य के समान है । लिंग की सुपारी के पिछाडी में लिंग सहित, अथवा लिंग की ग्रीवा (नाढ) है । इसी जगेसें बराबर एक प्रकार का दुर्गंधवाला खारी रस निकसता है । वोही लिंगग्रीवा में चिपट जाता है तब उस को मनुष्य लिंग में अंडे पडगए ऐसा कहते है । और लिंग की ग्रीवा के पिछाडी के चिपटेहुए चर्म को लिंगगात्र ऐसा कहते हैं । तदनंतर गुदा के समीप भागको लिंगमूल कहते हैं । मूत्रस्रोत अर्थात् जिस में हो कर मूत्र आता है वह छिद्र बस्ती की ग्रीवा से लेकर लिंग के भीतर होकर लिंग के मस्तक के बाहरतक चला आया है, इसी छिद्रद्वारा संचित मूत्र बाहर को गिरता है । जबतक हर्ष नहीं होता तबतक लिंग सिथिल और स्तंभ के सदृश वर्तुलाकार पडा रहता है । और जहां हर्ष हुआ उसी समय लिंग खडा हो कर दृढ और त्रिभुजाकार हो जाता है । यद्यपि इस लिंग में कोई हड्डी नहीं है परंतु हर्ष के होने सें लिंग की सर्व नाडी फूल जाती हैं, इसी सें यह कठोर हो जाता हैं । इस को कामशास्त्र में मदनांकुश करके लिखा है । जैसें अंकुश के लगने से हाथी चैतन्य होता है, उसी प्रकार इस के लगने सें कामदेव चैतन्य होता है । लिंग का प्रमाण तथा सामुद्रिक द्वारा शुभाशुभ फल आदि विशेष वार्ता निघंट में (लिंग) शब्द की व्याख्या में लिखेंगे सो देखलेना ।

बीजकोपद्वय ।

बस्तिमूलगुदान्तस्थौ बीजकोपौनृणांस्मृतौ । बीजंधार यतोगर्भजननेमुख्यकारणम् ॥ तद्बीजंतरलंस्त्यानं शुभ्रं गंधविशेषवत् । चेतनाण्डपरिव्याप्तं रेतःशुक्रंतदुच्यते ॥ नाड्याशुक्रप्रवाहिन्या फलमागत्यवैततः । उपस्थिकेन रंध्रेण बहिर्निधुवनात्सरेत् ॥ आहारजःपरःसारःशुक्रं प्राणकरंपरम् । कारणंजीवनेचोक्तं तत्क्षयान्मरणंध्रुवम् ॥ अतोरक्ष्यंप्रयत्नेन शुक्रंजीवनकांक्षिणा । नित्यंतत्संचये चापि यतितव्यंचसर्वथा ॥ रेतस्युपचितेऽत्यर्थं जायते रमणीस्पृहा । तदानिधुवनंकुर्य्यात्प्रिययानाविचारयन् ॥ अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः । यतःस्यान्न हितंतस्मात्कामस्यातिविनिग्रहः ॥

अर्थ—बस्ति के मूल में और गुदा के मध्य में दो बीजकोप रहते हैं । ये दोनों गर्भोत्पत्ति के हेतुभूत बीज को धारण करते हैं, यह बीज घन, स्वच्छ, और विशेप गन्ध युक्त, एक प्रकार का तरल पदार्थ है । यह बहु चेतनावाले परमाणुओंसें व्याप्त है । बीज, रेत और शुक्र आदि इस के नाम विख्यात है। ये वीर्य, विपय के समय वीर्यवाहिनी नाडियों के द्वारा अण्डकोपों में आकर पीछे उस जगे सें चलकर उपस्थिक छिद्र (लिंग के छिद्र) द्वारा निकलता है । यह शुक्र आहारजन्य प्रधान सार पदार्थ है, यही बल रक्षा, तथा जीवन धारण का कारणभूत है, इस के अतिक्षीण होने से निश्चय मृत्यु होवे, इसीसे जीवन की इच्छावाले मनुष्य को नित्य सर्व यत्नों से इस वीर्य के संचय और रक्षा में तत्पर होना चाहिये जब वीर्य का अधिक संचय होता है तब इस पुरुप को अत्यंत स्त्री के संग की इच्छा होती है, जब अत्यंत स्त्रीसंग की इच्छा होय उस समय यथा शास्त्र के विचार पूर्वक परमसुंदर प्रियतमा स्त्री के साथ रतिकर्म में प्रवृत्त होना उचित है, यदि वीर्य वृद्धि में भी स्त्रीसंग न करे तो प्रमेह, मेदवृद्धि और देह में शिथिलता आदि अनेक रोग होते हैं इसी सें काम प्रवृत्ती का अत्यंत रोकना हितकारक नहीं है । ६ छटे नम्बर का चित्र देखो ।

अथस्त्रीजननेन्द्रियाणि ।

भगमणिर्भगोष्ठौच भगपक्षद्वयंतथा । भगलिंगंचयो-

निश्च तथाद्वेचकलायिके ॥ जरायुडिम्बवाहिन्यो डिम्बकोपौसडिम्बकौ । स्तनौचेतीन्द्रियगणो नारीणां कथितोबुधैः ।

अर्थ-स्त्रियों की जननेन्द्रिय कहते हैं। भगमणि, भगोष्ठद्वय, भगपक्षद्वय, भगलिंग, योनि, कलायिकाद्वय, जरायु, दोनोंडिंबवाहिनी, दोनोंडिंबकोप, सर्वांडिंब और दोनों स्तन इतनी स्त्रियों के जननेन्द्री होती है।

भगमणिः ।

औपस्थिकास्थ्नोःपुरतस्त्वग्वसापरिनिर्मितः ।
उच्चैःसुकोमलोवृत्तः स्त्रीणांभगमणिःस्मृतः ॥
यदाबाल्यमतिक्रम्य तारुण्यंयान्तियोषितः ।
तदुद्भवन्तिलोमानि समंतादस्यगात्रतः ॥

अर्थ-दोनों उपस्थि की हड्डियों के सन्मुख त्वचा और वसा द्वारा बने हुए ऊंचे और गोलाकार कोमल स्थान को भगमणि कहते हैं, स्त्री की बाल्य अवस्था व्यतीत होने पर और यौवन अवस्था के प्राप्त होते ही इस भगमणि के ऊपर चारों तरफ रोमांच, उत्पन्न होते हैं।

भगोष्ठद्वयम् ।

भगविवरसंवेष्टौ भगोष्ठौपीवरौमणेः । मूलाधाराग्रसीमानं स्थितायावत्तुतद्वयम् ॥ पुंसांकोषद्वयमिव स्मृतंप्रकृतितोबुधैः ॥ बहिश्चर्ममयंचान्तःकलावद्यौवने पुनः ॥ लोमभिर्व्रियतेस्नायु धराग्रन्थ्यादिसंयुतम् ।

अर्थ-भगरूप विवर (गड्ढे) के संवेष्टन करनेवाले स्थूल अङ्गद्वय को भगोष्ठ कहते हैं, ये भगमणिसे लेकर मूलाधारकी (गुदा और उपस्थके मध्यवर्त्ती स्थान को मूलाधार कहते हैं) आगे की सीमापर्यंत विस्तारित हैं। दोनों भगोष्ठ पुरुषों के अण्डकोष के सदृश रूपवाले हैं। इनके बाहर का देश चर्मद्वारा तथा भीतरका भाग कलाद्वारा बना हुआ है, ये दोनों यौवन अवस्था में बालों के समूह से आच्छादित होते हैं, इनके भीतर फैलीहुई स्नायु धमनी और गांठ हैं।

भगपक्षौ ।

पश्चाद्भगोष्ठयोरूर्ध्वं कलावन्तौ सुकोमलौ ।
लिङ्गमुभयतः पक्षौ किंचिन्निम्नं समागतौ ॥

अर्थ-दोनों भगोष्ठों के भीतर ऊपरले भागमें कलासे बना, अत्यंत कोमल अंग द्वय को भगपक्ष कहते है । ए भगलिंगसे लेकर दोनों तरफके पार्श्वोंमें कुछ दूर नीचेतक विस्तृत है ।

भगलिंगम् ।

भगोष्ठयोरूर्ध्वसन्धेः प्रायेणद्व्यंगुलादधः । चेतनं दीर्घदेहंचभगलिङ्गमितिस्मृतम् ॥ भगलिङ्गंतथा पुंसां मेढ्रःप्रकृतितोमतम् ।

अर्थ-दोनों भगोष्ठों के ऊपरकी सधी के प्रायः करके दो अंगुल नीचे, लंबी आकृतिवाले चेतनाविशिष्ट अङ्ग विशेष को भगलिंग ऐसे कहते है । इस भगलिंग का आकार पुरुष के लिंग सदृश होता है ।

सामिचन्द्रः ।

अधस्ताद्योनिरन्ध्रस्य तनुश्चन्द्रार्द्धसन्निभः । कौमारेप्रायशःसामिचन्द्रोनारीषुदृश्यते ॥

अर्थ-योनि छिद्रके नीचे के भाग में अर्द्धचन्द्राकृति (जैसा आधा चन्द्र होता है) और पतला पर्दा के सदृश पदार्थ को सामिचन्द्र कहते हैं, यह सामिचन्द्र कुमारी अवस्थामें प्रायः दीखता है ।

कलायिकाद्वयम् ।

योनिरन्ध्रमुभयतः स्त्रीणांपुंवत्कलायिके ।

अर्थ-पुरुषों के जैसी दो कलायिका होती है उसी प्रकार की स्त्रियोंके योनिरंध्रके दोनों तरफ कलायिका होती है ।

योनिः ।

योनिःकलामयीनाडी वस्तिगर्भव्यवस्थिता । गुदस्यपुरतःपश्चान्मूत्राधारस्यकोमला ॥ आवर्त्तनीभगोष्ठात्तु जरायुं समुपस्थिता । अधस्तान्मूत्ररन्ध्रस्य मुखंयोनेरवस्थितम् ॥

अर्थ-योनि एक कलानिर्मित नाडी विशेषको कहते है । यह वस्तिगह्वर में गुदाके सन्मुख और मूत्राधारके पिछाडी है । तथा भगोष्ठसे लेकर जरायु पर्यंत विस्तृत है; यह अतीव कोमल है, और आवर्तमयी अर्थात् आंटेदार है । मूत्रछिद्रके नीचे योनिका मुख है ।

जरायुः ।

गुदमूत्राशयान्तःस्थो जरायुर्गर्भमंदिरम् । जरायुपार्श्वना डयौद्वेडिम्बनाडयौप्रकीर्तिते ॥ डिम्बकोषद्वयाड्डिंबं नय तोगर्भकारणम् । जरायुकोषनारीणां जातर्तूनांस्वभावतः ॥

अर्थ–गुदा और मूत्राशय के बीचमें जरायु है । इसी स्थान में गर्भ रहता है तथा वृद्धि को प्राप्त होकर यथासमय पृथ्वी पर पडता है, जरायु के पार्श्व दो डिंबनाड़ी रहती हैं । डिंबकोषद्वयसे गर्भोत्पत्तिके हेतुभूत डिंब को वहन करके ये दोनों नाड़ी लाती हैं । रजोदर्शनवती स्त्रियों के स्वभावसेही जरायुकोष विद्यमान होता है ।

अथस्तनद्वयौ ।

स्तनौद्वौसंख्ययास्यातां स्त्रियांचपुरुषेतथा । तारुण्येतु स्त्रियांपीनौ भवेतांचातिमोहनौ ॥ पर्शुकायास्तृतीयाया यावत्षष्ठीमुरोऽस्थितः । आकक्षंचकृतस्थानावर्धवृत्तौ सुकोमलौ ॥ जातेमहत्त्वमौगर्भे स्यातांचापिपयस्विनौ । लम्बमानौप्रसूताया वृद्धायाःशुष्यतश्चतौ ॥ स्तनयोरुभ योर्ज्ञेयो वामःकिंचिन्महत्तरः । चूचुकःस्तनवृन्तंस्या द्दुग्धनाडीभिरन्वितम् ॥

अर्थ–योनि और जरायु आदिके सदृश स्तनभी जननेन्द्रियों में गिने जाते हैं। स्त्री पुरुष दोनों के दो दो स्तन होते हैं, इन में पुरुषों के जैसे बाल्य अवस्था में होते हैं उसीप्रकार के रहते हैं, परन्तु स्त्रियों के यौवन (जवानी) अवस्था आनेपर पुष्ट और ऊंचे तथा देखने में मनके चुरानेवाले अतिसुन्दर होजाते हैं । ये तीसरी पांसूसे लेकर छठवीं पांसू पर्यंत, तथा छाती की हड्डीसे ले कक्ष (बगल) पर्यंत फैले हुए होते हैं । ये अर्द्ध वृत्ताकार और अति कोमल हैं । जब स्त्री गर्भवती हो-तीहै तब ये दोनों स्तन बडे और दूधसे परिपूर्ण हो जाते हैं । प्रसूता (जिसके बा-लक होचुकाहो) ऐसी स्त्रीकेस्तन नीचे को लम्बे होकर लटक जातेहैं । और बुड्ढी स्त्री के स्तन सूख जाते हैं । दहने स्तनकी अपेक्षा वाम स्तन कुछ बडा होता है । स्तनों के ऊपर की घुंडी को चूचुक और स्तनवृंत कहतेहैं । ये स्तनवृंत अनेक नाडियों से व्याप्त होते हैं ।

मूलाधारः ।

पायूपस्थान्तरस्थोऽसौ मूलाधारःप्रकीर्त्तितः।
हर्षोऽस्यापिरिंसुनामन्याङ्गानांयथाभवेत् ॥

अर्थ-गुह्यद्वार और उपस्थ अर्थात् गुदा और भगलिंग के बीचवाले अंग को मूलाधार कहते हैं । रमण कर्त्ता मनुष्यों को जैसे और इन्द्री सुखदायक हैं उसी प्रकार यह हर्ष कर्त्ता है । सातवें नम्बरका चित्र देखो ।

हृदयोत्पत्ति ।

शोणितकफप्रसादजंहृदयंयदाश्रिताधमन्यःप्राणवहाः त
स्याधोवामतःप्लीहाफुप्फुसश्चदक्षिणतोयकृत्क्लोमच तद्धृद
यंविशेषेणचेतनास्थानमतस्तस्मिन्तमसावृतेप्राणिनःस्वपंति

अर्थ-रुधिर और कफ इनके सार से हृदय बना है । जिस के आश्रय करके रहनेवाली धमनी नाडी प्राणों को वहती है । तथा हृदय के अधो भागमें बाईं तरफ प्लीहा है । और दहनी तरफ फुप्फुस है, तथा हृदय के दहनी तरफ कुछ नीचे को यकृत् और क्लोम ये हैं । यकृत् कलेजे को कहते हैं । और क्लोम तिलकालकको कहते हैं । ये प्यास लगने के स्थान हैं । और यह हृदय विशेष करके चेतना का स्थान है जब यह तमोगुण से व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं । इसजगे हृदयके कहने से सर्व देह चेतना स्थान है ऐसा जानना, जैसे चरक में लिखा है ।

शरीरकोचेतनास्थानकहते हैं ।

चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्चसेन्द्रियम् ।
केशलोमनखाग्रान्तमलद्रव्यगुणैर्विना ॥

अर्थ-इन्द्री सह मन और सर्व देह चेतना का स्थान है । परन्तु केश, लोम, और नखों के अग्रभाग अर्थात् छेद्यमक इत्यादि मलद्रव्यों के गुण विना सर्व देह चेतना का स्थान है ।

हृदयकास्वरूप ।

पुण्डरीकेणसदृशं हृदयंस्यादधोमुखम् ।
जाग्रस्ततद्विकसति स्वपतश्चनिमीलति ॥

अर्थ-हृदय कमल के समान अधोमुख है यह जागृत अवस्था में खुल जाता है और जब प्राणी सोते हैं तब मूंद जाता है ।

प्रसंगवशनिद्राकावर्णनकरते हैं ।

निद्रातुवैष्णवीमाया पाप्मानमुपदिश्यति ।
सास्वभावतएवसर्वप्राणिनोभिस्पृशति ॥

अर्थ-निद्रा विष्णु की माया है । उसका स्वभाव ऐसा है, कि यह सर्व प्राणीमात्रों को स्पर्श करके शुभाशुभ कर्म का निरोध करती है । इसी से पापोंकाही उपदेश करे हैं । यद्यपि अन्य ग्रंथों में सात प्रकार की निद्रा कही है । तथापि तामसी, स्वाभाविकी और वैकारिकी, ऐसे तीनप्रकार की मुख्य निद्रा हैं उन्को कहते हैं ।

तामसीनिद्रा ।

यदासंज्ञावहानिस्रोतांसितमोभूयिष्ठंश्लेष्माणंप्रतिप
द्यन्तेतदातामसीनिद्राभवतिअनवबोधनीसाप्रलये ।

अर्थ-जिसकाल में शरीर के चैतन्य वहने वाली नाडियों में तमोगुण प्रधान कफ जायकर उन नाडियों के मार्गको रोकलेता है । उसकाल में घोर निद्रा आती है उसमें ज्ञान नहीं रहता तथा यह प्रलय काल में मूर्च्छा के विषे होती है । यद्यपि सर्व निद्राओंका हेतु तमोगुण है । तथापि इसमें अधिक होता है । इससे इसको तामसी निद्रा कहते हैं ।

स्वाभाविकीनिद्रा ।

तमोभूयिष्ठानामहःसुनिशासुचभवति,
रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं सत्वभूयिष्ठानामर्धरात्रे ।

अर्थ-निद्रा तमोगुणी पुरुषों को दिन रात और रजोगुणी पुरुषो को कभी रात में और कभी दिन में कभी सायंकाल मे कभी सूर्योदय, कभी तीनों सन्ध्यामें निद्रा आती है । और सतोगुणी पुरुषों को आधीरात्रि के समय अल्पसत्व होता है और तमोगुण अधिक होता है इसीसे अर्द्धरात्रि के समय निद्रा आती है ।

वैकारिकीनिद्रा ।

क्षीणश्लेष्मधातूनामनिलबहुलानांमनःशरीरा
भिघातवतांचनैवसावैकारिकीभवति ।

अर्थ-जो प्राणियों के शरीर को बल देने वाला कफ और सब धातु ए क्षीण होनेसे तथा शरीर में वायु प्रबल होने से, तथा मन और शरीर इन में किसी प्रकार की चोट लगने से उस मनुष्य की निद्रा नहीं आती है, कदाचित् थोडी ने से उस को वैकारिकी निद्रा जाननी ।

लंघन श्रमादिक करके शरीर में वायु बढती है और कफ क्षीण होता है, उस काल में निद्रा कैसें आती है ? उस को कहते हैं । उस काल में मन को अत्यंत ग्लानी होने सें भूतात्मा की विषयों सें निवृत्ति होने सें प्राणी सोते हैं इस में प्रमाण है ।

तदुक्तंचरके।

यदातुमनसिक्लान्ते कर्मात्मानश्रमान्वितः ।
विषयेभ्योनिवर्त्तन्ते तदास्वपितिमानवः ॥

अर्थ-जिस समय मन ग्लानि युक्त होता है, और कर्मात्मा (कर्मपुरुष) को श्रम होने सें विषयों सें निवृत्त होती है उस काल में मनुष्य सोता है ।

पूर्व गद्य करके कहे हुए अर्थ को सुखबोधार्थ फिर
दो श्लोकोंसें कहते हैं ।

हृदयंचेतनास्थानमुक्तंसुश्रुतदेहिनाम् । तमोभिभूतेस्त
स्मिंस्तुनिद्राविशतिदेहिनाम् ॥ निद्राहेतुस्तमःसत्त्वंबोध
नेहेतुरुच्यते । स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्तितः ॥

अर्थ-हृदय प्राणियों का चेतनास्थान है, वह तमोगुण करके व्याप्त होनेसें निद्रा आती है, निद्रा का कारण तमोगुण और जगने का कारण सतोगुण है, अथवा परमश्रेष्ठ स्वभावही दोनों अवस्थाओंका कारण कहा है ।

निद्रावस्थामेंस्वप्नदर्शनकैसेंहोताहैसोकहतेहैं ।

पूर्वदेहानुभूतानां भूतात्मास्वपतःप्रभुः ।
रजोयुक्तेनमनसा गृह्णात्यर्थान्शुभाशुभान् ॥

अर्थ-भूतात्मा जो सोनेवाले के देह का नियंता क्षेत्रज्ञ वह पहले अनन्त जन्मों के अनुभव करे विषयों के सुखदुःखों को भोगासक्तिरूप मन करके ग्रहण करे हैं उसी को स्वप्न कहते हैं ।

इन्द्रियोंकेलयकरकेआत्मानिद्रितसादीखताहै ।

करणानांतुवैकल्ये तमसाभिप्रवर्धिते ।
अस्वपन्नपिभूतात्मा प्रसुप्तइवचोच्यते ॥

अर्थ-तमोगुणकी वृद्धि करके इन्द्री विकल होनेसें क्षेत्रज्ञ न सोता हुआ भी सोता हुआसा प्रतीत होता है ।

दिनकीनिद्राकाविधिनिषेधकहतेहैं ।

सर्वर्तुषुदिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्रग्रीष्मात् ।

अर्थ-ग्रीष्म ऋतु को त्याग करें अन्य ऋतुओंमें दिन का सोना वर्जित है ।

प्रतिषिद्धेष्वपिबालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणनित्यमद्यपान वाहनाऽध्वकर्मपरिश्रांतानामभुक्तवतांमेदःस्वेदकफरक्तक्षीणानामजीर्णिनांचमुहूर्त्तस्वापनमप्रतिषिद्धम् ॥

अर्थ-वर्जित ऋतु में भी बालक, वृद्ध और मैथुन करके क्षीण तथा उरःक्षत करके क्षीण तथा नित्य मद्यपान कर्त्ता तथा घोडा, ऊंट आदि वाहन पर चढने करके थका हुआ तथा उपवास और जिन के मेद, पसीने, कफ रस, रुधिर, ए क्षीण होगए हों उसको तथा अजीर्णवाला इन सब को दिन में दो घडी निद्रा लेने का निषेध नहीं है, उसी प्रकार रात्रि में जगे हुए मनुष्य को जितने समय रात्रि जगा हो उस सें अर्धकाल पर्यंत दिन में सोना हितकारी है ।

अतिनिद्राकेदोष ।

विकृतिर्हिदिवास्वापोनाम तत्रस्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्चकासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानिभवंति ॥

अर्थ-दिनमें सोने सें विकृति होती है और अधर्म होता है तथा वात रक्तादि सर्व दोषोंका प्रकोप हो कर खांसी, श्वास, सरेकमां देह भारी, अंगोंका टूटना, अरुचि ज्वर, मंदाग्नि और दुर्बलता इत्यादि विकार होते हैं ।

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौदिवास्वापंतुवर्जयेत् । ज्ञात्वादोषकरावेतौ बुधःस्वापंमितंचरेत् ॥ अरोगःसुमनाह्येवं बलवर्णान्वितोबुधः । नातिस्थूलकृशःश्रीमान्नरोजीवेत्समाःशतम् ॥

अर्थ-पूर्वोक्त अधर्म और विकार होते हैं इसी सें रात्रिमें जागना और दिनमें निद्रा लेना त्याग देवे, पण्डितोंको ये दोनों दोष कारक ऐसें जान कर निद्रा तथा जागरण परिमाणके करने चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करनेवाले पुरुष रोगरहित जिनका मन निर्दोष तथा बल करके और वर्ण करके युक्त तथा स्त्री रमण शक्ति युक्त, न अत्यंत मोटे न बहुत पतले ऐसें होते हैं, तथा शरीरकी शोभा युक्त हो सौ १०० वर्ष पर्यंत जीते हैं ।

निद्रानाशकेहेतु ।

निद्रानाशोनिलात्पित्तान्मनस्तापात्क्षयादपि ।
संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैश्चशाम्यति ॥

अर्थ–वात, पित्त, क्षय तथा मनःसंताप चोट इत्यादि कारणों करके निद्राका नाश होता है । और वो निद्रानाश जिन कारणोंसे होता है, उसके विरुद्ध अभ्यंगादि उपचार करनेसे शान्ति होता है ।

उपचारोंकोकहतेहैं ।

निद्रानाशेभ्यंगयोगो मूर्ध्नितैलनिषेवणम् । गात्रस्योद्वर्त्तनंचैव हितसंवाहनानिच ॥ शालीगोधूमपिष्टान्नभक्षैरैक्षवसंस्कृतैः । भोजनंमधुरंस्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ रसैर्बिलेशयानांच विष्कराणांतथैवच । द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणामुपयोगोभवेन्निशि ॥ शयनाशनयानानि मनोज्ञानि मृदूनिच । निद्रानाशेचकुर्वीत तथान्यानपिबुद्धिमान् ॥

अर्थ–निद्रा नाश होने पर तेल का मालिस कर भले प्रकार गरमजल से स्नान करे तथा मस्तक में तेल डालना तथा शरीर में उबटना उत्तम रीत से कर अस्नान करें तथा अंगोंको धीरे धीरे मसलवावे तथा सांठी चांवल और खांड से बने हुए गोधूम मिष्टान्न का भोजन तथा दूध और मांस इत्यादि करके स्निग्ध मधुर ऐसे भोजन करें, बिले में रहनेवाले ससे, सेह आदि जानवर तथा मुरगा, तीतर आदि विष्कर (पक्षी) इनका मांस रसकरके तथा दाख, मिश्री और गंडे इन का रात्रि मे सेवन कर के तथा शयन स्थान आसन और सवारी ए उत्तम नम्र मन को आल्हाद करने वाली और प्रावर्ण (हिम नाशक कपडे) आदि करके निद्रा नाश का उपशम अर्थात् शान्ति होती है ।

अतिनिद्राआनेकाउपाय ।

निद्रातियोगेवमनं हितंसंशोधनानिच ।
लंघनंरक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलतापिच ॥

अर्थ–निद्रा का अति योग होने से वमन करना हित है, तथा वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादिकों करके शरीर का शोधन तथा लंघन और रुधिर का कढाना तथा मनकी व्याकुलता इत्यादिक उपचार हितकारक होते हैं; यद्यपि संशोधन के क-

इने सें ही वमन का बोध होगया तथापि पुनः वमन का ग्रहण करने से विशेपता द्योतन करी है ऐसा जानना ।

रात्रिमेंनिद्रावर्जितमनुष्य ।

कफमेदोविपार्त्तानां रात्रौजागरणंहितम् ।

अर्थ–कफ रोगी, मेद रोगी, और विप से व्याकुल पुरुषों को रात्रिमें जागरण करना हितकारक है ।

दिनमेंकौनसेमनुष्योंकोसोनाचाहिये ।

दिवास्वापश्चतृट्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥

अर्थ–तृपा, शूल, हिचकी, अजीर्ण और अतीसार इन रोगों से व्याप्त मनुष्यों को दिन में सोना हितावह है ।

निद्राकेप्रसंगकरकेतंद्राकोकहते हैं ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवंजृंभणंक्लमः ।

निद्रार्त्तस्येवतस्येहा तस्यतन्द्रांविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–जिस अवस्था में शब्दादिक विपयों का अज्ञान, शरीर की जडता तथा जँभाई, क्लम ए होते हैं तथा निद्रा युक्त होने पर भी चैतन्यता होय उस अवस्था को तंद्रा कहते हैं, निद्रा के विपे जागने के पश्चात् ग्लानि नहीं होती, और तन्द्रा में ग्लानि होती है ऐसा जानना ।

जँभाईकेलक्षण ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टंविवृताननः ।

संमुंचतिसनेत्राश्रुं सजृंभइतिकीर्त्तितः ॥

अर्थ–जिस अवस्था में मनुष्य एक उच्छ्वास संबंधी वायु मुख को पसार कर पीवे पीछे छोडते समय मुख विकसित करके आंसू छोडे उस अवस्था को जंभाई कहते हैं ।

छीककेलक्षण ।

प्राणोदानौसमौस्यातां मूर्ध्निस्रोतःपथिस्थितौ ।

नस्तःप्रवर्त्ततेशब्दःक्षवथुंतंविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–हृदयस्थ वायु और कंठस्थ वायु ए मस्तक में जाय कर शिरा (नाडी)

के मार्ग बंदकरके क्षणमात्र स्थिर होकर अकस्मात् नासिका से शब्द युक्त बाहर निकले उस अवस्थाको छिक्का (छींक) कहते हैं।

क्लमकेलक्षण।

योनायासश्रमोदेहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः।
क्लमःसइतिविज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः॥

अर्थ-जिस अवस्था में परिश्रम बिना देह के विषे श्रम होय परंतु श्रम में भारी श्वास होय वो होय नहीं और इन्द्रियों की सर्व कर्मों के विषय में प्रवृत्ति होय नहीं उस अवस्था को क्लम और ग्लानि कहते हैं।

आलस्यकेलक्षण।

सुखस्पर्शप्रसंगित्वं दुःखद्वेषणलोलता।
शक्तस्यचाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते॥

अर्थ-जिस अवस्था में सुखस्पर्श की इच्छा और दुःखसे द्वेष होय और शक्ति होने परभी कर्म करनेमें उत्साह न होय उस अवस्थाको आलस्य कहते हैं।

कोईइसजगेउत्क्लेशऔरग्लानीकेलक्षण।

उत्क्लिश्यान्नंननिर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम्। हृदयंपी
ड्यतेचास्य तमुत्क्लेशंविनिर्दिशेत्॥ वक्रेमधुरतात
न्द्रा हृदयोद्वेष्टनंभ्रमः। नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानि
स्तस्याविनिर्दिशेत्॥

अर्थ-जिस अवस्थामें पेट में से उकिल कर ऊर्ध्व वेग आवे परंतु उस वेग के साथ अन्न बाहर न निकले और ओकारी आवे, मुखसे लार और पानी गिरे तथा हृदयमें पीडा होय उस अवस्थाको उत्क्लेश कहते हैं; तथा मुखमें मिठास आय कर तन्द्रा होय तथा हृदय भारी और घिराता प्रतीत हो, भ्रम होय अन्न पर इच्छा होय नहीं उस अवस्थाको ग्लानि कहते हैं।

गौरवकेलक्षण।

आर्द्रचर्मावनद्धंवा योगात्रंमन्यतेनरः।
तथागुरुशिरोत्यर्थं गौरवंतद्विनिर्दिशेत्॥

अर्थ-जिस अवस्थामें मनुष्य अपनी देहको गीले चमडेसे ढका हुआसा भारी जाने और मस्तक अत्यंत भारी प्रतीत होय उस अवस्थाको गौरव कहते हैं।

मूर्च्छादिकोंकाकारणकहते हैं ।

मूर्च्छापित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्राश्लेष्मतमोभवा ॥

अर्थ—अकस्मात् अंधकार आय कर मनुष्य निश्चेष्ट गिर पडे ऐसी अवस्था पित्त और तमोगुण इन से होती है, उस को मूर्च्छा कहते हैं, चाक पर बैठा कर फिराने से जैसी अवस्था होती है, वह रजोगुण पित्त और वायु इन से होती है इस को भ्रम कहते हैं, तंद्रा तमोगुण वायु और कफ इन करके होती है, तथा निद्रा, कफ और तमोगुण इन करके होती है ।

गर्भवृद्धिविषयमेंअन्यहेतुकहते हैं ।

गर्भस्यखलुरसनिमित्तामारुताध्माननिमित्ताच परिवृद्धिर्भवति ॥

अर्थ—गर्भ की वृद्धि दो प्रकार से होती है, एक रसनिमित्ता दूसरी मारुताध्माननिमित्ता, तहां रसनिमित्ता वृद्धि उसे कहते हैं, जैसे माता के रस वाहिनी नाडी से गर्भ की नाभि नाडी लगी हुई है, यह माता के आहार रस से रस को लेकर गर्भ का पोषण करे है यह प्रकार प्रथम कह आए हैं, और दूसरे प्रकार की वृद्धि वायु करके शिराओंकी पूर्णता हो कर गर्भ के सर्व अवयवों की वृद्धि होती है ऐसे जानना ।

स्रोतसोंकाआध्मानकीप्राप्तिकहते हैं ।

तस्यांतरेणनाभेस्तु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतम् ।
तदाधमतिवायुस्तु देहस्तेनाभिवर्द्धते ॥

अर्थ—गर्भ के नाभी में अग्निका स्थान है, ऐसे मुनीश्वरों ने कहा है, उस अग्नि को वायु प्रज्वलित करता है वह अग्नि वायु सहवर्त्तमान शिराओं में प्रवेश होकर पूर्ण होने से गर्भकी वृद्धि होती है ।

सर्वदेहकीवृद्धिकहते हैं ।

ऊष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः ।
ऊर्ध्वंतिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपियथातथा ॥

अर्थ—ऊष्माकरके संयुक्त वायु जैसे जैसे आपाद मस्तक पर्यंत शिराओं को पूरण करता है, तैसे तैसे गर्भका देह बढता है ।

जैसे २ शरीरबढता है तैसे २ दृष्टयादिकनहींबढते ।

दृष्टिश्चरोमकूपाश्च नवर्द्धन्तेकथंचन ।
ध्रुवाण्येतानिमर्त्यानामितिधन्वन्तरेर्मतम् ।

अर्थ-दृष्टि और रोम कूप ए मनुष्यों के निश्चल है, इसीसे देहके बढने से ये नहीं बढते यह धन्वन्तरी का मत है ।

शरीरकेक्षीणहोनेसेकोईअवयवोंकीवृद्धिहोतीहै सोकहतेहैं ।

शरीरेक्षीयमाणेपि वर्धतेद्वाविमौसदा ।
स्वभावंप्रकृतिंकृत्वा नखकेशावितिस्थितिः ॥

अर्थ-शरीरके क्षीण होने पर भी नख और केश दोनों सदैव बढते हैं, इनका कारण स्वभाव जानना ।

प्रसंगकरकेप्रकृतीकेरूपहेतु,लक्षणोंकोक्रमकरकेकहते हैं ।

सप्तप्रकृतयोभवंतिपृथग्द्विशःसमस्तैश्च ।

अर्थ-मनुष्यों की प्रकृति वात, पित्त और कफ इस भेद करके तीन और द्वंद्वज तीन तथा सन्निपातसे एक ऐसे सातप्रकारकी होती है ।

उनकीउत्पत्तिविषयमें हेतुकहतेहैं ।

शुक्रशोणितसंयोगाद्योभवेद्दोपउत्कटः ।
प्रकृतिर्जायतेतेन तस्याग्रेलक्षणंशृणु ॥

अर्थ-शुक्र शोणित के संयोग होने के समय वातादि दोषों में जो जो स्वभाव करके प्रबल होता है उस दोष करके मनुष्यकी प्रकृति होती है उनके लक्षण आगे कहेंगे, उसको तू सुन । उदाहरण, जैसे गर्भाधानके समय वायु प्रबल होने से वात-प्रकृति होती है, उसी प्रकार कफ तथा पित्तके प्रबल होने से, कफ और पित्तप्रकृ-तिवाला मनुष्य होता है ।

वातादि दोष दो प्रकार से प्रबल होते हैं, एक स्वभाव करके और दूसरे कुपित होकर प्रबल होते हैं तिन में स्वभाव करके प्रबल होते हैं, वे प्रकृतिके कारण होकर शरीरको उत्पन्न करते हैं, और कुपित होकर जो प्रबल होते हैं वे दोष रोगोंके कारण होकर गर्भ को नाश करते हैं ।

यथोक्तंवाग्भटे ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्त्तुपु ।
यःस्याद्दोषोधिकस्तेनप्रकृतिःसप्तधोदिता ॥

अर्थ-गर्भाधान के समय शुक्र, रुधिर और गर्भ की माताके भोजन चेष्टा (आहार विहार) गर्भाशय और ऋतु इन में जो वातादिक दोष अधिक हो उस से उसी दोषकी प्रकृति होती है इस प्रकार दोष भेद करके सात प्रकार की प्रकृति होती है।

वातकोमुख्यतादिखाते हैं।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात्
स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणांप्रबलोऽनिलः ॥

अर्थ-व्यापक आशुकारी और बली होनेसे तथा अन्य दोषो को कुपित करनेसे, तथा स्वतंत्र और बहु रोगवान् होने से दोषो में वात प्रबल है, प्रयोजन यह है कि, वायुही व्यापक आशुकारी और बलीहै ऐसे कफ पित्त दोनो नहीं है, उसीप्रकार कफ पित्तको वायुही कुपित करती है, कफ पित्त इसप्रकार वायु को कुपित नहीं कर सके, और इन दोनों दोषोंको प्रेरणा करनेवाला वातही है * कफ पित्त, वातको प्रेरणा नहीं कर सके इसीसे वातको स्वतन्त्रता है, तथा वातके जितने अधिक रोग है उतने कफ पित्तके रोग नही है, जैसे " अशीतिर्वातजारोगाश्चत्वारिंशच्चपैत्तिकाः ॥ विंशतिः श्लेष्मजाश्चेति" अर्थात् वातके ८० रोग है, पित्तके ४० रोग है, और कफके २० रोग है, इन पूर्वोक्त छः कारणोंसे वातको प्राधान्यता है, इसीसे प्रथम वात प्रकृतिका वर्णन करते है।

वातप्रकृतिकेलक्षण।

प्रायस्तएवपवनाध्युषितामनुष्यादोषात्मकाःस्फुटितधूसरकेशगात्राः। शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टासौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः॥अल्पपित्तबलजीवितानिद्राः सन्नसक्तचलजर्जरवाचः। नास्तिकाबहुभुजःसविलासागीतहासमृगयाकलिलोलाः॥ मधुराम्लकटूष्णसात्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयःसशब्दयाताः। नदृढानजितेन्द्रियानचार्या नचकान्तादयिताबहुप्रजावा। नेत्राणि चैषांखरधूसराणि वृत्तान्यचारूणिमृतोपमानि। उन्मी

* पित्तः पङ्गु कफः पङ्गु, पङ्गवोमलधातवः।
वायुनायत्रनीयन्ते, तत्रवर्षन्तिमेघवत्॥

लितानीव भवन्तिसुते शैलद्रुमास्तेगगनंचयांति ॥ अध
न्यामत्सराघ्माताःस्तेनाःप्रोद्बद्धपिण्डिकाः । श्वसृगालो
ष्ट्रगृध्राखुकाकानूकाश्चवातिकाः ॥

अर्थ-विशेष करके वातप्रकृतिवाले मनुष्य दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं, इन्होंके केश और गात्र (देह) फटे हुए तथा कुछ कुछ पिलाई लिये होते हैं. शीत से द्वेष करने वाले तथा धीरज, स्मरण, बुद्धि, चेष्टा, सुहृदता दृष्टि और इनकी गति ये चंचल होते हैं, अत्यंत वाचाल होते हैं, पित्त, बल, जीवन और निद्रा ये अल्प होते हैं, तथा वात प्रकृति वाले मनुष्योंमें किसीके वचन टूटे हुए, किसीके हकलाय कर और किसीके कुछके कुछ और कोई फूटे कांसेके शब्द समान बोलता है, नास्तिक, बहुत भोजन करने वाला, विलास कर्त्ता तथा गीत, हास, और शिकार तथा कलह करनेकी रुचिवाला होता है । मीठा, खट्टा, खारी और गरम पदार्थ अनुकूल लगते हैं, देह पतला और लंबा होता है, तथा शब्दयुक्त गमन होता है, और न दृढ देह होते, न जितेन्द्री होते, न साधु होते न स्त्रियोंको प्यारे लगते और न वात प्रकृतिवालेके बहुत संतान होती तथा इन्होंके नेत्र रूखे और सपेदाई लिये गोल सुंदरता रहित मुर्देकेसे होते हैं, और जब वात प्रकृतिवाला मनुष्य सोता है तब नेत्र खुलेसे होजाते हैं तथा सपनेमें पर्वत, वृक्ष और आकाशमें गमन करता है, भाग्यशाली नहीं हो द्वेषी और चोर होता है तथा इनकी पिंडली गांठदार होती हैं, तथा कुत्ता, स्यार, ऊंट, गीध, चूहा और कौआ इन्होंकासा स्वभाव स्वर (आवाज) रूप और चेष्टाके करने वाले होते हैं, इतने लक्षण वात प्रकृतिवाले मनुष्यके कहे हैं ।

पित्तप्रकृतिकेलक्षण ।

पित्तंवह्निर्वह्निजंवायदस्मात्पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभु
क्षः ॥ गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांघ्रिवक्त्रःशूरोमानीपिंगकेशो
ल्परोमा ॥ दयितमाल्यविलेपनमंडनः सुचरितःशुचिरा
श्रितवत्सलः ॥ विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवतिभीषुग
तिर्द्विपतामपि ॥ मेधावीप्रशिथिलसंधिबंधिमांसो नारीणा
मनभिमतोऽल्पशुक्रकामः । आवासःपलिततरंगनीलि
कानां भुंक्तेऽन्नंमधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ धर्मद्वेषीस्वेदनः
पूतिगंधिर्भूर्य्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः । सुप्तःपश्येत्कर्णि
कारान्पलाशान् दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ तनूनि

पिंगानिचलानिचैषां तन्वल्पपक्ष्माणिहिमप्रियाणि । क्रोधेनमद्येनरवेश्चभासा रागंव्रजंत्याशुविलोचनानि ॥ मध्यायुषोमध्यबलाः पण्डिताःक्लेशभीरवः । व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारयज्ञानूकाश्चपैत्तिकाः ।

अर्थ–धन्वन्तरि के मत में पित्त ही अग्निरूप है क्यों कि अन्न और रसादिक धातुओं का परिपाक कर्त्ता यही है, अथवा अग्नि से उत्पन्न हुआ क्यों कि पित्त को अग्न्याधारत्व लिखा है इसी से रुधिर के कीट को पित्त कहते हैं इन पूर्वोक्त कारणों से पित्त प्रकृति वाले मनुष्यको भूख और प्यास अधिक लगती है, गौरांग तथा गरम देह वाला होय है; हाथ, पैर और मुख ये लाल होते हैं, शूरवीर और अभिमानी होता है, पीले केश और अल्प–रोम (रूआं) वाला होता है, फूल, माला और चन्दन लगाना तथा भूषणों का धारण करने वाला होता है, रीत भांत उत्तम होती है, देह वाणी और मन के मलिन व्यापारों से दूर रहता है, आश्रित मनुष्यों पर प्यारका करने वाला होता है, वैभव, साहस तथा बुद्धिबल युक्त होता है, भय में शत्रुओंकाभी रक्षा करने वाला होता है, (फिर इष्ट मित्र और मध्यस्थों की तो क्यों नहीं रक्षा करेगा) स्मरण शक्ति उत्तम होती है, सन्धियों के बंधन तथा मांस ये शिथिल होते हैं तथा स्त्रियों को अप्रिय, वीर्य और कामदेव जिसके अल्प तथा जल में जैसी तरंग पडती है ऐसी देह में गुजलट पड जावे, बाल सपेद हो जावें और नीलिका (क्षुद्र रोग विशेष) करके युक्त होता है, मिष्ट, कषेले कडुए और शीतल ऐसे पदार्थों को भोजन करता हैं, घर्म का विरोधी अथवा [घर्मद्वेषी] अर्थात् गरमी सुहाय नहीं, पसीने बहुत आवे, देह में दुर्गंध आवे, तथा विष्टा, क्रोध, जलपान, भोजन और ईर्ष्या ए अधिक होते हैं, सपने में कणेर, ढाक, दिशाओं में दाह, उल्कापात, बिजली, सूर्य और अग्नि को देखे, तथा पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के नेत्र छोटे, पीले, चंचल और छोटी वरुनी तथा पतले पलक और शीलता प्रिय लगे ऐसे होते हैं और क्रोधसे, मद्य पीने से तथा सूर्य्यकी घामसें, नेत्र तत्काल लाल हो जाते हैं, पित्त प्रकृति वाला मनुष्य मध्यायु, मध्यबली, पण्डित, और क्लेशों से डरने वाला होता है, तथा बघेरा, रीछ, वानर, बिलाव और शूकर इन की सी चेष्टा, स्वभाव, स्वर और रूप वाले होते हैं, ये लक्षण पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के कहे हैं ।

कफप्रकृतिवालेमनुष्यकेलक्षण ।

श्लेष्मासोमःश्लेष्मलस्तेनसौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थि

मांसः । क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्यायुक्तःसात्विकः सत्यसंधः ॥ प्रियङ्गुदूर्वाशरकांडशस्त्रगोरोचनापद्मसुवर्ण वर्णः। प्रलंबबाहुःपृथुपीनवक्षा महाललाटोघननीलकेशः ॥ मृद्वंगःसमसुविभक्तचारुवर्ष्मा बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः। धर्मात्मावदतिननिष्ठुरंचजातुप्रच्छन्नंवहतिदृढंचिरंचवैरम्॥समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो जलदांभोधिमृदंगसिंहघोषः। स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो नचबाल्येऽप्यतिरोदनोनलोलः॥ तिक्तंकषायंकटुकोष्णरूक्षमल्पंसभुंक्तेबलवांस्तथापि । रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घ सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः* ॥ अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्राज्यायुर्वित्तोदीर्घदर्शीवदान्यः। श्राद्धीगंभीरःस्थूललक्ष्यः क्षमावानार्योनिद्रालुर्दीर्घसूत्रीकृतज्ञः ॥ ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जोभक्तोगुरूणां स्थिरसौहृदश्च । स्वप्नेसपद्मान्सविहंगमालांस्तोयाशयान्पश्यतितोयदांश्च ॥ ब्रह्मरुद्रेंद्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः । श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथासिंहाऽश्वगोवृषैः ॥

अर्थ–कफ सौम्य है इसी सें कफप्रकृतिवाला मनुष्यभी सौम्य होता है, इसकी संधी, हड्डी और मांस परस्पर मिले हुए स्निग्ध और गूढ़ होते है। भूख, प्यास, दुःख, क्लेश, आदि धर्मों सें तापित (दुःखी) नहीं होवे, उत्तम बुद्धि होती है तथा सत्वप्रधान और सत्य वचन का पालन कर्त्ता होता है, प्रियंगुपुष्प, दूब, मूंज, शस्त्र, गोरोचन, कमल और सुवर्णकासा देहका वर्ण होता है, हाथ लम्बे होते हैं, छाती विशाल और पुष्ट होती है, ललाट विस्तीर्ण होता है; घुघरारे, कारे और लम्बे बाल होते हैं, कोमल अङ्ग और सर्व देहके अवयव सुडोल और दिखनोंट होते हैं; ओज, रति (स्त्री संग) रस, शुक्र पुत्र और भृत्य ये अधिक होते हैं, धर्मात्मा होता है, अप्रिय वचन कदाचित् नहीं बोले, किसीको प्रतीत नहो ऐसी रीति सें शत्रुके प्रति बहुकालपर्यंत वैरभाव रखता है, मतवारे हाथीकासा गमन, मेघकी सी घुमडन, समुद्रकी सी गर्जना, मृदंग और सिंहकीसी गर्जनाके स-

* अव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्रज्ञायुक्तोदीर्घदर्शीवदान्यः । हृद्गंभीरः स्थूललक्ष्यः क्षमावान् आर्योनिद्रालब्धवित्तःकृतज्ञः ॥

दृश शब्द होता है, स्मृतिवान् (सब आगे पीछेकी बातको स्मरण रखने वाला) श्रेष्ठ उद्योगवाला और विनयवाला होता है, बालकपनमेंभी बहुत नहीं रोवे- और न बहुत लोलुप होता है; कडुआ, कषेला, चरपरा, गरम, रूखा और थोडा ऐसा भोजन मिलनेपरभी बलवान् होवे, स्निग्ध, विशाल, लम्बे, स्पष्ट, सपेद औ- र काली बन्नीवाले तथा जिनके प्रांत लाल हो ऐसे नेत्र होते हैं, अल्प है भाषण, क्रोध, पीना, भोजन और ईर्ष्या अथवा [ईहा] देहकी चेष्टा जिसकी, दीर्घ है आ- यु और धन जिसके तथा दीर्घदर्शी (आगे होने वाले कार्यको प्रथमही विचार करने वाला) मनोहर बोलने वाला, दान आदिमें श्रद्धावाला, गंभीर, बहुत देने- वाला, क्षमावान्, आर्य (सज्जन) बहुत सोने वाला, दीर्घसूत्री (जो कार्य जल्दी करनेका हो उसके करनेमें देर कर देवे) और कृतज्ञ होता है ।

जिसका चित्त कुटिल न हो, और पण्डित हो, सबोंको प्रिय और लज्जावान्, माता पिता गुरु आदिकी सेवा करने वाला, तथा दृढ सौहृद (मित्रता) वाला हो- ता है, तथा कफ प्रकृतिवाला मनुष्य सपनेमें कमल और (चक्रवाकादि) पक्षि- योंकी पंक्ति सहित जलाशय (तालाव, पुष्करणी) आदिको और बद्लोंको देखे है । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, हंस ऐरावत-हाथी तथा सिंह, घोडा, गौ और बैल इनकीसी चेष्टा रूप, स्वभाव, स्वरवाले होते हैं, ये लक्षण कफ प्रकृतिवाले मनुष्यके कहे हैं ।

द्वंद्वजऔरसन्निपातजप्रकृति ।

द्वयोर्वातिसृणांवापि प्रकृतीनांतुलक्षणैः ।
ज्ञात्वासंसर्गजावैद्यैः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥

अर्थ-वैद्योंको दो दोषोंकी तथा तीन दोषोंकी प्रकृतियोंके लक्षणों करके द्वंद्वज, और सन्निपातज प्रकृति जानना, अर्थात जिस मनुष्यमें वात पित्त, वा वात कफ वा पित्त कफके लक्षण मिलते हों उसको द्वंद्वज प्रकृति कहनी । और जिसमें वात, पित्त, कफ तीनोंके लक्षण पाए जावें उसकी सन्निपात प्रकृति कहनी चाहिये ।

वेप्रकृतिकेभावपलटतेनहीं ।

प्रकोपोवान्यभावोवा क्षयोवानोपजायते ।
प्रकृतीनांस्वभावेनजायतेतुगतायुषः ॥

अर्थ-पूर्वोक्त प्रकृतिके स्वभाव करके प्रकोप, विकार, और क्षय ए होते नहीं । परंतु गतायु मनुष्य (अर्थात् मरने वाला मनुष्य) जब होता है, उस कालमें प्र- कृति प्रबल होकर स्वभाव पलट जाता है । अर्थात मरणवाले मनुष्यकी प्रकृति लट जाती है ।

शिष्य-वातादि प्रकृतिके दोष इस प्राणीको पीडा क्यों नहीं देते ।

गुरु-विषजातोयथाकीटो नविषेणविहन्यते ।
तद्वत्प्रकृतयोमर्त्यं शक्नुवन्तिनबाधितुम् ॥

अर्थ-जैसे विष से उत्पन्न हुआ कीडा उस विष करके पीडित नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिगत वातादि दोष, स्वजन्य मनुष्योंको विशेष बाधा नहीं करते । किंतु हाथपैरका फटना आदि विकार करके अल्प बाधा करते हैं ।

इस जगे यह औरभी जानना चाहिये कि केवल एक दोष प्रकृतिवाले मनुष्य सदैव रोगाक्रांत रहतेहैं; क्योंकि एकदोषका आधिक्य देहमें सदैव विशेष रहता है, और जो द्विदोषप्रकृतिवालेहैं, वो सत्वादि गुणोंके मिश्रित विकार करके रोगवान् भी आरोग्य कहलातेहैं. जैसे भूख प्यास आदि यद्यपि रोगहैं परंतु उन्होंकी रोगोंमें गणना नहीं है.

मतान्तर कहतेहैं ।

प्रकृतिमिहनराणां भौतिकीं केचिदाहुः
पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः ।
स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान्
शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः ॥

अर्थ-कोई आचार्य इसप्रकार कहते हैं कि, मनुष्यकी प्रकृति पंचमहाभूतोंककें बनी हुई है; तिनमें वात, पित्त और कफ इन करके (पवनवात, दहनपित्त और तोयकहिये कफ) ये तीन प्रकारकी कहआएहैं और जिसका देह स्थिर, पुष्ट और जो व क्षमावान् हो, उसकी पार्थिव अर्थात् पृथ्वीसंबंधी प्रकृति जाननी । तथा जो पवित्र हो बहुतकालपर्यंत जीवे उसकी आकाश प्रकृति जाननी इसप्रकार पंचमहाभूतात्मक प्रकृति कही हैवो प्रकृति एक,दो, तीन और चार भूतोंके संबंध करके अनेक प्रकारकी होती है । जैसे एक एक भूतोंके संबंधसे पांचप्रकारकी; दोदो भूतोंके संबंधसे दश प्रकारकी, ऐसे प्रस्तार करनेसे अनेक प्रकारकी होतीहै * उसीप्रकार सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के भेदसें सात प्रकृति होती है, तथा नागार्जुन आ-

* उक्तंच. एकैकेनवदंतिपंचदशतुद्वाभ्यांत्रिभिस्तावती
भूतैः पंचचतुर्भिरेवभिषजस्त्वेकांसमस्तैरपि ।
एकत्रिंशकमत्रभूमिसलिलस्वाहाप्रियस्पर्शना-
काशैश्चप्रकृतीर्गुणैरपिपुनः प्राहुः स्म सप्तापरे ॥

चार्य कहता है कि, सात प्रकृति दोषों करके और सातही प्रकृति सत्वादि गुण करके होती हैं । उसीप्रकार जाति, कुल, देश, काल, अवस्था, बल, और आत्मसंश्रय प्रकृति करके सात प्रकारकी प्रकृति होती है । क्योंकि पुरुषोंमें जात्यादि भाव विशेष परस्पर विलक्षण दीखते हैं. इन्हीं सत्वादि असंख्य भेदवशसे और रूप, स्वर, चरित, अनुकरण (अनूकशब्दवाच्य) भी असंख्य भेदवान् होता है. सत्वादि आवेश तो अनेक जन्माभ्यास वासना करके प्रगट होता है, इसीसें देव, मानुष, तिर्यक्, प्रेत और नारकी जीवोंका अनुकरण पुरुषमें उन्हीं उन्हीं के लक्षणों से जानना चाहिये । उनके लक्षण आगे कहते हैं ।

ब्राह्मकायकेलक्षण ।

शौचमास्तिक्यमभ्यासोवेदेषुगुरुपूजनम् ।
प्रियातिथित्वमिज्याचब्राह्मकायस्यलक्षणम् ॥

अर्थ-पवित्रता, परलोक और ईश्वरमें आस्तिक्यबुद्धि, वेदोंमें अभ्यास, गुरु (माता, पिता, आचार्य आदि) का पूजन, सत्कर्मका आचरण, अभ्यागतमें भक्ति, क्रिया (यागादि) में प्रीति, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके शरीरमें रहते हो उसकी ब्रह्मकाय जाननी ।

माहेन्द्रकायकेलक्षण ।

माहात्म्यंशौर्यमाज्ञाचसततंशास्त्रबुद्धयः ।
भृत्यानांभरणंचापिमहेन्द्रंकायलक्षणम् ॥

अर्थ-बड़प्पन, शूरवीरता, आज्ञाशक्ति, शास्त्राभ्यास, सेवकोंका पोषण, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके देहमें रहते हो उसकी माहेन्द्रकाय जाननी ।

वरुणकायकेलक्षण ।

शीतसेवासहिष्णुत्वंपैङ्गल्यंहरिकेशता ।
प्रियवादित्वमित्येतद्वारुणंकायलक्षणम् ॥

अर्थ-शीतपदार्थ में प्रीत, सहनशीलता, पीले नेत्र, कपिश (किसमिसी) वर्ण केश हो, और मधुर भाषण इत्यादि लक्षण करके युक्तहो उसकी वरुणकाय जाननी ।

कुबेरकायकेलक्षण ।

मध्यस्थतासहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ।
महाप्रसवशक्तिश्चकौबेरंकायलक्षणम् ॥

अर्थ-मध्यस्थपना, सहनशीलता, धनका आना और संचय करना, तथा प्रबल प्रजोत्पादन की शक्ति, ए लक्षण जिस्में होवे उसकी कुबेरकाय जाननी ।

गांधर्वकायकेलक्षण।

गंधमाल्यप्रियत्वंचनृत्यवादित्रकामिता ।
विहारशीलताचैवगांधर्वकायलक्षणम् ॥

अर्थ-जिसको गंध (चन्दन अतर आदि) फूलमाला, नाच, गाना बाजोंका बजाने आदि प्रिय और इनकी इच्छारहे, तथा विहार करनेका जिस्का स्वभाव होय, वो गंधर्वकायावाला प्राणीहै, ऐसाजानना

यमकायकेलक्षण ।

प्राप्तकारीदृढोत्थानोनिर्भयः स्मृतिमान्शुचिः ।
रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितोयामसत्ववान् ॥

अर्थ-जो यथार्थ कर्मका करनेवाला,आरम्भ करेहुए कर्मकी समाप्ति करनेवाला, भयरहित, स्मृतिमान्, पवित्र, तथा रागद्वेष, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या आदि करके जो वर्जितहो उसको यमशरीरयुक्त जानना ।

ऋषिकायलक्षण ।

जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेवनम् ।
ज्ञानविज्ञानसहितं ऋषिसत्वंविदुर्नरम् ॥
सप्तैतेसात्विकाःकाया राजसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ-जप, व्रत, ब्रह्मचर्य, होम, पढ़ना, पढ़ाना, तथा ज्ञान, विज्ञान करके युक्त इन लक्षणों से ऋषिकायावान् मनुष्यको जानना । इस प्रकार ब्रह्मकायसे लेकर ऋषिकायपर्यंत सात देह सात्त्विकी कही है । अब राजसी कहते है ।

आसुरकायकेलक्षण।

ऐश्वर्यवन्तंरौद्रंचशूरंचण्डमसूयकम् ।
एकाशिनंचौदरिकमासुरंसत्वमीदृशम् ॥

अर्थ-ऐश्वर्यवान्, भयानक, शूर, अत्यंत क्रोधी, परायेगुणोंकी निंदा करनेवाला, अकेला भोजनकर्त्ता ऐसा जिस्का स्वभाव, भक्ष्याभक्ष्य का खानेवाला, गयदास औ- दरीक के स्थानमें [औपधिकम्] ऐसा कहकर कपट करता ऐसा अर्थ करता है, अथवा छपाधिकर्त्ता हो, इस प्रकार असुरकाययुक्त मनुष्य जानना ।

सर्पकायलक्षण ।

तीक्ष्णमायासिनंभीरुंचंडंमायान्वितंतथा ।
विहाराचारचपलंसर्पसत्वंविदुर्नरम् ॥

अर्थ-जो तीक्ष्णस्वभाव और तीव्रवेगवान्हो, डरपनेवाला और क्रोधी होकर अत्यंत शूर, अथवा [भीरु] कहिये अक्रोधी, मायावी, जिसके आहार और आचार अत्यंत चपलहो, उस पुरुषकी सर्पदेह जाननी ।

पक्षिकायकेलक्षण ।

प्रवृद्धकामसेवीचाप्यजस्राहारएवचा ।
अमर्षणोनवस्थायीशाकुनंकायलक्षणम् ।

अर्थ-जो मनुष्य प्रबलकामसेवी हो, तथा स्वभाव करके निरन्तर भोजन करने वाला, क्रोधी, एकस्थल में क्षणमात्र भी न ठहरने वाला, ए पक्षीदेहवान् के लक्षण हैं ।

राक्षसकायकेलक्षण ।

एकांतग्राहितारौद्रप्रकृतिर्धर्मबाह्यता ।
भृशमात्रंतमश्चापिराक्षसंकायलक्षणम् ।

अर्थ-एकांत स्थलमें रहने वाला, उग्रस्वभाव, धर्मका निंदक, अत्यन्ततामसी, इत्यादि राक्षसकायाके लक्षण जानने ।

पिशाचकायाकेलक्षण ।

उच्छिष्टाहारतातैक्ष्ण्यंसहसाप्रियतातथा ।
स्त्रीलोलुपत्वंनैर्लज्यंपैशाचंकायलक्षणम् ।

अर्थ-उच्छिष्ट भक्षण, शास्त्रविरुद्ध कर्ममें प्रीति, तीक्ष्णस्वभाव, स्त्रीविषयमें लंपट, निर्लज्जता, इत्यादि लक्षणोंकरके जो युक्तहो उसको पिशाचकाय जानना ।

प्रेतकायाकेलक्षण ।

असंविभागमलसंदुःखशीलमसूयकम् ।
लोलुपंचाप्यदातारं प्रेतसत्वंविदुर्नरम् ॥
षडेतेराजसाःकाया स्तामसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ-जो कार्य और अकार्य के विचार करके शून्यहो, आलसी, दुःखशील,

निंदक, लोभी, और कृपणहो, वो प्रेतसत्व जानना। इसप्रकार राजसी छः प्रकारकी काया कही है। अब तामसी कायाओंको कहते हैं.

पशुकायकेलक्षण।

दुर्मेधस्त्वंमन्दताचस्वप्नेमैथुनमिच्छति।
निराकरिष्णुताचैवविज्ञेयाःपाशवोगुणाः॥

अर्थ–मूर्खता, सर्व कार्य विषयमें मंदता, सोते में मैथुनका अनुभव और किसी कार्यको न करना, इत्यादि पशुदेह के गुण जानने।

मत्स्यकायकेलक्षण।

अनवस्थिततामौर्ख्यंभीरुत्वंसलिलार्थिता।
परस्पराभिमर्शश्चमत्स्यसत्वस्यलक्षणम्॥

अर्थ–सर्व कार्यमें अव्यवस्थितता, मूर्खता, डरपना, सर्वकाल में जलसें प्रीति और परस्पर द्वेष, ए मत्स्यकाय अर्थात् मछलीकी देहवाले पुरुषके लक्षण हैं।

वानस्पत्यकायकेलक्षण।

एकस्थानेरतिर्नित्यमाहारेकेवलेरतः।
वानस्पत्येनरः सत्वेधर्मकामार्थवर्जितः॥

अर्थ–एकही स्थानमें प्रीति, सर्वकाल भोजन करनेमें रुचि, तथा धर्म, अर्थ, काम इनकरके वर्जित हो, उसको वनस्पति (वृक्ष) की प्रकृतिवाला जानना।

इत्येतास्त्रिविधाःकायाःप्रोक्तावैतामसास्तथा।
कायानांप्रकृतींज्ञात्वात्वनुरूपांक्रियांचरेत्॥

अर्थ–इसप्रकार त्रिविध तामसी प्रकृति कही है, वैद्यको उचित है कि पूर्वोक्त देहोंकी प्रकृति जानकर उसके अनुरूप चिकित्सा करे। अर्थात् प्रथम वैद्यको रोगीकी कायाका विचार करना चाहिये कि, इस रोगी की वात, पित्त और कफ से जो सातप्रकारकी कही है उनमें से कौनसी प्रकृति है। फिर ब्राह्मकाया आदि जो सात्विकी सात प्रकृति और आसुरी आदि छः राजसी प्रकृति, तथा पशुआदि तीन तामसी प्रकृतीओंका विचार करके पश्चात् चिकित्सा करनी चाहिये इसमें औरभी प्रमाण देते हैं।

महाप्रकृतयस्त्वेतारजःसत्वतमःकृताः।
प्रोक्तालक्षणतः सम्यगभिपकृताश्चविभावयेत्॥

अर्थ–ए सत्व, रज और तमोगुणोंकी करी महाप्रकृति, लक्षण करके उत्तम प्रकार से कहीहै । इनका विचार वैद्योंको भले प्रकार करके पश्चात् चिकित्सा कर्त्तव्यहै । इस प्रकार वातादि प्रकृति और सत्वादि प्रकृतियोंको कहकर इन दोनोंके ज्ञानार्थ यह श्लोक कहते हैं.

आयुकाज्ञान ।

वयस्त्वाषोडशाद्बालं तत्रधात्विन्द्रियौजसाम् ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परंक्षयः ॥

अर्थ–कालकृत शरीरकी अवस्थाको (वय) कहते है । उसके तीन भेदहैं, १ बाल २ मध्य ३ वृद्ध । इन्होंमें जन्मसे लेकर १६ वर्षपर्यंत अवस्था को बाल कहते हैं, उस बाल अवस्थाकेभी तीनभेद हैं, एक तो जिसमें बालक केवल दूधही पीताहै; दूसरी यह है कि, जिसमें दूध और अन्न दोनों सेवन करे; तीसरी बाल अवस्था का भेद यह है कि, जिस्में दूधको छोड केवल अन्नही भक्षण करता है; इन तीनों (क्षीर, क्षीरान्न, और अन्नवृत्तिवाली) बाल्यअवस्थाओंमें रसादि धातु, नेत्र आदि इन्द्री, तथा सर्वधातुओंके पोषण करता ओजकी वृद्धि होतीहै । और बाल्य अवस्थामें कफकी अधिकवृद्धि रहनेसे बालक का देह सचिक्कण, नम्र, सुकुमार, अल्पक्रोध और सुंदर रहता है; तथा सोलह वर्षसे लेकर ६८ वर्ष तक मध्य अवस्था कहातीहै । इस मध्यअवस्था केभी तीनभेदहैं; १ यौवन २ संपूर्ण और ३ अपरिहानि; इस मध्यअवस्थामें पित्तकी वृद्धि रहतीहै; इसीसे जठराग्निका प्रबल होना, संतानकी उत्पत्ति और पराक्रमकी अधिकता होती है. तहां सोलहसे लेकर तीस वर्षपर्यंत यौवनअवस्था कहाती है; और तीससे लेकर चालीसपर्यंत अवस्थाको संपूर्णता कहते हैं; इसमें सर्व धातु, इन्द्री, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, स्मरण, वचन, विज्ञान और प्रेमआदिकी संपूर्णता रहती है । इसके उपरांत अर्थात् चालीसवर्षके उपरांत अवस्थाको अपरहानि कहते हैं. इस मध्यअवस्थामें धातु, इन्द्री आदिकी वृद्धि नहीं होती किंतु ज्योंके त्यों रहते हैं; इस सत्तर वर्षकी अवस्थासे जो शेप अवस्था बाकी है उस अवस्थाको क्षयअवस्था कहते हैं. इसमें धातु, इन्द्री और ओजका क्रम से क्षय होता है; तथा बल, वीर्य,पुरुषार्थ, वचन, विज्ञान, स्मरण, आदिकीभी क्षीणता होती है; तथा गुजलटका पडना, बालोंका सपेद होना, श्वास, खांसी, मंदाग्नि आदिके व्याप्तहोनेसे जैसे पुराना भवन वर्षाके होनेसे गिरताहै, ऐसे रोगरूप वर्षासे दिनप्रतिदिन यह वृद्धदेह क्षीण होता है । इस वृद्धावस्थामें वात प्रबल होती है, इसीसे बलसिथिल, मांस, संधि, हड्डी, त्वचा और पुरुषार्थ ए नष्ट होते हैं । तथा देहमें कंप, कंठमें कफ, बोलना, नेत्र कान आदिमें मैलका निकलना होताहै ।

सुखायुकेलक्षण।

स्वंस्वंहस्तत्रयंसार्द्धंवपुःपात्रंसुखायुषोः।

अर्थ-अपने अपने हाथोंसें साढेतीन हाथका लंबा देह उत्तम आयु (उमर) वालेका होताहै.।

नचयद्युक्तमुद्रिक्तैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः।
अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैःसविपर्ययैः॥

अर्थ-पूर्वोक्त साढेतीनहस्त परिमित भी देह इन निंदित अपने आठ कारणो की आधिक्यता करके शुभ नहीं है। उन आठ कारणोंको कहतेहैं कि, जिस्की देहमें रोम (बाल) रहितहो, उसीप्रकार जिस्की. देहमें अधिकरोमहोवे, जो अत्यंत काला होय, और जो अत्यंत गौर होवे, जो अत्यंत मोटा हो, और जो अत्यंत पतला हो; इसी प्रकार जो अत्यंत लंबाहो, और जो अत्यंत ठिगना हो, ए आठ कारण सुखायु अर्थात् दीर्घ उमरवालेके नहीं होते, किंतु अल्पायु और मध्यमायु वालेके जानना।

दीर्घायुकेलक्षण।

सुस्निग्धामृदवःसूक्ष्मानैकमूलाःस्थिराःकचाः। ललाटमुन्नतंश्लिष्टं शंखमर्धेन्दुसन्निभम्। कर्णौनीचोन्नतौपश्चान्महान्तौश्लिष्टमांसलौ॥ नेत्रेव्यक्तासितासितेसुबद्धेघनपक्ष्मणी। उन्नताग्रामहोच्छ्वासापीन र्जुर्नासिकासमा। ओष्ठौरक्तावनुद्वृत्तौमहत्यौनोल्वणेहनू। महदा स्यंघनादन्ताःस्निग्धाःश्लक्ष्णाःसिताःसमाः। जिव्हारक्ताऽऽयतातन्वीमांसलंचिबुकंमहत्। ग्रीवाह्स्वाघनावृत्तास्कंधावुन्नतपीवरौ। उदरंदक्षिणावर्तगूढनाभिसमुन्नतम्। तनुरक्तोन्नतनखंस्निग्धमाताम्रमांसलम्। दीर्घाच्छिद्राङ्गुलिमहत्पाणिपादंप्रतिष्टितम्॥

अर्थ-जिसके चिकने, नरम, पतले, अनेक जडवाले, (एकजडमेंसे दो तीन न उगेहो) और मजबूत ऐसे केश (बाल) उत्तम होते हैं। अर्थात् दीर्घावस्था वालेके होते हैं। जिस्का ललाट ऊंचा [सुढार] और स्पष्ट तथा अर्धचंद्राकार है कनपटी जिस्में, और नीचेसें छोटे, और ऊपर सें बडे, पीछेसें विस्तृत और रमणीक तथा पुष्ट ऐसे कान उत्तम होते हैं। प्रकाशित है सपेद और काले भाग जिन्होंमें, (अर्थात् काले भाग कालेहो और सपेद भाग सपेदहो किंतु मिलाहुआ वर्ण न हो) सु-

वद्ध और घन है. पलकों की वन्नी जिन्हों में ऐसे नेत्र उत्तम होते हैं । जिसका अग्रभाग ऊँचा और महान् उच्छ्वास जिस्का तथा पुष्ट सरल और समान ऐसी नासिका उत्तम होती है । लाल और बाहर की तरफ निकलेहुए ओष्ठ (होठ) उत्तम होते हैं । किंतु बडे होठ उत्तम नहीं होते; सुन्दर ठोडी उत्तम होती है। बड़ामुख, मिलेहुए चिकने और सुन्दर सपेद तथा समान दांत उत्तम होते हैं। लाल लम्बी और पतली जीभ शुभ होती है । मांसल और बडी चिवुक (ठोडीसे ऊपर और अधरोंसे नीचेका भाग) शुभ होता है । छोटी घन और गोल ग्रीवा (नाड) ऊंचे और पुष्ट कंधे शुभ होते हैं । दक्षिणावर्त्त और गम्भीरनाभि जिसमें तथा किंचित् ऊंचा ऐसा उदर शुभ होता है । पतले ऊंचे और लाल ऐसे नख जिन्हों में तथा चिकने लाल और मांसदार ऐसे हाथ पैर शुभ होतेहैं । तथा लंबी छिद्ररहित परस्पर मिली हुई उंगली दीर्घायुवाले पुरुषकी होती है ।

गूढवंशंबृहत्पृष्ठं निगूढाः संधयोदृढाः ।
धीरःस्वरोऽनुनादीचवर्णः स्निग्धःस्थिरप्रभः ।
स्वभावजंस्थिरं सत्वमविकारिविपत्स्वपि ॥

अर्थ-छिपाहुआ है पृष्ठका बांस जिसमें और विशाल पीठ शुभ होती है । भीतर छीपी और दृढ (टूटेनहीं.) ऐसी संधीहो कृपणता रहित और सुन्दर शब्द तथा मेघकीसी घुमडनकासा प्रतिध्वनि करता वचन शुभ होता है सचिक्कण और स्थिर है कांति जिसकी ऐसा देहका वर्ण शुभ होताहै । स्वभाव से प्रगट और पलटे नहीं. तथा विपत्तिमें भी क्षोभित न हो ऐसी प्रकृति उत्तम होती है ।

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रंवपुर्गर्भादिनीरुजम् ।
आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानंशनैःशुभम् ॥

अर्थ-उत्तरोत्तर सुक्षेत्र वपु शुभ होता है । जैसे अपने अपने हाथोंसे ३॥ हाथ का लंबा देह शुभ होता है; तथा ललाट आदि देहके जो लक्षण कहे हैं उन्हों से युक्त देह शुभतर होताहै, और यथोक्त सत्त्व (प्रकृति) के लक्षण कहेहैं जैसे [स्वभावजंस्थिरंसत्वं] इत्यादि गुणयुक्त देह शुभतम होता है, और बाल यौवनआदि अवस्था जिसकी रोगरहितहो ऐसा देह शुभ होता है, तथा देहका बढना, और ज्ञान (लौकिकव्यवहार) विज्ञान (विशेषज्ञान जो शास्त्राभ्यासमे हुआ हो) ए सब जिस्के क्रमसे धीरे २ बढेहों ऐसा देह शुभ होता है अर्थात् ए लक्षण दीर्घायु वालेके जानने ।

इतिसर्वगुणोपेते शरीरेशरदांशतम् ।
आयुरैश्वर्यमिष्टाश्चसर्वेभावाः प्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ-इसप्रकार पूर्वोक्त सर्वगुण युक्त देहकी सौ वर्षकी आयु होती है तथा ऐश्वर्य और जो शुभवस्तु होती है वो सब इसदेहमें सौवर्ष पर्यंत रहती है ।

इसप्रकारदेहकेउत्तमलक्षणकहकर
बलप्रमाणजाननेकेअर्थकहते हैं ।

त्वग्रक्तादीनिसत्वांतान्यग्राण्यष्टौ यथोत्तरम् ।
बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम् ॥
सारैरुपेतः सर्वैःस्यात्परं गौरवसंयुतः ।
सर्वारंभेपुचाशावान्सहिष्णुः सन्मतिःस्थिरः ॥

अर्थ-त्वचा, रुधिरसे लेकर सत्वपर्यंत जो ए आठ सार हैं सो क्रमसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, अर्थात् त्वक्सारसे रक्तसार. रक्तसारसे मांससार, मांससारसे मेदसार, मेदसारसे, अस्थिसार, अस्थिसारसे मज्जसार, मज्जसारसे शुक्रसार, और शुक्रसारसे श्रेष्ठ सत्वसारवान् मनुष्य होता है, । ये सार मनुष्यों के बल प्रमाण जाननेके अर्थ कहे हैं इन सर्वसारोंकरके युक्त पुरुष अत्यंत गौरवसंयुक्त होता है । और सर्व आरंभ कार्य में आशावान् होता है, सहनशील, श्रेष्ठबुद्धिवाला और कर्त्तव्यकार्योंमें स्थिर बुद्धिवाला होता है । *

---

* आठप्रकारकेसारोंकेलक्षणचरकमुनिने अपनीसंहितामेंइसप्रकार लिखेहैं-

त्वग्रक्तमांसमेदोस्थिमज्जशुक्रसत्वानि । तत्रस्निग्धश्लक्ष्णमृदुप्रसन्नसूक्ष्माल्पगंभीरसुकुमारलोमशप्रभवत्वत्वक्साराणांसारता । सुखसौभाग्यैश्वर्योपभोगबुद्धिविद्यारोग्यप्रहर्षाण्यायुष्याणिपरमाचष्टे ।

कर्णाक्षिमुखजिव्हानासौष्ठपाणिपादतलनखललाटमेहनंस्निग्धंरक्तंश्रीमद्भ्राजिष्णुरक्तसाराणांसारता । सुखमुदग्रतांमेधांमनस्वित्वसौकुमार्यमनतिबलमक्लेशसहिष्णुतांचाचष्टे ।

शंखललाटकृकाटिकाक्षिगण्डहनुग्रीवास्कंधोदरवक्षःकक्ष्यापाणिपादसन्धयः स्थिरगुरुमांसोपचितामांससाराणांसारता । क्षमाधृतिमलौल्यवित्तविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्चदीर्घमाचष्टे ।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तौष्ठमूत्रपुरीषेषुविशेषेणस्नेहो मेदःसाराणांसारता । वित्तैश्वर्यसुखोपभोगप्रदानान्यार्जवसुकुमारोपचारतांचाचष्टे ।

पार्ष्णिगुल्फजानूरुजत्रुचिबुकशिरःपर्वस्थूलास्थिनखदन्ताश्चास्थिसाराः । तेमहोत्साहाः क्रियावंतः क्लेशसहाः सारस्थिरशरीराभवंत्यायुष्मंतश्च ।

तन्वङ्गावलवन्तश्चस्निग्धवर्णस्वराः स्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्च मज्जसाराः तेदीर्घायुषोबलवंतः श्रुतविज्ञानवित्तापत्यसन्मानभाजश्च सदाभवन्ति ।

सत्वादि तीनोंप्रकृतियोंको कौनसीरीतिसें सुख दुःखका अनुभव होताहै-

अनुत्सेकमदैन्यंचसुखंदुःखंचसेवते ।
सत्ववांस्तप्यमानस्तुराजसोनैवतामसः ॥

अर्थ-सतोगुणी मनुष्य अभिमानको परित्यागकर सुखका अनुभव करता है । और दीनताको त्यागकर दुःखका सेवन करते हैं । और राजसी पुरुष तप्यमान होकर अर्थात् हमही इससुखसें सुखी हैं ऐसें सुखका सेवन करे हैं । और अहंकार युक्त दुःखका सेवनकर्ता है, अर्थात् मेंही इस दुःखको भोगसकताहूं ।

सौम्याः सौम्यप्रेक्षिणः क्षीरचूर्णलेहनादेव प्रहर्षबहुलाः स्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिखरदशनाः प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णवो महास्फिजश्च शुक्रसाराः ॥ तेस्त्रियोपभोगाबलवन्तः सुखभोग्यवित्तैश्वर्यसमानाः फलभाजश्चभवन्ति ॥

स्मृतिमंतो भक्तिमंतः कृतज्ञाः प्राज्ञाः शुचयो महोत्साहा धीराः समरविक्रान्तयोधिनस्त्यक्तविषादाः स्ववस्थितगतिगंभीरबुद्धिचेष्टाः कल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्वसाराः । तेषांस्वलक्षणैरेवगुणाव्याख्याताः ॥

तत्रसर्वैः सारैरुपेताः पुरुषाभवन्त्यतिवलाः ॥ परमगौरवयुक्ताः क्लेशसहाः

सर्वारंभेष्वात्मानि जातप्रत्याशाः कल्याणाभिनिवेशिनः स्थिरसमाहितशरीराः सुसमाहितगतयः सानुनादगंभीरमहास्वराः सुखैश्वर्यवित्तोपभोगसन्मानभाजो मंदजरसो मंदविकाराः प्रायस्तुल्यगुणाविस्तीर्णापत्याश्चिरजीविनश्च भवंति । अतोविपरीतास्त्वसाराः ॥

देहका प्रमाणभी संग्रहमें लिखाहै.

स्वाङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौद्व्यङ्गुलायते । तिस्रोऽन्याः क्रमेणोत्तरोत्तरं पंचभागहीनास्तत्रखहीनावा । चतुरङ्गुलायतः पृथक् प्रपदपादतलपार्ष्णयः षट्पंचचतुरङ्गुलिविस्तृताः । चतुर्दशैवायामेन पादश्चतुर्दशैव परिणाहेन । तथा गुल्फोजंघामध्यंच । चतुरङ्गुलोत्सेधः पादः । अष्टादशायामार्जघाऊरुश्च । चतुरङ्गुलंजानु । त्रिंशदङ्गुलपरिणाहऊरुः । षडायामौ मुष्कमेढ्रावष्टपंचपरिणाहौ । षोडशविस्ताराकटी पंचाशत्परिणाहा । दशाङ्गुलं वस्तिशिरः । द्वादशाङ्गुलमुदरम् । दशविस्तारं द्वादशायामं द्वादशोत्सेधं त्रिकम् । अष्टादशोत्सेधं पृष्ठम् । द्वादशकं स्तनान्तरम् । द्व्यङ्गुलः स्तनपर्यंतः । चतुर्विंशत्यङ्गुलविशालं द्वादशोत्सेधमुरः । द्व्यङ्गुलं हृदयम् । अष्टकौ स्कन्धौकक्षेच । षड्ङ्गांवंसौ । षोडशकौ प्रबाहू । पंचदशकौपाणी । दशाङ्गुलौ पाणी । तत्रापि पंचांगुलामध्यमा । ततोद्व्यङ्गुलहीने प्रदेशिन्यनामिके । सार्द्धत्र्यङ्गुलौकनिष्ठाङ्गुष्ठौ । चतुरंगुलोत्सेधा द्वाविंशतिपरिणाहा शिरोधरा । द्वादशोत्सेधं चतुर्विंशतिपरिणाहमाननम् । पंचाङ्गुलमास्यम् । चतुरंगुलं पृथक्चिबुकोष्ठनासाद्दृष्ट्यंतरकर्णललाटम् । शंखगंडाश्चतुरंगुलाः त्रिभागांगुलविस्तारौ नासापुटौ । द्व्यंगुलायतमंगुष्ठोदरविस्तृतं नेत्रम् । तत्रशुक्लदत्तीयांशः कृष्णः । कृष्णनवमांशामसूरदलमात्राद्दृष्टिः । षडंगुलोत्सेधं द्वात्रिंशत्परिणाहं शिरः इति । सर्वंपुनःशरीरमंगुलानि चतुराशीतिः । तदायामविस्तारसमं समुच्यते । यथोक्तपरिमाणमिष्टम् ॥

उसीप्रकार तामसी पुरुष अत्यंत मूढ होनेसें न सुखका सेवन करे और न दुःखका सेवन, उसीप्रकार द्वंद्वप्रकृति वाला भी सुखदुःखका सेवन नहीं करे। समानप्रकृतिवाला सुखदुःखका सेवन अदीन होकर करे हैं।

आयुबढानेवालेकर्म।

दानशीलदयासत्यब्रह्मचर्यकृतज्ञताः।
रसायनानि मैत्रीचपुण्यायुर्वृद्धिकृद्गुणः॥
इतिश्रीसौश्रुतशारीरेचतुर्थोध्यायः॥ ४॥

अर्थ-दानशीलता, दया, सत्यता, ब्रह्मचर्य, कृतज्ञता, रसायन औषध, और सर्वप्राणियोंमें मित्रता इत्यादि गुण पुण्य और आयुके बढाने वाले हैं। अर्थात् इनमें कोई पुण्यको बढाता है. और कोई वस्तु आयुको बढाती है।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेसप्तमस्तरङ्गः॥ ७॥

पंचमोध्यायः।

गर्भवर्णनकरनेकेअनन्तरगर्भमेंप्रगटहुएबालककेशरीरकेअवयवोंकोसंख्याकरणीउचितहै, अतएवउससंख्याकावर्णनकरतेहैं।

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-पंचमहाभूत शरीर समवायको शरीर कहते हैं.। उस शरीरके अवयवोंकी संख्या का विवरण है जिस शरीरमें उस शारीरकी हम व्याख्या करेंगे। तहां शरीरावयव संख्या विवरण प्रतिपादन की कामना करके शरीर शब्द के व्यपदेश करके उसीका क्रमसे वर्णन करते हैं।

शुक्रशोणितंगर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं गर्भइत्युच्यते।

अर्थ-गर्भाशयमें स्थित जो शुक्रशोणित वो क्षेत्रज्ञ और प्रधान आदि आठ प्रकृति, तथा पंचभूत, ग्यारह इन्द्री, ए सोलह विकार इनसें मिलकर गर्भसंज्ञाको प्राप्त होताहै. [इस करके योगियों का उपयोगी पंचविंशति कोष कहाहै.] उसीको वैद्योंका उपयोगी छः धातुवाला कोष है उसको कहते हैं।

तंचेतनावस्थितंवायुर्विभजाति तेजएनंपचाति आपःक्लेदयन्ति पृथ्वीसंहनयाति आकाशंविवर्द्धयाति एवंविवर्द्धितः सयदा हस्ताद्यङ्गैरुपेतस्तदाशरीरमितिसंज्ञांलभते॥

अर्थ-वायु प्रसवकालपर्यंत चेतनायुक्त जो गर्भ उसके दोष, धातु, मल, अंग, प्रत्यंग, इन्होंका विभाग करता है. । तदनंतर तेज उस गर्भका रूपांतर उत्पन्न करे है । गर्भके विभाग और परिणाम इनके करने वाला वायु और पित्त इसको सुखाता है । जब वात और पित्त (अग्नि) इसको सुखाते हैं तब जल फिर इस गर्भको गीला कर देता है । जब जलसे गर्भ गीला हो जाताहै उसको पृथ्वी मूर्तिमान्करे है, तब उस गर्भकी शरीर संज्ञा होती है । और इस गर्भको आकाश बढाता है, इस प्रकार बढाहुआ गर्भ जब हस्तादि अंगों करके युक्त होता है तब शरीर संज्ञाको प्राप्त होता है. ।

तच्चषडङ्गं शाखाश्चतस्रोमध्यंपंचमंषष्ठंशिरइति ॥

अर्थ-उस शरीरके छः अंग हैं । हाथ पैर चार, मध्यम भाग पांचवा और मस्तक छठा अंग है. इसके उपरांत प्रत्यंगोंको कहते हैं.

प्रत्यङ्ग

मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकवस्तिग्रीवा इत्येताएकैकाः । कर्णनेत्रभ्रुवोंसगंडकक्षास्तनवृषण पार्श्वस्फिग्जानुबाहूरुप्रभृतयोद्वेद्वे । विंशतिरङ्गुलयः । स्रोतांसिवक्ष्यमाणानि एषप्रत्यङ्गविभागउक्तः ।

अर्थ-अब प्रत्यंगोंकी संख्या कहते हैं. तिनमें, मस्तक, पेट, पीठ, नाभि, ललाट, नासिका. ठोंडी, बस्ती, नाड, ए अवयव एक एक हैं । तथा कान, नेत्र, भौंह, कंधे, गाल, कांख, स्तन, अंडकोश, कूख, स्फिक् (कूले) गोडे, हाथ, जांघ, होठ, सृक्कणी कहिये होठोकेप्रांत इत्यादि अवयव दो दो हैं । बीस उंगली, स्रोतस् आगे कहेंगे, यह प्रत्यंग विभाग कहा ।

त्वगादिकोंकीसंख्या ।

तस्यपुनः संख्यानं त्वचः कलाधातवोमलायकृत्प्लीहा नौफुप्फुसउन्दुकोहृदयामी आशयाअंत्राणिवृक्कोस्रोतां सिकण्डराजालानिकूर्चारज्जवः सेवन्यःसंघातासीमंती अस्थीनिसन्धयः स्नायवः पेश्योमर्माणिशिराधमन्यो योगवहानिस्रोतांसिच ।

अर्थ-उस गर्भके अंग प्रत्यंग इन करके जो शरीर बना उन अंगोंको कहतेहैं,

त्वचा, कला, धातु, मल, दोष, कलेजा, प्लीहा, फुप्फुस, उंदुक, आशय आंतडी, वृक्क, स्रोतस, कंडरा, जाल, कूर्चा, रज्जू, सेवनी, संघात, सीमंती हड्डी, संधी, स्नायु, पेशी, मर्म, शिरा, धमनी तथा योगवहस्रोतस् कहिये धमनी, प्राण, उदक, अन्न, इनको वहने वाली स्रोतस्, ये २९ उनतीस अंग जानने, अब इनको विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं

रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफामापित्तेपक्वेति ।

अर्थ–आशयोंका वर्णन चतुर्थाध्यायमें कर आएहे इसीसे इसजगे अर्थ नहीं लिखा है.

स्रोतसोंकोकहतेहैं ।

स्रोतांसिनासिकेकर्णौनेत्रेपाय्वास्यमेहनम् ।
स्तनौरक्तपथश्चेतिनारीणामधिकंत्रयम् ॥

अर्थ–कान, नेत्र, मुख, नाक, गुदा, मेढ्र, इस प्रकार बहिर्मुख स्रोतस् (छिद्र) ए स्त्री पुरुषोंके समान हे।तथापि स्त्रियोंके बहिर्मुख स्रोतस तीन अधिकहे; दो स्तनसंबंधी तथा तीसरा योनिसंबंधी आर्त्तवका वहने वाला स्रोतस् हे। स्मरातपत्र योनिके तीसरे आवर्त्तमें है. इसका प्रमाण लिखते हे.

विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्याशिरस्तलमाश्रितम् ।
सकलकामशिरामुखचुंबितंविमृदितंमदनातपवारणम् ॥

अर्थ–बडेपीपलके पत्तेकी सी आकृतीवाले अवयववाली जो योनि उसके मस्तकके आश्रय करके रहती हुई सर्वकामवाहिनी नाडी उनके मुखकरके चुंबित तथा मर्दित ऐसा मदनका छत्र है

मतान्तरम् ।

तत्रकेचिदाहुः-शिराधमनीस्रोतसामविभागः शिराविकाराएव ।
धमन्यः स्रोतांसिचेति । तत्तुनसम्यक् अन्यान्येवहिस्रोतांसि ।
धमन्यश्चशिराभ्यःकस्माद्व्यंजनान्यत्वान्मूलसंनियमात् ।
कर्मवैशेष्यादागमाच्च केवलंतु परस्परसन्निकर्षात्सदृशागमकर्म
त्वात्सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभागइवकर्मसुभवति ।

अर्थ–कोई कोई आचार्य कहते हे कि, शिरा, धमनी, और स्रोतस् इनमें कुछ भेद नहीं है, केवल धमनी तथा स्रोतस् शिराके रूपांतर मात्रहे। यह वार्त्ता वि-

शेष युक्तिसंगत नहींहै स्रोतस और धमनी शिरासें पृथक्‌है । रूपभेद, मूलनिवेश-भेद और कार्यकारित्वभेद हेतु इन तीनोंके भिन्न भिन्न हैं केवल परस्पर सन्निकर्ष, सदृशकर्मकारित्व, सूक्ष्मभेदाश्रयत्व उसी प्रकार शास्त्रमें सदृशरूपवर्णनहेतु इन्होंका अभिन्न कहना अनुभूतसा होता है । वास्तवसें विचारकर देखो तो इन प्रत्येकके कार्य अपने अपने अधीन हैं ।

स्रोतांसिसन्तिदेहेऽस्मिन्धमन्यश्चशिरायथा । तानिलसीकागर्भाणिकर्मकुर्वन्तिदैहिकम् ॥ मस्तिष्केनाभिरज्जौचनेत्रयोःपृष्ठमज्जनि । नखेषुकण्डरायांचनसन्त्यस्थन्युपास्थनि ॥ स्रोतसांनिखिलानांच परस्परसमागमात् । महास्रोतोद्वयंजातमधस्ताज्जत्रुणोश्चतत् ॥ शिरासङ्गमसंप्राप्तंस्वरसंतत्रानिक्षिपेत् । सरसःशैररक्तेनहृत्कोष्ठंच समागतः ॥ शोणितीभूयव्रजतिदेहमेतान्निरन्तरम् । सरसोदेहजंपूर्वं पश्चाच्छोणिततांव्रजेत्॥ धराभ्यस्तान्याददेतपदार्थान्देहपोषकान्। ग्रहण्यादिभ्यआदायरसमाहारजंतथा ॥ शिरामार्गेणहृदयमानयन्तिनिरंतरम् । बलंपुष्टिंचलावण्यंदेहस्तान्नित्यमाव्रजेत् ॥

अर्थ–इसदेहमें स्रोतस् समूह, धमनी और शिराके सदृश एक प्रकारकी नाडी-विशेषको कहते हैं । इनके भीतर एक प्रकार का जलसंबंधी पदार्थ रहता है; उसको लसीका कहते हैं; ये देहको सर्व अंशमें रहकर दैहिक कार्योंका निर्वाह करैहैं, मस्तिष्क, नाभिरज्जु, नेत्र, पीठके बांसकी मज्जा, नख, कंडरा, हड्डी तथा उपास्थि इन सबजगे स्रोतोनाडी नहीं हैं ।

जितने स्रोत हैं सबके मिलनेसें दो बडे स्रोत होगए हैं । ए दोनों महास्रोत जत्रुके नीचे शिरासंगम (जिसजगे शिराओंके गण मिलकर महाशिरारूपको प्राप्त हुए हैं) में मिलकर तहां आत्मगर्भस्थ रसको देते हैं, यह रस शिरामें स्थितरक्तके साथ मिलकर हृत्कोष्ठमें आता है । उसजगे रुधिरहोकर निरंतर इसदेहमें विचरे हैं, यहरस प्रथमदेहसे उत्पन्न होकर फिर रुधिरके भावको प्राप्त होता है.

स्रोतोनाडीगण धमनियोंमें रहने वाले रुधिरसें, देहपोषणोपयोगी पदार्थ को आकर्षण करके देहको बढाते हैं और येही स्रोतोनाडीगण, ग्रहणी (क्षुद्रांत्रके अंश-विशेष) आदिसें आहारजन्य रसको आकर्षण करके शिरामार्ग होकर हृदयमें प्राप्त करती है, इसीसें देहमें बल, पुष्टता, और लावण्यता की वृद्धि होती है ।

कण्डरा ।

षोडशकण्डरास्तासांचतस्रःपादयोस्तावन्त्योहस्तग्रीवापृष्ठेषु ।

अर्थ-कंडरा (मोटेस्नायु) सोलहहैं. तिनमें चारपैरोंमें है, चार हाथोंमें, चार नाडमें और चार पीठमें हैं.

अब हस्तादिगत कंडराओंके अग्रिमभागको कहते हैं ।

तत्रहस्तपादगतानांकण्डराणांनखाग्रप्ररोहाः ।
ग्रीवाहृदयनिबंधनीनामधोभागगतानामग्रे
बिंबंश्रोण्यासहपृष्ठनिश्चलत्वंधंकुर्वतीनां
पृष्ठजानांचतसृणामधोभागगतानांबिंबंमण्डलं
आपान्नितम्बस्यमूर्धोरुवक्षोक्षपिण्डादीनांच ।

अर्थ-तिन कंडराओंमें हाथपैरमें गएहुए कंडरा उनके अग्रभाग नखाग्रहैं । तथा ग्रीवा और हृदय इनका बंधन करके अधोभागमें जानेवाले जो स्नायु हैं, उनके अग्रभागमें बिंब कहिये मंडल है । तथा श्रोणी कहिये कमर उसके साथ पृष्ठका बंधन करके अधोभागमें जाने वाली जो स्नायु उन्होंके अग्र उदक और कमर ए हैं, उसी प्रकार, मस्तक, उर वक्षस्थल तथा अक्षिपिंड इनके मंडल तथा आदिशब्दकरके स्तनपिंडोंके मंडल ए कंडरा (बडीस्नायु) ओंके अग्रिमभाग जानने ।

अथजालानि ।

मांसशिरास्नाय्वस्थिजालानिप्रत्येकं चत्वारिचत्वा
रितानिमणिबन्धगुल्फसंश्रितानिपरस्परानिबद्धानि
परस्परसंश्लिष्टानिपरस्परगवाक्षितानिचेतियैर्गवा
क्षितमिदंशरीरम् ।

अर्थ-मांस, शिरा, स्नायु और हड्डी इनके जाल कहिये झरोखा के समान छिद्रयुक्तपदार्थ वे एक एक के चारचार हैं । उन्होंमें मांसके चार जाल एकएकमणिबंध (पहुँचों) में है, और एकएकगुल्फ (टकना) में है; उसीप्रकार शिराके, स्नायुके और हड्डियोंके जाल जानने चाहिये. इन चारोंप्रकारके चारचार जालोंसें यह देहगवाक्षित (झरोखोंकेसदृशहोरहा) है । ए चारों प्रकारके जाले परस्पर बँधेहुए परस्पर मिलेहुए हैं । तात्पर्य यह है कि, मणिबंधमें एक मांसजाल, तथा एक शिराजाल, तथा एक स्नायुजाल और एक अस्थिजाल ऐसे चार जाल हैं । इसी प्रकार दूसरे मणिबंधमें और गुल्फमें जानो ।

कूर्च कहते हैं ।

षट्कूर्चास्तेहस्तपादग्रीवामेढ्रेषु ।

अर्थ-इसजगे कूर्चशब्द करके कूर्चाके समान तथा लाल, तेजस्वी पदार्थ, मांस, शिरा, स्नायु और हड्डियोंके जालकके विस्तारकरके प्रगटहुए जानने, तिनमें हाथ तथा पैर, इनमें चार और एक ग्रीवामें तथा एक शिश्नेंद्री में ऐसे छः हैं। कुशापुंजसदृश पदार्थको कूर्चा कहते हैं ।

रज्जू (बंधनी ।)

महत्योमांसरज्जवश्चतस्रः पृष्ठवंशेउभयतः पेशी
बन्धनार्थंबाह्येआभ्यन्तरेचद्वेद्वे ।

अर्थ-बडे मांसमय रस्सीसदृश चार पदार्थ हैं. वे पीठके वांसके दोनों तरफ हैं. इन्होंका कार्य पेशियों का बन्धन करना हैं, तिनमें दो भीतरके अंग में हैं, तथा दो बाहर हैं ।

अस्थ्नां संयोजिकाः शुभ्राः सौत्रिकारज्जवोमताः ।
काश्चित्स्थूलाःप्रशस्ताश्चदीर्घाबहुविधास्तथा ॥
मध्यकायेतथाबाह्वोः सक्थ्नोरेवचताः स्थिताः ।
अस्थीन्यभिनिबद्धानिस्वस्थानान्नचलंतिहि ॥

अर्थ-हड्डियों में परस्पर संयोजक, सपेदवर्ण, सूत्रमय पदार्थविशेष को रज्जू कहते हैं । कोई कोई रज्जू स्थूल तथा प्रशस्त और कोई दीर्घ इत्यादि अनेक प्रकारके हैं । मध्यदेह, दोनों भुजा और सक्थिद्वयों में सब रज्जू अवस्थित हैं । इन रज्जूओंसे बँधीहुई हड्डी संपूर्ण अपने अपने स्थानसे चलायमान नहीं होती है ।

पादाङ्गुलीनांपर्वास्थ्नांयोजिन्यस्ताः परस्परम् । अङ्गुल्यस्थ्नां तथासन्तिप्रपदास्थ्नांचयोजिकाः ॥ गुल्फास्थ्नांप्रपदास्थ्नांच गुल्फास्थ्नां चपरस्परम् । गुल्फसन्धेश्चजंघास्न्थोजानुसन्धेस्त तः परम् ॥ तथावंक्षणसन्धेश्चरज्जवोविविधामताः ।

अर्थ-पैरकी उंगलियों के सब पोरुओं के मिलानेवाली अंगुल्यास्थि और प्रपदास्थि आदिके मिलानेवाली प्रपदास्थि और गुल्फास्थि आदिकी योजक, गुल्फा-

स्थि आदिकी परस्पर संयोजक, गुल्फसंधिकी संयोजक जंघास्थि दोनोंकी परस्पर मिलाने वाली, जानुसंधिके मिलाने वाली और वंक्षणसंधिके संयोजक रज्जु-समूह एक एक सक्थी में रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो उंगली की हड्डी के बंधन करनेवाली है वोही बंधनी पैरकी हड्डियों के बंधनकर्त्ता जाननी, अर्थात् अंगुलीकी हड्डियों के साथ पैरकी हड्डियोंको मिलाती है; इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना।

करांगुलीनांपर्वास्थ्नांसंयोजिन्यापरस्परम् । अंगुल्यस्थ्नांतथा संतिकरभास्थ्नांचयोजिकाः ॥ तदस्थ्नांमणिबन्धास्थ्नांतेषांचापि परस्परम् । मणिबंधस्यसंधेश्चप्रकोष्ठास्थ्नश्चयोजिकाः । कफोणेः स्कन्धसंधेश्चतथाप्यंसस्यरज्जवः । अंसजत्वस्थियोजिन्यउरोऽस्थिजत्रुयोजिकाः ॥

अर्थ–हाथकी उंगलियों के सब पोरुओं के परस्पर योजक अंगुल्यास्थि, तथा करभास्थि आदिके मिलाने वाली, करभास्थि और मणिबंधास्थि आदिकी संयोजक और मणिबंध संधियोंकी योजक, प्रकोष्ठास्थिद्वयकी परस्पर संयोजक, कफोणि (कुहनी) की संधियोंके मिलानेवाली और कंधेकी संधियोंको मिलानेवाली, अंसास्थियोजक अंसास्थि और जत्रू (हसली) के हड्डियोंके योजक इसीप्रकार जत्रूकी हड्डी और उरूकी हड्डीके मिलाने वाले रज्जूसमूह एक एक भुजामें है.

रज्जवोमध्यकायस्यपर्शुकोरोऽस्थियोजिकाः।त्रयाणामपिभिन्नानांमुरोऽस्थ्नःपरिमेलिकाः॥कसेरुकापर्शुकानांकशेरूणांपरस्परम् । शिरसःपश्चिमास्थ्नश्चतथाप्यूर्ध्वगयोर्द्वयोः ॥ कशेर्वोर्हनुकूल्यस्यपृष्ठवस्त्यास्थियोजिकाः । संयोजिन्यश्चवस्त्यस्थ्नांपरस्परमुदीरिताः ।

अर्थ–मध्यदेहमें नीचेलिखे सबरज्जू है। जैसे ऊपर स्थित सातपांशुओंके सहित वक्षोस्थि के योजक, वक्षोस्थिके खंडत्रयके योजक, (एक वक्षस्थलकी हड्डी तीन जगे विभक्त है) कशेरुका (पिछाडीका बांस) और पर्शुका आदिके मिलानेवाले कशेरुकादिकोंके परस्पर मिलाने वाले, करोटी (मस्तककीहड्डी) के पिछाडीकी हड्डीसहित ऊर्ध्वस्थकशेरुका दोनों द्वयके संयोजक, हन्वास्थिके योजक, पृष्ठवंशास्थि तथा वस्तीकी हड्डी, आदिके मिलानेवाले तथा सर्व वस्तीकी हड्डीयोंके परस्पर मिलाने वाले रज्जूसमूह मध्यदेहमें है. रज्जुओंको बंधनीभी कहते है।

सेविन्यः ।

सप्तसेविन्यःशिरसिविभक्ताःपंचजिह्वाशे
फसोरेकैकाताः परिहर्त्तव्याःशस्त्रेण ।

अर्थ-सेवनी सातहैं, तिनमें मस्तक के विषे पृथक् पृथक् पांच और जीभ तथा शिश्न इनमें एक एक ऐसे सातहैं, इनको शस्त्रकरके तोडने चाहिये. सुईके सदृश मिलीहुई जगहको सेवनी कहतेहैं ।

संघाताः ।

चतुर्दशास्थांसंघातास्तेषांत्रयोगुल्फजानुवंक्षणेषु ।
एतेनइतरसक्थिबाहूचव्याख्यातो । त्रिकशिरसोरेकैकः ।

अर्थ-हड्डियोंके समूह चोदश हैं, तिनमें पैरोंके टकना, जानु और वंक्षण (ऊरूकीसंधि) इनस्थानों में तीन, इसीप्रकार दूसरे पैरमें तीन तथा दोनों हाथोंमें तीन तीन और एक त्रिक (बाहु और मस्तककी संधीमें) और एक मस्तकमें ऐसे १४ संघात हैं ।

मतान्तरे ।

येह्युक्ताःसंघातास्तेखल्वष्टादशैकेषाम् ।

अर्थ-किसी किसी आचार्य के मतमें पूर्वोक्त संघात १८ हैं । सो इसप्रकारहैं, जैसे कि पूर्वोक्त १४ श्रोणिकांडके ऊपर एक; वक्षस्थलमें उदर और उर इनकी संधीमें एक, और अंसकूट के ऊपर एक, ऐसे हड्डीके समूह, अठार हैं । यद्यपि श्रोणी कांडभाग अर्थात् कमरमें त्रिकस्थान प्रसिद्धहैं तथापि नाडकी जडको भी त्रिक कहतेहैं क्योंकि इसजगे दोनों भुजा और ग्रीवा इन तीनोंका समूह एकत्रित हुआहै.

अथास्थ्नः स्वरूपमाह ।

मेदोयस्त्वाग्निनापक्वंवायुनाचातिशोषितम् ।
तदस्थिसंज्ञांलभतेससारःसर्वविग्रहे ॥

अर्थ-अब प्रथम हड्डियोंका स्वरूप कहतेहैं. जैसेकि मेदा अपनी अग्निसे पक होती है और पवन उसको अत्यंत शोषण करेहैं तब वोही मेद अस्थि (हड्डी) कहलातीहैं वह हड्डी इस देहमें सारभूतहै ।

तहां कहतेहैं कि, शरीर दो प्रकार का है, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, तिनमें मृत्तिका, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचभूतोंसे निर्मित और चक्षुरादि इन्द्रियोंसे ग्राह्य देहको स्थूलदेह कहते हैं। और पंचप्राण, मन, बुद्धि और दशइन्द्री-

करके समन्वित अपंचभूतसे प्रगट देहको सूक्ष्म देह कहतेहैं। परंतु इस आयुर्वेद शास्त्रमें मनुष्यके स्थूल देहकाही वर्णनहै, देहकी प्रधान उपादान कारण हड्डीहैं, अत एव अब उनको वर्णन करतेहैं।

शरीरधारणविषयमेंहड्डियोंकोप्रधानताहै।

अभ्यन्तरगतैःसारैर्यथातिष्ठंतिभूरुहाः। अस्थिसारैस्तथा देहाध्रियन्तेदेहिनांध्रुवम्॥ तस्माच्चिरविनष्टेषुत्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्। अस्थीनिनविनश्यन्तिसाराण्येतानिदेहिनाम्॥ मांसान्यत्रनिबद्धानिकलाभिश्छादितानिच। अस्थीन्या लम्बनंकृत्वानशीर्यंतेपतंतिवा॥

अर्थ-जैसे वृक्ष भीतर रहनेवाले सारके आश्रयसे खडे रहते हैं, उसी प्रकार देहमें देहके सारभूत हड्डियोंके द्वारा यह मनुष्य का देह खडा हुआहै। त्वचा और मांस आदिके नष्टहोनेपर हड्डियों का नाश नहीं होताहै। ये देहधारियोंके देहमें सारभूतहैं, कलाच्छादित मांससमूहसे हड्डी जहांकी तहां अवस्थितहैं और देहके बंधन अर्थात् नाडी, नस, कंडरा, बंधनी और स्नायु आदिसे बंधीहुईहैं. पूर्वोक्त पदार्थ हड्डियोंका आलंबन करेहुए हैं, इसीसे ये हड्डी नतो बिखरती हैं और न गिरतीहैं।

कंकाल।

त्वङ्मांसादिरहितः स्वस्थानस्थितः शरीरास्थिचयः कङ्कालसंज्ञोभवति। सचकङ्कालः षडङ्गोभवति यथा शाखाश्चतस्रोमध्यंपंचमं षष्ठंशिरइति।

अर्थ-त्वचा मांस आदि करके रहित, स्वस्थान स्थित, देहकी हड्डियोंकेसमूह-को कंकाल ऐसा कहते हैं। अर्थात् केवल हड्डीमात्रवाले देहको कंकाल जानना। वह कंकाल छः अंगोंमें विभक्त हैं। जैसे चार हाथ पैर, एक मध्यभाग, और एक मस्तक।

हड्डियोंकाविशेषवर्णन।

सर्वाण्येवास्थीनिबहिरन्तः समन्तात्कलावृतानिसगर्भाणिच तेषांगर्भाः पीताभस्नेहविशेषेणपूर्णाः समज्जेत्यभिधीयते। अस्थ्नांसन्धिषुकलानदृश्यते तेहितनुभिस्तरुणास्थिभिरावृताः सन्ति। अस्थिगात्राणि कानिचिदवट्टमन्तिकानिचिदुत्सेधवन्तिच।

अर्थ-संपूर्ण हड्डी बाहर भीतर से कला अर्थात् झिल्ली द्वारा ढकी हुईहैं । और हड्डियों के भीतर पीले रंगकी चिकनाई भरीहुई है. उसीको मज्जा ऐसे कहते हैं । हड्डीकी संधियोंमें झिल्ली नहीं है । परन्तु संधिस्थान पतली उपास्थियों से ढकाहुआ है । कोई हड्डी गढ्ढेके सदृश नीची है । और कोई हड्डी ऊंची प्रतीत होती है ।

आस्थियोंके पांचप्रकार ।

तान्यस्थीनिपंचविधानिभवन्ति । तद्यथा । अनुकपालनलकासम गात्ररुचकसंज्ञकानि । कैश्चित्कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञा निपंचविधान्युच्यन्तेतत्रवलयादीनामण्वादिष्वन्तर्भावइत्यभेदः सुकोमलास्थीनितरुणसंज्ञासुपास्थिसंज्ञांवालभन्ते ।

अर्थ-ए संपूर्ण हड्डी पांच भागोंमें विभक्त हैं; जैसे अण्वस्थि, कपालास्थि, नलकास्थि, असमगात्रास्थि और रुचकास्थि. कोई कोई आचार्य कपाल, रुचक, तरुण, वलय और नलकसंज्ञक पांच प्रकार हड्डीके कहते हैं, तिनमें वलयादि अस्थि अण्वस्थि अर्थात् क्षुद्रास्थिके अन्तरगत मानते हैं, सुतरां उभयमतोंमें विशेष भेद नहीं है । और अतिकोमल हड्डियों को तरुणास्थि अथवा उपास्थि कहते हैं ।

अवइनपंचविधअस्थियोंका पृथक् २ वर्णन.

अन्वस्थीनि ।

देहस्यदृढान्याचलान्यङ्गानिअन्वस्थिभिर्विनिर्मिता-
निमणिवन्धगुल्फादिषुतान्येवस्थितानि ।

अर्थ-शरीरके मध्यमें दृढ और अचल अंग सब अण्वस्थि समूहद्वारा बने हैं। मणिबंध तथा गुल्फ आदिमें यही अण्वस्थि हैं ।

कपालास्थीनि ।

देहस्यास्थिमयाविवराणिकपालास्थिभिर्निर्मितानितानिप्रशस्ता कृतीनि । करोटिवस्त्याद्यङ्गेषुकपालास्थीनिसन्ति ।

अर्थ-देहके अस्थिमय विवर (गढ्ढे) समग्र कपालास्थि द्वारा बनेहुए हैं । ये सुन्दर आकृतिवाली है । करोटि (मस्तक की हड्डी) और बस्तीआदि अंगोंमें कपालास्थि हैं ।

नलकास्थीनि ।

नलकास्थीनिनलवत्सुपिराणिसुदीर्घाणिचतानिशाखा स्ववस्थितानि ।

अर्थ–नलकास्थि समूह नलकेसदृश छिद्रवाले और लंबेहैं । ये भुजा और पैरोंमें विद्यमान हैं ।

असमगात्रास्थीनि ।

असमगात्राणामस्थ्नांनाम्नैवाकृतिर्व्याख्याता कशेरुकाशंखास्थिप्रभृतीन्यसमगात्राणि ॥

अर्थ–असमगात्रास्थियोंकी आकृति नामानुसार कही है अर्थात् इनका कोई अंश लंबा, कोई अंश छोटा, कोई मोटा, कोई अंश पतला है । कशेरुका(पीठकावांस) शंख (कनपटी) आदि की हड्डी असमगात्रास्थि कहलाती हैं ।

रुचकानि ।

दशनारुचकानिस्युश्चतुर्धातेभवन्तिहि । छेदनाः शौवनाद्व्यग्राः पेषणास्तेतुसंख्यया ॥ अष्टौचत्वारश्चाष्टौहिततस्तुद्वादशस्मृताः दन्तानांपतनंजन्मपुनः पातेत्वसंभवः ॥

अर्थ–सब दांतोंको रुचक कहतेहैं । ए चारप्रकारकेहैं, जैसे कि छेदन, शौवन, द्व्यग्र और पेषण. छेदन दांतऊपरकी पंक्तिमें ४ और नीचेकी पंक्तिमें ४ हैं । सौवन दांतऊपर २ और नीचे २ हैं । द्व्यग्रदांतऊपर ४ और नीचे ४ हैं । तथा पेषण दांतऊपर ६ और नीचे ६ हैं. । सबमिलकर ३२ हैं । बाल्य अवस्थामें प्रगट हुए दांत यथाकालमें गिरजातेहैं. । फिर दूसरे स्थायी (ठहरनेवाले) दांत प्रगट होतेहैं । एकस्थायी दांतोंके गिरनेके पश्चात् फिर दांत नहीं आतेहैं ।

यूनानी वैद्य कहते हैं, कि दांत हड्डीकी जातिमें से हैं. क्यों कि कठोर. और वेहरकतहैं । इसीसें इनके काटनेसे कष्ट नहीं होता. परंतु किसी २ की यह संमति है कि ये दांत पट्ठकी जातिमेंसेहैं । क्योंकि इनमें शरदी गरमी असर करती है ।

आगेके ४ दांत छेदनकहातेहैं, उनके और पास जो दांत हैं उनको सौवन (खूंटा) कहते हैं । और इनके पासवाले दांतोंको द्व्यग्र अर्थात् इनके ऊपरके दोभाग उठेहुएहैं इसीसेइनको द्व्यग्रकहतेहैं । और इनकेपास जो चारदांतहैं उनको पेषण अर्थात् डाढाकहतेहैं । और संस्कृतमें इनको दंष्ट्रा कहतेहैं. । फारसीमें, सनाया, रवाईतान, नावान, और अजरासकहतेहैं. सनाया और रवाई तानकाटनेकेवास्तेहैं, और नावानवास्ते चवानेकेहैं, और अजरासवास्तेदवानेकेहैं, और दांतोंकी जड़की बहुत बारीकहै वेजाबडेकेछिद्रोंमें गडीहुईहै । और प्रत्येकछिद्रके चारोंतरफ गोल मंडल है, कि दांतोंपर टकेरहनेसे टदरहतेहैं, उनको मसूडे कहतेहैं ।

अथास्थिसंख्या ।

त्रिषष्टान्यस्थिशतानिवेदवादिनोभाषन्ते ।

अर्थ–अस्थि (हड्डी) तीनसौसाठ ३६० हैं ऐसे आयुर्वेदवादीकहतेहैं ।

शल्यतंत्रे त्रीण्येवास्थिशतानि । तेषांविंशमाधिकंशतंशाखासु । सप्तदशोत्तरंश्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरः सुग्रीवांप्रत्यूर्ध्वंत्रिषष्टिः ।

अर्थ–शल्यतंत्रमेंअस्थी ३०० तीनसौ कहीहैं, तिनमें १२० हाथपैरोंमें तथा ११७ कमरपार्श्व (पसवाडे) उदर उर इन्होंमें, और नाडसैलेकर ऊपरके भागमें ६३ ऐसे सबहड्डी ३०० हुई ।

शाखागतहड्डियोंकोकहते हैं ।

एकैकस्यांपादांगुल्यांत्रीणितानिपंचदश तलगुल्फकूर्चसंश्रिता निदश पार्ष्णावेकंजंघायांद्वेजानुन्येकमूरावेति । त्रिंशदेवमेक स्मिन् सक्थीनिभवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहुचव्याख्यातौ ।

अर्थ–पैरकी एक एक उंगली में तीन तीन हड्डीहैं, सबमिलकर १५ हुई, पादतल (तरुआ) गुल्फ (टकना) कूर्चक (पैरकापिछलाभाग) इनमें १० हैं, पार्ष्णी (एडी) में १ जंघा (पीडरी) में २ जानु (घोटू) में १ और ऊरू (जाँघ) में १ हड्डीहैं ऐसेएकसक्थी (पैर) में ३० हड्डी हुई और दोनों पैरोंकी मिलानेसे ६० होती है, और दोनोंहाथोंकीभी ६० होतीहैं, ऐसे दोनोंहाथपैरोंकीसंख्या-मिलानेसे १२० होती हैं ।

श्रोण्यादिगतहड्डियोंकोकहतेहैं ।

श्रोण्यांपंचतेषांभगगुदनितंबेषुचत्वारित्रिकसंश्रित मेकंपार्श्वेषट्त्रिंशदेकस्मिन्द्वितीयेत्येवंपृष्ठेत्रिंशदष्टा वुरसिद्वेअक्षकसंज्ञे ।

अर्थ–कमरमें ५ हड्डीहैं- (तिनमेंभगयौरलिंगमें १ नितंब अर्थात् कूलेन्में २ गुदामें १ और त्रिकस्थानमें १ हड्डीहैं ऐसे ५ हुई) एकपार्श्व (पांसूअथवाकूख) में ३६ उसीप्रकार दूसरीपांसूमें ३६ और पीठमें ३० और उर (वक्षस्थल) में ८ और अक्षकसंज्ञककी २ हड्डीहैं, ऐसे कुलश्रोण्यादिहड्डीयोंकी संख्या मिलानेसे ११७ होतीहै ।

ग्रीवोर्ध्वगतहड्डियोंकोकहतेहैं।

ग्रीवायांनवकण्ठनाड्यांचत्वारिद्वेहनोः दन्तानां द्वात्रिंशत्नासायांत्रीणिएकंतालुनिगण्डकर्णशंखे ष्वेकैकंपट्शिरसि।

अर्थ–ग्रीवा (नाड) में ९ कंठकी नाडी में ४ ठोडी में २, दंतसंबन्धी हड्डी ३२ नाकमें ३ तालुओं में १ गालों में २, कानों में २, कनपटीनमें २ और मस्तकमें ६ हड्डी हैं ऐसे सब मिलकर ६३ त्रेसठ हड्डी हैं।

मतांतरसेहड्डियोंकीसंख्या.

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांत्रीणित्रीणिअन्यत्राङ्गुष्ठात् अङ्गुष्ठेद्वे तानिचतुर्दश प्रपदेपंचतान्यग्रतोऽङ्गुलीनांमूलास्थिखण्डैः पंचभिर्मिलितानि । तेषांकतिपयानिगुल्फसन्धिपर्यन्तंवि स्तृतानि गुल्फेसप्त। जंघायांद्वेजानुन्येकम्। एकमूराविति। त्रिंशदेवमेकास्मिन्सक्थ्निभवन्ति द्वयोः सक्थ्नोरुपरिवास्ति मुभयतोद्वेश्रोण्यस्थिनीस्तः।अनयोरग्रभागावोपास्थिकास्थि संज्ञांलभेते एतेनेतरसक्थिव्याख्यातम्।

अर्थ–अंगूठे को त्यागकर अन्य चारउंगलियोंमें तीन तीन हड्डीहैं, और अंगूठेमें२ हड्डी हैं, ऐसे पांचोउंगलियों में १४ हुई, पैरमें ५ हड्डी हैं। इन प्रत्येकके अग्रभाग यथाक्रम पांचोउंगलियोंके मूल पर्वास्थियोंसे मिलेहुएहैं। और ये कितनीएक गुल्फ संधियों से मिलेहुए हैं।

गुल्फ (टकना)में ७ हड्डी हैं,जंघा (पींडली) में २ जानू (घोटू) में १ ऊरू (जांघ) में १ हड्डीहैं, ऐसे प्रत्येक पैरमें ३० हड्डीहैं। दोनों पैरोंके ऊपर बस्तीके दोनों पार्श्वों में एक एक श्रोणास्थि है। इन दोनोंहड्डियों के अग्रभागको उपास्थिकास्थि अर्थात् मेढू वा योनिसंपृक्तअस्थि कहते हैं। श्रोणास्थि मिलाकर गणना करनेसे प्रत्येक पैरों में ३१ हड्डी होती हैं।

ऊर्ध्वशाखहड्डीयोंकीसंख्या।

पादाङ्गुलिवत्कराङ्गुलिषुचतुर्दश । प्रपदवत्करभेपंच मणिबन्धे अष्टौ।प्रकोष्ठे द्वे प्रगण्डेएकम्।त्रिंशदेवमेकास्मिन्बाहावस्थीनिभव

न्ति । प्रगण्डास्थ्न्युपरितएकमंसास्थि । अंसास्थितउरोऽस्थि पर्यंतंविस्तृतंजत्र्वस्थि । एतेनेतरबाहुर्व्याख्यातः ॥

अर्थ-पैरकी उंगलियों के सदृश हाथकी भी पांचों उंगलियोंमें १४ हड्डी हैं, और पैरके सदृश करभ (हथेली) में ५ हड्डी हैं, मणिबंध (पहुंचे) में ८ हड्डी हैं, प्रकोष्ठ (कलाई) में २ प्रगंड (बाजू) में १ हड्डी है, ऐसे प्रत्येक भुजामें ३० हड्डीहैं, प्रगंडास्थिके ऊपर १ अंसास्थि (कंधेकी हड्डी) है अंसास्थिसे लेकर छातीकी हड्डी पर्यंत वक्षस्थलके ऊपर और सन्मुख भागमें एक एक जत्र्वस्थि है । (कंधेकी संधिको जत्रु कहते हैं) अंसास्थि और जत्र्वस्थिको मिलाकर गणना करनेसे एक एक भुजामें ३२ बत्तीस हड्डी होती हैं ।

उरोस्थ्येकमुभयतोजत्रुसंयुतंसत्क्रमेणोदराभिमुख मागतम् निम्नोऽन्तोऽस्याङ्गुल्यादिभिरनुभूयते ।

अर्थ-उरोस्थि अर्थात् वक्षोस्थि १ है, यह दोनों पसवाडेके दोनों जत्रु (कंधेकी संधियों) से मिलेहुये अस्थि क्रमसे उदराभिमुख होकर नीचेको आई है, इन्होंके नीचेकाभाग उंगली आदिद्वारा करके अनुभव होता है । यह उपास्थि अर्थात् उपास्थिसंबंधी हड्डियोंका स्वरूप जानना.

मध्यभागस्थितहड्डियोंकास्वरूप।

पृष्ठवंशःपरस्परमिलितैःकशेरुकाभिधैःषड्विंशत्यास्थिखण्डै र्निर्मितानि सहिग्रीवामारभ्य क्रमेण निम्नाभिमुखोगुह्य पश्चाद्भागपर्यन्तमागतः । निम्नखण्डंत्रिकनाम्नाभिधीयते ।

अर्थ-पिछाडीका वांस परस्पर २६ अस्थि खंडों से निर्मित तथा ग्रीवा (नाड) से लेकर क्रमसे निम्नाभिमुख होकर गुह्य देश (गुदालिंग) के पश्चात् भाग पर्यंत आया है । इन २६ हड्डीके टुकडोंके प्रत्येकका नाम कशेरुका है । सबसे नीचेके कशेरुकाका नाम बहुधा त्रिकास्थि है ।

पार्शुओंकावर्णन।

एकैकस्मिन्पार्श्वेद्वादशपर्शुकाःपृष्ठवंशतोधनुर्वद्वक्रादेहस्य सन्मुखभागमागतास्तासामूर्द्ध्वस्थाःसप्तउरोऽस्थ्नामिलिताः । शेषाःपंचसांमुख्येनकेनाप्यस्थ्नामिलिताः । प्रथमामारभ्य अष्टमपर्शुकांयावत्क्रमेणदैर्घ्यवृद्धिस्ततःक्रमशोहानिः । एकै

कस्याः पर्शुकायाअग्रतएकैकंतरुणास्थिविद्यते तत्रोर्ध्वस्था नांसप्तानां तरुणास्थीनिउरोऽस्थ्नातन्निम्नगतानांतिसृणां त्री णिपरस्परं मिलितानि शेषयोर्द्वयोर्द्वेनकेनापिमिलिते।

अर्थ-शरीरके प्रत्येक पार्श्वमें १२ पर्शुका अर्थात् पंजरास्थिहैं, ये प्रत्येक पर्शुका पीठके बांससें लेकर धनुषके समान टेढीहो देहके सन्मुखभाग पर्यंत चलीगई हैं। तिनमें ऊपर की ७ पर्शुका वक्षस्थलकी हड्डीसें जायकर मिलगई हैं। और नीचे-की ५ पांशु देहकी सन्मुखवाली किसी हड्डीसें नहीं मिली, पहलीसें लेकर अष्टम पर्यंत जो पांशूहे वो क्रमसें लंबी (अर्थात् पहलीसें दूसरी दूसरीसें तीसरी आधि-कलंबीहे.) और उन आठपर्शुकाओंके नीचे जो ४ पर्शुका हैं, वो क्रमसें छोटी होगई है, प्रत्येक पर्शुकाके आगे एक एक तरुणास्थीहे, तिनमें ऊपरकी ७ तरुणास्थि वक्षस्थलकी हड्डीसें मिल रही हैं और उन सातके नीचे जो ३ तरुणास्थी हैं, वो परस्पर मिलरही हैं, बाकी जो २ पर्शुका हे उनकी जो २ तरुणास्थी है वो किसी सें नहीं मिली किंतु पृथक् है।

शिरकीहड्डीयोंकावर्णन।

करोटावष्टास्थीनिसन्तियथा। एकंललाटेद्वयोःपार्श्वयोरूर्ध्वतः परस्परमिलितेद्वेऊर्ध्वशिरःपार्श्वास्थिनी। तन्निम्नतोद्वयोःपार्श्व योर्द्वेशंखास्थिनी। पश्चादेकंपृष्ठवंशस्योर्ध्वकशेरुकोपरिस्थितम्। करोटिमूलेऽग्रतःसौपिरास्थि। बहुभिः सुषिरैर्व्याप्तत्वादस्यसौ पिरसंज्ञता। करोटिमूले पश्चिमाएकम्। एतच्छेषैःसप्तभिर्मिलित म्। एवंकरोटावष्टास्थीनिपूर्यंतेकरोटिगह्वरंमस्तिष्कस्यस्थानम्।

अर्थ-करोटि (मस्तक)में आठ हड्डीहें, जैसे १ ललाटमें, दोनो पार्श्वोंके ऊपर २ ऊर्ध्व शिरःपार्श्वास्थि हे, ए ऊपरसें परस्पर मिल रही हें, उर्ध्वशिरःपार्श्वास्थि दोनोंके नीचे दोनो पार्श्वोंमें २ शंखास्थि (कनपटीकी हड्डी) हे पिछाडी १ हड्डी है, ऊर्ध्व पृष्ठकशेरुकाके ऊपर स्थित १ हड्डीहे, यह करोटिके मूलमें और आगेहें इसको सौपिरास्थि कहतेहें. यह अनेक छिद्रों करके व्याप्त होनेसें इसको सौपिर संज्ञक कहतेहें। करोटिके मूल और पिछाडीमें १ हड्डीहे, यह उक्त ७ हड्डीयोंसें मिली-हुई है. ऐसे मस्तकमें आठ हड्डी गिनी जातीहें, यह करोटि गह्वर मस्तिष्क (घृताकारचरबी) के रहनेका स्थान है।

मुख (चेहरे) का वर्णन

वदनमण्डलेचतुर्दशास्थीनिसन्ति। तथाद्वेनासास्थिनीवदनमण्डलस्योर्ध्वमध्यतोद्वयोः पार्श्वयोः स्थितेपरस्परमिलितेच। नेत्रविवरस्याभ्यन्तरमभितोद्वेतन्वस्थिनी। नासारन्ध्रव्यवधायिन्याभित्तेः पश्चादेकम् नासिकाधइछिद्रतउपरिद्वेउष्णीपास्थिनी। तालुनिद्वे। द्वेगण्डयोः। द्वेऊर्ध्वहन्वास्थिनीवदनमण्डलमुभयतोधिष्ठिते। दन्तवेष्टीयवृहद्गह्वरवतीच। एकमधोहन्वास्थिनिम्नतोवदनस्यावस्थितम्। अत्रैवावाचीदन्तपंक्तिस्तिष्ठति।

अर्थ-वदनमंडल अर्थात् चेहरेमें १४ हड्डी हैं। जैसे नासिकाकी २ हड्डी वदनमंडलके ऊर्ध्वभागमें और मध्यांशमें दोनों पार्श्वोमें स्थित तथा परस्पर मिलीहुईहैं। नेत्रोंकेगड्ढोके भीतर सन्मुखमें २ तन्वस्थि अर्थात् पतली हड्डी है। नासारन्ध्रके व्यवधान कर्त्ता भित्ती (भीत) के पिछाडी १ हड्डी है नासिकाके नीचेके छिद्रोंके ऊपर २ उष्णीषास्थि हैं अर्थात् किरीटके आकार होनेसें इसको उष्णीषास्थिकहतेहैं, तालुएमें २ गालोंमें २ ऊपरकी हन्वस्थि २ है ये मुखमंडलके दोनों पार्श्वोंमें स्थित तथा ऊर्ध्वदंतवेष्टीय वृहत्गह्वर संयुक्त है। नीचे १ हन्वस्थि है, यह मुखमंडलके अधोभागमें स्थितहै। इसमें नीचेकी दंतपंक्तिहैं।

कर्ण।

एकैकस्यकर्णस्याभ्यन्तरतस्त्रीणि त्रीणिक्षुद्रास्थीनिसंति

अर्थ-एकएककानके भीतर तीन तीन क्षुद्रास्थिहैं।

जिह्वा।

जिह्वामूलात्पश्चादेकंक्षुद्रास्थिनकेनाप्यस्न्थासंयुतं। पेशीभिरेवधृतंतिष्ठति॥

अर्थ-जिह्वा मूलके पिछाडी १ क्षुद्रास्थिहै। यह किसी हड्डीसेमिलीहुईनहीं है, यह पेशियोंसें धारण कररक्खीहै।

अङ्गुष्ठमूलादिषुकलायपरिमण्डलानिकतिपयान्यणुमण्डलास्थीनिसन्तिसंख्यातश्चैतानिप्रायशोऽष्टौ।

अर्थ-अंगुष्ठमूल आदिस्थानमें कितनी एक अणुमंडलास्थिहैं, इनकी आकृती प्रायः मटरके समान है. इनकी संख्या सब मिलकर ८ है.।

अतःषट्चत्वारिंशदधिकद्विशतसंख्यास्थिमयोऽयम्।
नरकङ्कालइतिभगवतऔरभ्रस्यमतम् यथा
सक्थ्नोर्द्विषष्टिरस्थीनिबाह्वोस्तुद्व्यधिकानिच।
उरस्येकंपृष्ठवंशेषड्विंशतिरतः परम्।
पर्शुकाः पार्श्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्विंशतिसंमिताः।
अस्थीन्यष्टौकरोटौचवदनेऽथचतुर्दश।
कर्णयोःषट्तथैकंचरसनामूलसंश्रितम्।
अष्टाणुमण्डलानिस्युर्द्वात्रिंशद्दशनामताः।
एतेभ्योऽतिरिक्तान्यपिकतिपयानिक्षुद्रास्थीकङ्कालेदृश्यन्ते।

अर्थ-अतएव २४६ हड्डियोंसे * निर्मित नरकंकाल अर्थात् मनुष्यका अस्थिपंजर है यह महर्षि औरभ्रका मत है, अब उसको स्पष्ट दिखाते हे. जैसे

सक्थि (पैर) दोनों में	६२	करोटि में
भुजादोनों में	६४	मुखमंडलमें
वक्षस्थल में	१	दोनोंकानोंमें
पृष्ठवंश में	२६	जिह्वामूलमें
पार्श्वद्वय में	२४	अनुमंडलास्थि
		दांत

२४६

८ नम्बरके चित्रोंको देखो।

अथहड्डिकी संधियोंको कहते हैं.

उभयोर्मीलनंसन्धिरस्थ्नोःसद्विविधोमतः।श्चेष्टावान्स्थिरसंधिश्चचे ष्टावांश्चपुनर्द्विधा। सम्यक्चेष्टोऽल्पचेष्टश्चतरुणास्थिभिरादिमः

* किसी आचार्यके मतसें हड्डी ३६० हैं. किसीके मतसें २५८ किसीके मतमें २५३ हड्डीमानी हैं. परन्तु सुश्रुतमें जो ३०० हड्डी लिखी हैं, वो असत्य नहीं हैं किंतु बहु-तसी हड्डी अतिनम्र और पतलीनको और आचार्योंने उनकी हड्डीयोंमें नहीं गणना करी. इन सबका मतांतर भेद अर्थात् अंग्रेजी डाक्टर युनानी वैद्य, और अपने संस्कृत-का परस्पर विरोध आगे निघंटमें (अस्थि) शब्दकीव्याख्यामें लिखेंगे

संयुतःकलयास्नेहस्राविण्याचसमावृतः । तरुणास्थिभिःसंलिप्तैः रज्जुभिर्वासमावृतैः । अस्थिप्रान्तैर्वृतोन्त्यश्चस्थिरंतुकेवलास्थिभिः । शाखासुहन्वोःकट्यांचतथाप्यूर्ध्वंगयोर्द्वयोः । कशेर्वाजंत्रुणोश्चैवसम्यक्चेष्टान्तसन्धयः । अल्पचेष्टाःकशेरूणां शेषाणांपरिकीर्तिताः । इतरेसंधयः सर्वेस्थिरामुनिभिरीरिताः ।

अर्थ–दो हड्डियों के परस्पर मिलने के स्थानको संधि कहते हैं । ये संधि दो प्रकारकी हैं, जैसे एक चेष्टावान् संधि, दुसरी स्थिरसंधि, अब कहतेहैं कि चेष्टावान् संधिके भी दो भेद हैं अर्थात् एक विशेष चेष्टावाली और दूसरी अल्पचेष्टावान् संधि है । तिनमें प्रथम अर्थात् विशेष चेष्टावान् संधि उपास्थि (तरुणहड्डी) संयुक्त तथा स्नेहस्रवणशील कला (झिल्ली) ओंसे सर्वत्र लिपटीहुई है । शेष जो सन्धि अर्थात् अल्पचेष्टावान् जो सन्धिहै वो उपास्थियों से लिप्त तथा रज्जू करके लिपटीहुई है, और अस्थिप्रान्तद्वारानिर्मित है । और स्थिरसंधि जो है वो सब केवल परस्पर अस्थिप्रान्तयोगकरके बनी हुईहै, शाखाचतुष्टय (हांथपैर) हनुद्वय (दोनोंजावडे) कमरके ऊपर रहनेवाले कशेरुकाद्वय तथा जत्रु इनमें विशेष चेष्टावाली सन्धिहै, और बाकी कशेरुका आदि समस्तोंमें अल्पचेष्टावान् संधिहै, इनसे भिन्न जितनी संधिहैं. उनको स्थिरसंधि कहते हैं ।

संधियोंकीसंख्या ।

एकैकस्यां पादाङ्गुल्यांत्रयस्त्रयोद्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश जानुगुल्फवंक्षणेष्वेकैक एवं सप्तदशैकस्मिन्सक्थ्नि भवन्ति एतेनेतरसक्थि बाहूच व्याख्यातौ

अर्थ–एक एक पैरकी उंगली में तीन तीन और अंगूठे में दो ऐसे मिलकर १४ तथा घोटू एडी और पेडू इनमें एकएक ऐसे सब मिलकर एक पैरमें १७ संधी हैं, इसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंमें भी सत्रह सत्रह सन्धी जाननी ।

मध्यभागऔरग्रीवाआदिकीसंधि ।

त्रयःकटीकपालेषुचतुर्विंशतिःपृष्ठवंशेतावन्तएवपार्श्वयोरुरस्यष्टौतावन्त एवग्रीवायां त्रयःकण्ठेनाडीषु हृदयक्लोमफुप्फुसेनिबद्धास्त्वष्टादशदंतपरिमिता दंतमूले एकःकाकलके नासायांच द्वौ

वर्त्ममण्डलौनेत्राश्रयो गण्ड कर्ण शंखेष्वेकैकाद्वौ हनुसंधी द्वावु परिष्टाद्भ्रुवोः शंखयोश्च पंच शिरःकपालेष्वेकोमूर्ध्नि।

अर्थ–कमर और कपालास्थिके बीच ३ संधी हैं, पीठके बांसमें २४ संधिहैं, दोनों कूखोंमें २४ तथा उरमें आठ ८ ए सब मिलकर मध्यप्रदेश में ५९ संधीहुई. ग्रीवा में ८ आठ तथा कंठमें ३ तीन, "हृदयक्लोमनिबद्धासुनाडीषु" अर्थात् अन्न और जलके वहनेवाली हृदय और क्लोम इनसे बंधीहुई हैं. इसका स्पष्टार्थ यह है कि, गलनाडी और कंठनाडी इनमें १८ अठारह संधिहैं, दंतमूलसंधि ३२ तथा काकलकमें (गलमणि अर्थात् जिसको घांटिका कहते हैं) उसमें १ एक नासिकाकी हड्डी में तथा नेत्रकोशसंबंधी तरुणास्थिमें २ गाल कान और कनपटी ए तीन जोडोंको मिलाने से ६ ठोडी में २ भौंहके ऊपर अंगमें २ और मस्तकसंबन्धी कपालास्थि में ५ तथा १ मस्तक में मिलकर ५३ सर्व मिलकर २१० संधि होती है।

उक्तसंधियोंकीगणना।

कथितादेहिनांदेहेसन्धयोद्वेशतेदश।
शाखासुतेऽष्टपष्टिश्चकोष्टेत्वेकोनपष्टिकाः।
ग्रीवायाऊर्ध्वदेशेतुत्र्यशीतिस्तेप्रकीर्त्तिताः।

अर्थ–मनुष्योंकी देहमें २१० सन्धिहैं, तिनमें हाथ पैरमें ६८ कोष्ठ अर्थात् मध्यभागमें ५९ और ग्रीवाआदि ऊपरके देशमें ८३ संधी है।

सन्धियोंके आठ भेद कहते हैं.

कोरोदूखलसामुद्गप्रतरातुन्नसेवनीवायसतुण्डमण्डलशंखावर्त्ता। तेषामंगुलिमणिबन्धजानुगुल्फकूर्परेषुकोराःसंधयः। कक्षवंक्षण दशनेषुउदूखलाः। अंसपीठगुदपादनितंबेषुसामुद्गाः। ग्रीवापृष्ठ वंशयोःप्रतराः। शिरःकटिकपालेषुतुन्नसेवनी हन्वोस्तुवायसतुंडाः। कंठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषुमण्डलाः। श्रोत्रशृंगाटकेषुशंखावर्त्ताः।

अर्थ–कोर, उदूखल, सामुद्ग, प्रतर, तुन्नसेवनी, वायसतुंड, मंडल और शंखावर्त्त ये नामवाली संधी आठ प्रकारकी हैं. तिनमें उंगली, पहुंचा, घोंटू, एडी और कोहनी इनमें कोर (गट्टा अथवा कली) के सदृश संधी हैं। कांख, पेडू, दांत, इनमें उलूखल (ओखली) के सदृश संधिहैं. तथा कंधा, पीठ, गुदा, पैर और कूले-

न्मे सामुद्र (संपुट) के आकार संधिहै । ग्रीवा, पीठकावांस इनमें प्रतर (नौका) के सदृश संधिहै । और शिर, कमर, कपाल इनमें तुन्नसेवनी (वर्तनकी संधिके समान अथवा सिलेहुए) के सदृश संधिहै । और ठोडीके दोनोंतरफ जो संधिहै वो वायसतुंड अर्थात् कौआकी चोंचके समानहैं । कंठ, हृदय, नेत्र, और क्लोमनाडियोंमें मंडलाकृति अर्थात् गोलसंधिहै । कान और शृंगाटक (कसेरुक) इनमें शंखके आंटेके समान संधिहैं ।

अस्थ्नांतुसंधयोह्येतेकेवलाःपरिकीर्त्तिताः ।
पेशीस्नायुशिराणांतुसंधिसंख्यानविद्यते ॥

अर्थ—ये जो ऊपरसंधिकही हैं सो ये केवल हड्डीयोंकी संधियोंका वर्णन करा है, बाकीपेशी, स्नायु और शिरा आदि संधियोंकी संख्या नहीं है अर्थात् इनकी संख्या अनंत है.

अथस्नायवः ।

स्नायवःसूत्रवत्सूक्ष्माःशुभ्रानिखिलदेहगाः ॥ कारणानिचेतनानांसदाचैतन्यसाधने ॥ सुखदुःखावबोधेचप्रवृत्तौचानिवर्त्तने ॥ रूपगंधरसस्पर्शशब्दज्ञानेचहेतवः॥निखिलास्ताश्चसंजातामस्तिष्कात्पृष्ठमज्जनः ॥ शिरोमंडलमेवाद्याः शेषाः शेषाङ्गमाश्रिताः॥ तेषुतेपुचभावेषुदेहमाप्तेपुवस्तसाः । कम्पमानाः कम्पयन्तेमस्तुलुङ्गश्चतत्क्षणात् । तस्यविकम्पभेदेनज्ञानभेदोभवेद्बहुः । अतोमस्तिष्कमेवैकोज्ञानहेतुः प्रकीर्त्तितः । करोटिगह्वरान्तस्तद्वसेदाज्यसुपेलवम् । सुशुभ्रंचासमतलमाभिन्नंचद्विधोपरि ॥

अर्थ—सर्वस्नायु सूत्रके सदृश सूक्ष्म और सपेद रंगवाली हैं; तथा ये सर्व देहमें व्याप्त हैं और चेतन (जीवोंके) चैतन्य करनेकी कारण स्वरूप हैं; सुखदुःखज्ञान, कार्यकी प्रवृत्ति और निवृत्ति, तथा रूप, रस, गंध, स्पर्श, और शब्दज्ञानके होनेमें कारणभूत हैं । ये सर्व स्नायु मस्तिष्क तथा पृष्ठवंशकी मज्जासें उत्पन्न हुई हैं, मस्तिष्कसें जो स्नायु प्रगटहुई हैं वो मस्तकमें रहती हैं, और पृष्ठमज्जासें प्रगटस्नायु हाथ, पैर और उदर आदिमें रहती हैं । अनेक प्रकारके भाव देहमें प्राप्त होनेसें त्रसजगे रहनेवाली स्नायुओंके कंपित होनेसें वो स्नायु तत्क्षण मस्तिष्कको कंपाती हैं, उस मस्तिष्कके कांपनेके भेद करके पृथक् पृथक् ज्ञानकी उत्पत्ति होतीहै । इसीसे मस्तिष्कही केवल सर्वज्ञान होनेका हेतुहै । करोटिगह्वरके भीतर मस्तिष्क रहता है,

(सुन्दर शुभ्रवर्ण और घृतकेतुल्य अतीव कोमल पदार्थको मस्तिष्क कहते हैं) यह मस्तिष्क नीचेके भागमें असमतल और ऊपर दो भागोंमें बटाहुआ है। ९ नंबरका चित्र देखो।

नेत्रेरूपवताविम्वपतनान्नेत्रवस्नसाः। भावान्तरंमस्तुलुंगंनयन्तेत द्धिदर्शनम्।पदार्थानांगन्धवतांगन्धाणूनांसमागमात्। नासास्थाः कुर्वतेतद्वत्तद्घ्राणंपरिकीर्त्तितम्। तथारसवतांचाणुसङ्गमाद्रसना श्रिताः। क्रियांतांकुर्वतेतद्धिरसनंचाभिधीयते। शीतोष्णादिगुणव तांद्रव्याणांत्वचिसङ्गमात्। तत्रस्थाः कर्मकुर्वतितादृशंस्पर्शनंहि तत्।परस्पराभिघातेनद्रव्याणामनिलस्तदा।तरङ्गवानभीहन्यात् कर्णातः श्रवणंततः। गत्यादिष्वपिकीर्त्यंतेस्नायवोमुख्यहेतवः। अथकिंवहुनोक्तेनजीवत्वंस्नायुसंभवम्। स्नायुनाशोभवेद्यास्मिन्नङ्गे तत्स्यान्मृतोपमम्। पक्षाघातादिरोगेषुकारणंतद्विधंमतम्।

अर्थ–नेत्रोंमें रूपवान् पदार्थका प्रतिबिंब पडनेसे सर्व नेत्रकी स्नायु मस्तिष्कको भावांतर प्राप्त करती है; उसीको दर्शन अर्थात् देखना कहते हैं। उसी प्रकार गंधवान् पदार्थके गंधपरमाणु नाकमें जानेसे उस जगेके रहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको कंपितकरे तब गंधका ज्ञान होवे, इसीको घ्राण अर्थात् सूंघना कहते हैं। रसवान् पदार्थके परमाणु रसना (जीभ) संयुक्त होकर उस जगे रहनेवाली स्नायुद्वारा मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको रसका ज्ञान होता है, शीत और गरमी संयुक्त पदार्थ सर्वत्वचाको स्पर्शकरे तब उस त्वचाके रहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको शीत और उष्णताका ज्ञान होताहै। इसीको स्पर्श कहते हैं इसी प्रकार द्रव्यगणोंके परस्पर अभिघात करके पवन से तरंगविशेष उठे उस तरंगसे कानकी झिल्ली ताडितहो तब उस जगे रहनेवाली स्नायुगण मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको शब्दज्ञान होता है, अतएव इन्द्रियजन्यज्ञानके होनेका मुख्य कारण स्नायु है। और चलने आदिकार्य विषयमेंभी मुख्य स्नायुगणही कारण है। बहुत कहनेसे क्याहै मनुष्यका जीवन स्नायुकरके हैं; जिस अंगकी स्नायु नष्ट हो जाती है वह अंग मरेके समान हो जाता है। इसीसे पक्षघातादि (लकवाआदि) पीडाओंमेंभी केवल स्नायुनाश कारण जानना। १० नंबरका चित्र देखो।

स्नायुसंख्या।

नवस्नायुशतानितेषांशाखासुषट्शतानि
द्वेशतेत्रिंशच्चकोष्ठमेवायांग्रत्यूर्ध्वसप्ततिः।

अर्थ-स्नायु ९०० हैं, तिनमें हाथपैरमें छःसौ ६०० हैं. मध्यप्रांतमें २३० हैं, और ग्रीवासेंलेकर ऊपरके प्रदेशमें ७० हैं।

हाथपैरकीस्नायुकहतेहैं।

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांपट्पट्चिताःतास्त्रिंशत्तावन्त्योनलकूर्परगुल्फेषुतावंत्यएवजंघायांदशजानुनिचत्वारिंशदूरौदशवंक्षणे ।

अर्थ-प्रत्येक पैरकी उंगलीमें ६ हैं, सब मिकलर हुई ३०, नल, कूर्पर, गुल्फ इनमें ३० जंघामें ३० जानु (घोडु) में १०, ऊरूमें ४०, वंक्षणमें १०, सब मिलानेसें एक पैरमें १५० स्नायु हुई, दोनोंमें ३०० और इसी प्रकार दोनों हाथोंकी मिलानेसे ६०० स्नायु होती हैं.

मध्यप्रान्तगतस्नायु।

षष्टिःकट्यांमध्येअशीतिःपार्श्वयोःषष्टिरुरसित्रिंशत्।

अर्थ-कमरमें ६० पीठमें ८० कूखमें ६० उरसंबंधी ३० सबमिलकर २३० होती हैं।

ग्रीवासेलेकरऊपरकीस्नायु।

षट्त्रिंशद्ग्रीवायांमूर्ध्निचतुस्त्रिंशत्।

अर्थ-ग्रीवा (नाड) में ३६ मस्तकमें ३४ मिलकर ७० होती हैं; पूर्वोक्त सर्वस्नायुमिलाने से ९०० स्नायु होती हैं. महास्नायुओंको कंडरा कहते हैं।

चतुर्विधस्नायु।

स्नायुश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तंतुसर्वानिबोधमे ।
प्रतानवत्योवृत्ताश्चपृथ्व्यश्चसुषिराःखलु ॥
प्रतानवत्यः शाखासुसर्वसंधिषु चाप्यथ ।
वृतास्तुकंडराः सर्वाविज्ञेयाः कुशलैरिह ॥
आमपक्काशयात्तेषु वस्तौचसुषिराःखलु ।
पार्श्वोरसितथापृष्ठे पृथुलाश्चशिरस्यथ ॥

अर्थ-स्नायु, चारप्रकारकीहै। प्रतानवती, वृत्त, पृथु और सुषिर। हाथपैरोंमें और संधियोंमें प्रतानवतीस्नायुहै। और जो वृत्तहै उनको कंडरा कहतेहैं। तथा आमाशय पक्वाशय और वस्तीमें सुषिर संज्ञकहैं। पसवाडोंमें छातीमें पीठ और शिरमें पृथुल संज्ञक स्नायु जाननी, स्नायुओंसे सर्वदेह बँधाहुआहै।

इसविषयमेंदृष्टांत।

नौर्यथाफलकास्तीर्णाबंधनैर्बहुभिर्युता।
भारक्षमाभवेदाशुनृयुक्तासुसमाहिता॥
एवमेवशरीरेस्मिन्यावंतःसंधयःस्मृताः।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेनभारसहानराः॥

अर्थ-जैसे नौका फलकोंसे व्याप्त और अनेक बँधनोंसे बंधीहुई। बोझाको सहनकरे हैं। और मनुष्य युक्त उत्तम तरनेका साधन होता है। उसीप्रकार इसदेहमें जितनी संधी हैं वो स्नायुओंकके बँधी हैं इसीसे मनुष्य भारको सहन करसकताहै।

स्नायुप्रशंसा।

नह्यस्थीनिनवापेश्योनशिरानचसंधयः। व्यापादितास्तथाहन्यु र्यथास्नायुः शरीरिणः। यःस्नायून्प्रविजानातिबाह्यांश्चाभ्यं तरांस्तथा। सगूढशल्यमाहर्तुंदेहातशक्नोतिदेहिनाम्।

अर्थ-जैसा स्नायु विकृत होनेसे मनुष्योंको प्राणोंका भय होता है। ऐसा हड्डी, पेशी, संधी इत्यादिक विकृत होनेसे होवे। तथा जिस मनुष्यको बाहर और भीतर की स्नायुओंका उत्तमरीतिसे भेद मालुम है, वह, देहमेंसे गुप्तशल्य (कांटाआदि) काढनेमें समर्थ है ऐसा जानना।

५०० पेशीन्कोकहतेहैं।

पंचपेशीशतानि तासांचत्वारिंशतानिशाखासुकोष्ठे॥
षट्षष्टिः ग्रीवांप्रत्यूर्ध्वंचतुस्त्रिंशत्॥

अर्थ-परस्पर विभक्त ऐसे मांसावयव समूहोंको पेशीकहते हैं। वो ५०० पांचसौ हैं। तिनमें ४०० हाथ पैरों में, ६५ मध्यप्रदेश में, ३४ कंठसेलेकर ऊपरके भागमें हैं, परन्तु गर्गाचार्य कहता है कि मध्यप्रदेश में ५० और ऊपरके भागमें ४०० पेशी हैं। परन्तु किसीआचार्यके मतसे सर्व ४०० पेशी हैं सो आगे लिखेंगे।

पेशियोंका पृथक् २ वर्णन।

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांतिस्रस्ताः पंचदश। दशप्रपदे पादोपरि कूर्चसंनिविष्टास्तावन्त्यएव। दशगुल्फतलयोः। गुल्फजान्वन्तरे विंशतिः। पंचजानुनि। विंशतिऊरौदशवंक्षणे शतमेवमेकस्मि न्सक्थीनिभवंति।

अर्थ-एक एक पैरकी ऊंगलियोंमें ३ तीन तीन पेशी हैं। सब मिलकर १५ हुई, तथा पैरके अग्रभागमें १० और पैरके पृष्ठ भाग में १० गुल्फ और तलवेमें १० गुल्फ और घोटूके मध्यमें २० घोटूमें ५ जांघों में २० वंक्षणमें १० ऐसे एक पैरमें कुल १०० पेशी होती हैं। इसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंमें मिलाने से ४०० पेशी होती हैं।

मध्यप्रदेशकीपेशियोंकोकहते हैं।

तिस्रःपायौएकामेढ्रेसेवन्यांचापरेद्वेवृषणयोःस्फिजोःपंच । द्वेबस्तिशिरसि । पंचोदरेनाभ्यामेकापृष्ठोर्ध्वसान्निविष्टाःपंचपंचदीर्घाः षट्पार्श्वयोर्दशवक्षसिअक्षकांसौप्रतिसमंतात्सप्तद्वेहृदयामाशययोः षट्यकृत्प्लीहोंडुकेषु ।

अर्थ-गुदामें ३ तीन पेशी हैं, उन्हीं को त्रिवली कहते हैं। एक लिंगमें १ और १ एक शीवनीमें, २ अंडकोशों में, १ कमरमें, २ बस्तीके ऊपरले भागमें, उदरमें १ नाभिमें, १० पैरोंमें ऊर्ध्वरचित लंबी है। कूखमें ५, वक्षस्थलमें १० दोनोंकन्धे और अक्षकमें मिलकर ७ हृदय में तथा आमाशय में यकृत, प्लीह, और डुडुक इन्हों में ६ पेशी हैं, ऐसे सब मिलकर ६६ पेशी होतीहैं। परन्तु गर्याआचार्य वृद्धवाग्भटके मतको आलंबन करके कोष्ठमें ६० पेशी और ऊर्ध्वप्रदेशमें ४० पेशी हैं ऐसे कहता है।

ऊर्ध्वप्रदेशकी ३४ पेशियोंकोकहतेहैं।

ग्रीवायांचतस्रः अष्टौहन्वोः एकैकाकाकलकगलयोः द्वेतालुनि एकाजिह्वायांद्वेओष्ठयोः द्वेनासायांद्वेनेत्रयोः गण्डयोश्चतस्रोद्वे कर्णयोश्चतस्रोललाटेएकाशिरसीतिएवमेतानिपंचपेशीशतानि ।

अर्थ-नाडमें ४ पेशीहैं, ठोडीमें ८ काकलक (काक) में, गलेमें एकएक हैं, तालुएमें २ जिह्वामें १ होठोंमें २ नाकमें २ नेत्रोंमें २ दोनों गालोंमें चार, कानोंमें २ ललाटमें ४ मस्तकमें १ कुलजोडनेसे ३४ होतीहैं। सब मिलकर ५०० हुईये पेशी शिरा, स्नायु, अस्थि पर्व, संधी इनको धारण करती हैं। इसीसे शिरादिक बलवान् होकर सर्व देहको बल देती हैं।

स्त्रियोंकेपेशी अधिककहते हैं।

स्त्रीणांविंशत्यधिकास्तासांस्तनयोरेकैकस्मिन्पंचपंचयौवनेतासां

परिवृद्धिःअपत्यपथेचतस्रः प्रसृतेरभ्यंतरतोद्वेमुखाश्रितवृत्तेचद्वे गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः शुक्रार्तवप्रवेशिन्योगर्भाशयेचातिस्रएव।

अर्थ-स्त्रियोंके वीस पेशी अधिकहें, तिनमें स्तनोंमें पांच पांच मिलकर १० हें, ये यौवन अवस्था आनेपर बडी हो जातीहे। योनिमें ४ पेशीहें, तिनमें दो भीतर, और योनिकर्णिकाके पार्श्वोंमें वर्तुल तथा स्पर्श करके सुख देनेवाली २ पेशी हें, तथा गर्भ मार्गमें गोल ओटके समान ३ तीन, और गर्भाशयमें शुक्र आर्त्तवके प्रवेश करनेवाली ऐसी तीन ३ पेशी हें। ऐसे सब मिलकर २० पेशीहुई; गर्भाशय योनीके तीसरे आवर्त्तमें रोहूमछलीके मुखके समान हें।

पेशियोंकेस्थानविशेषकरकेस्वरूप।

तासांबहुलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशा भावाः। संधिशिरास्नायुप्रच्छादकायथाप्रदेशस्वभावतएवभवति।

अर्थ-तिन पेशियोंमें बहुल कहिये बहुतसी, पेलव कहिये थोडी, सूक्ष्म मोटी विस्तीर्ण,गोल, छोटी लंबी, ऐसी आकृति करके अनेक प्रकारकी हेवह संधी, अस्थि, शिरा, स्नायु इन्होंके आच्छादन करनेवाली अपने २ स्थानमें स्वभाव करके कठिन कोमल, सुखस्पर्शवान् और दुःख स्पर्शवान् ऐसी अनेक प्रकारकी हें।

स्त्रियोंके शिश्न औरवृषण नहींहे इसीसे उस जगेकी पेशियोंकी अन्यत्र कल्पना करके कहते हें.

पुंसांपेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्तालक्षणमुष्कयोः।
स्त्रीणामावृत्यतिष्ठंतिफलमंतर्गतंहिताः॥

अर्थ-प्रथम पुरुषके तीनपेशी अर्थात् एक शिश्नमें, तथा दो वृषणमें जो कही हें। वो तीनोंपेशी स्त्रीके गर्भाशयमें रहतीहें। ऐसा कोई आचार्य कहते हें, परंतु गयीआचार्य इस तंत्रांतरके प्रमाणको नहीं मानताहे। पांचसो पेशी हें ऐसे जो वचन कहाहे उसमें (पुंसां) इस पदकरके पुरुषोंके ५०० हें। और स्त्रियोंके तीन पेशीन्यून हें ऐसा व्याख्यान करताहे।

इसमेंभोजवचनप्रमाण।

पंचपेशीशतान्येवस्त्रीवर्ज्यंविद्धिभूमिप।
अतश्चतस्रोहीयंतेस्त्रीणांशेफासमुष्कयोः॥

अर्थ-भोजकहताहे कि, हेराजन्! पेशी ५०० हें; परंतु स्त्रियोंके विना. इसका

कारण यह है कि, शिश्न और वृषण संबंधी पेशी स्त्रियोंके नहींहै, इसीसे स्त्रियोंके तीन पेशी न्यूनहैं । गर्भाशयका स्वरूप प्रथम लिखआएहैं, अतएव इसजगे छोड-दियाहै ।

मतांतरेण पेशीसंख्यानम् ।

मानवदेहेचत्वारिपेशीशतानिसन्ति ।
सुश्रुतस्तुपंचशतान्याहतासांकतिचिद्विशेषेणोच्यन्ते ।

अर्थ-मनुष्यके देहमें ४०० चारसौ पेशीहै । परंतु सुश्रुतके मतमें ५०० पांचसौं मानीहैं । इनमें कोई पेशीके विषय विशेषको वर्णन करतेहैं ।

मूर्द्धन्युपरितएकातन्वीकरोटेःपश्चादस्थ्नःशंखास्थिभ्यांच
समुत्थायमूर्द्धोर्ध्वमतिव्याप्यतत्रचकण्डरामयीसतीललाटा
धःपेशीपर्यंतमागता । एतयाभ्रुवावूर्ध्वमाकृष्येते ।

अर्थ-मूर्धदेश अर्थात् मस्तकके ऊपरके भागमें एक पतली पेशीहै । यह करोटिके पिछाडीकी हड्डी तथा दोनोंकनपटीकी हड्डीसे उत्पन्नहोकर मस्तकके ऊपरके भागमें व्याप्त होकर और इसीस्थानमें कंडरास्वरूपहोकर ललाटकी अधस्थपेशी पर्यंत आयकर प्राप्तहुईहै । यह मध्यमें कंडरामय और दोनों प्रान्तोंमें मांसमय हैं । इन दोनों पेशी करके दोनोंभ्रू (भौंह) ऊपरको खीची हुईहैं ।

कर्णदेशयोस्तिस्रस्तिस्रोयथाक्रमंपश्चादूर्ध्वमाभिमुख्येच
स्थिताः आभिःकर्णौपश्चादूर्ध्वमाभिमुखेचाकृष्येते ॥

अर्थ-प्रत्येक कर्ण प्रदेशमें तीन तीन पेशी हैं, इनकी यथाक्रमसे दोनों कानोंके पिछाडी ऊपर और सन्मुखमें स्थिति है; इन्हींसे दोनों कान पिछाडी ऊपर और सन्मुखकी तरफ खींचे हुए हे ।

समंतान्नेत्रवर्त्मपरिवेष्टयस्थितैकानेत्रंनिमीलयति ।
नयनपुटाधःस्थितापरा भ्रुवौपरस्परासन्नेकरोति ।
अन्येकाश्रुनाडीमन्तराकर्षति ॥

अर्थ-नेत्रके पलकोंको वेष्टन करके रहनेवाली एक पेशी है इस करके नेत्र मूँदतेहैं, नेत्रपुटके नीचे एक पेशी है उसकरके दोनों भौंह परस्पर मिली रहती हैं, और एक पेशी अश्रुनाडीको भीतरकी तरफ खींचे है । ऐसे दोनों बगलमें इसी प्रकार पेशी हैं ।

नेत्रस्थानांपेशीनांकयाचिदूर्ध्ववर्त्मऊर्ध्वमाकृष्यते। कयाचिन्नेत्रमण्डलमूर्ध्वंकयाचिदधःकयाचिदन्तःकयाचिद्बहिराकृष्यते। कयाचिदन्तराभितःकयाचिद्बहिःपश्चाद्वाघूर्ण्यते।

अर्थ—नेत्रमें कितनीक पेशीहैं, तिन्होंमें एक पेशीसे नेत्रके ऊपरका पलक ऊपरकी तरफ खींचाहुआ है; और एक पेशी द्वारा नेत्रमंडल ऊपरको एकसे नीचेको, एक से भीतरको, तथा एक पेशीद्वारा बाहरको खींचाहुआहै। और दो पेशीमें से एकसे नेत्रमंडल भीतर तथा आगेको और दूसरी पेशी द्वारा पिछाडी और बाहरकी तरफ भ्रमण करतेहै।

नासादेशेतिस्रोनसोनमनादिक्रियाःकुर्वंति।

अर्थ—नासिकामें तीन पेशीहैं, इन पेशियोंके द्वारा नासिकाकी नमनादि क्रिया निर्वाहित होतीहै।

ओष्ठस्थानांपेशीनांकयाचिन्मुखसंवृतिःकयाचिदोष्ठनसोरूर्ध्वाकर्षणंकयाचिदोष्ठस्योर्ध्वाकर्षणंकयाचिदास्यप्रान्तयोरन्तराकर्षणंकयाचित्तयोरूर्ध्वाकर्षणंकयाचिद्धास्यंकयाचिन्नासापुट संवरणंचसंपाद्यतेइति।

अर्थ—ओष्ठस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा मुखका आच्छादन, किसीकेद्वारा होठ और नासिका ऊपरकी तरफ खींचना, किसीकेद्वारा मुख प्रान्तद्वयका भीतरकी तरफ आकर्षण, किसीके द्वारा मुखप्रान्तोंका ऊपरकी तरफ आकर्षण होना, किसीके द्वारा हास्यक्रिया उसीप्रकार किसीके द्वारा नासिकापुटका आच्छादन होता है।

अधरस्थानांकयाचिदधरस्याधस्तादाकर्षणंकयाचिदूर्ध्वाकर्षणं कयाचित्सृक्कद्वयस्याधस्तादाकर्षणंसंपाद्यते।

अर्थ—अधरस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा अधरकानीचेकी तरफ खींचना और किसीके द्वारा ऊपरको खींचना, उसी प्रकार किसीके द्वारा मुख प्रान्तद्वय (दोनोंहोठोंका) नीचेकी तरफ आकर्षण होताहै।

हन्वस्थाभिरूर्ध्वंहन्वस्थाभिश्चहन्वस्थऊर्ध्वाकर्षणंमुखांतर्गृहीत तोयादीनांबहिःक्षेपणंहन्वस्थिचालनमित्याद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते।

अर्थ-ठोडीके तथा ऊपर ठोडीके रहने वाली पेशियोंमें किसीके द्वारा ठोडीकी हड्डीका ऊपरकी तरफ आकर्षण, किसीके द्वारा मुखमें पीये हुए पानी आदिका बाहरको गेरना तथा किसीके द्वारा ठोडीकी हड्डीका इधर उधरको चलाना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होताहै।

ग्रीवास्थिताभिश्चिबुकाधश्चर्मणोधोऽवनमनंमुखमंडलस्येतस्ततश्चालनम् (आभ्यामेवशिरोमंडलस्याभिनमनंसंपाद्यते)।जिह्वामूलस्थितस्यास्थ्नःकंठस्यचाधोनमनंमास्यव्यादानंजिह्वाचिबुकयोरधोनमनमभ्यवहरणंताल्वधोनमनंतदूर्ध्वाकर्पणमुपजिह्वानमनंपर्शुकानामूर्ध्वाकर्पणंपृष्ठवंशस्यनमनंशिरोमंडलस्यघूर्णनंचेत्याद्याःक्रियाःसंपाद्यंते ।

अर्थ-ग्रीवादेशस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा चिबुक (ठोडी) के नीचेके चर्मका अधोभागमें लटकना होताहै, किसीके द्वारा मुखमंडलका इतस्ततो चालन क्रिया (इन दो पेशियोंके द्वारा शिरोमंडलका सन्मुखको नवन क्रिया होती है) किसीके द्वारा जिह्वामूलास्थिका और कंठका नीचेको नवना (झुकना) होता है, किसी के द्वारा गलेका नीचेको करना आदिकर्म । किसीकेद्वारा तालुएका लटकना, किसीके द्वारा तालुएका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा उपजिह्वाका नवना, किसीके द्वारा पांशुओंका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा पृष्ठवंशका नवना, उसी प्रकार किसी पेशीके द्वारा शिरका फिरना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है ।

पृष्ठस्थाभिः स्कंधस्यपश्चादूर्ध्वंचाकर्पणंमध्यकायस्याभितःसमाकर्पणंपृष्ठवंशस्यर्जुकरणमित्याद्याः क्रियाःसंपाद्यन्ते ।

अर्थ-पृष्ठस्थ पेशियोंमें से किसीकेद्वारा कंधेका पीछेको और ऊपरको आकर्षण, किसीकेद्वारा मध्यदेहका सन्मुखकी ओर आकर्षण, उसीप्रकार किसी पेशिकेद्वारा पृष्ठवंशका नम्रता होना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है ।

वक्षस्येकैकस्मिन्पार्श्वेपर्शुकानांवहिर्देशमभिव्याप्यैकादशैकादश सन्ति । तासामेकैकाद्वेद्वेपर्शुकेअभिव्याप्यवर्त्तते । एवमंतरेकादशैकादश । उरोऽस्थ्नयेकातदस्थ्नोऽधोभागाश्चतुर्थीपञ्चमीषष्ठीनांपर्शुकानांतरुणास्थिपर्यंतमुपास्थिता । वक्षस्थलेएकाउदरवक्ष

सीपृथक्करोति । आभिः श्वसनप्रश्वसनशोणितयंत्रधारणाद्याः क्रियाः सम्पाद्यन्ते ।

अर्थ–वक्षस्थलके एक एक पार्श्व में पांशुओंके बहिर्देशमें व्याप्त ११ ग्यारह पेशीहैं, तिनमें एक एक पेशी दोदो पांशुओं में लिपटी हुई हैं, इसी प्रकार पांशुओं-के भीतरभी ११ पेशी प्रत्येक पसवाडे में एक एक, दोदो पांशूनमें व्याप्त होकर रहती है। उरोस्थि अर्थात् छातीकी हड्डी उसके अधोभागसे लेकर चौथी, पांचवीं तथा छठवीं पर्शुकाके तरुणास्थिपर्यंत रहनेवाली एक पेशी है, वक्षस्थल में उदरके ऊपर एक पेशी है, इसके द्वारा उदर और वक्षस्थल पृथक् होते हैं, इसी वक्षस्थल में उदरके ऊपरवाली पेशीके द्वारा निःश्वास और रुधिरयंत्र धारण आदि कार्य संपादन होते हैं।

उदरस्थिताभिर्वमनरेचनमूत्रणप्रसवनाद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते । गुह्य स्थिताभिर्मूत्रणरेचनपायुसंकोचनलिंगोत्थापनादीनिकर्माणि ।

अर्थ–उदरस्थ पेशियोंके द्वारा वमन, रेचन, मूत्रण,तथा संतान प्रसवनादि कार्य होवेहैं। गुह्यस्थ पेशियोंकेद्वारा मूतना, दस्तहोना, गुदाका संकोचन और लिंगका उठना आदि कार्य होते हैं।

उरोस्थिजत्रुपर्शुकांशप्रगण्डप्रकोष्ठकराङ्गुल्यादिषुबह्व्यःपेश्यः सन्ति । ताःश्वसनालिंगनबाहुचालनग्रहणक्षेपणादीनिबहूनि कर्माणिकुर्वन्ति ।

अर्थ–छातीकी हड्डी, जत्रुस्थान, पांशु, कंधे, बाजू, कलाई, हाथ और उंगली आदि इन स्थानों में बहुतसी पेशी हैं। वे श्वसन (श्वासकालेना) आलिंगन, भु-जाओंका चलाना, तथा ग्रहणकरना फेंकना इत्यादि बहुतसे कार्यको करते हैं।

श्रोणिस्थानामेकातिपृथुलाइयंत्रिकश्रोण्यस्थितऊर्वस्थ्नऊर्ध्व भागपर्यंतमागता । श्रोणिप्रदेशेअपराअपिकतिपयाः सन्ति । आभिः सुखास्याऊर्वस्थ्नोबहिराकर्षणंक्रमणंतथैवंविधान्यन्या निचकर्माणिनिष्पाद्यन्ते ।

अर्थ–श्रोणिस्थ अर्थात् कमरमेंस्थित पेशियोंमें एक अतिस्थूल पेशी है। यहत्रिक तथा श्रोण्यस्थिसे लेकर ऊरूकी हड्डीके ऊर्ध्वांश पर्यंत आयकर समाप्त हुई है, श्रोणिप्रदेशमें औरभी कितनीएक पेशी हैं। इन्हीं पेशी समूहके द्वारा मसपर्यंक

बैठना, जांघकी हड्डीका बाहरकी तरफ आकर्षण, तथा पैरोंका उठाना धरना उसी प्रकार और अनेक प्रकारके कार्य निर्वाहित होतेहैं ।

ऊरुजंघापादाङ्गुलिस्थाभिः सक्थिसंचालनदंडायनगमन प्रभृतीनिकर्माणिसम्पाद्यन्ते ।

अर्थ-ऊरु, जंघा, पैर, तथा पैरकी उंगलीमें रहनेवाली पेशियोंके द्वारा पैरोंका संचालन, तथा पैरोंका सीधा होना और गमन इत्यादि कार्य होते हैं ।

पादयोस्तलतः पृष्ठेग्रीवायामपिताः स्थिताः ।
उपर्युपरिभावेन स्वंस्वं कुर्वंति कर्मच ॥

अर्थ-पैरोंकेतलुए, पीठ, ग्रीवादेशमें पेशीगण ऊपरऊपरभावकरके स्थितहोकर अपनेअपने कर्मोंकोकरतीहै ।

पेश्यःकुर्वंतिकर्माणिनिखिलानिशरीरिणाम् । गोपयन्तिचकुल्या निजनयन्तिसुखानिच । नाभविष्यन्नथैताश्चेद्गतिस्पन्दविवर्जिताः । काष्ठीभूतामृतप्रायाअभविष्यन्हिदेहिनः । भारवाहोगतिः स्पन्दोव्यायामः श्वसनंस्थितिः । आस्योपगृहणंहास्यंगीतिर्नर्तन वादनं । विहाराहारनिर्हाराश्चुंवनंशयनंरतिः । गर्भोत्पत्तिस्तत्सव नंसर्वपेशीकृतंमतम् । अथकिंबहुनोक्तेनप्राणिनांप्राणधारणे । कारणानिप्रधानानिपेश्यएवेतिनिश्चितम् ॥

अर्थ-पेशीसमूह मनुष्योंके सर्वकार्यकरेहैं, ये हड्डियोंके समूहकीरक्षा और अनेकप्रकारके सुखोत्पादन करेहैं, यदि कदाचित् पेशी नहोवे तो जीवगण हलनाचलना, आदि शक्तिशून्य लकडीकेसमान और मृतप्रायहोजावें-बोझेको लेचलना, गमन, स्पन्दन, दंडकसरत, श्वासक्रिया, ठहरना, बैठना, आलिंगन, हास्य, नृत्य, गीत, बाजावजाना, विहार, आहार, मलमूत्रोत्सर्ग, चुम्बन, शयन, शृंगार, गर्भोत्पत्ति और संतानका प्रसव इत्यादि समुदायक्रिया पेशियोंके द्वाराहोतीहै । अथवा बहुतकहनेसे क्याहै; प्राणियोंके प्राणधारणमें पेशीही प्रधान कारणहै यह निश्चितहै ।

मूढगर्भ निकालनेकेलिये गर्भकी स्थिति कहतेहैं ।

अभुग्नोभिमुखःशेतेगर्भोगर्भाशयेस्त्रियः ।
सयोनिशिरसायातिस्वभावात्प्रसवंप्राति ॥

अर्थ-गर्भ गर्भाशयमें सन्मुख तथा अंगोको संकुचितकरके रहताहै, वह पूर्वकर्मके आक्षेपकरके प्रसवके समय योनिकेप्रति मस्तककी तरफसे आताहै ॥

अबशल्यतंत्रकी उत्कृष्टतादिखाते हैं।

त्वक्पर्यंतस्यदेहस्ययोयमङ्गविनिश्चयः। शल्यज्ञानादृते नैववर्ण्यतेङ्गेपुकेपुचित्। तस्मान्निःसंशयज्ञानंहर्ताशल्यस्यवांछति। धावयित्वामृतंसम्यग्द्रष्टव्योङ्गविनिश्चयः ॥

अर्थ-त्वचा; हड्डीआदिपर्यंत देहके अंगोंका निश्चय (अर्थात् इसमें इतनी हड्डी, नस, नाडी, कंडरा, पेशी, धमनी, त्वचा, आदिहैं इसका यथार्थ विश्वास) विना शल्यतंत्रकेजाने किसी अंगका नहीहोवे। अतएव शरीरमें गुप्तशल्य (कांटा खोवरादि) के काढनेवाले वैद्यको निःसंदेह सर्व अंगोंका ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसीसे शल्यचिकित्सक (जर्राह) को उचितहै कि, मुर्देके देहको अच्छीरीतिसे पानीसे धोयकर चीरे और चीरकर एकएक अंगके पृथक् २ पुर्जे करके देखे।

मृतदेहके देखनेकी विधि।

तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतकं निष्कृष्टांत्रंपुरुषमवहन्त्यापगायांनिबद्धंपंजरस्थं मुंजवल्कलकुशादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्गप्रत्यङ्गमप्रकाशेदेशे कोथयेत्। सम्यक्प्रकुथितंचोद्धृत्यततोदेहंसप्तरात्रादुशीरवालवेणुवल्कजमूर्वानामन्यतमेनशनैःशनैरवघर्षयंस्त्वगादीन्सर्वानेवबाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान्यथोक्तान्लक्षयेच्चक्षुषेति ॥

अर्थ-मन शास्त्रदृष्टको प्रत्यक्ष कैसे देखे इसवास्ते कहतेहै कि, किसी तत्काल मरेहुए मुर्देको लेवे, जिसका कोई अङ्ग खंडित न हुआहो; और जिसका देहलेवे वो मनुष्य विषादिक से न मराहो क्योंकि विषखानेसे या विषैल जानवरके काटने से अथवा विषके स्पर्शसे जो मनुष्य मरता है उसकी त्वचाआदि बिखरजाते हैं; इसी प्रकार जो बहुतदिन बीमाररहाहो उसकाभी देह न लेवे, क्योंकि जो बहुतदिन बीमाररहता है उसकी त्वचाआदि सूखजाती है, उसीप्रकार जिस्की सौ१०० वर्षकी अवस्था न हो, क्योंकि सौवर्षकी अवस्थाहोने से मनुष्य अत्यंत बुड्ढा होजाता है, अत्यंत बुढापेसे भीदेहके अङ्ग और प्रत्यंग यथार्थ नहींरहते हैं; इसीसे उक्तलक्षणों करकेहीन मुर्देकी देह को लेकर उसकेभीतरसे आंतोंको निकालडाले, पीछे मुंज, या बक्कल अथवा कुशाआदिसे अङ्गप्रत्यंगोंको लपेट किसीपेटी अथवा पिंजडे में बन्दकर, जिसमें कोईमनु-

ष्य आते जाते नहो और जिसजगे उजेला न होवे ऐसीनदी में उसपेटीको डालकर किसीरस्सी से बांधदेवे कि जिससे वो देह सडजावे; इसप्रकार जब अच्छीरीतिसे सडजावे तब उसदेहको निकाल सातरात्रिपर्यंत उशीर, नेत्रवाला, वास, और मूर्वा,इनमेंसे किसीएकसे घिसे और धीरेधीरे शस्त्रादिकसे चीर त्वचा, मांस, पेशी, नस, नाडी, आदिको पृथक् पृथक् करता जाय और देखताजावे इसप्रकार बाहर और भीतरके प्रत्येकअंग और प्रत्यंगोंको पुंजेपुंजे करके शास्त्रोक्तोंको अपनेनेत्रोंसे प्रत्यक्षदेखें (इसजगे मूंजआदिसे जो लपेटनालिखाहै सो इसवास्ते है कि खुलेहुए देहको जल में रखनेसे मछली आदि जीव खाजावें तो फिर संपूर्ण अवयव नहींरहते और पेटीमें रखने से यह प्रयोजन है कि, विनापेटीके रखने से कदाचित् जलके वेगसे छिन्नभिन्न न होजावे; और गृध्रादिक भक्षणके भयसे अंधेरे में रखना कहाहै.)

प्रत्यक्षदेखनेकाफल ।

प्रत्यक्षतोहियद्दृष्टंशास्त्रदृष्टंचयद्भवेत् ।
समागम्यद्वयं तत्रभूयोज्ञानविनिश्चयः ॥

अर्थ–जो नेत्रादिद्वारा प्रत्यक्षदेखा और शास्त्रदृष्ट अर्थात् शास्त्रपढ़कर अनुभव करागया इनदोनोंको प्राप्तहोने से अंगोंके ज्ञानका निश्चय होता है ।

देहकीचक्षुइंद्रीकरकेग्राह्यहै क्षेत्रज्ञपुरुषनहींहै इसबातकोकहतेहैं ।

नशक्यश्चक्षुषाग्राह्योदेहेसूक्ष्मतमोविभुः ।
दृश्यतेज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेववा ॥

अर्थ–देह में आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, इसी से नेत्रद्वारा नहींदीखे; वो ज्ञानचक्षु अर्थात् ज्ञानी पुरुषों को और तपश्चक्षु अर्थात् तपस्वियों को ज्ञान और तपके प्रभावसे दीखे है ।

शास्त्रऔरप्रत्यक्षदेखनेकाफल ।

शरीरेचैवशास्त्रेचदृष्टार्थःस्याद्विशारदः ।
दृष्टश्रुताभ्यांसंदेहमपोह्यारभतेक्रियाम् ॥
सौश्रुतशारीरेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीर और शास्त्र इन्हों में सर्वअर्थ देखने से मनुष्य कुशल अर्थात् चतुर होताहै इसीसे दृष्ट और श्रुत दोनोंप्रकारसे संदेह निवृत्तिकरके छेदन भेदन आदि क्रियाकरनीचाहिये । इसलिखनेसे यह प्रयोजनहै कि, प्रथमतो शरीरकेग्रंथ गुरुमुख पढे पश्चात् गुरुके आगे मुर्देको चीर २ के शास्त्रके लेखानुसार मिलानकरे और

जो हड्डी; पेशीआदि समझमें न आवे उसको उसीसमय गुरूसेपूछकर संदेह निवृत्त करलेवे; इसप्रकार मनुष्य शल्यशास्त्रकी क्रियाओंमें कुशलहोता है । चीरनेफारनेका विशेष विस्तार शारीरकी समाप्तिके पश्चात् कहेंगे ।

इति श्रीमदयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरेनवमस्तरंगः ॥ ९ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

शरीरसंख्याव्याकरणाध्यायमें मांसशिरा आदिका वर्णनहै; और मर्म मांस शिरा आदिके आश्रय हैं, इसीसे मर्मकहना चाहिये सो मर्मोंकोकहते हैं ।

अथातःप्रत्येकमर्मनिर्देशंशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-मांस, शिरा, इत्यादिकोंके वर्णनके अनंतर मांसादिमर्मकथनरूप शारीराध्यायको कहते हैं.

मर्मोंकीसंख्या ।

सप्तोत्तरंमर्मशतम् । तानिमर्माणिपंचात्मकानिभवंति । तद्यथा । मांसमर्माणि शिरामर्माणि स्नायुमर्माणि अस्थिमर्माणि सन्धिमर्माणिचेति ।

अर्थ-मर्म १०७ एकसेसातहै, वो पांच प्रकारके होते हैं; उनको कहते हैं. मांसमर्म, शिरामर्म स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, और संधिमर्म, ए पांच प्रकारहैं ।

मांसादिभेदकरके मर्मोंकी संख्या ।

तत्रैकादशमांसमर्माणि । एकचत्वारिंशत्शिरामर्माणि । सप्तविंशतिःस्नायुमर्माणि । अष्टावस्थिमर्माणि । विंशतिः संधिमर्माणि ।

अर्थ-मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८, संधिमर्म २०, सबमिलनेसे १०७ होते हैं ।

मांसमर्मोंको कहते हैं ।

चत्वारितलहृदयानितावंत्येवेन्द्रवस्तीनिगुदमेकंद्वेस्तनरोहिते ।

अर्थ-मांसमर्म ११ है, उनमें तल हृदयमें ४ तथा इन्द्रबस्तिसंज्ञक ४ गुद १ और स्तनरोहितसंज्ञक २ इसप्रकार जानने । वाग्भट मांसमर्म १० कहता है ।

शिरामर्म ।

चतस्रोधमन्यःअष्टौमातृकाःचत्वारिशृंगाटकानिद्वेअपाङ्गेएकास्थप

णीफणौद्वेस्तनमूलेद्वावपस्तंभौद्वावपलापौएकंहृदयंएकानाभिर्द्वौपा र्श्वसंधीद्वेबृहत्यौचत्वारिलोहिताक्षाणिचतस्रऊर्व्यःएवमेकचत्वारिंशत्

अर्थ-शिरामर्म ४१ कहे हैं, तिनमें ग्रीवासंबंधी धमनी ४ मातृका ८ शृंगाटकमें ५, अपांग २, स्थपणी १, फण २, स्तनमूलमें २, अपस्तंभ २, अपलाप २, हृदय १, नाभी१ पार्श्वसंधी २, बृहती २, लोहिताक्ष, ४, ऊर्वी ४, ऐसेइकतालीस होतेहैं; वाग्भटमें ३७ सैंतीसशिरामर्मकहेहैं ।

स्नायुमर्म ।

चतस्रआण्यद्वौविटपौद्वौकक्षधरौचत्वारःकूर्चाश्चत्वारिकूर्चशिरां सिएकोवस्तिश्चत्वारिक्षिप्राणिद्वावंसौद्वेविधुरेद्वावुत्क्षेपौएवंसप्त विंशतिः ।

अर्थ-स्नायुमर्म २७, कहे हैं, उनमें आणिसंज्ञक ४, विटप २, कक्षधर २, कूर्च ४ कूर्चशिर ४, वस्ति १, क्षिप्रसंज्ञक ४, अंश २ विधुर २ उत्क्षेपसंज्ञक २ इस प्रकार स्नायुमर्म २७, कहे हैं. वाग्भट स्नायुमर्म २३ कहते हैं ।

अस्थिमर्म ।

द्वेकटीतरुणेद्वौनितंबौद्वेअंशफलकेद्वौशंखौएवमष्टौ ।

अर्थ-अस्थिमर्म ८ हैं; तिनमें कटितरुण संज्ञक २ नितंब २ अंसफलक २ और शंख २ ऐसे ८ हैं ।

संधिमर्म ।

द्वेजानुनीद्वौकूर्परौपंचसीमंताःएकोधिपतिरितिद्वौगुल्फौद्वौ मणिबंधौद्वेककुंदरेद्वावावर्त्तौद्वेकृकाटिकेएवंविंशतिः ।

अर्थ-संधिमर्म २० है, तिनमें जानुसंबंधी २ कूर्पर (कलाई) संबंधी २ सीमंत संज्ञक ५ अधिपति संज्ञक १ गुल्फ संबंधी २ मणिबंध (पहुचा) संबंधी २ ककुंदरसं० २ आवर्त्त संज्ञक २ कृकाटिका संज्ञक २ इस प्रमाण जानने वाग्भट ९ धमनीमर्म पृथक् कहकर १०७ मर्मोंकी पूर्ण संख्या करीहै । अर्थात् जैसे सुश्रुत मांस, शिरा, स्नायु, हड्डी, और संधि ए पांच प्रकारके मर्म कहता है उसी प्रकार वाग्भट मांस, हड्डी, स्नायु, धमनी, शिरा, और संधि इनके मिलाप होनेवाले स्थानोंको ६ प्रकारके मर्म कहता है ।

मर्मोंकीविशेषज्ञानहोनेकेवास्तेप्रदेशकहतेहैं ।

तेषामेकादशैकस्मिन्सक्थीनिभवंति ।

अर्थ-एकसो सात मर्मोंमेंसे एक पैरमें ११ मर्महैं; इसी प्रकार दूसरा पैर और दोनों हाथोंके मिलानेसे ४४ मर्म होते हैं; पैरके मर्मोंके नाम-क्षिप्र १ तलहृदय १ कूर्च १ कूर्चशिरस १ गुल्फ १ इन्द्रवस्ति १ जानु १ और ऊर्वी १ लोहिताक्ष १ विटप १ इस जगे तल और हृदय पृथक् २ गणना करनेसे ११ संख्या होतीहै। इन क्षिप्रादिकोंके लक्षण स्वयं आचार्य आगे कहेगा इसीसे यहां व्याख्या नहीं करी। उदर और उरके मिलानेसे बारह १२ मर्म और पीठमें १४ ग्रीवासे लेकर ऊपरके भागमें ३७ मर्म। उदर उर इन्होंके मर्मोंके नाम-गुद १ बस्ति १ नाभि १ हृदय १ स्तनमूल २, स्तनरोहित २ अपलाप २ अपस्तंब २ ऐसें बारहहे। पीठके १४ मर्मोंके नाम कटितरुण २, ककुंदर २, नितंब २ पार्श्वसंधी २, बृहती २, अंसफलक० और अंश २ ये चौदहहुए। पैरके ११ मर्मोंके जो नाम कहे हे वोही हाथोंके मर्मोंके नाम जानने। परंतु गुल्फ और विटप इनस्थानोंमें मणिबंध और कक्षधर ये पृथक् हे। जत्रुके ऊपर ३७ मर्म हे, उनके नाम-धमनी ४ मातृका ८, कृकाटिका २, विधुर २, फण २, अपांग २, आवर्त्त २, उत्क्षेप २, शंख २, स्थपणी १, सीमंत ५, शृंगाटक ४, अधिपति १, इस प्रकारहे।

मर्मोंके पांच प्रकार।

सद्यःप्राणहराणिकालांतरप्राणहराणि
शल्यघ्नानिवैकल्यकराणिरुजाकराणि।

अर्थ-मर्म पांच प्रकारके हे। किसी मर्ममें चोटलगनेसे तत्काल (आठदिनमें) मरे, वो सद्यःप्राणहारक, तथा कोईकालातर प्राणहारक कहिये महिने या पक्षमें मरताहै, कोई विशल्य कहिये शल्य निकलजानेके पश्चात् मरे तथा कोई वैकल्यकर (जिसमें विकार होनेसे विकलताहोवे) और एक रुजाकर अर्थात् जिसमें किसी प्रकारका विकार होनेसे अत्यंत पीडा होवे, सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्म १९हैं. कालांतर प्राणहारक मर्म ३३ हे, विशल्यघ्न ३, वैकल्यकर ४४ और रुजाकर ८ सबमिलकर १०७ हुए।

सद्यःप्राणहरमर्म।

शृङ्गाटकान्यधिपतिःशंखौकण्ठशिरागुदम्।
हृदयंबस्तिनाभीच हंतिसद्योहराणितु॥

अर्थ-शृंगाटक ४ अधिपति १ शंख २ कंठसंबंधी शिरा ८ जिनको मातृका कहते हे, गुदा १ हृदय १ बस्ति १ और नाभी १ ऐसे १९ मर्म सद्यःप्राणहर हे।

कालांतर प्राणहारक ३३ मर्म हे इन्होंकेनाम। वक्षस्थलसंबंधि स्तनमूलमें २

स्तनारोहित २ अपलाप २ अपस्तंब २ सीमंत ५ तलहृदय ४ क्षिम ४ इन्द्रबस्ति ४ कटितरुण २ पार्श्वसंबंधी २ बृहती २ नितंब २ ऐसे ३३ हैं ।

विशल्य ३ मर्मोके नाम । उत्क्षेप २ स्थपणी १ ऐसे ३ मर्म हैं ।

वैकल्यकारक ४४ मर्म उन्होंके नाम । लोहिताक्ष ४ आणी ४ जानु २ ऊर्वी ४ कूर्च ४ विटप २ कूर्पर २ ककुंदर २ कक्षधर २ विधुर २ कृकाटिका २ अंस २ अंसफलक २ अपांग २ नीलधमनी २ मन्या २ फण २ आवर्त २ ऐसे ४४ हुए ।

रुजाकर ८ मर्म उनके नाम । गुल्फ २ मणिबंध २ कूर्चशिरस ४ ऐसे ८ हैं ।

अब प्राणहरादि मर्मोके कार्य और उसमें युक्ति ।

मर्माणिमांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिसंनिपाताः ।
तेषुस्वभावतएवविशेषेणप्राणास्तिष्ठंति ।

अर्थ–मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनका सन्निपात कहिये अत्यंत मिलना उसको और उसमें अग्न्यादिक प्राणस्वभाव करके रहते हैं उसको मर्म कहते हैं । उसमें चोटआदि विकार होनेसें भ्रम, प्रलाप, पतन और प्रमेह इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

मर्मोंके भेदका कारण ।

तत्रसद्यःप्राणहराणिआग्नेयानिकालांतरप्राणहरा
णिसौम्यानिविशल्यघ्नानिवायव्यानिवैकल्यकरा
णिसोमवायव्यानिअग्निवायव्यानिरुजाकराणि ।

अर्थ–जिस मर्ममें अग्निरूप प्राण रहते हैं वह तत्काल मारे हैं, कारण यह है कि, अग्निमें शीघ्रता बहुतहै । तथा शीतरूप प्राण जिस मर्ममें रहते हैं, वह कालांतरमें मृत्यु करेहै । कारण यहहै, कि सोम(कफ) स्थिर है । इसीसें विलंबमें प्राणहरण करे हैं; और वायुरूप प्राण जिस मर्ममें रहतेहैं, वह विशल्यघ्न है, क्योंकि शल्यसे वायु रुका रहता है उस शल्यके निकलतेही उसमें वायु निकलकर प्राणीको मारेहै । तथा जिस मर्ममें कफ वायु दोनों रहतेहैं वह वैकल्यकारक और जिस मर्ममें अग्नि और वायु रहते हैं वो पीड़ाकरता जानना ।

मर्मभेदके दूसरे कारण ।

केचिदाहुर्मांसादीनांपंचानामपिसमृद्धानांसमवायात्सद्यःप्राण
हराणिएकहीनानामल्पानांवाकलांतरप्राणहराणिद्विहीनानांवि
शल्यघ्नानित्रिहीनानांवैकल्यकराणिएकस्मिन्नेवरुजाकराणि ।

अर्थ-कोई आचार्य ऐसे कहते हैं, कि मांसादिक पांच पदार्थ जिस एक मर्ममें हैं वह सद्यःप्राणहारक और उनमें एकही न होनेसे अथवा आघातादि अल्पहोनेसे कालांतरमें प्राणहरण करेहैं। और जिसमें मांसादि दो पदार्थ न होवे वो मर्म विशल्यघ्न जानना, तथा तीन पदार्थ न्यून होनेसे वैकल्यकारक और मांसादिक एकही होय तो वह मर्म रुजाकर जानना; यद्यपि गुद, बस्ति, नाभि, हृदय ये मर्म सद्यःप्राणहारक हैं, इनमें हड्डी प्रगट नहीं दीसे परन्तु अव्यक्त अस्थिकी शक्तिकरके सद्यःप्राणहर कहे हैं।

स्तनमूल, अपलाप, अपस्तंब, सीमंत, कटितरुण, पार्श्वसंधी, बृहती, नितम्ब इतने मर्म मांसहीन हैं। स्तनरोहित, तल, हृदय, क्षिप्र, इन्द्रबस्ति इतने मर्म अस्थिहीनहै। उत्क्षेपमर्म मांस और संधिहीन है। अणवसंज्ञकमर्म मांस, शिरा और स्नायुहीनहैं। गुल्फ मणिवन्ध और कूर्चशिरस, मांस, शिरा, स्नायु और अस्थिहीन हैं। इसीप्रकार कोई मर्म एकहीन, कोई दो, कोई तीन और कोई चारहीन है, ऐसा जानना। इसजगे हीनशब्द उत्पन्नाभावमें है, न्यूनाभावमें नहीं है अर्थात् जहां जहां ऐसा लिखाहै कि अमुक मर्म मांसहीन है, तो उसजगे ऐसा न समझना, कि उनमर्मोंमें मांस नहींहै किंतु उनमर्मोंमें मांसउत्पन्न नहींहो ऐसाजानना।

मर्मोंमेंमांसादिकपांचहैंइसविषयमेंप्रत्यक्षप्रमाण।

यतश्चैवमस्थिविद्धेष्वपिशोणितदर्शनंभवत्येतत्प्रत्यक्षप्रमाणात्।

अर्थ-अस्थिमर्ममें वेधहोनेसे रुधिरनिकलताहै, इसीसे जाननाचाहिये कि सर्वमर्मोंमें सबोंका संयोग है।

शिराकेप्रकार।

चतुर्विधास्तुशिराःप्रायेणमर्मसुसन्निविष्टाः
स्नाय्वस्थिसंधिमांसानिसंतर्प्यदेहंपुष्णाति।

अर्थ-वात, पित्त, कफ और रुधिरके वहनेवाली नाडी बहुधाकरके मर्मोंमें स्थितहोकर स्नायु, अस्थि, मांस और संधि इनको तृप्तकर देहको पोषणकरे हैं।

एकदेशमर्माघातकरकेसर्वशरीरकोपीडाअथवाप्राणवियोगकहतेहैं।

ततःक्षतेमर्मणिताःप्रवृद्धःसमंततोवायुरभिस्तृणाति।प्रवृद्धमानस्तु समातरिश्वारुजःसुतीव्राःप्रतनोतिकाये ॥ रुजाभिभूतंतुततः शरीरंप्रलीयतेनश्यतिचास्यसंज्ञा। अतोहिशल्यंविनिहर्त्तुमिच्छ न्मर्माणियत्नेनपरीक्ष्यकर्षेत्।

अर्थ-मर्ममें क्षतहोनेसे वायु बढ़ता है और शिराओंमें प्रवेशकरके सर्वशरीरमें व्याप्तहोताहै, तथा पीडाकरैहै उससमय शरीर मुरझायासा होकर नष्टहोताहै अथवा मरताहै । इसीसे शल्यको यत्नपूर्वक काढनेवाले वैद्यको सर्वमर्मोंका संरक्षणकरके परीक्षापूर्वक यत्नसे शल्यको निकाले ।

मर्मोंमेंशल्यअच्छा न लगनेसेउसकीक्रियाकाविकल्पकहतेहैं ।

तत्रसद्यःप्राणहरमन्तेविद्धंकालांतरेणमारयति । कालांतरमंतेविद्धंविशल्यवद्भवति । विशल्यंप्राणहरंवैकल्यकरंभवति । वैकल्यकरंचकालांतरेक्लेदयतिरुजांचकरोति ॥

अर्थ-सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्मके अंतमें वेधहोनेसे कालांतरमें मारैहै, कालांतर मारक मर्मके अन्तमें वेधहोनेसे विशल्यके समान होता है, विशल्य अंतविद्ध होनेसे प्राणनाश अथवा वैकल्यकरे, वैकल्यकर मर्मके अंतविद्ध होनेसे आगे कोई दिवसपर्यंत क्लेदकरे और पीडा करे हैं, मर्म अतिशय विद्ध होनेसे पूर्ववत् मर्मोंकेसे कार्य करैहैं, अर्थात् रुजाकर मर्म अतिविद्ध होनेसे वैकल्यकारक होता है, इसी प्रकार और मर्मोंमें भी जानना ।

सद्यः प्राणहरादिमर्मोंकेविषयमें कालावधि कहते हैं ।

तत्रसद्यःप्राणहराणिसप्तरात्रान्मारयति । कालांतरहराणिपक्षान्मासाद्वा । तेष्वपिक्षिप्राणिकदाचिदाशुमारयंति । विशल्यप्राणहराणिचेति ।

अर्थ-सद्यःप्राणहारक मर्म सात दिवसमें मारे हैं, और कालांतर प्राणहारक मर्म पंद्रहदिनमें अथवा एक महिनेमें मारे हैं, तिनमें क्षिप्रसंज्ञकमर्म कदाचित् अतिविद्ध होनेसे तत्काल मारे हैं, उसीप्रकार विशल्यादि मर्म मारते हैं ।

क्षिप्रादिमर्मोंके स्थान ।

तत्रपादस्यांगुष्ठांगुल्योःक्षिप्रमितिमर्मतत्रविद्धस्याक्षेपकेमरणम्,स्नायुमर्मेदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरंच ।

अर्थ-पैरोंके अँगूठा और उसके समीपकी उंगली इनमें अर्धांगुल जगेमें स्नायुमर्म है, उसीको क्षिप्रमर्म कहते हैं । उसका वेध होनेसे आक्षेप वायुका रोग होकर प्राणी मरे है, यह कलांतरमें प्राणहरण करैहै ।

मांसमर्म ।

मध्यमांगुलीमनुक्रमेणमध्येपादंतलहृदयंतत्ररुजाभिर्मरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालान्तरप्राणहरंच ।

अर्थ–पैरकी मध्यमांगुलीके अनुक्रम करके बीचमें तलहृदय नामक मर्म है, उसके विद्धहोनेसे मरण होताहै, यह अर्धांगुल प्रमाण मांसमर्म कालांतरमें प्राणहारक है ।

स्नायुमर्म ।

क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयतःकूर्चस्तत्रपादस्यभ्रमणवेपनेभवतः स्नायुमर्मेदंचतुरंगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दोनोंतरफ (ऊपर नीचे) कूर्चसंज्ञक मर्म है, यह स्नायुमर्म चार अंगुलका वैकल्यकारक है, इसके वेध होनेसे पैर कांपते हैं अथवा पैर फिरे हैं ।

स्नायुमर्मकहतेहैं ।

गुल्फसंधेरधः उभयतः कूर्चशिरस्तत्ररुजाशोफौ इदमपिस्नायुमर्मएकांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–गुल्फ (टकना) संधीके नीचे दोनोंतरफ कूर्चशिरस नामक मर्म है । वो विद्ध होनेसे पीडा और सूजन इत्यादि होतेहैं, यह स्नायुमर्म एकांगुलप्रमाण वैकल्य करनेवाला है ।

संधिमर्म ।

जंघापादयोः संघातेगुल्फस्तत्ररुजास्तब्धचपादखंजतावा । संधिमर्मेदंद्व्यंगुलप्रमाणंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–पीडरी और पैर इनकी संधिको गुल्फ कहते हैं, यह संधिमर्म दो अंगुलका वैकल्पकारक है, इसमें विकार होनेसे अत्यंत पीडा होती है, पैरका रुकजाना अथवा लँगडाहो जाता है ।

मांसमर्म ।

पार्ष्णिप्रतिजंघामध्येइन्द्रबस्तिस्तत्रशोणितक्षयेमरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरम् ।

अर्थ-एडीकेपास तेरह अंगुलपर जंघाके मध्यमें इन्द्रबस्तिक नाम मांसमर्म अर्धअंगुलका है, उसमेंसे रक्तस्राव होनेसे कालांतरमें मरण होय. भोज तथा गयदासके मतसे यह मर्म दो अंगुलका है ।

संधिमर्म ।

जंघोर्वोःसंधातेजानुसंधिमर्मेदंवैकल्यकरम् ।

अर्थ-पींडरी और जंघा इनकी संधिको घोटू कहते हैं, यह संधिमर्म वैकल्यकारक दो अंगुलका है, इसमें विकार होनेसे मनुष्य लँगड़ा होताहै ।

स्नायुमर्म ।

जानुनउभयतरूर्ध्यंगुलादाणितत्रशोफाभिवृद्धि
स्तब्धसक्थिताचस्नायुमर्मेदमर्धांगुलम् ।

अर्थ-घोटूके दोनों बगल तीन अंगुलपर आणिसंज्ञक स्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, उसमें विकार होनेसे सूजन होवे और जांघोंमें स्तब्धता होवे ।

शिरामर्म ।

ऊरूमध्येऊर्व्यस्तत्रशोणितक्षयात्सक्थिशोषः
शिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ-जांघोंके मध्य देशमें ऊर्वी नामक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसजगे रुधिरक्षय होनेसे जांघ सूखजावे ।

शिरामर्म ।

ऊर्ध्वमधोवंक्षणसंधेरूरुमूलेलोहिताक्षंतत्रलोहितक्षयेन
पक्षाघातःसक्थिसादोवाशिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरंच ।

अर्थ-वंक्षणसंधिके ऊपर नीचेके अंगमें ऊरूके मूलमें लोहिताक्षसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसमें से रुधिरस्राव होनेसे पक्षाघात अथवा पैर रहजावे ।

स्नायुमर्म ।

वंक्षणवृषणयोर्विटपंतत्रपांढ्यमल्पशुक्रतावास्नायुम
र्मेदमेकांगुलंवैकल्यकरंचएवमेतानिएकादशसक्थिम
र्माणिव्याख्यातानि ।

अर्थ-वंक्षण और वृषण इनके बंधनरूप स्नायुको विटपसंज्ञक मर्म कहतेहैं,इसमें विकार होनेसे पंढपना अथवा अल्पशुक्रता होय. इसप्रकार एकपैरमें ११ मर्मकहे हैं, इसीक्रमसे दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंके मिलानेसे ४४ मर्म होते हैं ।

पेटऔरउदरइनकेमर्म ।

अतऊर्ध्वमुदरोरसोमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रवातवर्चो विरसनंस्थूलांत्रप्रतिबद्धंगुदंनाममर्मतत्रसद्योमरणम् ।

अर्थ-अब उदर और उर इनके मर्मोंको कहते हैं, तिनमें बडे आंतडोंसे बँधेहुए तथा जिनसे विष्ठा और अपानवायूकी प्रवृत्ति होती है, उसको गुदा कहते हैं, उसका आघात होनेसे तत्काल मरण होय, यह मांसमर्म चार अंगुलका है ।

मूत्राशयबस्तिमर्म ।

अल्पमांसशोणिताभ्यंतरतःकट्यांमूत्राशयोबस्तिः तत्रापिसद्योमरणंमश्मरीव्रणाद्दतेतत्राप्युभयतोभिन्ने नजीवतिएकतोवाभिन्नेमूत्रस्रावीव्रणोवाभविष्यति ॥

अर्थ-अल्पमांस तथा अल्परुधिरसे प्रगट और कमर, नाभि, पृष्ठ, मुष्क, गुदा, वंक्षण, शिश्न, इन सबके बीचमें अधोमुख एकद्वार तथा मूत्रका आशय ऐसा यह बस्तिसंज्ञक मर्महै । इसमर्ममें पथरीकृत व्रणके विना अन्यविकार होनेसे तत्काल मरण होय, इस बस्तीके दोनों तरफ छिद्र पडनेसे तत्काल मरण होय. एक अङ्गमें छिद्र पडनेसे बसमें होकर मूत्र निकलनेलगे ऐसा व्रणहोय. यह स्नायुमर्म चार अंगुलकाहै ।

नाभिमर्म ।

पक्कामाशययोर्मध्येशिराप्रभवानाभिस्त त्रापिसद्योमरणंशिरामर्मेदंचतुरंगुलम् ॥

अर्थ-पक्काशय और आमाशय इनके मध्यमें शिरासमुदायसे बनी ऐसी नाभीहै, इसमर्ममें विकारहोनेसे तत्कालमरणहोय, यह शिरामर्म चारअंगुलका है ।

आमाशयमर्म ।

स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरसिआमाशयद्वारंसत्त्वर
[illegible]
[illegible] ।

अर्थ–दोनोंस्तनोंके मध्यदेशमें व्याप्तहोकर उरके अंतमें आमाशयका द्वार और सत्वरज और तमोगुणका अधिष्ठान ऐसा हृदयसंज्ञक शिरामर्महे, यह कमलकीकली-के समान तथा अधोमुख चारअंगुलकाहे, यह सद्यमरणदेनेवालाहे ।

स्तनमूलशिरामर्म ।

स्तनयोरधस्ताद्द्व्यंगुलमुभयतस्त-
नमूलेतत्रकफपूर्णकोष्ठतयाम्रियते ॥

अर्थ–दोनों स्तनोंके नीचे दोअंगुलपर स्तनमूलसंज्ञक शिरामर्म दोअंगुलकाहे, यह कालांतरमें मारकहे, इसमें विकारहोनेसे कफकरके पूर्णकोष्ठहोकर मरेहे ।

रोहितसंज्ञकमांसमर्म ।

स्तनचुबुकयोरूर्ध्वंस्तनरोहितेतत्रलोहित
पूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांम्रियते ।

अर्थ–स्तनचिबुकके ऊपर दोअंगुलदेशमें अर्धांगुलप्रमाण स्तनरोहितसंज्ञक मांस-मर्महे, इसमें चोटलगनेसे रुधिरसे कोष्ठ परिपूर्णहोकर श्वास, खांसीके रोगसे कोई दिनमें मरे ।

अपलापशिरामर्म ।

अंशकूटयोरधस्तात्पार्श्वस्योपरिभागेऽपलापस्तत्ररक्तेनपूर्ण
भावगतेनमरणंशिरामर्मणीअर्धांगुलेकालांतरेणप्राणहरे ॥

अर्थ–अंशकूट (कंधे) के नीचे और पसवाडोंके ऊपरके भागमें अपलापसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्त्ताहे, उसमें विकार होनेसे अत्यंत-रुधिरसंचितहोनेसे रोगी मरे ।

अपस्तंबशिरामर्म ।

उभयतोरसोनाड्यौवातवहेअपस्तंबौतत्रवा-
तपूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांचम्रियते ।

अर्थ–उदरके दोनोंतरफ वातवाहकनाडीहे, उनको अपस्तंबमर्मकहते हें । उस-नाडीमें विकारहोनेसे वायुकरके कोष्ठपरिपूर्णहो श्वास खांसीके रोगसे कोईदिनमें रो- [illegible] शिरामर्म अर्धअंगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्ताहे, इसप्रकार उद-र और उरमें बारह १२ मर्मकहेहे ।

अबपीठकेमर्मकहतेहैं ।

अतऊर्ध्वंपृष्ठमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रपृष्ठवंशमुभयतः प्रतिश्रोणीकांडमस्थीनिकटितरुणे तत्रशोणितक्षयात् पांडुविवर्णोहीनश्चम्रियते ।

अर्थ—अब पृष्ठमर्मोंको कहतेहैं। तहां पीठके बांसके दोनोंतरफ आगे कमरकी जो हड्डीहैं उसको कटितरुणसंज्ञक अस्थिमर्म कहतेहैं, उसमेंआघात होकर रक्तस्राव होनेसे मनुष्य विवर्ण तथा हीनवर्ण होकर कोईदिनोंमें मरे ।

कुकुन्दरसन्धिमर्म ।

पार्श्वजघनबाहिर्भागेपृष्ठवंशमुभयतः कुकुंद- रेतत्रस्पर्शाज्ञानमधः कायेचेष्टोपघातश्च ।

अर्थ—पार्श्व और जघनके बाहरके भागमें तथा पृष्ठवंशके दोनोंतरफ कुकुंदरकहतेहैं; इसमें विकारहोनेसे वहस्थल बधिरहोजावे और कमरके पास नीचेका अंग निर्जीव होजावे ।

नितंबअस्थिमर्म ।

श्रोणिकांडयोरुपर्यामाशयाच्छादकौ पार्श्वान्तरप्रति- बद्धानितम्बौतत्राधः कायशोषोदौर्बल्याच्चमरणम् ।

अर्थ—कटितरुण अस्थिमर्म जो पूर्व कहआएहैं उसकेऊपर आमाशयका आच्छादक तथा पार्श्वसंधीसे बंधा ऐसा नितंबसंज्ञक अस्थिमर्महै, उसमें विकारहोनेसे नीचेके आधेअंगका शोषहो निर्बलपनेसे प्राणी मरेहै ।

पार्श्वसंधिशिराबंधनमर्म ।

जघनमध्यपार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वंचजघनात्पा- र्श्वसंधिस्तत्रलोहितपूर्णकोष्ठतयाम्रियते ।

अर्थ—जघनकेमध्य अंगसे तिरछा तथा ऊपरके दोनोंपार्श्वोंमें शिराओंका बंधन है । उसको पार्श्वसंधिकहते हैं, उसमें विकार होनेसे रक्तपूर्णकोष्ठ होकर थोडे दिनमें मरेहैं; इसका प्रमाण अर्धांगुल है ।

बृहतीसंज्ञकशिरामर्म ।

स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशस्यबृहतीतत्रशोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते शिरामर्मणीअर्धांगुले ।

अर्थ-स्तनमूलमर्मके अनुमानकरके पृष्ठवंशके दोनोंतरफके अंगमें बृहतीसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाणहै; उसमेंसे रुधिरकीप्रवृत्तिहोकर मनुष्य मरता है।

अंशफलकमर्म।

पृष्ठोपरिपृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंधावंशफलके।

अर्थ-पीठकेऊपर दोनोंतरफ तथा जिसजगे मन्यानाडी और कंधेन्का संयोगहुआ उसस्थलकी संधीको त्रिक कहतेहैं, उसकेसमीप अंशफलकमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकारकहै।

स्नायुबंधनअंशमर्म।

बाहुमूर्ध्वग्रीवामध्येंशपीठस्कंधबंधनेअंशेतत्रस्तब्ध
बाहुतास्नायुमर्मणीअर्धांगुलेवैकल्यकरे।

अर्थ-बाहुकाऊपरलाभाग और मन्यानाडी इनकेमध्यमें अंशफलका सहवर्त्तमान भुजशिरसे बँधीहुई स्नायुबंधनहै, उसको अंशकहतेहैं, यह स्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकरताहै।

जत्रुमूलकेऊपरकेमर्मकहते हैं।

तत्रकण्ठनाड्यामुभयतश्चतस्रोधमन्योद्वेनीले
द्वे मन्येव्यत्यासेनतत्रमूकतास्वरवैकृतमरसग्रा
हिताचाशिरामर्मणीचतुरंगुलेवैकल्यकरे।

अर्थ-कंठनाडीके दोनोंतरफ चारधमनीहैं। उनके नाममन्या तथा नीला, उनमेंसे एकएक तरफ एकमन्या और नीलाहै। ये शिरामर्म चारअंगुलप्रमाणहैं, इनमें विकारहोनेसे गूंगापना, स्वरभेद, इत्यादि विकार होतेहैं।

मातृकाशिरामर्म।

ग्रीवामुभयतश्चतस्रश्चतस्रःशिरामातृकास्तत्रसद्योमरणम्।

अर्थ-नाडकेदोनोंतफफ चारचारशिराहैं, उनआठोंको मातृकाकहतेहैं, ये शिरामर्म चारअङ्गुलप्रमाण सद्यःप्राणहारक जानने।

कृकाटिकसंधिमर्म।

शिरोग्रीवयोःसंधानेकृकाटिके। तत्रचलमूर्धतासंधि
मर्मणीअर्धांगुले।

अर्थ-मस्तक और नाड इनकेसंयोगमें कृकाटिकसंधिमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, इसमें विकारहोनेसें मस्तक कांपे, यह मर्मपीठके और मन्यानाडीके जोडमें है।

विधुरसंज्ञकस्नायुमर्म।

कर्णपृष्ठयोरधःसंश्रितेविधुरेतत्रबाधिर्यंस्नायु
मर्मणीकिंचिन्निम्नाकारेवैकल्यकारिणीच।

अर्थ-कानोंकेपिछाडी किंचित्‌नीचे विधुरसंज्ञक स्नायुमर्महै, इसमेंविकारहोनेसे मनुष्य बहिरा होताहै।

फणसंज्ञकशिरामर्म।

घ्राणमार्गमुभयतःस्रोतोमार्गप्रतिबद्धे
अभ्यन्तरतःफणेतत्रगंधाज्ञानम्।

अर्थ-नासिकाके भीतर दोनों मार्गके दोनोंतरफ बँधा फणसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारी है, इसमें विकार होनेसे गंधका ज्ञान नहींहोवे।

अपाङ्गसंज्ञकशिरामर्म।

भ्रूपुच्छांतयोरधोक्ष्णोर्बाह्यतोपाङ्गौतत्रान्ध्यंदृष्ट्युप
घातोवाशिरामर्मणीअर्धांगुलेवैकल्यकारिणीच।

अर्थ-भौहके अंतमें नीचे नेत्रोंके बाहरकी तरफ अपांगसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकर है, उसमें विकार होनेसे अंधा अथवा नेत्रविकारी होताहै।

आवर्त्तसंज्ञकसंधिमर्म।

भ्रुवोरुपरिनिम्नयोरावर्त्तौतत्राप्यान्ध्यंदृष्ट्युपघातोवा।

अर्थ-भौहके ऊपरले अङ्गमें किंचित् गढेदार प्रदेश है, उसमें आवर्त्त- संज्ञक संधिमर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारी है, उसमें चोटलगनेसे अंधा वा दृष्टीका उपघात होवे।

शंखनामकअस्थिमर्म।

भ्रुवोरंतरोपरिकर्णललाटयोर्मध्येशंखौ।
तत्रसद्योमरणंअस्थिमर्मणीअर्धांगुले।

अर्थ-भौहोंके ऊपर कान और ललाट इनमें शंखनामक अस्थिमर्म अर्धांगुल प्रमाण है, इसमें विकार होनेसे तत्काल मरे।

उत्क्षेपसंज्ञकमर्म ।

शंखयोरुपरिकेशान्तेउत्क्षेपौतत्रसशल्योजीवेत् ।

अर्थ–कनपटीके ऊपर केशपर्यंत उत्क्षेपसंज्ञकमर्म है, उसमें जबतक शल्यरहै तब-तक बचे और शल्यनिकालतेही मरजावे ।

स्थपणीशिरामर्म ।

भ्रुवोर्मध्येस्थपणीतत्रोत्क्षेपवत् ।

अर्थ–दोनों भौंहोंके मध्यमें स्थपणीसंज्ञक शिरामर्म है, इसमेंभी जबतक शल्य रहै तबतक जीवे, शल्यनिकलतेही मरे।

सीमंतसंधिमर्म ।

पंचसन्धयःशिरसिविभक्ताःसीमन्ताः।

अर्थ–मस्तकमें वर्तनोंकी संधिके सदृश पृथक् २ पांच संधिहैं, उनको सीमंत कहतेहैं. ए मर्म चारअंगुल प्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकरनेवाले जानने ।

शृंगाटकनामकशिरासंयोगमर्म ।

घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासंतर्पणीनांशिराणांमध्यशिरःसन्निपातः ।
शृङ्गाटकानितानिचत्वारिमर्माणितत्रापिसद्योमरणम् ।

अर्थ–नासिका, कान, नेत्र, जिह्वा, इनचारों इन्द्रियोंको तृप्तकरनेवाली जो शिरा उसके मुखका संयोग मस्तकमें जिस स्थलमें हुआहै, उसीजगे शृंगाटकसंज्ञक चार शिरामर्म सद्यःप्राणनाशक हैं ।

अधिपतिशिरामर्म ।

मस्तकाभ्यन्तरतउपरिष्टाच्छिरासंधिसन्निपातोरोमावर्त्तोधिपतिः।

अर्थ––मस्तकके मध्य ऊपरले भागमें जिसजगे सर्वशिरा तथा संधी इनका सं-योग हुआहै उसस्थलमें अधिपतिसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाणहै. उसके बाहरकी तरफ केशोंकी भौंरी है, ये मर्म सद्यःप्राणहारक जानना ।

मर्मोंकासूत्रोक्तप्रमाणकहतेहैं ।

उर्व्यःशिरांसिविटपेचसकक्षपार्श्वेएकैकमंगुलमितास्त
नपूर्वमूलम्।बद्धचंगुलद्वयमितंमणिबंधगुल्फंत्रीण्येवजा
नुमपरंचसकूर्पराभ्याम्।हृद्वस्तिकूर्चगुदनाभिवदंतिमूर्ध्नि

चत्वारिपंचगलकेदशयानिचद्वे । तानिस्वपाणितलकुंचि
तसंमितानि, शेषाण्यवेहिपरिविस्तरतोंगुलार्धम् ।

अर्थ–उर्वी, शिरस, विटप, कक्षधर, ए चारप्रकारके मर्म विस्तारमें एक एक अंगुल प्रमाणहै, और मणिबंध, गुल्फ, स्तनमूल, ए मर्म दोदोअंगुलके हैं. जानु,-कूर्पर, ए तीनतीनअंगुलकेहैं; तथा हृदय, बस्ति, कूर्च, गुद, नाभि सीमंत, शृंगाटक, मातृका, मन्या और नीलधमनी ए सब मर्म चारचार अंगुलके हैं और बाकीके मर्म हैं वो सब अर्धांगुल प्रमाण जानने ।

मर्मोंकाप्रयोजनकहतेहैं ।

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्यवदन्तितज्ज्ञाःशस्त्रेणकर्मक
रणंपरिहृत्यकार्यम् । पार्श्वाभिघातितमपीहनिहं
तिमर्मतस्माच्चमर्मसदनंपरिवर्जनीयम् ।

अर्थ–पूर्वोक्त मर्मोंका प्रमाण देखकर मर्मस्थानको छोड़ वैद्योंको शस्त्रक्रिया (छेदनभेदनआदि) करनी चाहिये । क्योंकि मर्मोंमें शस्त्रलगनेसे मरजावे और हाथ तथा पैर इनका छेदनहोनेसे मनुष्य बचेहें । परंतु तदवयवभूत मर्मका छेद होनेसे मरताहे ।

हाथपैरटूटनेसेबचजावेऔरमर्मभेदकर्केमरेहैंयहकहतेहैं ।

छिन्नेषुपाणिचरणेषुशिरानराणां संकोचमाप्नुरसृ
गल्पमतोनिरेति । प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतोमनु
ष्यः संछिन्नशाखतनुवन्निधनंनयाति । क्षिप्रेषुतच्च
सतलेषुहतेषुरक्तं गच्छत्यतीवपवनश्चरुजंकरोति ।
एवंविनाशमुपयातिहितत्रविद्धो * वृक्षाइवायुध
निपातवशंह्यनीशाः ॥

अर्थ–मनुष्योंके हाथ पैर टूटनेसे उसजगेकी शिराओंके मुख मुकडकर रुधिर बहुत नहीं निकले, केवल अत्यंत पीडा होती है, परंतु मरे नहीं है । और हाथपैर टूटते समय क्षिप्रमर्म अथवा तलहृदय इनमें शस्त्रलगनेसे रुधिर अत्यंत निकल कर उसजगे वायु कुपितहोकर अत्यंत पीडाकरेंहै, उस्से मनुष्य मरजाताहै । इसमें

* पाठांतरम्–निरगलत्कफपवनमथनाद्वपञ्च माप्नोति ।

दृष्टांतहै कि जैसे वृक्ष कुठार आदिकरके शाखासंधिके विषे खंडितहोनेसे पत्ते आदि सूखकर मरताहै ।

मर्मकौनसेकार्यकेउपयोगीहोतेहैंसोकहतेहैं ।

मर्माणिशल्यविषयार्धमुदाहरन्ति यस्माच्चमर्मसुहतानभवन्तिसद्यः । जीवन्तितत्रयदिवैद्यगुणेनकेचित्तेप्राप्नुवन्तिविकलत्वमसंशयंहि ॥

अर्थ—मर्मोंको शल्य (शस्त्रकंटक) विषय कहाहै, ऐसे कोई आचार्य कहते हैं, तथा शल्यकंटकादि करके शरीर और मन इनको पीडा देना या मारना इनमें मरण, कारक धर्म तो शल्यविषयक आघातकरके होताहै; परंतु तत्काल मरता नहीं है. सातदिनके अंतरसे मरे है; इसीसे मर्मोंको शल्यविषयोंका अर्ध है ऐसा कहते हैं; और मर्मस्थानमें शल्यलगनेसेभी बचजाताहै, ऐसा देखागयाहै, ऐसे कहनेसे कहते हैं कि वह वैद्यकी कुशलतासे कदाचित् कोई बचनेसे उसी उसी अंगकी विकलता होती है, वह अंगकार्योपयोगी नहीं रहै ।

मर्महतअनेकउपद्रवोंकरके मरताहै सो कहतेहैं ।

तंभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपालाजीवंतिशस्त्रविहतैश्चशरीरदेशैः। छिन्नैश्चसक्थिभुजपादकरैरशेषैर्येषांनमर्मसुकृताविषयप्रहाराः ।

अर्थ—शस्त्रसे हतशरीरमें मर्मकाप्रदेश, उग्रविकारकर्के जिन्होंके कोष्ठ, मस्तक, कपाल ये जर्जरहुए वो बचे नहीं हैं। और मर्मके विना इतर अवयव जे हस्तपादादिक इनमें घियात होनेसे जर्जरित होकर बचते हैं ।

मर्माभिघातकरकेमनुष्यमरणमेंकारणकहतेहैं ।

सोममारुततेजांसिरजःसत्वतमांसिच । मर्मसुप्रायशःपुंसां भूतात्माचावतिष्ठते। मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवंतिशरीरिणः ॥

अर्थ—पांचप्रकारका कफ, पांचप्रकारका वायु, पांचप्रकारके पित्त, भूतात्मा, रज, सत्व और तम, ये सर्व प्रायः करके मर्ममें रहतेहैं। इसीसे मर्मका छेद तथा भेद होनेसे मनुष्य मरता है ।

सद्यःप्राणहरादिमर्मपंचककेलक्षण।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः । रुजश्चविविधास्तीव्राभवन्त्याशुहतेहते । हतोनगण्यतस्मैतुध्रुवोधातुरयोग्यान् ।

अतोधातुक्षयाज्जन्तुर्वेदनाभिश्चनश्यति । हतेवैकल्यजन
नेकेवलंवैद्यनैर्गुणात्।शरीरंक्रिययायुक्तंविकलत्वमवाप्नुयात्।
विशल्यघ्नेतुविज्ञेयंपूर्वोक्तंयत्तुकारणम् ।

अर्थ-सद्यःप्राणहरणकर्त्ता मर्ममें किसीप्रकारकी चोट लगनेसे सर्वइन्द्री विकलहो स्वस्वविषयोंके ग्रहणकरनेकी शक्ति नहीं रहे, तथा मन बुद्धि इनका विपरीत होना,अनेक प्रकारकी उग्रपीडा होतीहै। और कालांतर प्राणहरणकर्त्ता मर्मोंके अभिहत होनेसे शरीरकी धातु नष्ट होतीहै और मनुष्यके वेदना होनेसे मरताहै। और वैकल्यकारक मर्मके आघातहोनेसे वैद्यकी कुशलतासे शरीर अच्छा होजावे, परंतु विकलहोताहै। और विशल्य मर्ममें जो शल्य है वो जबतक उसमें रहेहै तबतक बचताहै, यह पूर्वोक्त कारणके लक्षण करके जानने।

रुजाकरमर्मोंकोकुवैद्यबिगाडेहैं।

रुजाकराणिमर्माणिक्षतानिविविधारुजः ।
कुर्वन्त्येतानिवैकल्यंकुवैद्यवशगायदि ॥

अर्थ-रुजाकर मर्मोंको विकृति होनेसे नानाप्रकारकी पीडा होतीहै और उत्तम वैद्यके न मिलनेसे अर्थात् दुष्टवैद्यके वशहोनेसे शरीर और बलको हीनकरेहै।

मर्मसमीपचोटकरकेमर्मतुल्यपीडाकहतेहैं।

छेदभेदाभिघातेभ्योदहनाद्दारणादपि ।
उपघातंविजानीयान्मर्मणांतुल्यलक्षणम् ॥

अर्थ-मर्मसमीपके देशोंमें छेदन, भेदन, आघात, अग्निसे फुकजाना, अथवा विदीर्णहोनेसे अथवा उपघात होनेसे, उनके लक्षण पूर्वोक्त मर्मलक्षणोंके सदृश जानने।

मर्माभिघातविषयमेंवैद्ययत्नकहतेहैं।

मर्माण्यधिष्ठायचयेविकारामूर्च्छन्तिकायेविविधानराणाम् ।
प्रायेणतेकृच्छ्रतमाभवंतिनरस्ययत्नैरपिसाध्यमानाः ॥

इति सौश्रुतशारीरे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ-मर्मोंमें जो विकार होतेहैं वे सर्व शरीरमें व्याप्त हो अत्यंत क्लेशदायक होतेहैं, अतएव वैद्यको बडे यत्न करके साध्यभी कृच्छ्रतम होतेहैं।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरेदशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

(मर्मशिरास्नायुधमनीः परिहरन्) इत्यादि पदोंमें मर्मके पश्चात् शिरा शब्द-के कहनेसे प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्याय कहनेके अनंतर शिरावर्णविभागशारीर कहना उचितहै, अतएव उसीको कहते हैं ।

अथातः शिरावर्णविभक्तिशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-शिरा और उन्होंके शुक्ल लोहितादि (लाल काले पीले आदि) वर्ण और उन्होंके समुदायसें पृथक्करण जिसमें वर्णन करा, ऐसी शिरावर्णविभक्तिशारीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

सर्वशिराओंकीसंख्या ।

सप्तशिराशतानिभवन्ति ।

अर्थ-शिरा (नस) सब ७०० सातसौ हैं ।

शिराओंकेकार्य ।

याभिरिदंशरीरमारामजलमिवजलहारिणीभिः केदारमिवकुल्याभिरुपस्निह्यतेअनुगृह्यतेचाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः ।

अर्थ-शिरा सर्व शरीरमें आपाद मस्तक पर्यंत रस लेजायकर शरीरको स्निग्धकरती है, जैसें बगीचेमें वृक्षोंकी क्यारी बरहाके जलसें तृप्तहोती है, उसीप्रकार नहरके बंबासे जैसे खेत परिपूर्ण होताहै, उसीप्रकार बड़ी और छोटी शिराओंके द्वारा देह पुष्ट होता है । और आकुंचन, प्रसारण, भाषण, निद्रा, जागने आदि कर्मकरके शरीरका पालन पोषण होता है ।

शिराओंकेअतिसूक्ष्मप्रकारदृष्टांतकरकहतेहैं ।

द्रुमपत्रसेवनीनामिवतासांप्रतानाः तासांनाभिर्मूलंततश्चप्रसरंत्यूर्ध्वमधश्चतिर्यक्चप्रताना ।

अर्थ-शिराओंके विस्तार, वृक्षोंके पत्तेके शिराप्रमाण असंख्यात हैं उन सबका मूल नाभी है । उसनाभिसे निकल ऊपर नीचे आडे तिरछे सर्वदेहमें फैलरहे हैं ।

प्रमाण ।

यावत्यस्तुशिराकायेसंभवंतिशरीरिणाम् ।
नाभ्यांसर्वानिवद्धास्ताः प्रतन्वंतिसमंततः ॥

अर्थ-जितनी शरीरमें शिराहै सब नाभिसे बंधीहै, उसीजगेसे चारोंतरफ फैलीहैं। (कोई आचार्य कहतेहैं कि नाभिमें शिरा गोपुच्छाकृतिहै.)

शिराओंकाऔरप्राणोंकाआधाराधेयभावसंबंधकहतेहैं।

नाभिस्थाः प्राणिनांप्राणाः प्राणानाभिंव्यपाश्रिताः।
शिराभिरावृतानाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः।

अर्थ-सर्व प्राणियोंके प्राण नाभिमें नाभीके आवरक शिराओंका आश्रय करके रहते हैं, उन शिराओंसे इसप्रकार नाभि लिपटी हुईहै जैसे गाडीके पहियेकी नाभि लकडियों करके चारों तरफसे घिरी हुई होतीहै।

शिराओंकीगणना।

तासांमूलशिराश्चत्वारिंशत्तासांवातवाहिन्योदश
पित्तवाहिन्योदशकफवाहिन्योदश रक्तवाहिन्योदश।

अर्थ-उन नाभिचक्रस्थ शिरासमुदायमें मुख्य ४० चालीस शिराहै, तिनमें १० वातवहने वाली, १० पित्तवहने वाली, १० कफवहने वाली, और १० रुधिरके वहनेवाली सबमिलकर ४० हुई।

तासांवातवाहिनीनांवातस्थानगतानांपंचसप्तशतंभवति
तिएवं पित्तवाहिन्यः पित्तस्थाने कफवाहिन्यः कफस्थाने
रक्तवाहिन्यःरक्तस्थाने यकृत्प्लीह्नोरेवमेतानिसप्तशिराश
तानिभवन्ति।

अर्थ-वातवाहिनी शिराओंकी शाखा जो वातस्थानके प्रतिगई है वो, १७५ एकसौ पिचत्तरहैं। कफवाहिनीकी शाखा जो कफस्थानके प्रति गई है वो १७५ है. पित्तवाहिनी की पित्तस्थानमें जानेवाली १७५ हैं, और रक्तवाहिनी नाडीयोंकी शाखा जो रक्तस्थान (यकृत्प्लीह) के प्रति गईहैं वो भी १७५ एकसौ पिचत्तर, इसप्रकार सबमिलकर ७०० हुई।

अंगविभागकरकेशिरासंख्याकहतेहैं।

तत्रवातवहाशिराएकस्मिन्सक्थिनिपंचविंशतिः।
एतेनेतरसक्थियबाहूचव्याख्यातौ।

अर्थ-वातवाहिनी शिरा एक पैरमें २५ पचीस है, उसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथों में मिलकर १०० सौ होती हैं।

कोष्ठगतशिराविभाग ।

विशेषतस्तुकोष्ठेचतुस्त्रिंशत् तासांगुदमेढ्राश्रिताः श्रोण्यामष्टौद्वेपार्श्वयोः षट्पृष्ठेतावंत्यएवोदरेदशवक्षसि ।

अर्थ-कोष्ठ (मध्यप्रदेश) में ३४ वातवाहिनी, तिनमें भी गुदा और लिंग इनके आश्रयकरके रहने वाली श्रोणीमें ८ दोनों कूखोंमें २ पीठमें ६ पेटमें ६ उरमें १० सब मिलकर ३४ हुई ।

नाडसेलेकरऊपरकेभागमेंशिराओंकीसंख्या।

एकचत्वारिंशज्जत्रुणऊर्ध्वंतासांचतुर्दशग्रीवायां कर्णयोश्चतस्रोनवजिह्वायांषड्नासिकायामष्टौनेत्रयोः एवंपंचसप्तशतंवातवहानांव्याख्यातम् ।

अर्थ-जत्रु (दोनोंकंधे और नाडकी संधि) से लेकर ऊपरके प्रदेशमें ४१ वातवाहिनी शिराहें, तिनमें नाडमें १४ कर्णगत ४ जीभमें ९ नाकमें ६, नेत्रमें ८, सब मिलकर ४१ हुई । अब कोष्ठ और नाड दोनोंकी जोडनेसें १७५ शिरा होती हैं । इसीप्रकार पित्तवाहिनी आदि नाडियोंका प्रमाण जानना, परंतु पित्तवाहिनी शिरा नेत्रगत १० कर्णगत २ इतना भेद है ।

शिराश्रितवातादिकोंकेप्राकृतऔरवैकृतकार्यकहते हैं ।

क्रियाणामप्रतीघातः प्रमोहोबुद्धिकर्मणाम् ।
करोत्यन्यान्गुणांश्चापिस्वाःशिराःपवनश्चरन् ।

अर्थ-वायु स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृतिपूर्वक संचार करनेसें आकुंचन, प्रसारण, भाषण इत्यादि क्रिया यथास्थित होती हैं । तथा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि इनकी शक्ती अपने अपने कार्योंमें उत्तम रहती है । और वायु अन्यगुण प्रस्पंदन, उद्वहन, पूरण इत्यादिकोंको करे है ।

वातवाहिनीशिरागतकुपितवातकेविकारकहतेहैं।

यदातुकुपितोवायुःस्वाःशिराःप्रतिपद्यते ।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेवातसंभवाः ।

अर्थ-जिसकालमें वायु कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमे संचार करने लगे है, उसकालमें अनेक प्रकारके वातसंभव रोग होते हैं ।

पित्तकेकार्य।

भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम्।
संतर्प्यस्वाशिराःपित्तंकुर्यादन्यान्गुणानपि॥

अर्थ-पित्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृतिपूर्वक रहता हुआ उनको तृप्त करने करके शरीरमें कांति तथा अन्नपर रुचि, जठराग्निकी दीप्ति, नैरोग्यता, तेजस्वीपना, रागपंक्ति और ओज इत्यादि कर्मकरे है।

पित्तवाहिनीशिरागतकुपितपित्तकेविकारकहतेहैं।

यदातुकुपितंपित्तंसेवतेस्ववहाःशिराः।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेपित्तसंभवाः॥

अर्थ-जिसकालमें पित्त कुपितहोकर स्ववाहिनी नाड़ियोंमें संचार करनेलगे है उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके पित्तसंभव रोग होते हैं।

कफकेकार्यकहतेहैं॥

स्नेहमङ्गेषुसन्धीनांस्थैर्यंबलमुदीर्णताम्।
करोत्यन्यान्गुणांश्चापिबलासःस्वाःशिराश्चरन्॥

अर्थ-कफ, स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृती पूर्वक रहनेसे अंगोंमें सचिक्कणता, संधियोंकी स्थिरता, बल, इत्यादि गुण करे है।

विकृतकफकेकार्य।

यदातुकुपितःश्लेष्मास्वाःशिराःप्रतिपद्यते।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेश्लेष्मसंभवाः।

अर्थ-जिसकालमें कफ कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करने लगेहै उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके कफसंभव रोग होते हैं।*

रक्तकेकार्य।

धातूनापूरणंवर्णस्पर्शज्ञानमसंशयम्।
स्वाःशिराःसंचरद्रक्तंकुर्याच्चान्यान्गुणानपि॥

* वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंका वर्णन आगे दोषवर्णविज्ञानीयाध्यायमें विस्तारपूर्वक कहेंगे।

अर्थ-रक्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें निर्दोष वहनेसे धातुओंका पूरण, वर्ण,स्पर्श-ज्ञान, और पित्तके गुणसदृश गुणकरे है । तथा " रक्तवर्णप्रसादं " इत्यादि अन्य-गुणोंकोभी करे है ।

कुपितरक्तकेकार्य ।

यदातुकुपितंरक्तंसेवतेस्ववहाःशिराः ।
तदास्यविविधारोगा जायन्तेरक्तसंभवाः ।

अर्थ-जिसकालमें रुधिर कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें विचरे है, उससमय इस मनुष्यके देहमें अनेक रुधिरके विकार होते हैं ।

वातादिशिरासर्वदोषोंकोवहती हैं सो कहतेहैं ।

नहिवातंशिराःकाश्चिन्नपित्तंकेवलंतथा ।
श्लेष्माणंवाहयंत्येताअतःसर्ववहाःशिराः ॥

अर्थ-कोईभी शिरा केवल एक वायुको अथवा केवल पित्तको किंवा केवल एक कफको नहीं वहे हैं किंतु सर्वशिरा अंशतः वात पित्त कफादिकोंको वहती हैं अत-एव उनको सर्ववहा कहतेहैं ।

सर्वदोषवहनेवालीशिराओंकोहीसर्ववहत्वकहतेहैं ।

प्रदुष्टानांहिदोषाणांमूर्च्छितानांप्रधावताम् ।
ध्रुवमुन्मार्गगमनमतःसर्ववहाःस्मृताः ॥

अर्थ-कुपित वातादिदोषोंकोही सर्वशिरा अंशांश प्रमाण करके वहती हैं, इसी-से उनको सर्ववह कहते हैं ।

शिराओंकावर्णविभागकहते हैं ।

तत्रारुणावातवहाः पूर्यन्तेवायुनाशिराः । पित्तादु-
ष्णाश्चनीलाश्चशीतागौर्यःस्थिराःकफात् ॥ असृग्व
हास्तुरोहिण्यः शिरानात्युष्णशीतलाः ।

अर्थ-वातके वहनेवाली शिरा लाल और वायुकर्के पूर्ण है, पित्तके वहनेवाली शिरा उष्ण और नीलवर्णकीहै । और कफवाहिनी शिरा शीतल सपेदरंगवाली और स्थिरहै, और रक्तवाहिनी शिरा न अत्यन्त गरम न बहुत शीतल किंत मध्यम होती है; और इनका लोहितवर्ण होताहै ।

वर्जितशिराओंकोकहते हैं।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिनविच्छिद्येच्छिराभिषक्।
वैकल्यंमरणंचाशुव्यधात्तासांध्रुवंभवेत्।

अर्थ-अब उनशिराओंको कहते हैं, कि जो न खोलनी चाहिये, कदाचित् इन अवेध्य शिराओंकी फस्तखोले तो विकलता और मरण होताहै।

अवेध्यशिरा।

शिराशतानिचत्वारिविन्द्याच्छाखासुबुद्धिमान्। षट्त्रिंशच्चशतं कोष्ठेचतुःषष्टिश्चमूर्धसु। शाखासुषोडशशिराःकोष्ठेद्वात्रिंशदेवतु। पञ्चाशज्जत्रुणश्चोर्ध्वंनव्यध्याःपरिकीर्तिताः।

अर्थ-हाथपेरोंमें पूर्वोक्त प्रकारकरके४०० शिराहैं, तिनमें१६ शिराओंका खोलना वर्जितहै, तथा मध्यप्रदेशमें १३६ शिराहैं, तिनमें ३२ शिराओंकी फस्त खोलना वर्जितहै, तथा मस्तकमें १६४ तिनमें ५० शिरावेधने योग्य नहीं हैं।

शाखागत १६ अवेधशिरा।

जालधराचैकातिस्रश्चाभ्यन्तरास्तत्रोर्वीसंज्ञेद्वे लोहिताख्यसंज्ञैका।

अर्थ-हाथ और पैरमें १६ नाडी वेधनेयोग्य नहीं हैं, तिनमें १ जालधरा और तीनशिरा भीतरहैं; उनमें दोशिरा उर्वी संज्ञक हैं, और तीसरी लोहितसंज्ञक है, ऐसे एक पेरमें चार और दूसरे पैरमें चार इसीप्रकार दोनों हाथोंमें ८, सब हाथ पैरकी मिलकर सोलह शिराहैं इनको न तोडे।

द्वात्रिंशच्छ्रोण्यांतासामष्टौअशस्त्रकृत्याः
द्वेद्वेविटपयोःकटिकतरुणयोश्च।

अर्थ-पृष्ठ, उदर और उर इन्में ३२ शिरा अवेध्य हैं, (इसजगे पृष्ठशब्द करके श्रोणि और पार्श्व इनका ग्रहण होताहै) सारांश यहहै कि, श्रोणिगत ८ पार्श्वगत ८ पृष्ठगत २ और उदरमें १४ ऐसे मिलकर ३२ शिरा मध्यप्रदेशमें हैं तथा कमरमें ३२ शिराहैं, तिनमें विटपसंज्ञक ४ और कटितरुणास्थि संबंधी ४ ऐसे आठ शिरा अशस्त्रकृत्यहै, अर्थात् इनकी फस्त न खोले। तथा एकएक कूखमें आठ-आठ शिराहैं; तिनमें ऊपरको गई ऐसी दो शिरा अशस्त्रकृत्य हैं तथा पृष्ठवंशके दोनों अंगोंमें २४ शिराहैं, तिनमें ऊपरको गई ऐसी बृहतीसंज्ञक ४ शिरा अशस्त्रकृत्यहैं, तथा उरमें ४० शिरा हैं, तिनमें १४ अशस्त्रकृत्य उनको वर्णन करते हैं। हृदय-

गत २ स्तनमूलगत ४, तथा स्तनरोहितगत ४, अपलाप और अपस्तंब मिलकर ४ ऐसे सब १४ उदरगत २४ तिनमें ४ अशस्त्रकृत्यहें, ऐसे ३२ शिरा मध्यप्रदेशगत जाननी, तथा जत्रुसें लेकर ऊपरके प्रदेशमें १६४ शिराहें, तिनमें ५८ शिरा नाडमें है, तिनमें मातृका ४ मन्या २ नीला २ कृकाटिकगत २ विधुरगत २ सब मिलकर १६ शिरा नाडमें अशस्त्रकृत्यहें, अर्थात् इनकी फस्त न खोलनी चाहिये।

ठोडीकीशिरावेध।

हनोरुभयतोष्टावष्टौतासांसंधिधमन्यौद्वेद्वेपरिहरेत्।

अर्थ-ठोडीके दोनोंतरफ आठ २ शिरा हैं, तिनमें ठोडीकी संधिके हेतुभूत ऐसी एकएक तरफ २ हें, येही केवल ४ शिरामात्र अवेधयोग्य हें, ठोडीके सोलहशिरा नाडके अंतर्भूतहें, इसीसे पृथक् नहीं कही गई. किसी आचार्यके मतसे ठोडीमें १६ शिरा पृथक् हें, तिनमें दो संधिबंधन मर्मरूप वर्जित हें।

जिह्वाकीशिरा।

पट्त्रिंशज्जिह्वायांतासामधःषोडश अशस्त्रकृत्याः रसवहेवाग्वहेच।

अर्थ-जिह्वामें ३६ शिरा हैं, तिन जिह्वागत ३६ शिराओंमें १६ शिरा नीचेके भागमें और बीसऊपरके अंगमें, तिनमें दो रसवाहिनी और दो वाणीके वहनेवाली ऐसे चारशिरा मात्रको न तोडनी चाहियें।

नासिकाकीशिरा।

द्विर्द्वादशनासायांतासामौपनासिक्यश्चतस्रःपरिहरेत् तासामेवताल्वन्येकांमृदावुद्देश्ये।

अर्थ-नासिकामें २४ शिरा हें, तिनमें नासिकाके समीप चार तथा तालुएमें काकके समीपकी १ ऐसे पांच शिरा शस्त्रकर्मोपयोगी नहीं हें।

अपाङ्गकीशिरावेध।

पट्त्रिंशदुभयोर्नेत्रयोस्तासामेकैकामपाङ्गयोःपरिहरेत्।

अर्थ-नेत्रमें ३६ शिराहें, तिनमें अपाङ्गगत (नेत्रकेअंतकेभागमें) एकएक त्याज्य हें।

नासानेत्रादिकोंमेंशिरावेध।

नासानेत्रताल्वुललाटेपष्टिस्तासांकेशान्तानुगताश्चतस्रः आवर्त्तयोरेकैकास्थपण्यांचैकापरिहर्तव्या।

अर्थ-ललाटमें ६० शिराहैं, तिन्होंमें आवर्त्तमर्मके समीपकी ४ शिरा तथा आवर्त्तमें एकएक और स्थपणीमें १ ऐसे ७ शिरा त्यागने योग्य हैं, ललाटगत ६० शिरा नासिका तथा नेत्रमें जानेवालीहैं, इसीसे नहीं कहीं अर्थात् २४ नाककी और ३६ नेत्रकी येही मिलकर ६० शिरा ललाटमें हैं।

शंखगतशिरावेध।

शंखयोर्दशतासामेकैकांपरिहरेत् ।

अर्थ-शंख (कनपटी) में १० शिरा हैं, तिनमें एकएक त्यागने योग्य है, शंखगत शिरा येभी नासिका नेत्रगतही हैं।

मस्तकसीमंतऔरअधिपतिइनमेंशिरावेध।

द्वादशमूर्धनितासामुत्क्षेपयोर्द्वेपरिहरेत् ।
सीमन्तेष्वेकैकामाधिपतौ ।

अर्थ-मस्तकमें १२ शिराहैं, तिनमें उत्क्षेप मर्मगत एकएक और सीमंतगत ५ अधिपति गत एक ऐसे आठ शिरा त्यागने योग्यहैं, येभी शिरा नेत्रगतहीहैं, इसीसे प्रथक् इनके नाम नहीं कहे।

गिनीहुईशिराओंकीन्यूनाधिकताकहतेहैं।

व्याप्नुवन्त्यभितोदेहंनाभितःप्रसृताःशिराः।
प्रतानाःपद्मिनीकन्दाद्बिशादीनांजलंयथा ॥

अर्थ-शिरा, नाभिसे निकलकर विस्तृतहो सर्वदेहमें व्याप्त होतीहैं, जैसे कमलनीकन्दसे मृणालतन्तु निकलकर जलमें फैलते हैं। अतएव उक्त संख्यामें न्यूनाधिक्य मालूम होताहै।

अथमतान्तरेणविशेषमाह।

धमन्यइवविज्ञेयाःशिराश्चसर्वदेहगाः। रक्तस्रोतःप्रवाहिण्यो देहरक्षणहेतवः। शिरस्युरसिकण्ठेचबाह्वोरपिचयाःस्थिताः। सर्वास्ताजत्रुणोरारान्मिलित्वैकत्वमागताः । सक्थ्नोरुदर बस्त्योर्याश्चास्तिदेशेचसङ्गताः । भित्त्वावक्षस्थलेपेशीनय न्त्यस्त्रंहृदालयम् । शिराभिर्निखिलाभिश्चशिरासङ्गमजात योःद्वयोर्महत्योःशिरयोरप्यंतेशोणितंसदा॥हृदयाच्छोणितं

शुद्धमाश्रित्यधमनीपथम् । गुणविश्राणनाद्देहंक्षीणंपुष्णाति नित्यशः । एवंत्यक्तगुणंकृष्णंदेहनाशगुणान्वितम् ॥ शिरा भिश्चपुनर्यातिदक्षिणंहृदयालयम् । तत्रनिःश्वासवातेनवीत दोषंगुणान्वितम् । सुरक्तंधमनीभिश्चपुनर्भ्रमतिवर्ष्मतत् । ए केकस्याधमन्यश्चकुत्रचित्पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ विद्यमानेशिरेद्वेद्वे वहतोदुष्टशोणितम् । नाड्यःसूक्ष्मानयन्त्यस्रंधमनीभ्यःशि राःसदा । शिराभिर्हृदयंयातिततस्तद्धमनींपुनः । एवंपुनः पुनर्देहंभ्रमेदस्रंनिरंतरम् । आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्युंसर्व स्यदेहिनः। निवृत्तायांगतौरक्तस्रोतसांसद्यएवहि । मृत्युर्भव तिजीवस्यविचिकित्सानविद्यते । सन्तिसूक्ष्माःशिराःकाश्चि त्काश्चिच्चपृथुलास्तथा । काश्चिद्गंभीरदेहस्थाआगम्भीरग तास्तथा । बाह्वोःसक्थ्नोरधःस्थानाअगम्भीरस्थिताहियाः । अमांसलेषुदेशेषुव्याधिक्षीणस्यदेहिनः । शिराव्यक्ततराः स्युस्तास्तद्बलक्षयलक्षणम् । बृंहणंवातशमनंतत्रकार्यंयथा यथम् । इति श्रीसौश्रुतशारीरेसप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–धमनियोंके सदृश शिरा सर्वदेहगत जाननी, ये रुधिरको स्रोतोद्वारा वहन करके देहके रक्षणकी हेतुभूत हैं. मस्तक, वक्षस्थल, कंठ और बाहू दोनों इन सब स्थानोंमें शिरा स्थित हैं, ये सब जत्रुके निकट आय मिलकर एक होगई है; सक्थिद्वय, उदर और बस्ती इन स्थानोंकी सब शिराहैं वो सब बस्तिदेशमें मिलकर एकहोकर वक्षस्थलस्थ पेशियोंको भेदकर हृत्कोष्ठमें प्राप्त हुई हैं. देहमें जितनीशिरा हैं वो सब इन दोनों बडी शिराओंमें मिलकर रुधिरको हृदयमें प्राप्त करेंदें, और ओरस्थानके सदृश शोणितयंत्रशिराकी अवस्थिति जाननी. हृदयसे शुद्धशोणित निकलकर धमनीमार्ग होकर समस्त देहमें परिभ्रमण करके क्षीण अंगोंको आत्मगुण देकर नित्य पोषण करेंदें, इसप्रकार गुणहीन कृष्णवर्ण और देहनाशक शक्तिसंपन्न होवे. यह दुष्टशोणित शिरामार्गदो दक्षिण हृत्प्रकोष्ठमें प्राप्त होता है, उसजगे निःश्वासकी पवनके योगसे दोषवर्जित देह पोषणशक्तिसम्पन्न तथा लोहितवर्ण होकर फिर दूसरीवार धमनीमार्गद्वो देहमें भ्रमण करेंदें, किसीकिसी स्थलमें एक एक धमनीके दोनों पार्श्वोंमें दोदो शिरा विद्यमानदें, वे दुष्टशोणितको वहती

है। छोटीछोटी नाडीसमूह धमनी से शिराओंमें रुधिरको लाती है, उन शिराओंमें होकर वह रुधिर हृदयमें आसहो फिर उसी प्रकार विशुद्धहो पुनर्वार धमनी नाडियोंमें होकर देहमें घूमेंहै, इसीप्रकार देहमें रुधिर निरन्तर घूमा करेहै जबसे बालक गर्भसे निकल पृथ्वीमें गिरेहै और जबतक मृत्यु नहीं हो तावत्कालपर्यंत इसकी देहमें निरन्तर यह रुधिर भ्रमण करेहै कभी डोलनेसे बंद नहींहोता। कदाचित् किसी कारणवश रक्तस्रोतकी गति रुकजावे तो तत्क्षण मृत्युहोवे। इसमें कुछ संदेह नहींहै, और फिर इसका कुछ इलाजभी नहींहै, शिरासमूहके मध्यमें बहुतसी शिरा सूक्ष्म और बहुतसी स्थूल हैं कोई शिरा देहके गंभीर स्थानोंमें स्थितहैं । और कोई अगंभीर अर्थात् बाहरके देशमें निस्सेह विद्यमानहैं। बाहु और सक्थिद्वयके अधोभागस्थ अगंभीर शिराहै। अमांसल प्रदेशस्थ शिरा तथा व्याधिक्षीण देहवाले मनुष्योंके अंग की शिरासमूह सुव्यक्त अर्थात् चक्षुद्वारा लक्षित होतीहै । इसप्रकार शिराप्रकाश होनेसे बलक्षीणके लक्षण जानने । ऐसे मनुष्योंको बृंहण और वायुप्रशमक क्रिया कर्त्तव्यहै। १० नंबरका चित्र देखो।

इतिश्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेएकादशस्तरङ्गः॥ ११॥

अष्टमोऽध्यायः।

शिरावर्णविभक्तिकहनेकेपश्चात्ज्ञातव्यव्याधिमेंशिरावेधविधिकहनीउचित है सोई कहतेहैं-

अथातःशिराव्यधविधिशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-अथेत्यनंतरं अर्थात् शिरावर्णविभक्ति कहनेके पश्चात् अब हम शिरावेधशारीरको कहेंगे.

फस्तखोलनावर्जित।

बालस्यरूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रान्तमद्याध्वस्त्रीकर्षितवां
तविरक्तास्थापितानुवासितजागरित क्लीबकृशगर्भिणीनां
कासश्वासशोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासा
मूर्च्छाप्रपीडितानांशिरांनविध्येत्।

अर्थ-बालक, रूखादेहवाला, क्षतक्षय करके क्षीण, चोट आदि करके क्षतधातु क्षीणहुआ, डरपोका, थकाहुआ, मद्यपान करके शुष्क, मार्ग अथवा स्त्रीके संयोगकरके थकाहुआ, अत्यंत वमन करचुकाहो, दस्तवाला, निरूहवस्ति तथा अनुवासनवस्ति ये उपचार कराहुआ, पंढ (हिजडा) कृश, गर्भिणी, खांसी, श्वास, क्षय-

रोग, अत्यंत ज्वरवान्, आक्षेपकवायु, पक्षाघात (लकवा) उपवास, मूर्च्छा, प्यास इनकरके पीडित मनुष्योंकी शिरावेध अर्थात् फस्त न खोले । इस्का कारण यह है कि, खांसी, श्वास, घोरज्वर, आक्षेपक, पक्षाघात और क्षतक्षीणवाले पुरुषोंके रक्तस्राव होनेसे वायुकोप होनेका भय होताहै । डरपे हुए मनुष्यमें तमोगुण होताहै। इसीसे उसको रुधिरके देखतेही मूर्च्छा होतीहै । तथा श्रीमंत मनुष्योंके वायु कुपित होताहै । वह रक्तस्रावसे अधिक कुपितहो शरीरका नाश करेहै । मद्यप मनुष्यका रुधिर काढनेसे मदकरके विक्षिप्त चित्तहो अतिमूर्च्छित होताहै, और मार्ग तथा स्त्री इनकरके कृश मनुष्यके रुधिर निकालनेसे वातकोप होताहै । आस्थापित, तथा कुपित इन्होंको रुधिर निकालनेसें वातकुपित होताहै । अनुवासित मनुष्यके जठराग्नि मंद होताहै, यदि ऐसैका रुधिर काढाजाय तो अतिमंदाग्नि होवे, नपुंसकका रुधिर काढनेसे सर्वप्रधान धातुकाक्षय होकर निःसंदेह मरे । कृश और गर्भिणी इनका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होनेपर देहनाशका भय होताहै, श्वास, खांसी, शोष, इनसे ग्रस्त मनुष्योंका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होकर देहनाशकी शंका होतीहै ।

रक्तस्रावमेंसाध्यविकार।

शोणितावसेकसाध्याश्चयेविकारास्तेपुवापक्केपुअन्येपुचानु रक्तेपुयथाभ्यासंयथान्यायंशिरांविध्येत् ।

अर्थ-जे विकार रक्तस्राव साध्यहैं उनको कहतेहैं, त्वग्दोष, ग्रंथी (गांठ) सूजन, रक्तविकार ये रक्तस्राव साध्यहै, ऐसा शोणितवर्णनप्रसंगमें कहाहै । ये विकार पक्क होनेपर रक्तस्राव करना चाहिये और जिनसे पश्चात् दाहादि विकारहोवे ऐसे पूर्वरक्तसेक साध्योंमें नहींकहे, उनमें रोगस्थलके समीप प्रदेशको रक्तके यथान्याय अर्थात् स्नेहस्वेदादि उपचारपूर्वक कढाना चाहिये ।

फस्तखोलनेमेंवर्जितमनुष्योंकीभीफस्तखोलनाकहतेहैं।

प्रतिपिद्धानामपिविशेषोपसर्गेआत्यये केवाशिराव्यधनमप्रतिपिद्धम् ।

अर्थ-रक्तस्रावके विषयमें जो वर्जित बाल, क्षीण इत्यादि प्रथम कहआएहैं उन्होंके अतिउपद्रव देनेवाली व्याधि अथवा मृत्युकारक विद्रधि आदि रक्तस्राव साध्य व्याधिहोनेसे, रक्तकढाना निषेध नहींहै, अर्थात् ऐसे रोगमें अवश्य रुधिरकढाना चाहिये ।

शिरावेधकेपूर्वकृत्य।

तत्रस्निग्धस्विन्नमातुरंयथादोषप्रत्यनीकंद्रवप्रायमन्नंभुक्तवंतंयवागूंपीतवंतंवायथाकालमुपस्थाप्यासीनंस्थितंवाप्राणानबाधमानोवस्त्रपट्टचर्मवल्कलानामन्यतमेनयंत्रयित्वानातिगाढंनातिशिथिलंशरीरप्रदेशमासाद्यंप्राप्तंशस्त्रमादायशिरांविध्येत्।

अर्थ–फस्त खोलने के पूर्व रोगीके तेल मालिस आदि उपचार कराने चाहिये, और पसीने निकाले; परंतु नैरोग्य पुरुषकी फस्त न खोलनी चाहिये। तथा दोषोंके विरुद्ध न होवे ऐसे द्रवद्रव्य प्रधान अन्न, अथवा यवागू, स्वस्थ होने से भोजनकरके, तथा वर्षा और बद्दल न होवे ऐसे दिन वैद्य, रोगीको अपने पास खड़ा कर अथवा बिठलाकर धीरज देकर वस्त्र, पटवस्त्र, चर्म, अथवा वल्कल इनमेंसे किसी एकसे लपेटे; परंतु पट्टवेष्टन (बांधनेकी पट्टी आदि)मस्तकमें बांधनेकी आवश्यकता होवे तो मस्तकको बहुत करडा न बांधे, और हाथपैर बांधने होवे तो इनको बहुत ढीले न बांधे, इसप्रकार बांधकर मर्मप्रदेस स्थानको बचायकर जैसा मिले ऐसे शस्त्रको लेकर शिराको वेधे अर्थात् फस्त खोल रुधिर निकाले।

वेधकालकहतेहैं.

नवातिशीतेनात्युष्णेनप्रवातेनचाभ्रिते।
शिराणांव्यधनंकार्यमरोगेवाकदाचन।

अर्थ–अतिशीतदेश, अतिशीतकाल, तथा अत्युष्णदेश और काल, तथा अत्यंत पवन चलता हो ऐसा दिन, तथा बद्दलहोरहा हो ऐसा दिवस इनमें शिरावेध (फस्त) न करे इसीप्रकार रोगहीन पुरुषकी भी फस्त न खोले।

शिरोत्थापनकाप्रकारकहतेहैं.

तत्रव्याध्यशिरंपुरुषंप्रत्यादित्यमुखंमरत्निमात्रोच्छ्रितमुपवेश्यासनेसक्थ्नोराकुंचितयोर्निवेश्यकूर्परेसंधिद्वयस्योपरिहस्तावंतर्गूढांगुष्ठकृतमुष्टिमन्ययोःस्थापयित्वायंत्रेणशाटकंग्रीवासुग्रथ्योरुपरिपरिक्षिप्यान्येनपुरुषेणपश्चात्स्थितेनवामहस्तेनोत्तानशाटकांतद्वयंग्राहयित्वाततोवैद्योयानावशिरोत्थापनार्थंनात्यायितशिथिलंयंत्रमाचरेत्असृक्स्राव

णार्थंचयंत्रंपृष्टमध्येपीडयेदितिकर्मपुरुषमुखंवायुनापूरये देषउत्तमाङ्गगतानांमन्तर्मुखवर्जानांशिराणांयंत्रेणव्यध नेविधिः ।

अर्थ–जिस पुरुषकी फस्तखोलनी हो उसको सूर्याभिमुखकर एकविलस्त ऊंचा आसनपर बैठाल पैरोंको नीचे लटकायदेवे और यत्किंचित् झुकडकर ऊंकरूं के स दृश बैठारे और उसपुरुष के दोनों कूर्पर (कोहनी) घोटुओंकी संधिके ऊपर धर- वावे और अंगूठेको भीतरकर मुष्टीबंद करावे अथवा हाथमें किसी वस्तुकी पोटली देकर दोनोंको एकत्र करके धरावे, और नाडमें वस्त्रकी पट्टी बांध और यंत्र करके अर्थात् दोनोंबगल कपडे आदिकी दृढपट्टी लेकर उसको कलाईके तीन अंगुलठौर- को छोड दृढबांधे, और दूसरा मनुष्य उस मनुष्यके पिछाडी खडा होकर उस यंत्र- रूप शाडीके दोनोंपरले अर्थात् जो नाडमें पडीहै उसको दोनोंहाथोंसे पकडकर ख- डारहै, अथवा दोनोंपरलोंको वाएंहाथसे पकडकर खडारहै; पीछे उसरोगीको वैद्य आज्ञादेवेकि शिराओंके उत्थापन होने चाहिये अतएव बांएहाथसें बहुत करडा न होवे तथा अत्यंत शिथिल न होने पावे, ऐसें यंत्रको कुछउठावें और रक्त अच्छीरी- तिसें निकले इसलिये पीठमें यंत्रको अच्छी रीतिसें दाबे; जिस्का शिरावेधरूप कर्म करे उसका मुख पवनसे परिपूर्ण करे; अर्थात् उसमनुष्यको मुखद्वारा श्वासका लेना और छोडना न करने देवे । इसप्रकार उत्तमांग गत शिराका वेध यंत्रकरके करे परंतु यह विधि मुखकी शिराओंके सिवाय इतर उत्तमांगगत शिराओंमें जानना ।

पादादिगतशिरावेधनेकाप्रकार.

पादविध्यस्यपादंसमेस्थानेसुस्थितंस्थापयित्वाअन्यपाद मीषत्संकुचितमुच्चैःकृत्वाव्यध्यशिरपादंजानुसंधौशाटके नावेष्टचचहस्ताभ्यांवाप्रपीड्यगुल्फंव्यध्यप्रदेशस्योपरिच तुरंगुलेप्रोतादीनामन्यतमेनबद्धाशिरांविध्येत् ।

अर्थ–जिस मनुष्यके पैरकी शिरावेध करनी होवे; उस मनुष्यका पैर समान भूमिमें अच्छी रीतिसें धराकर दूसरे पैरको कुछसकोड ऊंचाधरे, और जिस पैरकी शिरावेधनीहो उसपैरके घोंटुओंकेनीचे दृढकपडेकी पट्टीसें बांधे, अथवा हाथोंसेदबावे, पीछे गुल्फसंधीके विषे व्यध्यस्थल छोड चार अंगुलपर वस्त्र चर्मादिकोंसे बांधकर शिरावेधकरे ।

हस्तगतशिरावेधप्रकार.

अथोपरिष्टाद्धस्तेगूढांगुष्टकृतमुष्टिंसम्यगा

सनेस्थापयित्वासुखोपविष्टस्यपूर्ववद्यंत्रंबद्ध्वा हस्तशिरांविध्यात् ।

अर्थ-ऊपरके प्रदेशोंमें हस्तादिकोंका शिरावेध करनेके लिये पूर्ववत् अंगूठेको भीतरी दबाकर मुट्ठी बांध लेवे; और मध्य प्रदेशको त्याग ऊपरकी तरफ चार अंगुलपर पट्टीसे बांध शिरावेध कर रुधिर निकालना चाहिये। इसप्रकार गृध्रसी और विश्वाची इन वातरोगोंमें आसनपर बिठलाकर कुछ गोंटू और कोहनीको संकोचित करके शिरावेधकरे।

श्रोणीपीठऔरकंधइनमेंशिरावेध.

श्रोणीपृष्ठस्कन्धेषुउन्नामितपृष्ठस्यावदुःशिरःस्कन्धस्योपविष्टस्यविस्फूर्जितस्यपृष्ठस्य ।

अर्थ-जिस मनुष्यकी पीठ उन्नामित कहिये नवीहुईहो, तथा जिसका अवटु कहिये नाडके पीछाडीकी शिरा और मस्तक तथा स्कंध इनमें विकार होकर स्तंभित सरीके होनेसें तथा पृष्ठविस्फूर्जित कहिये चौडी होनेसें श्रोणी, पृष्ठ, स्कंध इनमें शिरावेध कर रुधिर कढावे, तथा जिस्का मध्यशरीर स्तंभित होजावे उसकी फस्त खोले ।

कौनसीठौरशिरावेधकरेयहकहते.

बाहुभ्यामवलम्बमानदेहस्यपार्श्वयोरवनामितमेढ्रस्यमेढ्रे विदष्टजिह्वाग्रस्याधोजिह्वायाः। अतिव्यात्ताननस्यतालुनि दन्तमूलेषुच ।

अर्थ-जिस पुरुषके दोनोंहाथ स्तंभित सरीखे लंबायमान होकर दोनों कूखोंसें चिपटेसे होजावें; उसके पार्श्वसंबंधी शिराका वेध करे, तथा शिश्न स्तब्ध होनेसें शिश्नसंबंधीशिरावेधकरावे, और जिह्वाग्र काटनेसें जैसी हो ऐसी होजावे उसके जीह्वाके नीचेकी शिरा वेधे, तथा मुख फटासा रहजावे उस पुरुषकी तालुसम्बंधी और दंतसंबंधी शिरावेधनी चाहिये।

अनुक्तयंत्रप्रकारकहतेहैं.

एवंयन्त्रोपायानन्यांश्चशिरोत्थापनहेतून्बुद्ध्यावेक्ष्य शरीरवशेनव्याधिवशेनविदध्यात् ।

अर्थ-इसप्रकार यंत्रोपाय, तथा अन्ययंत्रोपाय शिराओंके उत्थापनके हेतु कहे

है ऐसे उपायोंकर्के वैद्य स्वबुद्धिसे व्याधि और शरीरका बल देख उसके अनुसार उपचारकरे, अर्थात् शरीरप्रदेशविशेष करके शस्त्रविशेषकी योजना करनी चाहिये।

वेध्यशरीरकेतारतम्यकरकेशस्त्रयोजना.

मांसलेष्ववकाशेषुयवमात्रंशस्त्रंविदध्यादतोन्यथा
अर्धयवमात्रंव्रीहिमुखेनास्थ्नामुपरि ।

अर्थ–मांसल प्रदेश कहिये जठर, कूले ऊरू आदि इनमें शिराविध करके रक्त काढनेके लिये यवप्रमाण शस्त्र योजना करे । और इतर स्थलके रुधिर निकालनेको अर्धयवके प्रमाण शस्त्रलेवे, और बहुतहड्डीवाले अंगमें रुधिर निकालनेके वास्ते चावलकी कनीके समान शस्त्रलेवे, शीत, उष्ण, वर्षा, इस भेदसे काल तीनप्रकारका है, उनमें विशेष कहते हैं ।

शिरावेधकाल ।

व्यभ्रेवर्षासुग्रीष्मेशीतलेहेमन्तेउष्णे ।

अर्थ–वर्षाकालमें जिस दिन बद्दल न हो उसदिन फस्त खोले, और ग्रीष्म ऋतुमें जिसदिन अत्यंत गरमी न हो उसदिन शिरावेध करे, अथवा तीसरे प्रहर जिससमय ठंडक होजावे उससमय रुधिर निकलवावे, हेमन्त ऋतुमें जिसदिन गरमी होवे उससमय रुधिर निकलवाना चाहिये, परन्तु हेमंत ऋतुमें रोग असाध्य प्राणनाशक दीखे तो कढवावे, अन्यथा न कढानाचाहिये। इसजगे हेमन्तग्रहण सामान्य शीतकालका बोधक है ।

सुविद्धशिराके लक्षण ।

सम्यक्शस्त्रनिपातेनधारयायास्रवेदसृक् ।
मुहूर्तंरुद्धातिष्ठेत्तुसुविद्धांतांविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–उत्तम शस्त्र लगनेसे धारारूप करके क्षणमात्र रक्त निकले और पट्टीबांधनेके पश्चात् निकले नहीं वह शिरा उत्तम विधी जाननी ।

दूषिताशिराकेवेधहोनेसेप्रथमदुष्टरुधिरनिकलताहैयह
दृष्टांतदेकरकहतेहैं।

यथाकुसुम्भपुष्पेभ्यःपूर्वंस्रवतिपीतिका ॥
तथाशिरासुदुष्टासुदुष्टमग्रेप्रवर्तते ।

अर्थ–जैसे कसूमके फूल भिजानेसे प्रथम पीला पानी निकलताहै, पश्चात् उत्तम

रंग निकले है. उसीप्रकार फस्तखोलनेसे प्रथम विकृत रुधिर निकलकर पीछे उत्तम रुधिर निकलता है।

उत्तमविद्धहोनेपरभीरुधिरननिकलनेकाकारण।

मूर्छितस्यातिभीतस्यश्रांतस्यतृपितस्यच।
नवहंतिशिराविद्धास्तथानुत्थितयंत्रिता॥

अर्थ–फस्त खोलनेके समय जिस मनुष्यको मूर्च्छा आजावे, अथवा अत्यंत डरपे, तथा अत्यंत श्रमयुक्त होजावे, वा अत्यंत प्यासाहो, ऐसे मनुष्यकी शिरासे रुधिर अच्छे प्रकार नहीं स्रवे। कारण यह है कि मूर्छादिक करके वायू कोपको प्राप्तहो शिरा (नसों) के मुखको बंदकर देताहै। तथा शिराके फूलनेबिना यदि वेधी जावे तोभी रुधिर नहीं निकले, कारण यह है कि, ऐसी शिराओंसे रक्तप्रवाह अभिमुख नहीं होवे.

क्षीणमनुष्यके रुधिरकाढनेपर अत्यंत घबडाहट होनेसे
क्रम कहतेहैं।

क्षीणस्यबहुदोपस्यमूर्च्छयाभिहतस्यच।
भूयोपराह्णेविश्राव्याअपरेद्युरुथहेपिवा॥

अर्थ–जो मनुष्य अत्यंत क्षीण होगयाहो, तथा जिसकी देहमें वातादि दोप अत्यंत प्रबल होवे, उस मनुष्यका रुधिर एकहीवार न काढे, किंतु दूसरीवार अपराह्णमें अथवा दूसरे तीसरे दिन कढावे। तथा रुधिर काढते समय जिसको मूर्छा आयजावे उसकाभी रुधिर एकहीवार न निकाले, धीरेधीरे अपराह्ण कालमें अथवा दूसरे तीसरे दिन काढना चाहिये।

रक्तस्रावकाबहुधानिषेध।

रक्तंसशेपदोपंतुकुर्यादपिविचक्षणः।
नचातिनिस्रुतंकुर्याच्छेपंसंशमनैर्जयेत्॥

अर्थ–विचक्षण वैद्य बहुत रुधिर निकाल एकही दफे दोप दूर न करे, किंतु कुछ शेप रहनेदे अब जो शेप दोप थोडे रहगएहों उनको संशमन आदि औपधोंकरके जीते।

रक्तकाढनेकीपरमावधि.

बलिनोबहुदोपस्यवयस्यस्यशरीरिणः।
परंप्रमाणमिच्छंतिप्रस्थंशोणितमोक्षणे॥

अर्थ–जो पुरुष बलवान्हो तथा जिसके शरीरमें वातादि दोष बलवान्हो तथा प्रौढ अवस्था हो, उसमनुष्यका रुधिर १ एकप्रस्थ निकालना चाहिये (इसजगे १३॥ साढेतेरह पलका एकप्रस्थ होताहै.)

इस्मेंप्रमाण.

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे।
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥

अर्थ–वमन और विरेचन तथा रक्तस्राव इसविषयमें साढेतेरह पलका प्रस्थ-जानना।

कौनसेरोगमेंकौनसीशिरावेधनी.

तत्रपाददाहपादहर्षअपबाहुकचिमचिमविसर्प वातशोणितवातकंटकविचर्चिकापाददारिप्रभृति षुक्षिप्रममोंपरिष्टाद्द्व्यङ्गुलेव्रीहिमुखेनाशिरांविध्येत्।

अर्थ–पाददाह, पादहर्ष, अपबाहुक, चिमचिम, विसर्प, वातरक्त, वातकंटक, विचर्चिका, और पाददारी आदिरोगोंमें तथा तत्सदृश अन्यरोगोंमें तथा तत्संबंधी अन्यरोगोंमें क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दो अंगुल जगे छोड उसजगे शिरा व्रीहिमुखप्रमाण शस्त्रकरके वेधनी, श्लीपदरोगमें उसके चिकित्सा प्रकरणमें जिस प्रमाण वेधना लिखा है, उसीप्रमाण शिरा वेधनी चाहिये, क्रोष्टुशीर्ष, खंज, पंगू इत्यादिक वात-रोगोंमें, जंघामें, इन्द्रमर्मके नीचेकी शिरावेधनी चाहिये।

अपचीरोगमेंशिरावेध.

अपच्यामिन्द्रवस्तेरधस्ताद्द्व्यंगुले।

अर्थ–अपची रोगमें, इन्द्रवस्ती मर्ममें अधोभागमें,दो अंगुल जगेमें शिरावेधनी चाहिये। परंतु अपची उत्पन्नहोतेही वेधनी चाहिये।

गृध्रसीमेंशिरावेध.

जानुसन्धेरुपर्यधोवाचतुरंगुलेगृध्रस्याम्
जानुमूलसंश्रितायांगलगंडे।

अर्थ–गृध्रसी नामक वातरोगमें, घोंटुओंके ऊपर अथवा नीचे चार अंगुल के बीच शिरावेधे। जानुमूलाश्रित शिरा गलगंडमें वेधे इसप्रकारके दूसरा पैर और हाथ इनकी शिराका वर्णन हुआ कारण यह है कि, हाथमें ये दाहादि रोग है, और उसी प्रकार शिरा भी है।

हस्तपादादिकोंमेंविशेषकहते हैं।

प्लीहमेंशिरावेध.

विशेषतस्तुबाहौकूर्परसंधेरभ्यन्तरतोबाहु मध्येप्लीह्निकनिष्ठिकानामिकयोर्मध्येवा।

अर्थ-पैरोंकी अपेक्षा हाथोंमें विशेषकर्के प्लीहसंबंधी रोगोंके दमनार्थ कूर्पर (कोहनी) की संधीको संधीके समीप भुजाके मध्यकी शिरा अथवा कनिष्ठिका उंगली और अनामिका इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधे, उसीप्रकार यकृद्दाल्युदर तथा कफोदर, कफजन्यक श्वासयुक्त, कफावृत वायुजन्य खांसी और श्वास इनमें दहनी हाथकी शिरावेधनी चाहिये।परंतु यकृद्दाल्युदरके पूर्वावस्थामे वेधनी चाहिये; कोयी आचार्य कहता है कि, श्वास खांसी अल्प होने से इनके मार्ग शुद्धकरनेमात्र-को शिरावेध करना लिखा है। किंतु आतिरिक्त होनेसे शिरावेध न करे क्योंकि श्वास खांसी में शिरावेध लिख आए है। इसी से गृध्रसीमें जो शिरावेधनी कही है वही विश्वाचीमें जाननी।

प्रवाहिकामेंशिरावेध.

श्रोणींप्रतिसमंताद्द्व्यंगुलेप्रवाहिकायांशूलिन्याम्।

अर्थ-जो रक्तकृत वातशूल करके युक्त तथा बहुत दिनोंकी प्रवाहिका उसके शांत्यर्थ श्रोणीके आसमंतात् भागकी द्व्यंगुलदेशमें शिरावेधे, और परिकर्तिका, उपदंश, शुक्रदोष, शुक्रव्यापत् इनरोगोंमे लिंगकी शिरावेधे।

मूत्रवृद्धीमेंशिरावेध।

वृषणयोः पार्श्वेमूत्रवृद्ध्याम्।

अर्थ-मूत्रवृद्धिरोग पूर्णदशामें पहुचनेसे वृषणोंके दोनों बाजू की शिरा वेधनी और नाभीके अधोभागमें सेवनीके वामभागमें ऊपरकी शिरावेधे

विद्रधितथापार्श्वशूलमेंशिरावेध.

वामपार्श्वेकक्षास्तनयोरन्तरेविद्रधोपार्श्वशूलेच।

अर्थ-इसजगे वामपार्श्व करके दोनों पार्श्व जानने, इनमें विद्रधि अथवा पार्श्व-शूलहोने से दोनो कूखोंमें और स्तन इनके मध्यमें शिरावेधनी चाहिये। उदाहरण, जैसे बाएँ अंगमें होनेसे वामस्तन और वामकूख इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधनी, उसीप्रकार दहनी बाजू जाननी, कोई ऐसे कहतेहै कि कफोदरमेंही ये शिरा वेधनी, परंतु यहबात ठीक नहीं है। क्योंकि पहले यकृदाल्युदर, और कफोदर इनमें दक्षि-णबाहुसंबंधी शिरा वेधनेके लिये कह आएहै।

वाहुशोषतथाअपवाहुकइनमेंशिरावेध।

वाहुशोषापबाहुकयोरप्येकेवदन्त्यंसयोरंतरे।

अर्थ–शोणितावृत वातजन्य जो बाहुशोष और अपबाहुक तिनमें कंधेके मध्यदेशकी शिरावेध करे, केवल एकवातसे प्रगटमें न करे, ऐसें कोई आचार्य कहते हैं। परंतु अपबाहुकको स्नेहन-स्वेदनादि उपचारोंका निषेधहै। सामान्यशिरावेधका निषेध नहीं है। बाहुशोषमें केवल वायुका निषेध है परंतु अवस्थाभेदकरके शिरावेध करावे। तथा जिस कालमें उष्णाम्ललवणादिकों करके पित्तकुपित होकर उसमें वायु मिलकर पीडादेता है उस कालमें शिरावेध करावे।

तृतीयकज्वरपरशिरावेध।

त्रिकसंधिमध्यगतांतृतीयके।

अर्थ–तृतीयक ज्वरमें कंधेके मध्यगत त्रिकसंधी कहिये नाडकीसंधी उसकी शिरावेध करे।

चातुर्थिकज्वरमेंशिरावेध।

अधःस्कंधगतामन्यतरपार्श्वस्थितांचतुर्थके।

अर्थ–चातुर्थक अर्थात् चौथैया ज्वरमें कंधेके नीचे बांईतरफ अथवा दहनी तरफकी शिरावेधे।

अपस्मारमेंशिरावेध।

हनुसंधिगतामपस्मारे।

अर्थ–अपस्मार कहिये मृगी इसरोगमें हनुसंधिके समीपस्थ शिरावेधनी चाहिये।

उन्मादरोगमेंशिरावेध।

शंककेशान्तसन्धितामुरोपाङ्गललाटेपूउन्मादे।
केचिदत्रउन्मादेअपस्मारेचेतिपठन्ति।

अर्थ–उन्मादरोगमें शंखगत, केशांतसंधिगत, उर, अपांग और ललाट इनमें शिरा वेधकरे। तथा कोई अपस्मारमें यह शिरावेधे ऐसा कहतेहैं, परंतु वाग्भटादि *ग्रंथोंके विरुद्धहोनेसे यह पाठ उत्तम नहींहै।

---

* तथाचवाग्भटः॥उरोपाङ्गललाटस्थामुन्मादेऽपस्मृतौपुनः। हनुसंधौसमस्ते वाशिराभ्रूमध्यगामिनी॥

जिह्वारोगतथादंतव्याधिमेंशिरावेध ।

जिह्वारोगेअधोजिह्वायादन्तव्याधिपुच ।

अर्थ-कंटकादि जिह्वारोग तथा कृमिदंतादि दंतरोग इनमें जिह्वाके अधोभागकी शिरा वेधे ।

तालुरोगमेंशिरावेध ।

तालुनितालव्येषु ।

अर्थ-तालुसंबंधी रोगोंमें तालुसंबंधी शिरा वेधनी चाहिये ।

कर्णशूल और कर्णरोगमें शिरावेध ।

कर्णयोरुपरिसमंतात्कर्णशूलेतद्रोगेच ।

अर्थ-कर्णशूल और इतर कर्णरोग इनमें कानके ऊपर आसमंतात् भागकी शिरा वेधे।

गंधाग्रहणादिनासारोगमें।

गंधाग्रहणेनासारोगेपुचनासाग्रे ।

अर्थ-नाकमें गंधका ज्ञान जाता रहे अथवा इतर नासिकाके रोगोंमें नासाग्रसंबंधी शिरा वेधे, कर्णशूल और गंधाग्रहण इन दोनों रोगोंके कर्णरोग और नासारोगके कहनेसेही ग्रहण होगया तथापि विशेषता दिखानेको दूसरे कहाहै ।

तिमिरपाकादिनेत्ररोगोंमें ।

तिमिरपाकप्रभृतिपुअक्ष्यामयेषु ।
उपनासिकाललाटस्थाअपांग्यावा ।

अर्थ-तिमिर और नेत्रपाक इत्यादि नेत्ररोगोंमें नासिकाके समीपकी अथवा ललाटस्थ अथवा अपांगस्थ शिरा वेधनी । अधिमंथ आदि मस्तकरोगोंमें यही शिरा वेधे, इसजगे प्रभृतिग्रहण जो करा है उससे क्षुद्ररोगोंमें जो अरुंपिका आदि मस्तकरोग लिखेहै उनका ग्रहण है ।

दुष्टशिरावेधकेलक्षण ।

अतऊर्ध्वंदुष्टव्यध्याःशिराव्याख्यास्यामः । तत्रदुर्विद्धाऽभिविद्धासंकुचितापिचिताकुट्टिताप्रस्तुताऽत्युदीर्णान्तेविद्धापरिशुष्काकूणितावेपिताऽनुत्थिता अविद्धशस्त्रहतातिर्यग्विद्धाअपविद्धाअव्यध्याविद्रुताधेनुकापुनःपुनर्विद्धाशिरास्नाय्वस्थिसंधिमर्मसुचेतिविंशतिर्दुष्टव्यध्याः ।

अर्थ-अब दुष्ट विद्ध शिराओंको कहतेहैं, जैसे कि दुर्विद्धा १ अभिविद्धा २ संकुचिता ३ पिच्चिता ४ कुट्टिता ५ अप्रस्तुता ६ अत्युदीर्णा ७ अन्तेविद्धा ८ परिशुष्का ९ कणिता १० वेपिता ११ अनुत्थिता १२ अविद्धशस्त्रहता १३ तिर्यग्विद्धा १४ अपविद्धा १५ अव्यध्या १६ विद्रुता १७ धेनुका १८ पुनःपुनर्विद्धा १९ शिरास्नायुआस्थिसंधिमर्मसुविद्धा २० इसप्रकार दुर्विद्ध शिरा वीसप्रकारकी जाननी.

दुर्विद्धशिराओंकापृथक् २ वर्णन ।

तत्रयासूक्ष्मविद्धाऽव्यक्तमसृक्स्रवतिरुजाशोफवतीसादुर्विद्धाप्रमाणातिरिक्तविद्धायामन्तःप्रविशतिशोणितमितिप्रवृत्तशोणितावासाऽतिविद्धा । कुञ्चितायामप्येवम् । कुण्ठशस्त्रमथितापृथुलीभावमापन्नापिच्चिता । अनासादितापुनःपुनरंतरयोश्चबहुशस्त्राक्षिहताकुट्टिता । शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिताप्रस्तुता । तीक्ष्णमहासुखशस्त्रविद्धात्युदीर्णा।अल्परक्तस्राविण्यन्तेविद्धा । क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णापरिशुष्का । चतुर्भागासादिताकिंचित्प्रवृत्तशोणिताकणिता । दुःस्थानबन्धनाद्वेपमानायाःशोणितसंमोहोभवतिसावेपिता । अनुत्थितविद्धायामप्येवम् । छिन्नातिप्रवृत्तशोणिताक्रियासङ्गकरीशस्त्रहता । तिर्यक्प्रणिहितशस्त्राकिंचिच्छेपातिर्यग्विद्धा । बहुशतावधिशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा । अशस्त्रकृत्याअव्यध्या । अनवस्थितविद्धाविद्रुता ।प्रदेशस्यबहुशोघटनादारोहव्यधाद्मुहुर्मुहुःशोणितास्रावाधेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्बहुशोभिन्नापुनःपुनर्विद्धा ॥

अर्थ-यदि शिरा सूक्ष्मविद्ध होनेसे अत्यंत थोडा रुधिर निकले और जिसमें पीडा तथा सूजन हो उसको दुर्विद्ध शिरा कहते है । तथा जो प्रमाणसे अधिक वेधी गईहो, उसमें रक्त भीतर प्रवेश होकर अच्छे प्रकार न निकले उसको अभिविद्धा शिरा कहतेहैं, तथा संकुचिता शिराकेभी येही चिह्नहैं. और भीतरे शस्त्रद्वारा वेध करनेसे जो शिरा मथीहुई होकर मोटी होजावे उसको पिच्चितशिरा कहतेहैं, जो शिरा अच्छी रीतिसे शुद्ध न हुईहो वह वारंवार अनेक शस्त्रोंसे वेधी गईहो उसको कुट्टिता कहतेहैं, तथा शीत भय मूर्च्छा इत्यादि कारणोंकरके जो स्रवे नहीं उसको अप्रस्तुता

कहतेहैं, तथा तीक्ष्ण और बडेमुखवाले शस्त्रसे जो शिरा विद्ध हुईहो उसको अत्युदीर्णा कहतेहैं, जिसमें थोडा रुधिर निकले उसको अंतेविद्धा कहते हैं, जो रक्तक्षीण होनेके अनन्तर वायुकरके परिपूर्ण होजावे उसे परिशुष्का कहतेहैं, जो चारोंतरफसे वेधी जावे और जिसमेंसे थोड़ा रुधिर निकले उसे कणिता कहतेहैं, जो दुष्टस्थानमें बांधनेसे कंपयुक्त होवे और रुधिर निकले नहीं उसे वेपिता कहतेहैं; और जो अच्छी रीतिसे फुली न हो उसे वेधे इसीसे उसमेंसे रुधिर निकले नहीं उसे अनुत्थिता कहतेहैं, जो शस्त्रसे टूटकर उसमेंसे अत्यंत रुधिर निकले इसीकारण अवयवोंके चलनवलनादि व्यापार बंद होजावे उस शिराको अविद्ध शस्त्रहता कहते हैं, तथा तिरछा शस्त्र लगनेसे यथार्थ विधी नही और कुछ अंश विधनेसे रहगया हो उसे तिर्यग्विद्धा कहते हैं. तथा सैकडों शस्त्रोंके लगनेसे यथार्थ न विधे उसे अपविद्धा कहते हैं; और जो शस्त्रोंके लगनेसे न विधे उसे अव्यध्या कहते हैं. तथा जगेजगे पर वेधीगई हो उसे विद्रुता कहते हैं; जो अत्यंत वेधनेसे वारंवार स्रवे उसे धेनुका कहते हैं. बहुत सूक्ष्म शस्त्र करके वेधनेसे रक्त स्रवे नहीं अर्थात् वारंवार वेधनेसे जगेजगे छिद्र पडजावे उसे पुनःपुनर्विद्धा कहते हैं; और जो अस्थिशिरा संधीमर्मोंमें विद्ध हुई है उससे यही यही अवयव पीडा करे उसे मर्मविद्ध शिरा जाननी।

शिरावेधनेमें अत्यंतसावधानीचाहिये।

शिरासुशिक्षितोनास्तिचलाह्येताःस्वभावतः।
मत्स्यवत्परिवर्त्ततेतस्माद्यत्नेनताडयेत् ॥

अर्थ-शिराओंके विषयमें अभ्यास करके निपुण ऐसा कोई नहीं होवे. इसका यह कारण है कि वे शिरा स्वभाव करके मछलीके सदृश अतिचंचल है, अतएव बहुत सावधानीके साथ वेधनी चाहिये। शस्त्रकर्ममें निपुण वैद्य उससेभी कभी२ विपर्यय होजाता है यह कहते हैं.

अयोग्यशस्त्रद्वारावेधनेकेअवगुण।

अजानतागृहीतेतुशस्त्रेकायनिपातिते।
भवन्तिव्यापदश्चैताबहवश्चाप्युपद्रवाः ॥

अर्थ-वैद्य विनाजाने दुष्टशस्त्रको लेकर शिरावेधकरे अर्थात् फस्त खोले तो अनेक प्रकारके उपद्रव तथा व्याधि होती है.

इतरउपचारोंकीअपेक्षाशिरावेधकोअधिकताकहते हैं।

स्नेहादिभिःक्रियायोगैर्नतथालेपनैरपि।
यान्त्याशुव्याधयः शांतियथाशांतिशिराव्यधात् ॥

अर्थ-जैसी शिरावेध करके व्याधि शीघ्रशांति होती है; ऐसी स्नेहन लेपन आदि उपचारोंसे शीघ्र शांति नहीं हो ।

शिरावेध चिकित्साकाअर्धांगहै ।

शिराव्यधश्चिकित्सार्धंशल्यतंत्रेप्रकीर्तितम् ।
यथाप्रणिहितंसम्यग्वस्तिःकायचिकित्सिते ।

अर्थ-चिकित्सा कहिये रोगकी प्रतिक्रिया (इलाज) उसमें फस्त खोलना प्रधान अंग है, जैसे कोष्ठशोधनके विषे वस्तिप्रयोगप्रधानहै, इसी प्रकार चिकित्सामें शिरावेधको प्रधानता है । कोई (अर्ध) शब्दको संख्यावाचक कहते हैं; अर्थात् शिरावेध आधी चिकित्सा है, और वमन, विरेचन, शमनादि सर्व आधी चिकित्सा हैं।

अबस्निग्धादिपुरुषोंकोक्रोधादिकसामान्यकरके त्यागनेयोग्यहैयहकहतेहैं ।

तत्रस्निग्धस्विन्नवांतविरक्तास्थापितानुवासितशिराविद्धैःपरि हर्तव्यानिक्रोधोपवासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामाध्ययनस्था नासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्नावलला भान्मासमेकेमन्यंते ।

अर्थ-स्निग्ध, स्विन्न, वांत, विरक्त, (जिसने दस्तोंकी औषधलीनीहो) आस्थापित, अनुवासित और शिराविद्ध; इतने पुरुषोंको क्रोधकरना, उपवास, मैथुन, दिनमें सोना, बहुतबोलना, पढ़ाना, पढ़ना, स्थान और आसन, इनकी उलटपलट और शीत, पवन, गरमी और विरुद्ध, असात्म्य अजीर्ण, ऐसे अन्न इत्यादिक वर्जित हैं ।

रक्तस्रावकरनेकेसाधन ।

शिराविषाणतुंबैस्तुजलौकाभिःपदैस्तथा ।
अवगाढंयथापूर्वंनिर्हरेदुष्टशोणितम् ॥

अर्थ-अभ्यंतराश्रित रुधिरके दूषित होनेसे उसको शिरा, विषाण, तुंबी और जोख इत्यादिकों करके पूर्वोक्त अतिक्रम न करके कढावे, स्पष्टार्थ यह है कि, अभ्यंतराश्रित रुधिर अत्यंत गाढा न होवे तो जोख लगाकर निकालना; यदि अत्यंतभीतरहो उसको तुंबडीसे निकाले और उससे भीतरी रुधिरको सिंगीसे कढावे और सर्व देहगत हो उसको शिरावेध अर्थात् फस्त खोलकर निकालना चाहिये.

स्थानभेदकरकेउपायविशेषकहतेहैं ।

अवगाढेजलौकास्यात्प्रच्छन्नंपिण्डितेहितम् ।
शिराङ्गव्यापकेरक्तेशृङ्गालावूत्वचिस्थिते ॥

इतिसौश्रुतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–अभ्यंतराश्रित रुधिर दुष्टहोनेसे जोंक लगावे और जमकर गांठदार होगया हो उसका फासणिद्वारा निकाले और सर्वांग दुष्टहुएरुधिरको शिरावेधकर निकाले. त्वचागत दूषित रुधिरको तूंबी अथवा सिंगी लगाकर निकाले.

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेद्वादशस्तरंगः ॥ १२ ॥

नवमोऽध्यायः ।

शिराव्यधविधिशारीराध्यायके अनंतर शिरा, धमनी और स्रोतस् ए सब समान होनेसे धमनीव्याकरण अर्थात् धमनीका वर्णन करेहैं ।

अथातोधमनीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–धमनीके वर्णनरूप शारीराध्यायकी व्याख्या करतेहैं ।

धमनीशब्दकीव्युत्पत्ति ।

ध्मानादनिलपूरणाद्धमन्यः ।

अर्थ–वायुकरके पूरितहोकर जिन्होंका स्फुरणहोवे उनको धमनी कहते हैं ।

धमनियोंकीसंख्या ।

चतुर्विंशतिर्धमन्योनाभिप्रभवाभिहिताः ।

अर्थ–नाभिसे २४ धमनी उत्पन्न हुईहैं, ऐसे शोणितवर्णनप्रकरणमें कहीहै ।

शिराधमनीस्रोतसोंकाऐक्यकहतेहैं ।

तत्रकेचिदाहुःशिराधमनीस्रोतसामविभागः
शिराविकाराएवधमन्यःस्रोतांसिच ।

अर्थ–कोई कहतेहैं कि शिरा, धमनी और स्रोतस् ए भिन्न नहीं हैं, किंतु कर्मभेद करके नाममात्र पृथक् २ है ।

शिरादिकोंकाभेदकहतेहैं ।

शरणात्शिरास्ताएवध्मानाद्धमन्यःस्रवणात्स्रोतांसि ।

अर्थ– (शरणात्) कहिये सर्वरस, शरीरमें जगेजगे पहुँचानेसे शरीरको पोषण करेहैं, इसीसे शिराकहतेहैं । तिनमें कोई पवनपूरितहोकर स्फुरणयुक्त होतीहै, वो धमनीनामसे विख्यात है । तथा कोई प्रकारकी शिरा मलमूत्रादिकोंको स्रवतीहै, अतएव उन्होंको स्रोतस् कहतेहैं, जैसे गेहूंका चूंन, मेंदा और दूधके दही, मक्खन आदि प्रकारांतर होजाते हैं, उसीप्रकार शिरा, धमनी और स्रोतसोंमें भेदहै ।

मतान्तर ।

आकाशीयावकाशानांदेहेनामानिदेहिनाम् ।
शिराःस्रोतांसिभागाःखंधमन्योनाड्यआशयाइत्यादि॥

अर्थ–देहधारी पुरुषोंके देहमें आकाशसंबंधी जो अवकाशहै, उसीके शिरा, धमनी, स्रोतस्, ख, नाडी और आशय इत्यादि नामहैं ।

उक्तमतकाखण्डन।

तत्तुनसम्यगन्याएवधमन्यःस्रोतांसिचशिराभ्यःकस्मा
दव्यंजनान्यत्वान्मूलजान्नियमात्कर्मवैशेष्यादागमाच्च ।

अर्थ–ऊपर कहा हुवा मत उत्तम नहींहै क्योंकि शिरासे धमनी, स्रोतस् ये जुदे२ हैं. इनका कारण यहहै, कि इन्होंके पृथक् होनेमें चार हेतुहैं, उनको कहतेहैं (व्यञ्जनान्यत्वात्) कहिये, इनके लक्षण और वर्ण नील, अरुण, शुक्ल, लोहित, इत्यादिकहैं. और शब्दादि वह धमनियोंका वर्ण नहीं कहा इसीसे (स्वधातुसमवर्णत्वम्) अर्थात् धमनी जिस २ धातुओंको वहतीहैं उसी २ धातुके वर्णसमान वर्ण जानना चाहिये. इसी प्रकार स्रोतसोंकेभी लक्षण जानने सो चरकमेंभी लिखाहै.

स्वधातुसमवर्णत्वकहते हैं ।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिच ।
स्रोतांसिदीर्घाण्याकृत्येत्यादिकम् ।

अर्थ–स्रोतस् जिस जिस धातुओंको वहतेहैं; उसीउसी धातुके समान उन्होंका वर्ण जानना, स्रोतस्, आकृति करके गोल, तथा कोई २ मोटी, कोई बारीक, लंबी-लंबी, ऐसीहै । इसप्रकार शिरा और धमनीयोंमें भेद जानना चाहिये ।

मूलनियमकहतेहैं ।

मूलजान्नियमात् । तासांमूलशिराश्चतु
श्चत्वारिंशदित्यारभ्ययावदेतानिसप्तशि-

राशतानिभवंतिधमनीनांचतुर्विंशतिधमन्यः स्रोतसांपुनर्द्वाविंशतिः।

अर्थ-मूलशिरा ४४ तिनमें से ७०० शिरा निकली हैं, तथा मूलभूत धमनी २४ हैं, और स्रोतस् २२ हैं. इसप्रकार मूलभूत शिरा, धमनी और स्रोतस् इनमें भेद जानना।

कर्मभेदकहतेहैं।

शिराणांकर्मवैशेष्यंधमनीनांशब्दरूपरसगंधवहत्वादिकंप्राणान्नरसशोणितमांसवहत्वादिकंस्रोतसाम्।

अर्थ-शिराओंके कर्म अतिघातादिक, धमनीके कर्म शब्दादि वहत्वादिक और स्रोतसोंके कर्म प्राण, अन्नरस, रुधिर मांस, मेद, इनका वहनरूप जानना। इसप्रकार कर्मभेदरूप तृतीयहेतु जानना।

आगमरूपचतुर्थहेतुकहतेहैं.

आगमोत्रायुर्वेदः सचतुर्थोभेदहेतुस्तद्यथा शिराधमन्योयोगवहानिस्रोतांसीति।

अर्थ-आगमके कहनेसे इसजगे आयुर्वेदका ग्रहणहै। वह आयुर्वेद धमनी शिरा आदिके पृथक् होनेमें चतुर्थहेतुहै; जैसे इसी आयुर्वेदशास्त्रमें शिरा, स्रोतस्, धमनी ऐसा पृथक् निर्देशकिया है, यथा [मर्मशिरास्नायुसंध्यस्थिधमनीः परिहरन्] इत्यादि वाक्योंमें शिरासे धमनी निर्दोष पृथक् करके कहीहैं। इसीसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि, शिरा धमनी और स्रोतस् ए पृथक् २ हैं।

अथ शिरास्रोतसादि परस्पर भिन्नहैं तथापि उनके कर्म मिलेहुएसे दीखतेहैं ऐसेकहतेहैं।

केवलंतुपरस्परसन्निकर्षात्सदृशागमकर्मकत्वादतिसौक्ष्म्याच्च। विभक्तकर्मणामपिअविभागइवकर्मसुभवतिअतिसंनिकृष्टत्वादिहेतुचतुष्टयेनकर्मसुअपृथक्त्वमिवभवति।

अर्थ-शिरा, धमनी, स्रोतस्, ये परस्पर मिले हुएहैं, तथा सबका आगम और कर्म ये समान हैं तथा ए सब अतिसूक्ष्म हैं। अतएव कर्मकरके विभक्त अर्थात् पृथक् २ होनेपरभी कर्मकेविषे अविभक्तसे (मिलेहुएसे) प्रतीत होतेहैं. इस विषयमें दृष्टांतहै। जैसे पांच सात प्रकारके पदार्थ एकत्रकर वारनेसे सबकी ज्वलनक्रिया

वस्तुतः भिन्नभी होनेपर एकही दीखतेहैं । इसप्रकार इसजगे समझना । उसीप्रकार दूसराहेतु कहतेहैं [सदृशागमकत्वात्] अर्थात् शिरादिकोंके आप्त वाक्य [आकाशीयावकाशानां] इत्यादि सबोंके समानहै । तीसरा हेतुकहतेहैं [सदृशकर्मकत्वात्] अर्थात् शिरा धमनी स्रोतस् इनके रसादि वहनरूपकर्म समानहैं तथा अतिसूक्ष्महैं, चारोंहेतुओंसे शिरादिकर्मविषयमें एकसे दीखतेहैं ।

नाड्यादिकोंकीगतिकहतेहैं ।

तासांखलुनाभिप्रभवानांधमनीनामूर्ध्वगा दशदशचाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यगाः ।

अर्थ–नाभिसे प्रगट हुई जो २४ धमनी, तिनमें ऊपरके भागमें जानेवाली १० और अधोभागमें जानेवाली १० तथा आडी तिरछी जानेवाली ४ धमनीहैं ऐसें २४ हुई ।

धमनीनाडियोंकेकर्म ।

ऊर्ध्वगाःशब्दरूपरसगंधप्रश्वासोच्छ्वासजृंभितक्षुधितहसित कथितरुदितादीन्विशेषानभिवहन्त्यःशरीरंधारयन्ति ।

अर्थ–ऊर्ध्वगत धमनी शब्दादि क्रियाविशेषोंको वहतीहुई देहको धारण करती है शब्द, रूप, रस, गंध, ए प्रसिद्धहैं, प्रश्वासोच्छ्वास कहिये पवनका भीतरलेना और छोड़ना, स्वप्रकृत धमनीका धर्म, रोदनादिअश्रुवाहिनीके धर्म आदिशब्दकरके रूपादिवाहिनीसंबन्धी प्रेक्षणादि कर्मोंका ग्रहण जानना.

धमनीकेकार्यकहतेहैं।

तास्तुहृदयमभिपन्नास्त्रिधाजायन्ते ।

अर्थ–ऊर्ध्वगत धमनी नाभिसे हृदयकेप्रति आयकर तीनप्रकारकी होतीहैं । तिनमें दो धमनी करके भाषण, दोसे घोषण, दोसे निद्रा, दोसे जागना, और दो अश्रुवाहिनी, तथा दो स्तनाश्रितहोकर स्त्रियोंके स्तनसंबंधी दूधको वहतीहैं, तथा वेही स्तनाश्रित होनेपर पुरुषोंके शुक्रको वहतीहै, इसप्रकार ऊर्ध्वगत धमनी तीनप्रकारके ३० विभागकेहैं । ये उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर, स्कंध, ग्रीवा बाहु इनको धारण करतीहै. तथा शब्द, घोष, निद्रा, प्रबोध, इनको प्रत्येक दोदो धमनी वहती हैं । ऐसे ये आठधमनी रजप्रवर्तित आत्मप्रयत्न प्रबोध मनोनुगत धमनीकरके ग्रहणकराजायहै । परंतु मन परमाणुरूपहै, इसीसे एककालमें उस धमनीकेविषे प्रवृत्त नहीं होता । तात्पर्य यहहैकि, उन धमनियोंमें जो धमनी मनसहवर्त्तमान युक्तहोती है उसके योगकरके शब्दादिकोंका ग्रहणहोताहै । एकही कालमें सर्व शब्दस्पर्शादि

कोंका धमनीकरके ग्रहण नहींहोवे । स्पर्शादिक तिर्य्यग्गत धमनीके कर्म आगे इसी अध्यायमें कहेंगे । भाषण (तात्वादि स्थान व्यापार निष्पादित अकारादि वर्णयुक्त शब्द) और घोष (एतद्विपरीत अव्यक्तशब्द) तथा (द्वाभ्यांस्वपितीति अर्थात् तमोगुण युक्त दो धमनी करके निद्रा लेना) सतोगुण युक्त दो धमनीकरके जागृत होना, तथा ऊर्ध्वगत धमनी उदरादिकोंको धारण करेहैं ।

अधोगतधमनीकेकार्य ।

ऊर्ध्वगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः ।
अधोगमास्तुवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम्॥

अर्थ–इसप्रकार ऊपर जानेवाली धमनियोंके कर्म कहकर अब अधोगत धमनियोंके कर्म कहतेहै.

अधोगमास्तुवातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीनधोवहन्ति
तास्तुपित्ताशयमभिप्रपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसंवि
पक्वमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योऽभिवहन्त्यःशरीरंतर्पयन्ति ।

अर्थ–अधोभागमें जानेवाली धमनी वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव, इत्यादिकोंको अधोभागमें वहतीहै, और वे धमनी पित्ताशयमें प्राप्तहो उसजगे अन्न, पानसंबंधी रस जठराग्निकी ऊष्मा करके पकहुए उनको यथास्थित योजना करके जितना पकहुआ उतनेको जहां तहां पहुचाकर सर्वशरीरको पोषण करेहै ।

अधोगतधमनीसेंऊर्ध्वशरीरपोषणकेसेंहोताहैसोकहतेहैं.

ऊर्ध्वगानांरसस्थानंचाभिपूरयन्तिमूत्रपुरी
षस्वेदांश्चविवेचयन्ति ।

अर्थ–अधोगत धमनी, ऊर्ध्वदेशगत धमनीके रसस्थानको पूर्ण करती है स्पष्टार्थ यह है कि, वे धमनी आमाशय और पक्वाशयमें प्राप्तहो अन्नरसको वर्तुलीकृत करके रसस्थानको पूर्ण करे है, और ऊर्ध्वगामिनी धमनी उसजगेसें रस जगेजगे पहुचायकर सर्व शरीरको तृप्त करे हैं, अतएव अधोगत धमनीही सर्व शरीरको पोषण करती है, ऐसें फलित होता है । और आम पक्वाशयमें अधोगत धमनी विपक्व हुए अन्नसें मूत्र, पुरीष, इत्यादिकोंको प्रथक् २ करे है, तथा उसजगे तीनप्रकार होते है अतएव ३० धमनी जाननी ।

अधोगत ३० धमनियोंकेकर्म.

तासांवातपित्तकफशोणितरसान्द्वेद्वेवहत-

स्तादशद्वेअन्नवाहिन्यौअंत्राश्रितेतोयवहेद्वेमूत्रवस्तिमभिप्रप न्नमूत्रवहेद्वेशुक्रप्रादुर्भावायद्वेविसर्गायद्वेतेएवरक्तमभिवहतो विसृजतश्चनारीणामार्त्तवसंज्ञंद्वेवर्चोनिरसिन्यौस्थूलांत्रप्रतिवद्धे ।

अर्थ–तिनमें वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, इनके वहनेवाली प्रत्येककी दोदो हैं। सर्व मिलकर १० हुई, तथा अंत्राश्रित होकर अन्नके वहनेवाली २ और उदकवहने- वाली २ मूत्राश्रित मूत्रवहनेवाली २ तथा शुक्र उत्पन्न करनेवाली २ और शुक्रका विसर्ग करनेवाली २ वेही स्त्रियोंके आर्त्तवसंज्ञक रक्त वहनेवाली २ तथा विसर्ग करनेवाली जाननी, और २ स्थूलांत्रोंसे बंधीहुई पुरीषको वहती है ।

अधावन्यास्तिर्यग्गामिनीनांधमनीनांस्वेदमपतर्पयन्तिता स्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागाव्याख्याताएताभिरधोनाभेःपक्वा शयकटीमूत्रपुरीषगुदवस्तिमेढ्रसक्थीनिधार्यंतेयाप्यंतेच ।

अर्थ–दूसरी आठ धमनी और हैं, वे तिर्यग्गत धमनीके मुखप्रति स्वेदको प्रासकर उनको तृप्त करेहैं, इसप्रकार अधोगत धमनीके विभाग कहेहैं । वेनाभिके अधोभाग- के पदार्थ पक्वाशय, कटि, मूत्र, पुरीष, गुदा, बस्ती, शिश्न, ऊरु, इनको भलेमकार धारण करेहैं । वातादिकोंका वहन इनका सामान्य कर्म जानना ।

तिर्यक्गतधमनी कहतेहैं ।

अधोगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः ।
तिर्यग्गाःसंप्रवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम् ॥

अर्थ–नाभीके अधोभागमें जानेवाली धमनी पूर्वोक्त प्रकार कर्म करती है; अब तिर्यग्गत धमनीके जैसेजैसे कर्महै, तैसे तैसे कहतेहैं ।

तिर्यग्गानांचतसृणांधमनीनामेकैकाशतधासहस्रधाचोत्तरो त्तरंविभज्यन्ते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदंशरीरंगवाक्षितंवि वद्धमाततंच । तासांतुमुखानिरोमकूपप्रतिवद्धानियैःस्वेदम भिवहंतिरसंचाभिसंतर्पयंत्यंतर्बहिश्चतैरेवाभ्यङ्गपरिषेकाव गाहालेपनवीर्याणिअन्तःशरीरमभिप्रतिपद्यत्वचिविपक्कानि तैरेवस्पर्शसुखमसुखंवागृह्णीते ।

अर्थ–शरीरमें बाँकी, तिरछी जानेवाली ऐसी चार धमनी हैं, वो एक एक सौसौ

हजारहजार ऐसे उत्तरोत्तर विभागोंमें बढ़कर असंख्य होगई है । उनसे यह सर्वशरीर व्याप्तहो जालके सदृश बनाहुआ है। तथा उन धमनियोंके मुख रोमकूपोंसे प्रतिबद्धहै, उनसे पसीना निकलताहै, तथा उस मुखकरके सर्वशरीरके बाहरभीतर त्वचादिकोंके प्रति रसको प्राप्त करतीहै । तथा उन्हींकरके अभ्यङ्ग, परिषेक और जलादिकोंके बीच स्नान तथा लेपन, इत्यादिकोंका वीर्य शरीरमें पहुँचता है। तथा मनोनुगत उसी धमनी करके त्वचामें सुखदुःख, स्पर्श, आत्माको अनुभव होताहै। इसप्रकार तिर्यग्गत चारधमनी सर्वांगगत विभागपूर्वक कहीहैं, अब शब्दादिकोंको ग्रहण करनेवाली और सर्ग, स्थिति, प्रलय इनमें प्रकृतिभूत ऐसी जो धमनी हैं उन्होंकी प्रक्रिया कहतेहैं।

शब्दादिग्राहिणीतथासर्गादिकारकधमनीइनकीप्रक्रियाकहतेहैं

पञ्चाऽभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेंद्रियं पञ्चसु भावयन्ति।
पञ्चेंद्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले॥

पञ्च भिभूताः पञ्चेंद्रियं पञ्चकृत्वः पंचसुभावयन्तिच परं विनाशकाले पञ्चत्वमायान्ति। किंकृत्वा पञ्चेंद्रियं पञ्चसु भावयित्वा इत्यन्वयः।

अर्थ-पंचभूतोंकरके व्याप्त, अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, करके व्याप्त, अथवा आकाश, पवन, दहन, जल, और पृथ्वी, इनकरके व्याप्त ऐसी धमनी उस [पंचेंद्रियं] कहिये कर्मपुरुष जो है ताय [पञ्चधा कृत्वा] कहिये पांचजगे विभक्तकर पंचेंद्रियोंके विषे [भावयन्ति] कहिये योजना करे है, और विनाशकाल प्राप्तहोनेपर [पञ्चसु] कहिये श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंके विषे अर्थात् आकाशादिकोंके विषे पृथक् पृथक् योजनाकर आप विनाशको प्राप्त होता है। इसका खुलासा अर्थ यह है कि, आकाशादि पञ्चमहाभूतोंसे प्रगट जो धमनी वे कर्म पुरुषको इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंमें पांचवार भावनाकर तदनंतर इन्द्रीपंचकको आकाशादिभूतोंमें संयोजनाकर विनाशकालमें वे धमनी नाशको प्राप्त होती हैं।

अन्य आचार्य [पंचाभिभूतान्ययपंचकृत्वः इतिपठन्ति व्याख्यानयंतिच] इस प्रकार पाठको लिखकर उसकी व्याख्या करते हैं कि, आकाशादि पञ्च महाभूत कर्मपुरुषको श्रोत्रादि इन्द्रियाधिष्ठानोंके विषे योजनाकर आप विनाशकाल प्राप्त होनेसे पंचत्वको प्राप्त होते है।

अन्य आचार्य [पञ्चाभिभूतास्त्वथपंचधा चेति पठंति व्याख्यानयंति च] इसप्रकार लिखकर उसकी व्याख्या करते है कि, पंचाभिभूत जो धमनी है सो, पंचेन्द्रिय कहिये बुद्धीन्द्रियपंचकोंको शब्दादिकोंके जो वचनादिपंचक अर्थोंमें पांचवार योजनाकर विनाशकालमेंआप नाशको प्राप्त होती है।

अब मतान्तरसे धमनियोंकेकर्म आदि कहते हैं ।

सव्यप्रकोष्ठाद्धृदयस्यनाडी द्वितीयपर्शोस्तरुणास्थियावत् ।
ऊर्द्ध्वगतात्र्यंगुलसंमितासा शाखेचतस्याहृदयंप्रयाते ।
ततश्चपश्चात्प्रसृतातृतीयं कशेरुभित्तंननुसव्यपार्श्वे ।
समागतास्यावपुषोमहत्यः शाखाश्चतिस्रोविसृताःसमन्तात् ।
अवाङ्मुखीसाथकशेरुखण्डं तृतीयमाप्ताखलुनिम्नदेशे ।
भागत्रयंवर्णितमेतदेवस्मृतंहिमूलंधमनीगणस्य । धमन्यथोर
स्थलगांविभिद्यपेशीप्रविष्टोदरगह्वरान्तः । इयंचमूलंधमनी
गणस्यस्कंधोऽथवोक्तोऽपियथाद्रुमस्य । अतःशाखाःप्रशाखा
श्चक्रमात्सूक्ष्मतराश्चताः । व्याप्नुवन्निखिलंदेहंशोणितौघप्रवा
हिकाः । कलास्वास्थिपुपेशीपुमस्तुलुङ्गेचमज्जसु । सर्वत्रैवस्थि
ताएताधमन्योधमनीष्वपि । नास्तिवर्ष्मणितच्चाङ्गंधमन्यो
यत्रनस्थिताः । केशादिष्वेवनाभ्यस्तानदृश्यन्तेकदाचन ।
हृदयाच्छोणितंशुद्धंनिर्मलंप्राणधारणम् । सुलोहितंसुखोष्णं
चवाहयन्तिसमंततः । मुहुर्मुहुःक्षयंयान्तिसर्वाण्यङ्गानिदेहि
नाम् । श्वासभापगतिस्पन्दरतिचिंतादिकारणात् । क्षपयि
त्वाक्षयंतेपामङ्गानांरक्तयोगतः । कुर्युःसंवर्द्धनंनाड्योजनये
रनूबलंतथा । सर्वाण्येवोपदानानिशारीराणिचशोणिते । यतः
सन्तिततस्तत्स्यात्कारणंदेहरक्षणे।शोणिताज्जायतेपेशीकला
मज्जास्थिरेतसी । बलौजसीमस्तुलुङ्गःसर्वंशोणितसम्भवम् ।
कुल्याभिःसलिलंयद्वदोद्यानिकमहीरुहान् । जीवयेत्तर्पयेत्तद्व
द्धमनीभिश्चशोणितम् । सर्वाण्यङ्गानिजीवानामितिधन्वन्तरे
र्मतम् । अतोधमन्योविज्ञेयाःप्रीणनेचापिहेतवः । शोणितस्रो
तसांवेगात्स्पंदन्तेचधरामुहुः । तासांस्पन्दनतोज्ञेयंसुखंदुः
खंचदेहिनाम् । अंगुष्ठमूलेधमनीसततंयापरीक्ष्यते । भागो
द्वितीयोमूलस्यतदादिःकीर्तितावुधैः ।कक्षेचापिप्रगण्डेचप्रको

ष्ठेऽथकरेतथा। अंगुल्याह्यनुभूयेतबाह्वोरेपादयोरपि। मणिबन्धेयथानाडीतथागुल्फेऽनुभूयते। कण्ठेपार्श्वकपालेचवंक्षणे योनिशिश्नयोः। तनुत्वगावृतेष्वेवतथाङ्गेष्वपरेषुच। शोणितौघाञ्चसूक्ष्माणामनुभावोगतेर्भवेत्। यंयंहेतुंसमाश्रित्ययातियांयांगतिंधरा। ययाययासुखंगत्यादुःखं वापिययायया। ययाययाचजीवोऽयंयातिमृत्युवशंध्रुवम्। मयासावर्ण्यतेवत्सदर्पणेनाडिकाभिधे।

अर्थ–हृदयके वामप्रकोष्ठसे मूलधमनीकी उत्पत्ति है, यह इसस्थानसे उत्पन्न होकर ऊर्ध्वाभिमुखहो दूसरी पांशूकी तरुणास्थिपर्यंत उपस्थित है। यह ऊर्ध्वगामी अंशप्राय ३ अंगुलके प्रमाणहै, इसजगेसे दो शाखा निकलकर हृदययंत्रमें गमनकरे हैं। अनन्तर ये पश्चान्मुखी होकर तीसरे कशेरुकाके वामपार्श्वमें उपस्थित हुईहै। इसीजगेसे तीसरी बडीशाखा निकलकर देहके अनेक स्थानोंमें फैलगईहै, इसके उपरांत यह अधोमुखी होकर चतुर्थ कशेरुकाके निम्नदेशमें उपस्थित हुईहै, यह कहे हुए भागत्रय समुदायको धमनीका मूलकहतेहैं, अनन्तर यह धमनी कुछ थोडी दूर निम्नमुखहो वक्षस्थलकी पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करतीहै, इसको धमनीगणका मूल अथवा स्कंध कहतेहैं। जैसे वृक्षकी जडमेंसे एकशाखा निकल ऊपर उसीमेंसे डाली शुदेनके समूह प्रगट होतेहैं, उसीप्रकार कहेहुए धमनीकेभागत्रयमेंसे बहुतसी शाखा प्रशाखा रूप नाडी उत्पन्नहो क्रमसे अतिसूक्ष्म होकर सर्वदेहमें फैलीहुईहै. कलासमूह, अस्थिगण, सबपेशी, मस्तिष्क और मज्जा इन सबमें धमनी विद्यमानहै, धमनीसमूहमेंभी अतिसूक्ष्मतर धमनी देखनेमें आतीहैं, शरीरमें ऐसा कोईसा अंग नहींहै कि जिसमें धमनी नहींहै, केवल केशादिकोंमें धमनी नहीं दीखती. धमनीगण हृदयसे शुद्ध, निर्मल, सुलोहित, सुखोष्ण और प्राणरक्षण शक्तिसम्पन्न रुधिरको शरीरके सर्वस्थानोंमें वहन करतीहै, श्वासक्रिया, शब्दोच्चारण, गमन, स्पंदन, मैथुन और चिंता आदि कारणमें जीवगणके समस्त अंग निरन्तर क्षयहोतेहैं; संपूर्ण धमनी विशुद्ध रुधिरके योगसे उसी क्षीण अंशोंको परिपूर्णकर अंगसमूहको संवर्धित तथा बलोत्पादन करतीहै, रुधिर सर्व प्रकार शारीरिक उपादानकारणरूपसे विद्यमानहै इसहेतुसे रुधिर देहरक्षाका मुख्य कारणहै, पेशी, कला, मज्जा, हड्डी, शुक्र, बल, ओज और मस्तिष्क समुदाय इसीरुधिरसे बनतेहैं, जैसे पानीके परहासे खेत वा बगीचेकी क्यारीके वृक्षसमूह तृप्त होतेहैं और उसजलसे उनवृक्षोंको जीवन और रक्षा होतीहै, उसीप्रकार धमनी नाडियोंके द्वारा शुद्धरुधिर स्रोतोंमें बहकर सर्व अं-

गोंको तर्पितकर जीवितरक्खेहैं। अतएव धमनीसमूहको जीवनके रक्षाका मुख्यहेतु समझना चाहिये।

श्रोणित स्रोतोंके वेगसे धमनीगण वारंवार स्पंदित होती है, अर्थात् रुधिरका संचार होनेसे धमनी नाडी वारंवार फडकतीहै, इसी स्पंदनद्वारा जीवोंके सुखदुःखका निर्णय होताहै, (इसीसे वैद्य नाडीको देखाकरे हैं) अँगूठेकी जडमें जो सर्वदा नाडीपरीक्षा करतेहैं उसका मूल, धमनीका द्वितीयअंश (अर्थात् यह द्वितीयपर्शुकाके उपास्थिसे लेकर पश्चान्मुखवाले तीसरे कशेरुकाके वामपार्श्वपर्यंत विद्यमान है) यह नाडी कांख, बाजू, पहुँचा और दोनोंहाथोंमें उंगलियोंकरके अनुभूत अर्थात् प्रतीतहोती है. जैसे मणिबन्ध (पहुँचे) में नाडीजानी जाती है उसीप्रकार गुल्फ (ऐडी) कण्ठ, पसवाडे, कपाल, वंक्षण, योनि और लिंग इनमें जानी जाती है. इसीप्रकार और सूक्ष्मत्वगाच्छादित अंगकी धमनियोंका स्पन्दन (फडकना) अंगुली आदिद्वारा अनुभव होताहै.

जिस २ कारणसे नाडीकी जैसी २ गति होय और जिस २ गतिद्वारा शुभ और अशुभ प्रतीतहो, तथा जिस २ गतिद्वारा इसमनुष्यकी मृत्युघटना होय इत्यादि संपूर्ण नाडीके भेद आगे हम नाडीदर्पणमें लिखेंगे। १२ नंबरका चित्र देखो।

स्रोतस्कहतेहैं।

अतऊर्ध्वंस्रोतसांमूलविधिलक्षणमुपदेक्ष्यामः

अर्थ-धमनीके सविस्तर वर्णनानन्तर स्रोतसोंके मूलविधिलक्षणोंको कहतेहैं।

तानितुप्राणान्नोदकरक्तमांसमेदोमू
त्रपुरीषशुक्रार्तववहानियेष्वधिकारः।

अर्थ-जिनके मूलविधिलक्षण कहनेके विषयमें अधिकार वो स्रोतस्, प्राण, अन्न, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्त्तव, इनको वहतेहैं। यह स्रोतसोंकी मूलविधिलक्षण जाननी।

स्वरूपकहतेहैं।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिस्रो
तांसिदीर्घाण्याकृत्याप्रतानसदृशानिचेति।

अर्थ-स्रोतस् जिसजिस धातुओंको वहतेहैं, उसी २ धातुके सदृश स्रोतसोंका वर्ण जानना, स्रोतस्गोल, मोटी, लंबीलंबी, तथा कोई बारीक ऐसीहो सर्वदेहमें कमलतंतु मंडलके समान फैलीहुईहै, तथा प्राणसे लेकर आर्त्तव पर्यत जो ग्यारह पदार्थ

हैं उनके वहनेवाली स्रोतस् प्रत्येक दोदोहैं. और हड्डी मज्जादि स्रोतस् यद्यपि हैं तथापि उनका अधिकार नहींहैं; इसका यह कारणहै कि, अस्थिवह स्रोतसोंका मेद मूलहै. और मज्जावहोंका सर्वअस्थि मूल वे सर्वदेहगतहै, इसीसे उनकी विधिलक्षण ये साध्यासाध्य आदि ज्ञानविषयमें नियामक नहीं है, उसीप्रकार स्वेदवह स्रोतसोंका मेदमूलहै-अतएव शल्यतंत्रमें उसकी विधिलक्षणका अधिकार नहीं करा । इसी अर्थको मनमें रखकर (येष्वधिकार) ऐसे आचार्य कहतेहुए, चिकित्सा विषयमें स्रोतो दुष्टलक्षण कहना चाहिये । इसका यह तात्पर्यहै कि, चिकित्साविषयमें सर्वशरीरगत स्रोतसोंका अधिकार और शल्यतंत्रमें नियतदेश स्थित स्रोतस् विद्धहोनेसे वेदना विशेष तथा साध्यासाध्य ज्ञानविषयमें नियामक अधिकारहै । तथा देहचिकित्साधिकार सर्वशरीरगतत्व करके साध्यादि ज्ञाननियामक होता है, इसीसे अस्थिमज्जादिवह स्रोतसोंका अधिकार नहींहै ऐसे उक्त ग्रन्थका तात्पर्य जानना ।

अन्यमतकहतेहैं ।

एकेषांबहूनि ।

अर्थ-किसी आचार्योंका यह मतहै कि, स्रोतस् बहुतसे हैं, परंतु उनका अधिकार इसजगे नहीं है ।

स्रोतसोंके भेद कहते हैं ।

एतेषांविशेषाबहवः ।

अर्थ-स्वतंत्रोक्त प्राणादि वह २२ स्रोतस् हैं उनके अनेक भेद हैं ।

प्राणवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं ।

तत्रप्राणवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयरसवाहिन्यश्चधमन्यः । तत्रविद्धस्यक्रोशनंविनमनंभ्रमणंवेपनंनिःसरणंवाभवति ।

अर्थ-पूर्वोक्त प्रकरणमें प्राणवह स्रोतस् दोकहे हैं, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी जाननी, उस मूलके विद्धहोनेसे आर्त्तस्वरयुक्त रोदन, वक्रता, भ्रमण, कंपन, इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

अन्नवहस्रोतसोंकेमूलको कहते हैं.

अन्नवहेद्वेतयोर्मूलमन्नाशयोन्नवाहिन्यश्चधमन्यः । तत्रविद्धस्याध्मानंशूलान्नद्वेषोमरणम् ।

अर्थ-अन्नवह स्रोतस् दो हैं, उनका मूल अन्नाशय और अन्नवाहिनी धमनीहै, उनके मूलवेध होनेसे अफरा होवे, तथा शूल, अन्नद्वेष हो, तथा मरणभी कभी होजावे ।

उदकवहस्रोतसोंकामूल.

उदकवहेद्वेतयोर्मूलंतालुक्लोमच । तत्रविद्धस्यपिपासा श्यावास्यतामरणञ्च

अर्थ-उदकवह स्रोतस् दो हैं; उनका मूल तालु और पिपासास्थानहै । उसका वेधहोनेसे प्यास, मुखपर कालोंच आयकर मरणहोय ।

रसवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं ।

रसवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयंरसवाहिन्यश्चधमन्यस्तत्रविद्धस्यशोपः प्राणवहविद्धवच्चमरणं तत्रहविद्धवल्लिङ्गानि ।

अर्थ-रसवह स्रोतस् २, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी उनका वेध होनेसे शरीरशोप तथा प्राणवह स्रोतस् विद्धहोनेसे जो लक्षण होतेहैं वो लक्षण रसवाहिनी धमनी विद्धहोनेसे होते हैं ।

रक्तवहस्रोतसोंका मूलकहते हैं ।

रक्तवहेद्वेतयोर्मूलंयकृत्प्लीहानौरक्तवाहिन्यश्च धमन्यः तत्रविद्धस्यश्यावाङ्गताज्वरदाहपाण्डुताशोणितागमनंच ।

अर्थ-रक्तवह स्रोतस् २ हैं, उनका मूल यकृत् प्लीहा और रक्तवाहिनी धमनी है, उनका वेध होनेसे अंगमें कालोंच हो; तथा ज्वर, दाह, पीलिया, तथा ऊपरनीचेके मार्गहोकर रक्तस्राव, तथा नेत्रोंमें लाली इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

मांसवहस्रोतसोंकामूलकहतेहैं ।

मांसवहेद्वेतयोर्मूलंस्नायुत्वचेरक्तवाहिन्यश्चधमन्यस्तत्र विद्धस्यश्वयथुर्मांसशोपःशिराग्रंथयोमरणञ्च ।

अर्थ-मांसवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल स्नायु और त्वगादिक रसरक्तवह धमनी है । उनका वेधहोनेसे सुजन होय, तथा मांसशोप होय, और शिराओंमें गांठहोजावे, तथा मरणभी होवे । इस जगे त्वक्शब्द करके तदाश्रित रसका ग्रहण हैं ।

मेदोवहस्रोतोंकामूलकहते हैं ।

मेदोवहेद्वेतयोर्मूलंकटिर्वृक्कौतत्रविद्धस्यस्वेदागमनं स्निग्धाङ्गताताल्लुशोपस्थूलशोफपिपासाच ।

अर्थ-मेदोवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल कटि तथा वृक्क है । ए वेध होनेसे अत्यंत पसीने अंगचिकना, तथा तालुशुष्क हो; स्थूलता और अंगमें सुजनहो तथा प्यास लगे ।

मूत्रवहस्रोतसोंकामूल ।

मूत्रवहेद्वेतयोर्मूलंबस्तिर्मेढ्रं तत्रविद्धस्यानद्धवस्तिता मूत्रनिरोधस्तब्धमेढ्रताच ।

अर्थ-मूत्रवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल बस्ती और शिश्न (लिंग) है; उनका वेध होनेसे मूत्राशय तनेके समान होजावे, तथा मूत्रका रुकना और शिश्न स्तंभित होजावे ।

पुरीषवहस्रोतसोंकामूल ।

पुरीषवहेद्वेतयोर्मूलंपक्वाशयोगुदंचतत्रविद्ध स्यानाहो दुर्गंधताग्रन्थितांत्रताच ।

अर्थ-पुरीषवह स्रोतस् २ हैं, उन्के मूल पक्वाशय और गुदा है इन्में आघातहोनेसे अनाह कहिये (वातकारोग) और दुर्गंध आवे तथा आँतडोंमें गांठ पडजावे ।

शुक्रवहस्रोतस् ।

शुक्रवहेद्वेतयोर्मूलंस्तनवृषणौचतत्र विद्धस्यक्लीवताचिरात्प्रसेकोरक्तशुक्रताच ।

अर्थ-शुक्रके वहनेवाले २ स्रोतस्हैं, उन्के मूल स्तन और वृषण हैं उन्में किसी प्रकारकी चोटलगनेसे नपुंसकता, अथवा चिरकालकरके वीर्यका स्राव होता है, तथा शुक्रका लाल रंग होता है ।

आर्त्तववहस्रोतस् ।

आर्त्तववहेद्वेतयोर्मूलंगर्भाशयआर्त्तववहधमन्यश्च तत्रविद्धायांवंध्यात्वंमैथुनासहिष्णुत्वमार्त्तवनाशश्च ।

अर्थ-आर्त्तववह स्रोतस् २ हैं, उन्के मूल गर्भाशय और आर्त्तववह धमनी है । उन्का वेधहोनेसे वंध्यापना होय तथा मैथुनकरना अच्छा न मालूमहो, तथा आर्त्तवका नाशहोय. शुक्रवहस्रोतसोंके समीपकी सेवनी विद्धहोनेसे उसके लक्षण अश्मरी चिकित्सित थस्तिप्रसंग करके कहीहैं. अथ चिकित्सासूत्र कहते हैं ।

चिकित्सा ।

स्रोतोविद्धंतुप्रत्याख्यायोपाचरेदिति ।

अर्थ-उक्तस्रोतसोंके विषे विद्धहोनेसे असाध्यत्व कहा है उसको शल्योद्धरण प्रकार करके चिकित्सा करे ।

उद्धृतशल्यचिकित्सा।

उद्धृतशल्यंतुक्षतविधानेनोपाचरेत्।

अर्थ-जिस पुरुषका शल्य निकलगयाहो उसकी क्षतविधान करके चिकित्सा करे।

स्रोतोलक्षण।

मूलात्खादन्तरेदेहेप्रसृतत्वाभिवाहियत्।
स्रोतस्तदितिविज्ञेयंशिराधमनिवर्जितम्॥
इति सौश्रुतशारीरेनवमोऽध्यायः॥ ९॥

अर्थ- (मूलात्खात्) कहिये हृदयछिद्रसे लेकर जो अन्तरछिद्र प्रवहनशील है उसको स्रोतस् जानना परंतु धमनी और शिरा इनको छोड़कर जानना।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेत्रयोदशस्तरङ्गः॥१३॥

दशमोऽध्यायः।

धमनीव्याख्यानंतर शुक्रार्त्तवस्रोतसोंका वर्णन होनेसे अब शुक्रार्त्तवमूलक पूर्वकहेहुए गर्भकी आश्रयभूत गर्भिणी उसका वर्णन करना उचितहै अतएव उसीको कहतेहैं।

अथातोगर्भिणीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-धमनीव्याख्यानंतर अब हम गर्भिणीका वर्णन जिसमेंहै ऐसी शारीराध्यायकी व्याख्या करेंगे।

गर्भिणीकेनियम।

गर्भिणीप्रथमदिवसात्प्रभृतिनित्यंप्रहृष्टाशुचिरलंकृताशुक्लवसनाशांतिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरुपराभवेत्। मलिनविकृतहीनगात्राणिनस्पृशेदुद्वेजनीयाश्चकथाः। शुष्कंपर्युषितंक्वथितंक्लिन्नंचान्नंनोपभुञ्जीत। बहिर्निष्क्रमणंशून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान्क्रोधामयसंस्करांश्चभावानुच्चैर्भाष्यादिकंचपरिहरेत्।

अर्थ-गर्भिणीको गर्भधारणदिवससे लेकर सर्वकाल आनन्दयुक्त रहना चाहिये, तथा उसके प्रियमनुष्य उसको प्रियपदार्थदेकर सदैव संतुष्टरक्खे और वह स्त्री स्वयं

पवित्र रहे; अलंकारोंको धारण सुपेदवस्त्रोंको पहिराकरे, शांतिपूर्वक मंगलाचरण करें। देवता, ब्राह्मण, गुरु, इन्हे प्रीतिकरे। मलिन, विकृत, हीनगात्र, इनका स्पर्श न करे। तथा शुष्क, मलिनवासा, दुर्गंधवान्, गीला और कच्चाअन्नभोजन न करे । तथा बाहर बहुत न जावे, सुनेघरमें, जिस वृक्षपर अथवा नीचे उसके देवताका स्थानहों ऐसे वृक्षके नीचे अथवा बौद्धोंके मंदिरमें, श्मशान वृक्ष इनका आश्रय न लेवे. जिससे क्रोध आवे ऐसे कर्मोंको न करे. बहुतजोरसे न बोले. और उद्वेग कर्त्ता वार्त्ताको भी नसुने।

भोज्यंतुमधुरप्रायंस्निग्धंहृद्यंद्रवंलघु । संस्कृतंदीपनीयंतु नित्यमेवोपयोजयेत् । गुर्विणीनतुकुर्वीतव्यायाममपतर्पणम् । रात्रौजागरणंशोकंयानस्यारोहणंतथा । रक्तमोक्षंवेगरोधंनकुर्यादुत्कटासनम् । नजिघ्रेदपिदुर्गंधंनपश्येन्नयनाप्रियम् । वचांसिनापिशृणुयात्कर्णयोरप्रियाणिच । तैलाभ्यङ्गोद्वर्त्तनञ्चभावाश्चाप्ययशस्करान् । नामृद्वास्तरणंकुर्यान्नात्युच्चंशयनासनम् । अन्यांश्चापिनतत्कुर्याद्येनगर्भोविनश्यति । एतांस्तुनियमान्सर्वान्यत्नात्कुर्वीतगुर्विणी ।

अर्थ–गर्भिणी मधुरप्राय, सचिक्कण, हृदयको हितकारी, पतले हलके तथा उत्तम पाककर्ताने विधिपूर्वक बनाएहो और जो दीपनहो ऐसे पदार्थोंको नित्य सेवनकरे, तथा गर्भिणी व्यायाम, अपतर्पण रात्रिमें जागना, मैथुन, शोक, सवारीमें बैठना, रुधिर निकालना मलमूत्रआदि वेगोंका रोकना, ऊंचे और दुष्टआसनपर बैठे नहीं, दुर्गंधको न सूंघे और नेत्रोंको अप्रियपदार्थको न देखे, कानोंको अप्रिय ऐसे वाक्योंको न सुने, अत्यन्त तेलका लगाना, और उबटना त्यागदेवे और जो अपयश कर्ता कर्महैं उन्को नकरे, कठोर बिछैया नबिछावे, अत्यंत ऊंचेपर शयन और आसन नकरे, और भी जो दुष्टकर्म है, कि जिनसे गर्भ नष्टहोवे उन्को कदाचित् नकरे, इन कहेहुए नियमोंको गर्भवती यत्नपूर्वकसाधनकरे ।

गर्भिणीकाअन्नकहत्ते हैं ।

गर्भिणींप्रथमद्वितीयमासेपुपष्टिकांपयसाभोजयेत् ।

अर्थ–गर्भिणीको प्रथम तथा दूसरे महिनेमें साठी चावलोंका भात दूधके साथ भोजनको देवे ।

अन्यमत ।

चतुर्थेदध्नापञ्चमेपयसाषष्ठेसर्पिषेत्येके ।

अर्थ-कोई आचार्य कहतेहैंकि, चौथे महिनेमें दही मिश्रित, पांचवे महिनेमें दूधमिश्रित, छटवे महिनेमें घृतमिश्रित भोजन अधिक देवे. वागूभटकहताहै कि * गर्भकरके पीडित दोष सातवे महिने हृदयमें प्राप्त होतेहैं इसीसे गर्भिणीके खुजली और दाह तथा खीसस करेहैं ।

स्वमतकहते हैं।

चतुर्थेपयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेत् ।

अर्थ-चौथे महिनेमें दूध और मक्खन मिला जंगली जीवोंका मांस भोजनमें देवे. पांचवे महिनेमें दूध और घृत मिला भोजन देवे. छठे महिनेमें गोखरू करके सिद्ध घृतकी मात्रा यवागू सहित देवे. सातवे महिनेमें विदारीकंद करके सिद्धकरा घृत पिवावे. आठवे महिनेमें चंदनके जलमें बला अतिबला, सौंफ, मांस, दूध, दही, छाछ, तेल, नोन, मैनफल, सहत, घृत, इनको मिश्रितकर निरूहवस्ती देवे । इसप्रकार करनेसे पुराने पुरीष (मळ) की शुद्धि तथा वायुकी अनुलोमगति होती है। अनंतर दूध और मधुर पदार्थ इनके कषाय करके सिद्धकरेहुये तेलसे अनुवासन बस्तिकरे । इस करके वायुकी अनुलोमगति होतीहै. उस अनुलोमगति होनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करतीहै और उपद्रवरहित होतीहै. आठवे महिनेके अनंतर प्रसवकालपर्यंत स्निग्धादिकों करके तथा यवागू जांगलरस इन करके उपचार करावे । इसप्रकार उपचार करनेसे गर्भिणी स्निग्ध तथा बलवती होकर सुखपूर्वक उपद्रवरहित प्रसूत होती है ।

प्राक्चैवनवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।
देशेप्रशस्तेसंभारैःसम्पन्नंसाधकेऽहनि ॥

अर्थ-गर्भिणी नवमहिनेके पूर्वही उत्तमदेशमें वास्तुविद्याके जाननेवालोंने परीक्षा करके बनाया और संपूर्णसामग्री करके युक्त तथा शुभ तिथि नक्षत्र मुहूर्तमें सूतिकाग्रहका आश्रयलेवे ।

सूतिकागारकीविधि ।

तत्रारिष्टंब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणांश्वेतपीतरक्तकृष्णेष्वप-

---

* गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन्हृदयमाश्रिताः । कण्डूंविदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः किकिसानिच ॥

हृतास्थिशर्कराकालेदेशेप्रशस्तरूपरसगंधायांभूमौप्राग्द्वार मुदग्द्वारंवाबिल्वन्यग्रोधतिन्दुकेंगुदभल्लातकनिर्मितसर्वांगा रंवायानिचान्यान्यपिब्राह्मणाःशंसेयुरथर्ववेदविदः तन्मयप- र्यंकंसमुपलिप्तभित्तिषुसुविभक्तपरिच्छदंचाष्टहस्तायतंचतुर्ह- स्तविस्तृतंरक्षामंगलसम्पन्नंविधेयंतद्वसनालेपनाच्छादनापि- धानसम्पदुपेतमग्निसलिलोलूखलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहा- नसमृतुसुखम् ।

अर्थ–सूतिकागारकी भूमि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्रको क्रमसे सफेद, पीली, लाल और काली होनी चाहिये. दूर हुई है अस्थि और धूल जिसमें तथा शुभकाल सुन्दर देश और उत्तमरूप, रस तथा गंधवान् पृथ्वीमें सूतिकागार बनावे कि, जिसका द्वार पूर्वकी तरफ अथवा उत्तरकी तरफ होवे (कोई दक्षिण द्वार होनाभी लिखतेहैं) बेल, वड, तेंदू, गोंदी और भिलाया इनकाष्ठोंसे उसगृहकी सर्वभीत छत्त आदि बनीहो और भी जो अथर्ववेदके जानने वाले ब्राह्मण कहे उस काष्ठकी शय्या बनावे, उस मकानकी भीतोंको लीप पोतकर उज्ज्वलकरे और प्रत्येक कार्यकेवास्ते पृथक् २ परिच्छद (सामग्री) हो तथा उस घरकी ८ आठ हाथकी लंबाई और ४ चार हाथकी चौडाई तथा रक्षा और मंगलकरके संपन्न ऐसा होना चाहिये, तथा वस्त्र, लेपन, आच्छादन और पिधान अर्थात् ओढने बिछानेकी सामग्री आदिसे युक्तहो, अग्नि, जल, ओखली, मलसूत्र त्यागनेकी जगे, स्नान की भूमि, रसोई करनेकीठौर, और जाडे, गरमी, वर्षाऋतुमें सुखकारक इत्यादि स्थानों करके युक्त घर होना चाहिये (उस सूतिकाके स्थानमें इतनी वस्तु औरभी उपस्थित रखनी चाहिये । घृत, तेल, मधुरक, सेंधानिमक, सौंचरनोन, राल, गुड, कूठ, तेलीया, देवदारु, सोंठ, पीपलामूल, गजपीपल, मंडूकपीपल, इलायची, कलयारी, वच, चित्रक, चिरबिल्व, हींग, सरसों, लहसन, धतूरा, कदंब, बावची, भोजपत्र, कुलथी, मैरेय मद्यविशेष, आसव और सुरा (दारु) दोपत्थरके टुकडे, दो मंडकीजड, ओखली मूसल, गधा, बैल, दो लोहके टूंक, दो पिप्पलक, सुवर्ण, चांदी, दो शस्त्रलोहेके, दो वेलके पलंग, तेंदू, इंगुदीकी लकडी, अग्निके वरानेको पंखा इत्यादि सामग्री सूतिका घरमें उपस्थित रहनी चाहिये. जो अनेकवार प्रसूति होचुकी हो, मोहार्थयुक्त, निरंतर अनुरागवती, आचार विचारमें कुशल, तथा निर्णयमें और उपचारकरनेमें कुशल, वात्सल्य प्रकृतिवाली, खेदरहित, क्लेशको सहनेवाली, ऐसी स्त्री उस प्रसूति घरमें उपस्थित रहे । तथा अथर्ववेदके ज्ञाता ब्राह्मण स्थित रहे और जो वृद्धस्त्री और ब्राह्मण बतावे वोभी उपस्थित रखने चाहिये) ।

तत्रोदीक्षेतसासूतिंसूतिकापरिवारिता ।

अर्थ-गर्भिणी उस सूतिका घरमें अनेकवार प्रसूतीहो चुकीहो ऐसी स्त्रियोंके साथ स्थितहो प्रसूत समयकी वाट देखे अर्थात् इस घरमें में प्रसूती होऊंगी ।

तथाचचरके ।

ततःप्रवृत्तेनवमेमासेपुण्येऽहनिनक्षत्रमुपगते प्रशस्तेभगवतिशशिनिकल्याणेकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिहुत्वागोब्राह्मणमग्निमुदकञ्चादौ प्रवेश्यगोभ्यः तृणोदकंमधुलाजांश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षताःसुमनसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टानिदत्त्वाउदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्यपुनराचम्यस्वस्तिवाचयेत्ततःपुण्याहशब्देनगोब्राह्मणमन्वावर्त्तमानाप्रदक्षिणंप्रविशेत्सूतिकागारम् तत्रस्थाचप्रसवकालं प्रतीक्षेत ।

अर्थ-तदनंतर नवम महिने लगतेही शुभ दिवस नक्षत्र और चन्द्रमा तथा कल्याणकारी करण, मैत्रमुहुर्त्तमें शांति हवन करके गौ ब्राह्मण, अग्नि जल कों, प्रथम उस घरमें प्रवेशकर गौओंको तृण जल मिली खील देकर और ब्राह्मणोंको अक्षतादि द्वारा पूजनकर इष्टफल दक्षिणा देकर उत्तर वा पूर्वाभिमुख स्थित ब्राह्मणोंको प्रणामकर फिर आचमनकर स्वस्तिवाचन पढाकर पुण्याहशब्दकरके गौ ब्राह्मणोंको संगले प्रदक्षिणापूर्वक प्रथम दहना पैर* धरकै गर्भवती स्त्री सूतिकागारमें प्रवेश करे उस प्रसूतघरमें स्थित होकर प्रसवकालकी वाट देखे.

आसन्नप्रसवाके लक्षण ।

अद्यःश्वःप्रसवेग्लानिःकुक्ष्यक्षिश्लथताक्लमः ।
अधोगुरुत्वमरुचिःप्रसेकोबहुमूत्रता ।
वेदनोरूदरकटीपृष्ठहृद्वस्तिवंक्षणे ।
योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानिच ।

अर्थ-आज या दूसरे दिन ऐसी आसन्नप्रसवा स्त्रीके ग्लानि (हर्ष जातारहे) कूख और नेत्र ए शिथिल होवे, उपताप और नीचेका भाग भारी, अरुचि मुखसे

---

* प्रयाणकाले स्वगृहप्रवेशे विवाहकालेपिच दक्षिणांघ्रिम् । कृत्वाग्रतः शत्रुपुरप्रवेशे वामंनिदध्याच्चरणं नृपालये ॥ १ ॥

पानीका गिरना, वारंवार अधिक मूत्रका उतरना, जांघ, उदर, कमर, पीठ, हृदय, बस्ति और वंक्षण इनमें पीडा होवे । योनिका फटना, पीडा और चवकाओंका चलना तथा स्फुरण और कफके सदृश पदार्थ निकले इत्यादि लक्षणोंसे जाने कि इसके अब बालक होनेवाला है ।

ततोऽनन्तरमावीनांप्रादुर्भावःप्रसेकश्चगर्भो
दकस्यावीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविदध्यात् ।

अर्थ–तदनंतर गर्भनिष्क्रमण कालमें जो शूलहोते हैं उनका प्रादुर्भाव होता है, मुखसे पानी गिरता है । जब शूल और भगमेंसे गर्भोदक अर्थात् गर्भका पानी निकलने लगे उसी समय उसस्त्रीको पृथ्वीमें शयन करावे ।

अथोपस्थितगर्भांताकृतकौतुकमङ्गलाम् । हस्तस्थपुन्ना-
मफलांस्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम् । पाययेत्सघृतांपेयाम्

अर्थ–इस प्रकार उपस्थितगर्भा अर्थात् तत्काल होनेवाला बालक जान उस गर्भिणीका रक्षा बंधनरूप मंगल करके और पुरुष नामके फल (अनार आम्र आ-दि) हैं हाथमें जिसके तथा तैल आदिका मालिस कर गरम जलसे स्नान कराय उसको घृतसहित पेया (यवागू) कंठपर्यंत पिवावे ।

तनौभुशयनेस्थिताम् ।
आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गींपुनःपुनः ।
अधोनाभेर्विमृन्दीयात्कारयेज्जृम्भचंक्रमम् ॥

अर्थ–पृथ्वीमें मखमल आदिके नरमबिछेयेपर सीधी सुलावे और पैरोंको सकोड वारंवार तैलका मालिसकरे, नाभिसे नीचे धीरेधीरे सुतवावे तथा जँभाई और इधर उधरको डोलना उससे करावै । इसप्रकार करनेसे क्या होताहै सो कहतेहैं ।

गर्भः प्रयात्यवागेवंतल्लिङ्गंहृद्विमोक्षतः ।
आविश्यजठरंगर्भोबस्तेरुपरितिष्ठति ।

अर्थ–इस प्रकार करनेसे गर्भ हृदयस्थानको त्यागकर नीचे आताहै उस गर्भ, के येलक्षण होतेहैं कि, वह हृदय छोड़कर पेटमें आनकर बस्तीके ऊपर ठहरे है ।

दद्यात्कुष्ठलाङ्गलकी वचाचव्यचित्रकचिरविल्वचूर्णमुपाघ्रातुंमुहु-
र्मुहुर्योजयेत्तथाभूर्जपत्रशिंशपासर्जरसानामन्यतमंधूममन्तरान्तराच ।

पार्श्वपृष्ठकटीसक्थिदेशान्कोष्णेनतैलेनाभ्यज्यानुसुख
मस्याविमृन्दीयादेवमवाक्परिवर्ततेगर्भः ।

अर्थ–कूठ, कलयारी, वच, चव्य. चित्रक, कंजा, इनका चूर्णकर वारंवार गर्भवतीके सूंघनेको देवे । तथा भोजपत्र, सीसो, राल, इनसे आदिले औरभी औषधोंकी धूनी ठहर २ के देता जावे । पसवाड़े, पीठ, कमर, पैर, इत्यादि अंगोंको गुनगुने तेलसे मालिस कर सुहाता सुहाता मर्दन नीचेको करावे इस प्रकार करनेसे गर्भ नीचेको उतरता है ।

ताःसमन्ततः परिवार्येयथोक्तगुणाः स्त्रियःपर्युपासीरन्नाश्वास
यन्त्योवाचागर्भिसंग्राहिणीभिःसान्त्वनीयाभिः । साचेदा
वीभिः संक्लिश्यमानानप्रजायेताथैनांब्रूयात्उत्तिष्ठमुसलम
न्यतरङ्गृहीत्वानेनतदुलूखलंधान्यपूर्णमुहुर्मुहुरभिजहिमुहु
र्मुहुरवजृम्भस्वचंक्रमस्वचान्तरान्तरातन्नेत्याहभगवानात्रेयः ।

अर्थ–उस गर्भिणीके समीप दो चार स्त्री यथोक्त गुणसंपन्न होनी चाहिये और जबजब पीडासे गर्भिणी घवडावे तभीतभी उसको धीरज बँधाती रहे, और मिष्टवचनोंसे उसको शांतिकरतीरहे । जब देखेकि अब अत्यंत पीडा होनेलगी और गर्भ नहीं निकले उससमय उसगर्भिणीसे कहे कि, हे सुभगे ! तू खडी होजा और मूशलको लेकर ये जो ओखलीमें धान है इनको वारंवार कूट और वारंवार जँभाईले. तथा धीरे २ ठहरकर इधर उधर डोल. परन्तु इस कर्म करनेको भगवान् आत्रेय वर्जित करते हैं, क्योंकि गर्भवतीको व्यायाम (मेहनत) करना वर्जित कहाहै। दूसरे विशेष करके प्रसवकालमें प्रचलित सर्वधातु दोषादिक जिस्के ऐसी सुकुमार आशयवाली स्त्रीको मूशलके उठाने धरने रूपमेहनतसे वायु कुपितहोकर उस गर्भिणीके प्राणहर्ता होतीहै, अतएव धानोंका कूटना गर्भिणीको निषेधहै ।

आव्योहित्वरयन्त्येनांखट्वामारोपयेत्ततः ।
अथसंपीडितेगर्भेयोनिमस्याःप्रसाधयेत् ।

अर्थ–जब प्रसवकालकी अधिक पीडा दुःखदे तब इसको शय्यापर आरोपण करे, तदनन्तर गर्भ अत्यंत पीडा करे तब इस गर्भिणीकी योनिको तेल आदिसे विकाशित करे ।

मृदुपूर्वंप्रवाहेतबाढमाप्रसवाच्चसा ।

अर्थ-वह गर्भिणी गर्भको नम्र करके प्रथम वहनकरै जबतक गर्भ योनिके मुखतक न आवे और जब योनिके मुखपर आयजावे तब अत्यंत जोरसें वहे अर्थात् धक्का देवे ।

हर्षयेत्तांमुहुःपुत्रजन्मशब्दजलानिलैः ।

अर्थ-उस समय समीप रहनेवाली स्त्री वारंवार पुत्रजन्मशब्दकरके इस गर्भिणीको प्रसन्नकरे अर्थात् (हे सुभगे! तूं परम सुंदर पुत्रको जनेगी) तथा शीतल गुलाबजल छिड़क और शीतल पवन करके उस गर्भिणीको प्रसन्न करे ।

एनांब्रूयाच्चसुभगेशनैःशनैःप्रवाहयस्वशोभनस्तेमुखवर्णःपुत्रं जनयिष्यासि । तथाअन्यातुवामकर्णेऽस्यामंत्रमिमंजपेत् ।

अर्थ-इस गर्भवतीसें समीपकी स्त्री कहे कि, हे सुभगे ! तूं धीरेधीरे गर्भको ढकेल देख कैसा सुन्दरतेरे मुखका वर्ण है तूं पुत्रको प्रगट करेगी तथा दूसरी स्त्री इसके वामकर्णमें इन मंत्रोको पढे ।

मन्त्राः

क्षितिर्जलंवियत्तेजोवायुर्विष्णुःप्रजापतिः ॥ सगर्भांत्वांसदापातु वैशल्यं वादधातुते॥१॥प्रसुष्वत्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टाशुभानने । कार्तिकेयद्युतिंपुत्रंकार्तिकेयाभिरक्षितम्॥२॥इहामृतंचसोमश्च चित्रभानुश्चभामिनि । उच्चैःश्रवाश्चतुरगोमन्दिरेनिवसंतुते॥३॥ इदममृतमपांसमुद्धृतंवैतवलघुगर्भमिमंप्रमुंचतुस्त्री । तदनल पवनार्कवासवास्तेसहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तुशांतिम् ॥ ४ ॥

यदि बहुत कष्टी होवेतो ये नीचे लिखे अर्जुनके दशनाम है इनको पढता जावे और सूर्यमेंसें एकही हाथ करके जलखींचे उसजलको पीतेही गर्भिणी कष्टसें छूट जावे ।

अर्जुनःफाल्गुनोजिष्णुःकिरीटीश्वेतवाहनः ।
बीभत्सुर्विजयःकृष्णःसव्यसाचिर्धनंजयः ॥

अथवा चक्रावूका यंत्र अष्टगंधसे लिखकै उस गर्भिणीको दिखावे पीछे उस यंत्रको धोयकर उस गर्भिणीको पिवाय देवे तो गर्भिणी कष्टसें छूट जावे ।

हर्षोत्पादनकाप्रयोजन

प्रत्यायांतितथाप्राणाः सूतिक्लेशावसादिताः ।

अर्थ–गर्भिणीको पुत्रजन्मादि कारणोंसे प्रसन्नकरनेका यह प्रयोजनहै कि प्रसूतिके दुःखसें ग्लानिको प्राप्तहुए प्राण हर्षोत्पादनसे फिर नवीन होतेहैं ।

गर्भकेरुकनेमेंउपचार

धूपयेद्गर्भसङ्गेतुयोनिंकृष्णाहिकञ्चुकैः।हिरण्यपुष्पीमूलञ्च पाणिपादेनधारयेत् । सुवर्चलांविशल्यांवाजराय्वपतनेऽपिच। कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्यबाह्वोरेनांविकम्पयेत् । कटीमाकोटयेत्पार्ष्ण्याफिजौगाढंनिपीडयेत् । तालुकण्ठंस्पृशेद्वेण्यामूर्ध्निदद्यात्स्नुहीपयः । भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः । पृथग्द्वाभ्यांसमस्तैर्वायोनिलेपनधूपनम् । कुष्ठतालीसकल्कंवासुरामण्डेनपाययेत् । यूषेणवाकुलत्थानांबिल्वजेनासवेनवा ।

अर्थ–गर्भके रुकनेमें ये उपचार करे कि, कालेसर्पकी कांचलीकी योनिको धूनी देवे, हिरण्यपुष्पी (छोटी खजूरी वा मूसली) की जडको हाथपैरोंमें धारणकरे. अथवा सुवर्चला और विशल्या कलखडी को हाथपैरोंमें धारणकरे, यह यत्न जरायु (आमरखेवर) के न निकलने में भी करे, तथा जबतक जरायु न गिरे तबतक इंसगर्भिणीके हाथोंको कंपितकरे (चरकमें लिखाहै. कि, यदि जरायु न निकले तो उसस्त्रीके नाभिके ऊपर दहनेहाथसे खूब दबावे और दूसरेहाथसे उसकी पीठको पकडकर कंपावे) तथा पीठ और कमरको पीडितकरे, और कूलेन्को पीडित करे, माथेकी वेणीसें उसके तालु और कंठको स्पर्शकरे तथा मस्तकमें थूहरका दूधडाले एवं भोजपत्र कलयारी, तूंबी, सांपकी कांचली, कूठ, और सरसों प्रत्येककी पृथक् २ अथवा सबको मिलाके योनिको धूनीदेवे, अथवा लेपकरे । तथा कूठ और तालीसपत्रका कल्क अथवा सुरा और मंडको मिलाके पिवावे । अथवा कुलथीका काढा वा बेलकी दारू पिवावे, (चरक में लिखाहै कि भोजपत्रकाचमणि, और सर्पकी काचली इनकी योनिको धूनी देवे) अथवा भोजपत्र और गूगलकी धूनी दे, अथवा चामलोंकी जडसे सिद्धकरे हुए घृतसे योनिको लेपनकर, कडुई तूंबी, तोरई, नीम, और सर्पकी कांचली इन सबकी कूस, आदिको धूनीदेवे अथवा गुड सोंठके कल्कका भगमें लेपकरे और इसीकल्कको पीवें, अथवा कलयारीकी जडके कल्कको हाथ पैर और उदरमें लेपकरे, कूठ इलायचीका कल्क मद्यमें मिलायकर पीवे. आक थूहरके काढे में मद्य मिलाकर पीवे. अथवा कूठ कलयारीकी जडके कल्कमें मद्य अथवा गोमूत्र मिलायकर पिवावे. अथवा सोंफ, कूठ, मेनफल, हिंग, इनसे सिद्धकरेहुए तैलमें कपड़ा भिगोकर योनिमें धरे ।

शताह्वासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः । सहिंगुकुष्ठमदनै मूत्रेक्षीरेचसार्षपम् । तैलंसिद्धंहितंपायौयोन्यांवाप्यनुवासनम् । शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्पितः । निरूहःपातयत्याशुस स्नेहलवणोऽपराम् । तत्सङ्गेह्यनिलोहेतुःसानिर्यात्याशुतज्जयात् ।

अर्थ-सौंफ, सरसों, जीरा; सहजना; चव्य, चीतेकी छाल, हींग, कूठ, मैनफल, इन सबको एकत्र करे पीछे गोमूत्रमें और गौके दूधमें ए सब औषध मिलाय सरसोंका तेल मिलावे, उसको तैलपाकविधिसे सिद्धकर इस तैलसे गुदा और योनिमें अनुवासन करना हित होताहै । तथा सौंफ, बच, कूठ पीपल, और सरसों इनका कल्क कर उसमें तैल और नोन मिलायकर निरूहबस्ती करे तो तत्काल पेटमेंसे जरायुको निकालकर पटकदेवे, उस जरायु के रुकनेका कारण वायु है, उसवायुके पराजय होनेसे वह जरायु कूखसे बाहर निकल आताहै, अतएव पवनके जीतने को बस्तिप्रधान है, (चरकमें लिखाहै कि, गर्भिणीको कुबडीकर उसके निरूहन और अनुवासन बस्तिकरे. इसप्रकार विवृतमार्ग होनेसे औषधी भलेप्रकार प्रवेश करतीहै)

कुशलापाणिनाऽक्तेनहरेत्कृत्तनखेनवा ।

अर्थ-गर्भ निकालने में कुशल ऐसीस्त्री शस्त्रसे नखोंको दूरकर और हाथों में घृतचुपड नालके अनुसार उसको बाहर खींचे ।

मुक्तगर्भापरांयोनिं तैलेनाङ्गंचमर्दयेत् ।

अर्थ-जब स्त्रीके गर्भ और जरायु योनिसे बाहर आयजावे तब उसकी योनिको तथा सब अंगोंको तैलसे मर्दन करे.

मकल्लाख्येशिरोबस्तिकोष्ठशूलेतुपाययेत् । सुचूर्णितंयवक्षारंघृते नोष्णजलेनवा । धान्याम्बुवागुडव्योपत्रिजातकरजोन्वितम् ।

अर्थ-प्रसूतहोनेके पश्चात् स्त्रीके मकल्लाख्यरोग प्रगटहोनेसे तथा उसमें, शिर, बस्ति, और कोठा इनमें शूलहोनेसे जवाखारको पीस घृतके साथ अथवा गरम जलके साथ पीनेकोदेवे अथवा पुरानागुड सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, दालचीनी, और पत्रज, इनका चूर्णमिलायके देवे.

बालकजन्मकेपश्चात्कर्म

अथबालेसमुत्पन्नेविदधीतविधिंततः ।
यथैवकुलवृद्धास्त्रीव्यवहारपरम्परा ।

अर्थ–बालक उत्पन्न होनेके उपरांत, जैसी अपने कुलमें वृद्धस्त्रियोंकी रीति भांत होवे, उसके अनुसार बालकजन्मविधि करे.

अथजातस्योल्बंमुखंचसैन्धवसर्पिषा
विशोध्यघृताक्तंमूर्ध्निपिचुंदद्यात् ।

अर्थ–बालकके उत्पन्नहोतेही उसके अङ्गके ऊपरकी जरायु उतारकर दूरकरे, तथा सेंधानोन घीमें मिलाय मुख में डाल कण्ठमें जमेहुए कफको निकालकर मुख निर्मलकरे; और घीमें कपड़ेको अच्छीतरह भिजोय उसको चोलडकरके बालकके तालुए ऊपर धरे.

नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्यसूत्रेणबद्ध्वाछेदयेत् । तत्सूत्रैकदेशञ्च ग्रीवायांसम्यग्बध्नीयात् । अश्मनोः संघट्टनंकर्णमूलेकार्यम् ।

अर्थ–तदनंतर नाभिनाल आठ अंगुल खींच उसमें सूतबांधकें छेदनकरे और उस सूतमें नालको लपेट बालककी नाडमेंबांधे. और उसबालकके कानोंपर पत्थरी-को बजावे परंतु इसमध्यदेशमें कांसेकी थाली बजानेकी बहुधाचालहै, और शीतल-जल अथवा गरमजलको इसके मुखपर छिडके कि जिस्सें गर्भके क्लेशसें घबडाया हुआ बालक स्वस्थ होवे जबतक बालक को होस नहोवे तबतक इसको कृष्णकपालि सूर्यकरके धारणकरे. जब होसमें आयजावे तब स्नान आदि कर्मकरे चरक लिखताहै कि बालककी नालको तीखेधारवाले सोनें, चांदी, और लोहेके टूकसें छेदनकरे. यदि नाडी बेडोल टूटजावेतो लोध, महुआ, फूल- प्रियंगु, दारुहलदी, इन्केकल्कसेंसि द्धहुएतेलसेंसेककरे, और तैलकी औषध उसजगे लगावे, अविधिपूर्वक नाडीके काटनेसें आयमत्तण्डी, पिपीलिका, विनामिका, विजृंभिका; आदिरोगोंसें बालकको भय होताहै. । यदि पूर्वोक्तरोग होवे तो वातपित्त प्रशमक अविदाही ऐसे अभ्यंग आच्छादन और परिषेक आदिसें दूरकरे. ।

ततोनन्तरंजातकर्मकार्यम् ।

अर्थ–तदनंतर जातकर्मकरे जातकर्ममें घृत, और सहत मिलाय उसमें थोडा सोना डाल अनामिकासें चटावे, परंतु आजकल कहींकहीं नालच्छेदनके पूर्व मधुघृत चटातेहै, जातकर्म होनेके अनंतर बलाके तेलसें अथवा वटादि क्षीर वृक्षोंके काढेसें अथवा सर्व प्रकारके गंधोदकोंसें शरीर चुपड सुवर्ण अथवा चांदी तपाय पानीमें बुझाय उस पानीको कुछ गरम कर उस मंदोष्ण पानीसें उस बालकको न्हलावे, इस कर्ममें कालका अतिक्रम न होनेदेवे, तथा वातादि दोषोंमें जिसका प्राबल्य होवे

उसी उसी दोषकी नाशक औषधोंके काढे मिलायकर न्हिलावे, जैसा अपना वैभव होवे तत्सदृश सर्व सुगंधोदक करके न्हिलावे ।

वृद्धवाग्भटमेंऔरहीप्रकारसेंप्राशनविधिकहीहै.

ऐन्द्रीशङ्खपुष्पीवचाकल्कंमधुघृतोपेतंहरेणुमात्रंकुशेना भिमन्त्रितंसौवर्णेनाश्वत्थपत्रेणमेधायुर्बलजननंप्राशयेत् तद्वत्ब्राह्मीवचानन्ताशतावर्यन्यतमचूर्णंचेति ।

अर्थ—ऐंद्री, संखाहुली, वच इनके कल्कमें सहत घृत मिलाय गुंजा प्रमाण लेकर कुशासें अभिमंत्रितकर सुवर्ण मिलाय पीपलके पत्ते पर धरके चटावे. यह मेधा आयुष्य, बल, इनको देयहै उसीप्रकार ब्राह्मी, वच, दूध, और शतावर, इनमेंसें किसी एकका चूर्णमें घृतसहत मिलाय चटावे ।

इसकाफल.

धमनीनांहृदिस्थानांविवृतत्वादनन्तरम् ।
चतूरात्रात्रिरात्राद्वास्त्रीणांस्तन्यंप्रवर्तते ॥

अर्थ—स्त्री प्रसूत होनेके पश्चात् उसके हृदय संबंधी धमनियोंके मुखविकसित होकर तीन चार दिवसके अनंतर स्तनोंमें दूध उतरताहै । इसीसें प्रथम दिन सहत और घृतमें १ रत्तीभर सोना खवालकर मंत्रोंसें अभिमंत्रितकर तीनवार चटावे, इसी प्रकार दूसरे दिन लक्ष्मणा डालकर सिद्धकरा हुआ घृत पिवावे और पूर्वोक्त औषध देवे; तथा रक्षोघ्न औषध हातपैरमें ग्रीवा, मस्तक, इनमें बांधे जलके पूर्णपात्र मंत्रोंसें अभिमंत्रित इसके समीप स्थापितकरे, आरी, खैर, बेर, पीलू फालसे, इन वृक्षोंकी शाखासें प्रसूताके सब घरको रक्षित करे, और प्रसूताके घरके चारों तरफ *सरसों, अलसी, तिल, जौं, तथा अन्य धान्य बिखेर देवे । तथा रक्षोघ्न औषधोंकी* पोटली बांध प्रसूताके घरके उत्तर देहलीमें स्थापित करे तथा प्रसूताके घरमें सदैव अग्नि जलती हुई रक्खे । और इसकी शय्याका शिर पूर्वकी ओर रक्खे । और निरंतर दीपक समीप रक्खे तथा सकल गुण चतुरा स्त्री और इसके सुहृद दशदिन वा बारहदिन बराबर जगाकरे । तथा दान, मंगल, आशीर्वाद, स्तुति, गीतगाना, बाजेवजाना, अन्न, पान, और बहुतसे प्रहृष्ट मनुष्यों करके प्रसूताके घरको परिपूर्ण रक्खे । अथर्वणवेदके जाननेवाले ब्राह्मण सायंकाल और प्रातःकालमें शांति हवन कराकरे । कि जिस्से प्रसूता और बालककी रक्षारहे तथा फूलमाला आदि जो व्रणवाले पुरुषके पास रखना लिखाहै वो सब प्रसूताके पास रखने चाहियें ।

प्रसूताको भूखलगे तब घृतपिवावे । यदि केवल घृत न भावे तो अन्य पदार्थोंमें मिलायकर देवे तथा पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठका चूर्णमें घृत गुड मिलाकर देवे, घृत तैलका देहमें मालिस करे; और बडे वस्त्रसें इसके पेटको बांध देवे कि, जैसें वायु कुपित होकर विकारोंको न प्रगट करे, जब घृत, तैल आदि पीयेहुए पचजावे तब पूर्वोक्त पीपल आदि औषध डालकर सिद्धकरी यवागू पिवावे. उसमेंभी घी डालदेवे और यह पतली होवे यदि कुछ दोष बाकी रहगयाहो तो उस स्त्रीको पीपल, पीपरामूल, गजपीपल, चित्रक, अदरख, और चव्यके चूर्णको गुडके जलसें अथवा गरम जलसें पीवे, ऐसे दो तीन रात्रिपर्यंत करे जबतक दुष्टरुधिर रहे जब रुधिर शुद्ध हो जावे तब विदारीकंद, और असगंध आदिसें सिद्ध स्नेहयवागू अथवा क्षीरयवागू तीन रात्रपीवे । और जो कुलथी, कंकोल, करके सिद्ध जांगल रसकेसाथ साठी चावलोंका भात भोजनकरे इसप्रकार डेढमहिने करनेसें प्रसूताविधानसें छूटे. धन्वभूमि (मारवाडआदि) की प्रसूतास्त्रीको घृततैलमेंसें एककीमात्रापिवावे. और पिप्पल्यादि कषायका अनुपान देवे । और नित्य चिकनाई देवे जांगल देशकी प्रसूतास्त्री को उसको आत्माके अनुकूल घृततैलकी मात्रादेवे । ये सब उपाय बलवान् प्रसूताकेहैं और निर्बल प्रसूतास्त्रीको सब औषधोंसें सिद्धकरी घृतमिली यवागू पिवावे । प्रसूतास्त्री क्रोध, परिश्रम, मैथुन, आदि कर्मको न करे।

प्रसूतास्त्रीकोनियमनपालनेकेदोष

मिथ्याचारात्सूतिकायायोव्याधिरुपजायते ।
सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्योवाभवेदत्यर्थतर्पणात् ।

अर्थ-प्रसूताके मिथ्या आहार विहारादिकसे जो व्याधी होतीहै वह कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होतीहै । अतएव उस प्रसूताको देश, कालके उचित व्याधिसात्म्य कर्मकरके परीक्षा पूर्वक नित्य उपचार कर्त्तव्यहै । प्रसूताको व्याधि कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होनेमें क्या कारणहै सो कहतेहैं (गर्भके बढनेसे क्षीण और शिथिल हुईहै सब शरीरकी धातु तथा प्रवहन वेदना पूर्वक रुधिरके निकलजानेसे सर्वदेह शून्य होजाताहै; इसीसे प्रसूताके जो रोगहोतेहै वो कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होतेहै।)

ततोदशमेऽहनिसपुत्रास्त्रीसर्वगंधौषधैगौरसर्षपैश्चस्नाता लघ्वहतवस्त्रपरिहितापवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवतीसंस्पृश्यमङ्गलान्युचितामर्चयित्वादेवताःशिखिनःशुक्लवाससोऽव्यङ्गान्ब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वाकुमारमहतानाञ्चवाससांचप्राक्शिरसमुदक्शिरसंवासंवेश्यदेवतापूर्वद्विजाति

भ्यःप्रणमतीत्युक्त्वाकुमारस्यपिताद्वेनामनीकुर्यान्नाक्षत्रिकंनामाभिप्रायिकञ्च

अर्थ-तदनन्तर दशमे दिन सपुत्रास्त्री सर्वगंधौषध और सपेदसरसों करके स्नानकर हलके और विनाफटे वस्त्रोंको धारणकर तथा पवित्र और प्रिय हलके विचित्र भूषणोंसे भूषितहो मंगली गौ आदिका स्पर्शकर उचितदेवता और अग्निका पूजनकर सपेदवस्त्र धारणकरनेवाले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढाय कुमारकोभी दिव्यनवीन वस्त्र पेहनायकर पूर्वशिर अथवा उत्तरशिर स्थितकर देवतापूर्व ब्राह्मणोंको प्रणामकर पिता बालकके दो नामकरे। एकतो नाक्षत्रिक अर्थात् जो नक्षत्रसे संबंध रखताहो और दूसरा नाम आभिप्रायिक, परंतु इनमें भी ब्राह्मण अपने बालकका नाम देवशब्द-पूर्वक शर्माशब्द रक्खे (जैसे रामचन्द्रदेवशर्मा) और क्षत्री अपनेबालककानाम वर्मा शब्दांत रक्खे (जैसे रामसिंहवर्मा) तथावैश्य गुप्त और भूति रक्खे. और शूद्र अंतमें दासशब्दरक्खे और नामके प्रथम घोषवान् अक्षररक्खे और नामके अंत्यअक्षर दीर्घ. विसर्जनीयरहित होने चाहिये।

इस जगे यह भी जानलेनाचाहिये कि बालकका अशोभित और अर्थहीन नाम न रक्खे जैसे कि हमारे बहुतसे माथुर आदि प्यारके वस बिरैया, कुत्ती, लुच्ची, घोन्टा, आदि अनर्थ और दुष्ट नाम रखतेहें। परंतु बंगवासी कैसे सुशोभित और सार्थक रक्खतेहैं (जैसे तारानाथतर्कवागीश, सुरेन्द्रमोहन, तारानाथ तर्कवाचस्पति और शरच्चन्द्रचक्रवर्तीवंद्योपाध्याय आदि) परंतु नाम दो या चार अक्षरका होना चाहिये और स्त्रियोंकेनाम मनोहर स्पष्टार्थ तथा मंगली होने चाहिये. (जैसे यशोदा, वसुदा, चन्द्रभागा आदि) विशेष विधि धर्मशास्त्रके ग्रंथोंसे देखलेना. नामकरणके अंतमे बालककी आयुका निर्णय करे कि यह दीर्घायु होगा वा मध्यायु वा अल्पायु, यह प्रकार हम आगे लिखेंगे।

अथधात्रीपरीक्षा

अथब्रूयात् धात्रीमानयेति समानवर्णां यौवनस्थां निभृतामनातुरामव्यंगामव्यसनामविरूपामविजुगुप्सामजुगुप्सितदेशजातेयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मणांकुलेजातांवत्सलांजीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामशायिनींकुशलोपचारांशुचिमशुचिद्वेषणीं स्तनस्तन्यसम्पदुपेतामिति

अर्थ-तदनंतर कहेकि धायको लाओ, जो समानवर्णकी (अर्थात्ब्राह्मणको ब्राह्मणी क्षत्रीको क्षत्राणी वैश्यको वैश्यजातिकी और शूद्रको शूद्रास्त्री) हो तथा जवान

सौशील्य गुणयुक्त, रोगरहित, सर्वांगवाली, व्यसनरहित, रूपवान्, अनिंद्य देशमें प्रगटहोनेवाली, क्षुद्रतारहित, अक्षुद्रकर्म करनेवालीके कुलमें प्रगट, वात्सल्ययुक्त, जीवितसंतानवाली, तथा पुत्रसंतान वाली, अत्यंत दूधवाली, अप्रमत्त, अल्पनिद्रावाली, सर्वोपचारोंमें कुशल, पवित्र, अपवित्रतासे द्वेषकरनेवाली स्तन और स्तन्यसंपत्वालीहो, आज कल जाटगूजरआदि हीनजातिही सर्वत्र धाय होतीहै. ।

अथस्तनसम्पत्

तत्रेयंस्तनसम्पत्नात्यूर्ध्वौनातिलम्बौअनातिकृशावनाति पीनौयुक्तिपिप्पलकौ सुखप्रपानौचेतिस्तनसम्पत् ।

अर्थ—तहां स्तनसम्पत् कहतेहैं कि, न बहुत ऊंचेहो न बहुत लम्बेहो न बहुत कृशहो न बहुत मोटेहो पीपलके पत्ते सदृश सुडारहो, सुखपूर्वक बालकके पीनेमें आवे । ऐसे धायके स्तनहोवे ।

स्तन्यसम्पत् ।

स्तन्यसम्पत् प्रकृतवर्णगन्धरसस्पर्शमुदपात्रेवदुह्यमा नमुदकं व्येतिप्रकृतिभूतत्वात्तत्पुष्टिकरमारोग्यकरं चेतिस्तन्यसम्पत् । अतोऽन्यथाव्यापन्नंज्ञेयम्

अर्थ—स्तन्य (दूध) संपत्कहतेहैं कि, जिस धायका दूध प्रकृत वर्ण गंध रस और स्पर्शवालाहो. तथा जलकेपात्रमें दुहनेसे जलमें मिलजावे कारण यह है कि, जलप्रकृतिभूतहोनेसे उत्तमहोताहै इससे ऐसा दूध बालकको पुष्टिकरे । और आरोग्य कर्त्ता जानना इस्सेविपरीत दूषित दूध जानना. ।

अथनिषिद्धधायकेलक्षण ।

शोकाकुलाक्षुधार्त्ताचश्रान्ताव्याधिमतीसदा । अत्युच्चानि तरांनीचास्थूलातीवभृशंकृशा॥गर्भिणीज्वरिणीचापिलम्बो न्नतपयोधरा । अजीर्णभोजनीचापितथापथ्यविवर्जिता । आसक्ताक्षुद्रकार्येतुदुःखार्त्ताचञ्चलापिच । एतासांस्तन्यपा नेनशिशुर्भवतिसामयः ।

अर्थ—शोकाकुल, क्षुधासे व्याकुल, थकीहुई, सदैवरोगिणी, अत्यंत ऊंची, अत्यंत नीची, अतिस्थूल, अतीवकृश, गर्भिणी, ज्वरवाली, लंबे और ऊंचे स्तनवाली, अजीर्णमें भोजनकरनेवाली, तथा पथ्यवर्जिता, तुच्छकर्मोंमें फँसीरहे, दुःखसे आर्त्त, चञ्चल, ऐसी धायके स्तनपीनेसे बालक रोगग्रस्त होजाताहै.

अथस्तनपानविधि ।

ततःशिरस्स्नाताहतवसनोदङ्मुखीउपविश्यधात्रींप्राङ्मुखींचोपविश्यदक्षिणंस्तनंधौतमीषत्परिस्रुतमभिमंत्र्यमन्त्रेणानेन ।

अर्थ–तदनंतर बालककी माता शिरसहित स्नानकर धुएहुए नवीन वस्त्रोंको पहनकर उत्तरमुख बैठे और धायकोभी स्नानकराय पूर्वाभिमुख बैठालकर उसका दहनास्तन अच्छीरीतिसे धोय कुछ दूधको प्रथम पृथ्वीमें टपकाय पीछे इस मंत्रसे अभिमंत्रित करे. (चरकमें लिखाहै कि जब धायका स्वादु और बहुतसा शुद्ध दुग्धहोवे, तब वामरिष्टा, बाह्यपुष्पी, विष्वक्सेनकांता इनरूखडीन्को धारणकर पूर्वमुखवाले बालकको प्रथम दहना स्तन पिवावे)

अस्रावितदुग्धकेअवगुण ।

अस्रावितंस्तनंबालःपिबन्स्तन्येनभूयसा ।
पूर्णस्रोतावमीकासश्वासैर्भवतिपीडितः ॥

अर्थ–प्रथम स्तनोंसे दूधके विनाटपकाए जो बालक उसदूधको पीताहै, वह पूर्णस्रोतका दूध बहुधा वमन, खांसी और श्वाससे पीडित होताहै ।

अभिमंत्रणकेमंत्र।

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तुस्तनयोःक्षीरपूरकः । सदैवसुभगोबालोभवत्वेषमहाबलः । पयोमृतसमंपीत्वाकुमारस्तेशुभानने । दीर्घमायुरवाप्नोतुदेवाःप्राप्यामृतंयथा ।

अर्थ–इन मंत्रोंको पिताके स्थानमें ब्राह्मणको पढ़ने चाहिये जबतक मंत्रपाठ होवे तबतक माता वा धाय दहनेहाथसे स्तनका स्पर्शकरे रहे पश्चात् पिवावे ।

अनेकउपमाताहोनेकेदोष ।

अतोऽन्यथानानास्तन्योपयोगश्चासात्म्यवातादिजन्माभवति ।

अर्थ–अनेक उपमाता (धाय) होनेसे उन्होंके दूध बालककी प्रकृतिमें न आनेसे वह वातादि रोगोंसे पीडित होताहै ।

दूधसूखनेकेकारण ।

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्चस्त्रियाःस्तन्यनाशोभवति ।

अर्थ–क्रोध, शोक, अवात्सल्य आदि कारणोंसे स्त्रीका दूध नष्ट होताहै ।

क्षीरउत्पन्नकारकप्रयोग।

अथास्याःक्षीरजननार्थंसौमनस्यमुत्पाद्ययवगोधूमशालीप-ष्टिकामांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृं गाटकविषविदारीकंदमधुकशतावरीनालीकालाबूकालशा-कप्रभृतीनिविदध्यात्।

अर्थ-इस स्त्रीके दूध प्रगटकरनेको मन संतुष्टकरके जो गेहूंकासत्व (निशास्ता) शाल्योदन, सांठीचावल, मांसरस, मद्य, कांजी, खल, लहसन, मछली, कसेरू, सिंघाडे, विष, विदारीकन्द, मूलहटी, सतावर, नाडीकासाग और कालशाक इत्यादि सुसंस्कृतकरके भोजनको देवे।

सप्तरात्रात्परंचास्यैक्रमशोबृंहणंहितम्।
द्वादशाहेऽनातिक्रान्तेपिशितंनोपयोजयेत्॥

अर्थ-प्रसूता स्त्रीको सातरात्रि व्यतीत होनेपर क्रमसे बृंहण (जिनसे देह पुष्टहो-वे) देवे और बारहदिन व्यतीत नहो तबतक मांस खानेको न देवे।

दूधकीपरीक्षा।

अथास्यस्तन्यमप्सुपरीक्षेत। तच्चेच्छीतलममलंतनुशंखा-वभासमप्सुस्तन्यमेकीभावंगच्छतिअफेनिलमतन्तुमन्नो-त्प्लुवतेवसीदतिचतच्छुद्धमितिविद्यात्।

अर्थ-तदनन्तर स्त्रीके दूधकी परीक्षा जलमें इसप्रकार करे कि, बालककी माता-का दूध अथवा धायका दूध निकलवावे, यदि वह शीतलहो और स्वच्छ, पतला, शंख-के समान सपेद, तथा जलमें गेरनेसे एकत्र होजावे, तथा झागरहित और तंतुरहित होकर तैरे नहीं और जलमें बूडेनहीं उसको शुद्धजाने ऐसे दूधके पीनेसे बालकको आरोग्य, बल और पुष्टी होतीहै।

दुष्टस्तन्यकेविकार।-

धात्र्यास्तुगुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषादेहेप्रकुप्यं तिततःस्तन्यंप्रदुष्यति। मिथ्याहारविहारिण्यादुष्टावाता दयःस्त्रियाः। दूषयन्तिपयस्तेनशारीराव्याधयःशिशोः। भ-वन्तिकुशलास्ताश्चभिषक्सम्यग्विभावयेत्।

अर्थ-धायके गुरु, विषम, दोषकारक, ऐसे रोगोत्पत्ति करनेवाले पदार्थ खानेसे तथा मिथ्या आहार विहार करनेसे उसके शरीरके वातादिदोष कुपितहोकर स्तन्य (दूध) को दूषितकरके बालकके शरीरमें अनेकप्रकारके रोग उत्पन्नकरे हैं । अतएव कुशल वैद्यको विचारकरके उनरोगोंको दूरकरने चाहिये ।

कुमारकेरहनेकास्थान ।

अतोऽनन्तरंकुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-इसके अनंतर कुमारके गृह (घर) की विधि कहतेहैं । जैसे कि, वास्तुविद्यामें कुशल कारीगरोंने बनायाहो, प्रशस्त और रमणीय, अंधकाररहित, जिस्में बहुत पवन न आतीहो, और ऐसा भी न हो कि बिलकुल हवा न आवे, मजबूत, और जिस्में पशु डाढावालेजीव, मूसे, पतंग, (मच्छर, मक्खीआदि, नहो) जल, ओखली, मलमूत्रत्योगनेकेस्थान, स्नानकी पृथ्वी, रसोईकाघर, ऋतुसुखकारीघर, तथा ऋतु २ के शयनकरनेकास्थान, बैठक, परदा इनकरके युक्तहोना चाहिये। तथा यथाविहित रक्षाविधान, बलि, होम, मंगल, प्रायश्चित्त, युक्तहो । पवित्र वृद्धवैद्यके अनुरक्त और अनेक मनुष्योंकरके युक्त ऐसा बालकका घर होना चाहिये ।

बालकके ओढने बिछाने और पहरनेके वस्त्र, मृदु, हलके, पवित्र और सुगंधवाले होने चाहिये । तथा पसीना, मल, मूत्र, खटमल, आदि जीव और मैले वस्त्रोंको त्यागदेवे । और त्यागनेकी शक्ति न होवे तो उन्हीं मल मूत्र और मैलेवस्त्रोंको अच्छेप्रकार जलसे धोय पवन और धूपसे शुद्ध और सूखे कर कार्यमें लेने चाहिये.

सूतिकाकेकपडेआदिमेंधूनीदेनेकीऔषध ।

वस्त्र, शैया, ओढना, बिछैया, और पडदे आदिमें जों, सरसो, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठोना, हरड, गोलोमी, जटामांसी, लाख शोकरोहिणी, स्यापकीकांचली, इन सबको कूट घी मिलाकर धूनीदेवे ।

बालक मणीन्को धारणकरे, जेंडा, रूरु, हाथी, रोज, बैल, इन जीवतेहुए पशुओंके दहने सींगके अग्रभागको धारणकरे । ऐद्यादि औषधोंको और जीवक ऋषभसे आदिले और जो रूखडी ब्राह्मण बतावे उन्को धारणकरे। बालकके खेलनेके खिलोने विचित्र और बजने दिखनौट और हलकेहो तथा तीखे न होवे और जो मुखमें न जानेपावे, तथा प्राणहारक न हो, तथा जिनके देखनेसे भय न लगे, ऐसे होनेचाहिये।

बालकको त्रासदेना अच्छा नहींहै । अतएव रोनेसे अथवा भोजन न करनेसे दुःख होताहै. तथा और कार्योंसे उद्विग्न न करे । तथा राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नाम लेकर बालकको न डरपावे ।

पुनःस्तन्यस्वरूप ।

रसप्रसादोमधुरःपक्काहारनिमित्तजः । कृत्स्ना
देहात्स्तनौप्राप्तःस्तन्यमित्यभिधीयते ॥

अर्थ–पक्कआहारसे प्रगट हुए रसका मधुर २ सार संपूर्णदेहमेंसे स्तनमें प्राप्तहो दुग्धरूप होताहै, ऐसे विद्वान् कहतेहैं ।

स्तन्यकीप्रवृत्ति ।

पयःपुत्रस्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि । ग्रहणादप्युरोजस्य
शुक्रवत्संप्रवर्तते । स्नेहोनिरंतरस्तस्यप्रवाहेहेतुरुच्यते ॥

अर्थ–पुत्रके स्पर्शसे, देखनेसे, स्मरणसे, तथा बालकके स्तनपकडनेसे वीर्यके सदृश दूध उतरताहै । पुत्रके ऊपर निरंतर स्नेह रहना यही दूधके प्रवाहमें कारण कहाहै ।

स्तन्यकेअल्पहोनेमेंकारण ।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात् ।
स्त्रीणांस्तन्यंभवेत्स्वल्पंगर्भान्तरविधारणात् ॥

अर्थ–पुत्रके ऊपर प्रीति न होनेसे, भयसे, शोकसे, क्रोधसे, भूखेरहनेसे, अथवा दूसरे गर्भके रहनेसे स्त्रियोंके दूध थोडाहोताहै ।

स्तन्यवृद्धिकेउपायान्तर ।

कलमस्यतण्डुलानांकल्कंवाक्षीरपेशितंपिबति ।
साभवतिभृशंतरुणीक्षीरभरेणैवतुङ्गकुचयुगला ॥

अर्थ–कलमके चामलोंको दूधमें पीसकर पीवे तो उसके दोनों स्तन दूधकी अधिकतासे निरंतर ऊंचे रहतेहैं ।

कलमधान्यकेलक्षण ।

कलमःकिलविख्यातोजायतेसवृहद्वने ।
काश्मीरदेशएवोक्तोमहातण्डुलसंज्ञकः ॥

अर्थ–कलमनामका धान्य वृहद्वनमें उत्पन्नहोताहै । उसीको काश्मीरमें महातण्डुल कहतेहैं ।

विदारिकन्दस्यरसंपिबेत्स्तन्यस्यवृद्धये ।
तच्चूर्णंतस्यवृद्ध्यर्थंपिबेद्वाक्षीरसंयुतम्॥

अर्थ-विदारीकंदका रस स्त्री, दूधबढनेको पीवे अथवा विदारीकंदका चूर्ण दूधके साथ स्तन्यवृद्धिके अर्थ पीवे।

दुष्टस्तन्यकेलक्षण।

कषायंसलिलप्लाविस्तन्यंमारुतदूषितम्। पित्तादम्लञ्च कटुकंराज्योऽम्भसितुपीतिकाः॥ कफदुष्टंतुयत्तोयेनिम ज्जतिचपिच्छलम्। द्वन्द्वजंतुद्विलिङ्गंस्यात्त्रिलिङ्गंसा- न्निपातिकम्।

अर्थ-स्त्रीका दूध जो जलमें डालनेसे ऊपरही तेरा करे, तथा स्वादमें कषेला होवे, वह वातदूषित जानना और पानीमें डालनेसे जिसमेंसे पीलीपीली कलीसी होजावे, तथा स्वादमें खट्टा और तीखाहोय उसे पित्तदूषित जानना। और पानीमें गेरनेसे जो डूब जावे और चिकना होवे उस दूधको कफसे दूषित जानना। और जिसमें दोदोषके लक्षण मिले वो द्विदोषसे दूषित जानना और तीनदोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषसे दूषित दूध जानना। दुष्टस्तन्यकी शुद्धि प्रथम लिखआएहैं, और भी लिखतेहैं,

दुष्टस्तन्यकाशोधन।

पटोलनिम्बासनदारुपाठामूर्वागुडूचीकटुरोहिणीच।
सनागरश्चक्वथितंतुतोयेधात्रीपिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः॥

अर्थ-पटोलपत्र, नीमकीछाल, खैरसार, देवदारू, पाढ, मूर्वा, गिलोय, कुटकी और सोंठ इन सबको पानीमें काढा करके पीवे तो दूधकी शुद्धि होवे।

बालककेरोगज्ञानकाउपाय।

अङ्गप्रत्यङ्गदेशेतुरुजायस्यात्रजायते।मुहुर्मुहुःस्पृशतितं स्पृश्यमानेचरोदिति। निमीलिताक्षोमूर्धन्येशिरोरोगेण धारयेत्। वस्तिस्थोमूत्रसंसर्गोरोदिप्यतिचमूर्च्छति। वि ण्मूत्रसङ्गवैवर्ण्यछर्द्याध्मानांत्रकूजनैः। कोष्ठरोगान्विजा नीयात्सर्वत्रस्थांश्चरोदिति। तेषुयथाविहितंमृद्धच्छेदनी यौषधमात्रयाक्षीरपस्यक्षीरसर्पिषाधात्र्यास्तुकेवलमेववि- दध्यात्। क्षीरान्नादस्यात्मनिधात्र्याश्चअन्नादस्यकषाया दीन्यात्मन्येवनधात्र्याः।

अर्थ-अंग और प्रत्यंग इनमें जिस २ अंग प्रत्यंगोंमें पीडाहोवे उसीउसी अंगको वारंवार बालक स्पर्शकरताहै और स्पर्शकरके रोवे, मस्तकपीडा होनेसे नेत्रमूंद वारंवार मस्तकपटके, बस्तिस्थानमें रोगहोनेसे मूत्रबंद होवे और रोवे तथा मूर्च्छाको प्राप्तहोवे, सर्व कोष्टगत रोगहोनेसे विष्ठामूत्र बंदहोवे, शरीरमें विवर्णता तथा वमनहोवे, पेट फूलजावे, आंतडेनमें विलक्षण शब्द होवे और रुदनकरे, इत्यादि लक्षणोंसे रोग अच्छीरीतिसे जान उसी २ रोगमें यथायोग्य अर्थात् जो जो औषध जिसजिस रोगमें लिखीहै उसीउसी रोगमें देवे, परंतु इसमेंभी यह बात याद रहे कि, तीखी और छेदन कर्त्ता औषध न देवे, तथा कफमेदको दूर करने वाली औषध देनी चाहिये, इनकी मात्रा आगे कहेंगे उसको दूध और घृतमें मिलायकर देवे- बालक केवल दूधही पीताहो उसको घृत दूधमें मिलाय न देवे किंतु दूधमें घोलकर औषधदेवें । और दूध अन्न दोनों सेवनकरनेवाले बालकको देवे तो उसकी धायको भी देनी चाहिये और केवल अन्न खानेवाले बालकको क्वाथआदि औषध उसीको, देवे उसकी माताको न देनी चाहिये ।

बालककीमात्राकाप्रमाणकहतेहैं ।

तत्रमासादूर्ध्वंक्षीरपस्यांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौप धमात्रांविदध्यात् । कोलास्थिसंमितांकल्कमात्रांक्षीरा न्नादायकोलसंमितामन्नादायेति ।

अर्थ-एक महिनेके अनंतर दूध पीनेवाले बालकको बीचकी ऊंगली और अनामिका एकत्र करके उन दोनोंके आगेके पोरुओंमें अंगूठा धरके पोरुओंके गड्डेमें जितना कल्क आवे इतनी मात्रा देवे । परंतु वह कल्क सहत, घी, अथवा दूध मिलायकर देवे, तथा दूध और अन्न खानेवालेको अथवा केवल अन्न खानेवाले बालकको कोलप्रमाण मात्रा देनी चाहिये ।

अन्यग्रंथमेंदूसराप्रकारकहाहै, यथा,

प्रथमेमासिजातस्यशिशोर्भेषजरक्तिका । अवलेह्यातुक र्त्तव्यामधुक्षीरसिताघृतैः॥एकैकांवर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । ततोर्ध्वंमापवृद्धिःस्याद्यावत्षोडशकाब्दिकेति ॥

अर्थ-एक महिनेके बालकको औषधोंमें दूध और घी मिलाय चाटने योग्यकरके उसकी मात्रा एकरत्तीकी जाननी । तदनंतर १ वर्षपर्यंत प्रतिमास एक २ रत्ती बढावे । और एक वर्षके पश्चात् सोलहवर्षपर्यंत एक २ मासे मात्रा बढानी चाहिये ।

प्रकारान्तरकरकेऔषधोपायकहतेहैं ।

येषांगदानांयेयोगाःप्रवक्ष्यन्तेगदङ्कराः ।
तेषुतत्कल्कसंलिप्तौपाययेतशिशुंस्तनौ ।

अर्थ-जिस रोगका जो जो परिहारक औषधोपाय कहाहै उसीउसी औषधका कल्ककरके स्तनोंमें लपेट बालकको पिवाना चाहिये ।

ज्वरविषयमेंविशेषकहतेहैं.

एकंद्वित्रीणिवाहानिवातपित्तकफज्वरे ।
स्तन्यंपयोहितंसर्पिरितराभ्यांयथार्थतः ॥

अर्थ-जो बालक केवल दूध पीनेवालाहै, उसको वातपित्तकफज्वरमें स्तन्य (स्तनसंबंधीदूध) दूध, घी, एक, दो, तीनदिनके अंतरकरके पिवावे । तथा क्षीर और अन्नखानेवाला, तथा केवल अन्नखानेवाले बालकको जैसा प्रयोजनहो उतना घी हितावह होताहै । तथा ज्वरमें तृषाके भयसे बालकको स्तनपान देवे, परंतु विरेक, बस्ति, वमनरूप नाशकारक विकार न होनेसे स्तनपान देवे. *

बालककेतालुवाकाकलटकआनेकाउपाय ।

मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्यवायुस्ताल्वस्थिनामयेत् ।तस्यतृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैःशृतम् । पानालेपनयोर्योज्यंसीताम्बुव्यञ्जनंतथा ।

अर्थ-मस्तककी वायु अभ्यन्तर स्नेहका किसी कारणसे क्षय करके तालुएकी हड्डीको नवाय उग्र पीडा उत्पन्न करे, इससे बालक तृषा और दीनता इनकरके युक्तहोताहै । अतएव उसको सहत, घीमें मिलाय भलेप्रकार तपाय कर पिवावे तथा देहमें लगावे, तथा शीतल जल और पंखासे पवन करनी चाहिये ।

बालककीनाभिफूलआवेतथागुदपाकहोजावेउसकाउपाय ।

वातेनाध्मापितांनाभिंसरुजांतुण्डसंज्ञिताम् । मारुतघ्नैः प्रशमयेत्स्नेहस्वेदोपनाहनैः । गुदपाकेतुबालानांपित्तघ्नींकारयेत्क्रियाम् । रसाञ्जनंविशेषेणपानलेपनयोर्हितम् ।

अर्थ-बालककी नाभी वायुसे वेदनायुक्त फूलकर अत्यन्त बडी होजावे, उसमें वायुनाशक स्नेहादिक उपचार करावे, तथा गुदपाक होनेसे पित्तनाशक उपचार करावे तथा पान लेपन इस विषयमें रसांजन हितकारक होताहै ।

---

* नचतृष्णाभयाद्द्स्र पाययेतशिशुंस्तनौ । विरेकबस्तिवमनाद्दतेकुर्यांत्तु नात्ययात् ।

घृतबालककोसदैवहितकारीहोताहैयहकहतेहैं ।

क्षीराहारायसर्पिःसिद्धार्थकवचामांसीपयस्यपामार्गशता वरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धम् । क्षीरा न्नादायमधुकवचापिप्पलीमूलकत्रिफलासिद्धम् । अन्ना- दायद्विपञ्चमूलीक्षीरभद्रदारुमरीचमधुकविडङ्गद्राक्षाद्वि ब्राह्मीसिद्धं तेनारोग्यबलमेधायूंषिशिशोर्भवंति ।

अर्थ–जो बालक केवल स्तनपानही करताहो उसको सरसों, वच जटामांसी, अर्कपुष्पी, ओंगा, सतावर, सारिवा, ब्राह्मी, पीपल, हलदी, कूठ, सेंधानोन, इन औषधोंका कल्क तथा काढ़ाकरके सिद्धकराहुआ घृत पिवावे । और दूध अन्न खानेवालेको मुलहटी, वच, पीपरामूल और त्रिफला इनका कल्क अथवा काढा आदि कर उससे सिद्धकराहुआ घृत पिवावे तथा अङ्गमें लगवावे । और केवल अन्न खाने वाले बालकको द्विपंचमूल (लघुपंचमूल और बृहत्पंचमूल) दूध, तगर, देवदारु, कालीमिरच, मुलहठी, वायविडंग, दाख, ब्राह्मी और मंडूकपर्णी इनसे सिद्धकरा घृत पिवावे । तथा अंगोंमें मालिस करावे, इसकरके बालकके आरोग्य, बल, मेधा और आयुष्यकी वृद्धि होवे ।

अथबालककीपरिचर्याकीविधि ।

बालंपुनर्गात्रसमंगृह्णीयान्नचैनंभर्त्सयेत्सहसावानप्रतिबोधये- त्तद्वित्रासभयात् । सहसानापहरेदुत्क्षिपेद्वावातभयात् । नो पवेशयेत्कौब्ज्यभयात् नित्यंचैनमनुवर्त्तेतप्रियशतैर्नजिघांसुः ।

अर्थ–परिचारक (नौकर) मनुष्य बालकको धीरे धीरे फूलके समान जैसे उसके शरीरको सुखहोवे ऐसे उठावे, तथा इसको धमकावे नहीं. और अकस्मात् जगावे नहीं क्योंकि अकस्मात् जगानेसे बालक भयभीत होजाताहै, वातादिदोषोंके कुपित होनेके भयसे बालकको खींचे नहीं तथा जल्दी शय्यापर गेरेभी नहीं. कुबडे होनेके भयसे बालकको बहुत देरतक बैठावेभी नहीं और सर्वकाल उसके इच्छानुसार वर्ते, तथा बालकके खेलनेके खिलौने आदि पदार्थ देकर संतोषयुक्त रक्खे, कभी इसको मारे नहीं, तथा औषधका पिवाना, तेल, काजर, उबटना आदि आवश्यक विधिके विना बालकको कभी न रुलावे ।

उक्तपरिचर्याकाफलकहतेहैं ।

एवमव्याहतमापोह्यभिवर्द्धतेनित्यमुदग्र सत्वसम्पन्नोनीरोगःसुप्रसन्नमनाश्चभवति ।

अर्थ-इसप्रकार निरन्तर उपचार करनेसे उत्तम वृद्धिहोय, उन्नतसत्वसम्पन्न, निरोगी, तथा सुप्रसन्न अंतःकरण ऐसा होवे ।

बालककीरक्षाकाप्रकार ।

वातातपविद्युत्प्रभापादपलतानानागारनिम्न
स्थानगृहच्छायादिभ्योग्रहोपसर्गतश्चबालंरक्षेत् ।

अर्थ-बालकको, अत्यंत हवा, गरमी, बिजली, वृक्ष, वेल, अनेकघर, नीचीजगह, गृहोंकी तथा ग्रहसंबंधी अनेक प्रकारके उपसर्ग इनसे रक्षा करनी चाहिये ।

नाशुचौविसृजेद्बालमाकाशविषमेपिच ।
नोष्णमारुतवर्षेपुरजोधूमोदकेपुच ॥

अर्थ-बालकको अपवित्रस्थान, आकाश, तया ऊंचेनीचे प्रदेशमें न बैठारे । गरमी, वायु, वर्षा, धूंआ, धूर और जल इनमेंभी बालकको न बैठारे ।

बालककोस्वाभाविकहितवस्तूकहतेहैं ।

अभ्यङ्गोद्वर्तनंस्नानंनेत्रयोरञ्जनन्तथा । वसनंमृदुयत्तच्चत
थामृद्वनुलेपनम् । जन्मप्रभृतिपथ्यानिबालस्यैतानिसर्वथा ॥

अर्थ-तेलका लगाना, उबटनाकरना, स्नान, नेत्रोंमें अंजन लगाना, नरम २ वस्त्रोंको धारण करना, तथा नरमपदार्थोंका लेपन करना, इतनी वस्तु बालकको जन्मसेही सर्वथा हितकारी है, कोई वसनकी जगे (वमन) ऐसा कहतेहैं अर्थात् नरम वमन करना चाहिये ।

माताकेदूधनहोवेऔरधायमिलेनहींउससमयकी विधिकहतेहैं ।

क्षीरसात्म्यतयाक्षीरमाजङ्गव्यमथापिवा ।
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानांवीक्ष्यमात्रया ॥

अर्थ-बालकको माताका दूध न मिलनेसे गौ, अथवा बकरी इनमेंसे जिसका आत्मोपयोगी जानपडे उसका दूध आहार देखके देवे, वह दूध यावत्कालपर्यंत स्तनपान योग्यता होवे तवतक देना चाहिये । अंग्रेजी डॉक्टरोंकी रायहै कि, बालकको गधीका दूध अतिहितावह होताहै ।

बालककाअन्नप्राशनकासमय ।

यथोक्तविधिनाबालंमासिषष्ठेऽष्टमेऽपिच ।
अन्नंसंप्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्द्धयेत्क्रमात् ।

अर्थ-छटे महिने अथवा आठमें महिने शास्त्रोक्त विधिसे बालकको कुछ अन्न देवे और पीछे अनुक्रमसे बढावे ।

बालकके कवलादिकका समय ।

कवलःपञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्मच
विरेकःषोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैवमैथुनम् ।

अर्थ-बालकको पंचमवर्षसे कवलादि विधिकरे, और आठवर्षका होवे तब नस्य (नास) देवे तथा विरेक (जुल्लाब) सोलह वर्षके होनेपर देना चाहिये और वीसवर्षकी अवस्था होनेपर मैथुनकरना चाहिये । अर्थात् इस समयसे प्रथम ए उक्त कोई क्रिया न करे ।

ग्रहोपसर्गकेलक्षण ।

अथकुमारउद्विजतेत्रस्यतिरोदितिनष्टसंज्ञोभवतिनखदशनै धात्रीमात्मानञ्चपरिद्रुह्यतिदन्तान्खादतिकूजतिजृम्भतेभ्रुवौ विक्षिपत्यूर्ध्वंनिरीक्षतेफेनमुद्वमतिसंदष्टोष्ठःक्रूरोभिन्नामवर्चा दीनार्त्तस्वरोनिशिजागर्त्तिदुर्बलोम्लानाङ्गोमत्स्यछुछुंदरीम त्कुणगन्धायथापुरास्तनमभिलपतितथानाभिलपतीतिसा मान्येनग्रहोपसर्गलक्षणमुक्तंविस्तरेणोत्तरेवक्ष्यामः ।

अर्थ-बालक मातृकादि ग्रहोंसे पीडितहोनेसे उद्विग्न होकर क्षण २ में बचके, त्रासको प्राप्तहोवे, रोवे, निश्चेष्टहोवे और नख, तथा दांतोंसे माताको और आपको छेदनकरे, दांतोंको चबावे, कीकमारे अत्यंत जंभाई लेवे, भौहोंको चलावे, ऊपरकी तरफ देखे, मुखसे झागगेरे, होठोंको डसे, क्रूरमालूमहो, वारंवार दस्तजावे, आर्त्तस्वर करे, रात्रिमें जगे, दुर्बल और कुमलायासा होजावे, देहमें मछली, छछूंदर और खटमलकीसी दुर्गन्धआवे, पूर्ववत् स्तनपान करे नहीं ये सामान्यग्रहग्रस्त बालकके लक्षण कहेहैं । विस्तारपूर्वक आगे बालककी चिकित्सामें लिखेंगे ।

कुमारकीपुरुषार्थसाधनहेतुभूतक्रियाकहतेहैं ।

शक्तिमन्तञ्चैनंविज्ञाययथावर्णविद्यांग्राहयेत् ।

अर्थ-जब बालक विद्यार्जनक्लेश सहने योग्य होजावे तब ब्राह्मणका बालक होवे तो वेदविद्या शास्त्रविद्या पढावे, क्षत्रीहोवेतो दंडनीति, वैश्य होवे तो उसको हिसाब किताब इसप्रकार विद्याग्रहणकरावे । और पचीसवर्षकी अवस्थावालेको बारहवर्षकी स्त्रीसे विवाहकरे यह प्रथमही गर्भाधानके प्रकरणमें लिखआएहैं ।

सहेतुकसप्रतीकारगर्भस्रावकेलक्षण ।

तत्रपूर्वोक्तैःकारणैःपतिष्यतिगर्भेगर्भाश यकटिवंक्षणबस्तिशूलानिरक्तदर्शनञ्च ।

अर्थ–पूर्वोक्त कारण मूढगर्भनिदानमें कहेहैं जैसे ग्राम्यधर्म (मैथुन) तथा यानवाहनादि इनकरके गर्भपातहोते समय गर्भाशय, कमर, वंक्षण, और बस्ति इनमें शूलहोवे, तथा योनिके मुखसें रुधिर निकले उसमें शीतलजलका तरडा स्नान आदिशीतोपचार करावे, विशेषविधि वाग्भटसें लिखतेहैं ।

गर्भस्रावकाउपचार ।

गर्भिण्याःपरिहार्याणांसेवयारोगतोऽपिवा । पुष्पेदृष्टेऽथ वाशूलेबाह्यतःस्निग्धशीतलम् । सेव्याम्भोजहिमक्षीरीव ल्ककल्काज्यलेपितान् । धारयेद्योनिबस्तिभ्यामार्द्रा र्द्रान्पिचुनक्तकान् ।

अर्थ–गर्भिणीको त्याज्यआहार विहार जो प्रथम कहआएहैं, उन्होंके सेवनक रनेसे अथवा रोगकरके यदि पुष्प (रजोदर्शनकारुधिर) दीखे, अथवा शूलहोवे तो– स्निग्धशीतल ऐसे अन्नपान और परिषेकादि कर्म करने चाहिये, तथा स्त्रीके योनि और बस्तिमें, उसीर, कमलगट्टा, चंदन, और पीपलसें आदिले क्षीरवालेवृक्षोंका वक्कल इनसें बनाहुआ कल्कका लेपकर पिचु (रुईके नामे) और नक्तक (कपडे- काटूक) गीले करके रखने चाहिये, सुश्रुतमें लिखाहै कि " जीवनीयादिशृतशीतक्षी- रपानैश्च " अर्थात् जीवनीय कहिये कांकोली क्षीरकांकोली आदिका कल्क दूधमें मिलाय अच्छीरीतिसें तप्तकर शीतलकरके पिवावे ।

शतधौतघृताक्तांस्त्रीतदम्भस्यवगाहयेत् । ससिताक्षौद्रंकु मुदकमलोत्पलकेसरम् । लिह्यात्क्षीरघृतंखादेच्छृङ्गाटक कसेरुकम् । पिबेत्कान्ताब्जशालूकबालोदुम्बरवत्पयः । शृते नशालिकाकोलीद्विबलामधुकेक्षुभिः । पयसारक्तशाल्यन्न मद्यात्समधुशर्करम् । रसैर्वाजाङ्गलैःशुद्धिवर्जंचास्त्रोक्तमा चरेत् ।

अर्थ–हजारवार जलसें धुलेहुऐ घृतको नाभीसें नीचे मालिसकर उस स्त्रीको उसजलमें बैठारे, और कमोदनी, कमल, नीलाकमल, इनकी केशर मिश्री और

सहत इन सबको घृत और दूधमें मिलायकर पीवे, सिंघाडे और कसेरूओंको खावे, तथा गंधप्रियंगु, कमल, नीलकमल, और कच्चा गूलरका फल, इनको दूधमें ओटाकर पीवे, तथा सांठीचावल, कांकोली, बला, अतिबला, मूलहटी, और ईख इनको दूधमें ओटायकर उस दूधके साथ लालचावल और सांठीचावलोंमें सहतऔर खांड मिलायकर खावे, अथवा देश और आत्माके अनुकूल जंगलीजीवोंके रसके साथ सांठीचावलोंका भात खावे, क्षीरपाककी विधि ग्रंथान्तरोंमें लिखीहै* । तथा शुद्धिको त्याग रक्तपित्तोक्तक्रिया इसजगे करनी चाहिये ।

असंपूर्णत्रिमासायाःप्रत्याख्यायप्रसाधयेत् । आमान्वयेच ।

अर्थ–जिसगर्भिणीको पूरेतीनमहिने न हुएहो । और उसके कदाचित् रक्तदर्शन होवेतो उसका निश्चयकर यत्नपूर्वक साधनकरे । उसीप्रकार आमानुगत रक्तदर्शन होनेसें उसको विरुद्धोपक्रमहोनेसें यत्नपूर्वक साधनकरे ।

अबआमरक्तकेअविरुद्धक्रियाकहतेहैं।

तत्रेष्टंशीतंरूक्षोपसंहितम् । उपवासोघनोशीरगुडुच्यरलुधान्यकाः । दुरालभापर्पटकचन्दनातिविषाबलाः । क्वथिताःसलिलेपानंतृणधान्यादिभोजनम् । मुद्गादियूषैरामेतुजितेस्निग्धादिपूर्ववत् ।

अर्थ–आमानुगत रक्तदर्शनमें शीतल अन्नपानादिकोंको बाहर और भीतर योजना करना हितहै । परंतु शीतलवस्तु रुधिरको हितकारीहै और आमको बढानेवाली है, इस्से कहतेहैं कि (रूक्षोपसंहितम्) अर्थात् तिक्तकषायआदि करके पूर्वोक्त शीतलपदार्थ युक्त होने चाहिये । तथा उपवासकरना हितहै, तथा नागरमोथा, उशीर, गिलोय, श्योनाक, धनिया, जवासा, पित्तपापडा, चन्दन, अतीस, और बला इन्का काढा करके पीना हितहै, तथा तृणधान्य (सामांखिया, कोदो) आदिका भोजन हितहै, मूंगकायूष, और आदिशब्दकरके अरहर मसूर आदिशिंबीधान्य हितहोतेहैं. इसप्रकार आमको जीते. जब आमको जीतचुके तब पूर्ववत् स्निग्धादि हितहोतेहैं ।

एवमुपक्रांतायाउपावर्त्तन्तेरुजोगर्भश्चाप्यायते ।

अर्थ–इसप्रकार उपचार करनेसें संपूर्ण गर्भपातसंबंधी उपद्रव शांतहोतेहैं. और गर्भ बढताहै ।

---

* द्रव्यादष्टगुणंक्षीरंक्षीराच्चोयंचतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाकेत्वयंविधिः ।

गर्भपातमेंउपचार ।

गर्भेनिपतितेतीक्ष्णंमद्यंसामर्थ्यतःपिवेत् । गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमार्तिविस्मरणायच ।लघुनापञ्चमूलेनरूक्षांपेयां ततःपिबेत् । पेयाममद्यपाकल्केसाधितांपाञ्चकौलिके । बिल्वादिपञ्चकक्वाथेतिलोद्दालकतण्डुलैः । मासतुल्यदिनान्येवंपेयादिःपतितेक्रमः । लघुरस्नेहलवणोदीपनीययुतोहितः ।

अर्थ–गर्भिणीका इसप्रकार सेवनकरने परभी अदृष्टवशसे गर्भनिःशेष गिरजावे तो तीक्ष्णमद्य यहुतसापीवे । कारण यहहै कि, मद्यपीनेसे गर्भकी शुद्धि और पीडाका विस्मरण होताहै । तदनंतर मद्यपीनेके लघुपंचमूलसे बना ऐसा रूक्षपेयाको पीवे । और जो स्त्री मद्य न पीतीहो वह गर्भगिरनेके पश्चात् पंचकोलसे बना पेयाको पीवे मद्यको न पीवे । तथा बृहत्पंचमूलके काढेसे बने पेयाको पीवें । और तिल, उद्दालक (चावलविशेष) और चावलसें जो बनाहुआहो वह पेया जितने महिनेका गर्भगिराहो उतने दिन पीना चाहिये । फिर कैसा पेयाहोकि जिसमें चिकनाई और नोन न होवे, तथा दीपनकर्त्ता (मरिच चित्रक आदि) द्रव्यजिसमें मिलीहोवे ।

यहविधिकिसलियेकरनीचाहियेसोकहतेहैं.

दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थंविधिरित्ययम् ।

अर्थ–दोष (पित्तकफ.) और धातुओंके क्लेदसुखानेके अर्थ यहविधि करनी चाहिये. (दोषशब्दकरके इसजगे पित्तकफकाही ग्रहणहै) ।

स्नेहान्नवस्तयश्चोर्ध्वंबल्यजीवनदीपनाः ।

अर्थ–दोष धातुके परिक्लेद सुखनेके अनंतर चतुर्विध स्नेहपीनेमेंहितहै. और चिकना अन्नहितहै । तथा चिकनी वस्ती हितहै । अर्थात् चिकनाई वादीको दूरकरतीहै । स्नेहपान बलकेअर्थहितहै, अन्न जीवनके अर्थ और वस्ती ओजवृद्धि करताहै ।

उपविष्टकगर्भकेलक्षण ।

सञ्जातसारेमहातिगर्भेयोनिपरिस्रवात् । वृद्धिमप्राप्नुवन्गर्भः कोष्ठेतिष्ठतिसस्फुरः । उपविष्टकमाहुस्तंवर्द्धतेतेननोदरम् ॥

अर्थ–प्राप्तहुआहै बलजिसमें ऐसागर्भ, गर्भिणीके पथ्यापथ्य आदिसे जो स्रावहोवे, अर्थात् कभी रुधिर और कभी अन्य प्रकार स्रवे, इसी कारण गर्भवृद्धीको न पाता फडक्ताहुआ कोष्ठ (उदर) में ही रहे, उस गर्भको उपविष्टक कहते हैं । इस उपविष्टकसे गर्भिणीका उदर नहीं बढताहै ।

नागोदरगर्भकेलक्षण ।

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवायोन्यतिस्रवात् । वातेकुद्धेकृशः शुष्येद्गर्भोनागोदरंतुतत्।उदरंवृद्धमप्यत्रहीयतेस्फुरणंचिरात्॥

अर्थ-शोक, उपवास, रूक्षआदि गर्भ और गर्भिणीके अपुष्टकारके और पवनके कोपकारक हेतुओंसे तथा योनिके अत्यंतस्रवनेसे वातकुपितहोकर गर्भको कृशकरदेवे तथा सुखायदेवे, उस गर्भको नागोदरसंज्ञक कहतेहैं, और कोई आचार्य उपशुष्कक• कहतेहैं, इस नागोदरसंज्ञक गर्भमें बढाहुआभी उदर घटजाताहै । तथा देरीमें फड़कताहै । उपविष्टकगर्भकी तो वृद्धि नहींहोती जैसा का तैसा रहताहै और इस ना• गोदरमें गर्भ नष्टहोजाताहै ।

उपविष्टकनागोदरगर्भकीचिकित्सा ।

तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः । घृतक्षीररसैस्तृप्तिराम गर्भांश्चखादयेत् । तैरेवचसुतृप्तायाःक्षोभणंयानवाहनैः ॥

अर्थ-उनदोनों उपविष्टक और नागोदर गर्भवती स्त्रीकी द्रव्य (घृत दूध) करके संस्कृत ऐसे बृंहण वातघ्न और मधुरद्रव्योंसे तृप्तिकरे, तथा आमगर्भवालीको वैद्य खवावे जब बृंहणादि द्रव्योंसे सिद्धकरे घृत दूधसे गर्भिणी तृप्त होजावे तब उसको रथ हाथी घोड़ा आदि सवारीमें बैठार वेगसे चलावे इस प्रकार करनेसे गर्भवतीको क्षोभण करना चाहिये ।

वृद्धकाश्यपकेमतसेशुष्कगर्भकेलक्षण ।

. गर्भनाड्याह्यवहनादल्पत्वाद्धारसस्यच । चिरेणाप्यायतेगर्भ स्तथैवांकालभोजनात् । आकुक्षिपूरणंगर्भोमन्दस्पन्दनएवच ।

अर्थ-गर्भपोषण करनेवाली शिराओंके न बहनेसे, और माताके शरीरमें रस अल्प होनेसे कुसमय भोजनके करनेसे गर्भ बहुत कालमें पुष्ट होता है, वह गर्भ माताकी कूखको पूर्ण नहीं करे तथा धीरेधीरे पेटमें फिरता है ।

लीनाख्यागर्भकीचिकित्सा ।

लीनाख्येनिस्फुरेश्येनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः । रसाघृतु घृतादेयामापमूलकजाअपि । बालबिल्वंतिलान्मापान्सक्तूं श्चपयसापिबेत् । समद्यमांसंमधुवाकत्र्यभ्यङ्गञ्चशीलयेत् ।

अर्थ-लीनाख्य गर्भमें गर्भिणीको, शिकरा, गौ, मछली, उत्क्रोश (टटीहरी) मोर, इनके मांसका रस तथा उडद, मूलीका रस, इनमें बहुतसा घृत मिलायकर देवे, तथा कच्चेबेल, तिल, उरद और सत्तु इनमेंसे किसी एकको दूधमें मिलायकर पीवे अथवा स्निग्धमांसके साथ दारुकी आसवपीवे, तथा कमरमें तेलकी मालिसकरे, लीनाख्य * गर्भके लक्षण संग्रहमें लिखेंहें ।

उपायांतर ।

हर्षयेत्सततंचैनामेवंगर्भःप्रवर्द्धते । पुष्टो
ऽन्यथावर्षगणैःकृच्छ्राज्जायेतनैववा ।

अर्थ-लीनाख्य गर्भवती स्त्रीको वारंवार प्रसन्नकरे, कोई कहताहै कि उपविष्टक, नागोदर और लीनाख्य इनतीनों गर्भवाली स्त्रियोंको प्रसन्नकरे क्योंकि प्रसन्न करनेसे गर्भ बढे है ।

अन्यप्रकारसे अर्थात् रूक्षपदार्थोंके सेवनसे जो गर्भ पुष्टहुआ वह वर्षोंमेंभी बडेकठिनतासे प्रगट होय अथवा न भी होवे ।

गर्भिणीकेउदावर्त्तकायत्न ।

उदावर्त्तन्तुगर्भिण्याःस्नेहैराशुतरांजयेत् । योग्यै
श्चबस्तिभिर्हन्यात्सगर्भांसहिगर्भिणीम् ॥

अर्थ-गर्भिणी के उदावर्त्त रोगको चतुर्विध स्नेहकरके शीघ्रजीते, तथा [illegible] कहिये तत्कालोचित बस्ती करके जीते, क्योंकि, वह उदावर्त्त गर्भके साथ गर्भिणी को भी नष्ट करे है ।

मृतगर्भास्त्रीके लक्षण.

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोपिवा । मृतेऽन्तरुदरंशीतं
स्तब्धंध्मातंभृशव्यथम् । गर्भास्पन्दोभ्रमस्तृष्णाकृच्छ्रा
दुच्छ्वसनंक्लमः । अरतिःस्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।

अर्थ-वातादि दोषों के सञ्चय होनेसे, अपथ्य करनेसे, दैव (पूर्व जन्मके शुभाऽशुभसे) उदरमें गर्भ मरजावे उस गर्भके मरनेसे गर्भिणीका उदर शीतलहो, तथा निश्चलहो, धोकनीके समान फूलाहुआ हो और अत्यंत वेदनायुक्त होता है । तथा गर्भ फडके नहीं. भ्रम, प्यास, और बड़ी कठिनतासे गर्भिणीको ऊर्ध्वश्वास

---

* यस्याः पुनर्वातोपसृष्टस्रोतसोलीनो गर्भः । प्रसुप्तो न स्पन्दते तंलीनामित्याहुः ।

लिया जावे. क्लम, ग्लानि, अरति, नेत्र गिरे पड़े, और आसन्न प्रसवके शूलहोवे नहीं ए मृतगर्भास्त्रीके लक्षण हैं।

मृतगर्भास्त्रीकायत्न.

तस्याःकोष्णाम्बुसिक्तायाःपिष्ट्वायोनिंप्रलेपयेत् । गुडंकिण्वंसलवणंतथान्तःपूरयेन्मुहुः । घृतेनकल्कीकृतयाशाल्मल्यतसिपिच्छया । मंत्रैर्योग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भोनचेत्पतेत् । अथापृच्छ्येश्वरंवैद्योयत्नेनाशुतमाहरेत् । हस्तमभ्यज्ययोनिंचसाज्यशाल्मलिपिच्छया । हस्तेनशक्यंतेनैव-

अर्थ—उस अन्तरगर्भ मृतास्त्री की योनिको तत्ते गरम जलसे सुहाता २ सेककरे, पीछे गुड, चामलकी दारू, और नोन इनको पीसके लेपकरे तथा इसमें सेमर जलसी ए गाढी २ घृतमें कल्ककर पूर्वोक्त ओषधमें मिलाय लेपकरे और योनिके भीतर भरे तथा जरायुमें कहेहुये मंत्रोंसे (क्षितिर्जलमित्यादि) अथवा जरायुपातनके अर्थ अथर्वण वेदमें कहेहुए मंत्रोंका अनुष्ठान करे । यदि इस प्रकार अनुष्ठान करने परभी मराहुआ बालक पेटसे न निकले तो राजाकी आज्ञालेकर वैद्य उसमूढगर्भको शीघ्रही गर्भमेंसे निकाले. इसप्रकार कि प्रथम घृतको हाथोंमें चुपड तथाघृत और सेमरके गोंदसे योनिको लेपनकर उस मरेहुए बालकको निकाले।

—गात्रश्चविषमंस्थितम् ।
आञ्छनोत्पीडसम्पीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः ।
अनुलोम्यसमाकर्षेद्योनिंप्रत्यार्जवागतम् ।

अर्थ—विषमास्थित गर्भके देहको लंबाकरके ऊपरको चढायकर तथा चारों ओर घुमायकर विशेष ऊपरकी तरफ करके और उत्क्षेपण करके आदिशब्दसें इसी प्रकार अपनी बुद्धिसें अन्य प्रकार कल्पना कर सीधाकरे और योनिके मुख प्रतिलायकर निकाले. १८ नम्बरके चित्रोंको देखो।

मूढगर्भकीशस्त्रचिकित्साकहतेहैं।

हस्तपादशिरोभिर्योयोनिंभुग्नःप्रपद्यते । पादेनयोनिमेकेनभुग्नोऽन्येनगुदंचयः । विष्कम्भोनामतोमूढोशस्त्रदारणमर्हतः ।

अर्थ—कभी हाथकरके, कभी पैरकरके, कभी शिरकरके योनिके प्रति टेढाहोकर मूढगर्भ प्राप्तहोताहै। इसमें एकको विष्कंभनाम कहते हैं. जब एकपैरकरके योनिके

प्रति आवे. और दूसरेपैरसे गुदाकेप्रति टेढाहोकर जो मूढगर्भ आवे वो दूसरा विष्कंभनामक मूढगर्भकहाताहै. ए दोनों मूढगर्भ शस्त्रसे विदीर्णकरनेयोग्यहैं अर्थात् हाथसे नहीं निकलसके इसीसे शस्त्रद्वारा काटने चाहिये ।

शस्त्रकर्म ।

मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यांतत्रकर्मप्रशस्यते ।
वृद्धिपत्रंहितीक्ष्णाग्रंनयोनाववचारयेत् ॥

अर्थ-मण्डलाग्र और अंगुलिशस्त्र जो आगे शस्त्राध्यायमें कहेंगे इनसे मूढगर्भोंका छेदन आदि कर्मकरे और वृद्धिपत्र तथा तीक्ष्णाग्रशस्त्र इनको योनिमें कदाचित् न करे ।

मूढगर्भकेछेदनेकीविधि ।

पूर्वंशिरःकपालानिदारयित्वाविशोधयेत् । कक्षोरस्तालुचिबुकेप्रदेशेऽन्यतमेततः ॥ समालम्ब्यदृढंकर्षेत्कुशलोगर्भशंकुना । अभिन्नशिरसंत्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि ॥

अर्थ-पहले शिरसंबंधी कपालको शस्त्रसे शोधनकर गर्भिणीके पेटसे निकालेवे. तदनंतर कूख, छाती, तालु, ठोडी इनमेंसे किसीएकदेशको पकड उसे वैद्य गर्भशंकू (गर्भकाढनेके) शस्त्रसे बाहरकी तरफ जोरसे खींचे, तथा जिसका मस्तक न छेदन कराहो उस मूढगर्भका कभी नेत्रोंकाभाग, कभी गालोंको पकडकर गर्भशंकुसे खींचे ।

बाहुंछित्त्वांससक्तस्यवाताध्मातोदरस्यतु ।
विदार्य्यकोष्ठमन्त्राणिबहिर्वासंनिरस्यच ॥
कटिसक्तस्यतद्वच्चतत्कपालानिदारयेत् ।

अर्थ-जो मूढगर्भकेकंधे अटकतेहोवे तो उसको दोनोंभुजाओंका छेदनकरके निकाले और जिसमूढगर्भका बादीसे पेटफूलरहाहो, उसके आमपकाश्रितकोठेको विदीर्णकर पेटमेंसे आँतोंको निकाल पीछे उसको खींचे और जो मूढगर्भ कमरकरके अटकरहाहो उसकी कमरके टूकटूक कर गर्भको निकाले ।

मूढगर्भास्त्रीकीसामान्यचिकित्सा ।

यद्यद्वायुवशादङ्गंसज्जेद्गर्भस्यखण्डशः ।
तत्तच्छित्त्वाहरेत्सम्यग्रक्षेन्नारींचयत्नतः ॥

अर्थ-वातवश मूढगर्भका जो २ अङ्ग अटके उसी २ अंगके खंड २ कर निकाले. संपूर्णशरीरको एकहीसाथ न काढे क्योंकि जोरसे शस्त्रके चलानेसे गर्भिणीके अंगमें न लगजावे इसीसे कहाहै कि (रक्षेन्नारींचयत्नतः) अर्थात् गर्भिणीकी यत्नसे रक्षाकरे, जिससे उसका थोडाभी अंग नकटनेपावे ।

गर्भस्यहिगतिंचित्रांकरोतिविगुणोऽनिलः ।
तत्राऽनल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥

अर्थ-कुपितपवन गर्भकी अनेकप्रकारकी गति (अवस्था) करेहै, अतएव महाबुद्धिमान्वैद्य उसगर्भकी अवस्थाको विचार उस अवस्थाके अनुसार अपनीबुद्धिसे जो कर्म नहींभी कहा उसको करे ।

जीवितगर्भच्छेदनकेअवगुण ।

छिंद्याद्गर्भनजीवंतंमातरंसहिमारयेत् ।
सहात्मनानचोपेक्ष्यःक्षणमप्यस्तजीवितः ॥

अर्थ-मरे गर्भके लक्षणोंको न जानने वाला वैद्याभिमानी पुरुष, जीवते गर्भका छेदन न करे । क्योंकि जीवितगर्भ माताको और अपने आपे दोनोंको मारैहैं, परंतु मरेहुए बालकको एक क्षणमात्रभी उपेक्षा न करे ।

त्याज्यमूढगर्भास्त्री ।

योनिसंवरणभ्रंशमक्कलश्वासपीडिताम् ।
प्रत्युद्गारांहिमाङ्गींचमूढगर्भांपरित्यजेत् ॥

अर्थ-योनिका आच्छादन, तथा योनिभ्रंश, मक्कल्ल और श्वास इन रोगोंसे पीडित, वारंवार डकार आवे और शीतल देहहो ऐसी मूढगर्भाकी वैद्यको त्यागने योगय कहीहै ।

मूढगर्भहरणकेपश्चात्कर्त्तव्यकर्म ।

अथापतंतीमपरांपातयेपूर्ववद्भिषक् । एवंनिर्हृतशल्यांतुसिंचेदुष्णेनवारिणा ॥ दद्यादभ्यक्तदेहायैयोनौस्नेहपिचुंततः । योनिर्मृदुर्भवेत्तेनशूलंचास्याःप्रशाम्यति ॥

अर्थ-मूढगर्भहरणके अनंतर, जिसका जरायु न निकलाहो उसको पूर्वोक्त विधि (हिरण्यपुष्पीमूल इत्यादि) से निकाले। जब जरायूभी निकलचुके तब उसस्त्रीको गरमजलसे सेके, इसप्रकार स्नानकरा तैलकी मालिसकरे और इसकी योनिमें तेलका पिचु (फोहा) धरे इसतेलपिचुके देनेसे स्त्रीकी योनि नरमहोवे और पीड़ा नष्ट होय।

दीप्यकातिविपारास्नाहिंग्वेलापंचकोलकान् । चूर्णस्नेहेनक ल्कंवाक्काथंवापाययेत्ततः।कटुकातिविषापाठाशाकत्वग्हिं गुतेजनाः । तद्वच्चदोषस्यन्दार्थंवेदनोपशमायच । त्रिरात्रमे वंसप्ताहंस्नेहमेवततःपिबेत् ॥ सायंपिबेदरिष्टंवातथासुकृत मासवम् । शिरीषककुभक्काथपिचून्योनौविनिक्षिपेत्।उप द्रवाश्चयेऽन्येस्युस्तान्यथास्वमुपाचरेत् ।

अर्थ–स्नान और अभ्यंग करनेके अनन्तर अजमायन, अतीस, रास्ना, हींग, इलायची और पंचकोल इन सबके चूर्णको घृतकेसाथ यथायोग्य स्त्रीको प्रकृतिके अनुसार पिवावे, अथवा अजमायन आदि औषधोंको जलमें पीस कल्ककर घृतकेसाथ पिवावे, अथवा, क्वाथकरके पिवावे, उसीप्रकार कुटकी, अतीस, पाढ, [redacted]रच्छद, दालचीनी, हींग और मालकांगनी इनको चूर्णकर घृतसे कल्ककरे अथवा क्वाथकरके उसस्त्रीके रक्तादि स्रावकेअर्थ और पीडादूरकरनेको तीनरात्रि पिवावे । तीनरात्रिके अनन्तर उसस्त्रीको सातरात्रिपर्यंत घृतही पिवावे और कोई रूक्षादि औषध न पिवावे और सायंकालमें अरिष्ट * पिवावे तथा उत्तमरीतिसे बना ऐसा मद्यपिवावे. और सिरस तथा कोहवृक्षकीछाल इनसे बना क्वाथ उसमें भीगेहुए रुईके गाले योनिमें धरे और उस स्त्रीके जो ज्वरादि उपद्रव होवे उनको उनकी चिकित्साद्वारा दूर करे ।

पयोवातहरैःस्निग्धंदशाहंभोजनेहितम् । रसोदशाहंचपरं लघुपथ्याल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरास्नेहान्बलातैलादि कान्भजेत् । ऊर्ध्वंचतुर्भ्योमासेभ्यःसाक्रमेणसुखानिच ।

अर्थ–पूर्वोक्तविधि आचरणके पश्चात् वातहरणकर्ता औषधोंसे सिद्ध ऐसा दूध दशदिन पिवावे,दशदिन पीछे दूसरे दशाहमें भोजनमें रसका देना हितहै इसके उपरांत अर्थात् बीसदिनकेपश्चात् वहस्त्री हलका, पथ्य और थोड़ा भोजनकरे । और स्वेद, अभ्यंगको करतीहुई बलाआदि तैलोंका सेवनकरे. इसप्रकार आचरण चार महिनेपर्य्यंत करे पीछे निष्क्रांतमूढगर्भास्त्री पांचवे महिनेमें क्रमसे सुखकारी अन्नपान आहारविहारादिकोंका सेवनकरे ।

---

* अरिष्टकेलक्षण आगेआसवोंकेप्रकरणमेंकहेंगे ।

बलातैलकीविधि ।

बलामूलकषायस्यभागाःषट्पयसस्तथा । यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्यचैकतः १ निष्काथभागोभागश्चतैलस्यचचतुर्दश। द्विमेदादारुमंजिष्ठाकाकोलीशुभ्रचन्दनैः २ सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैंधवैः । कालानुसार्याशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ३ अश्वगन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टिवरारसैः । शताह्वाशूर्पपर्ण्येलात्वक्पत्रैःश्लक्ष्णकल्कितैः ४ पक्वंमृद्वग्निनातैलंसर्ववातविकारजित् । सूतिकाबालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषुपूजितम् ५ ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्राघातांत्रवृद्धिजित् । धन्वन्तरेरभिमतंयोनिरोगक्षयापहः ६

अर्थ—बलाकी जडका काथ ६ भाग, दूधके ५ भाग, इन्द्रजो, बेरकीछाल, कुलथी, दशमूल, इनके काढेका १ भाग, तेल १४ मां भाग, मेदा महामेदा, देवदारु, मजीठ, कांकोली, सपेदचंदन, लालचंदन, सारिवा (सरिवन्) कूठ, तगर, जीवक, ऋषभ, सेंधानोन, उत्पलसारिवा, शिलाजीत, वच, अगर, सांठ, असगंध, शतावर, क्षीरविदारी, मुलहटी, त्रिफला, बोल, सौंफ, शूर्पपर्णी, इलायची, तज और पत्रज ए प्रत्येक औषध दोदो मासे लेवे; सबको कूट चूर्णकर कल्कबनावे इसकल्कको तथा पूर्वोक्त बलाआदिके काढेको तेलमें मिलाय अग्निपर चढावे. नीचे मंद २ अग्निदेवे जब समरस जलजावे केवल तैलमात्र शेषरहजावे तब उतारलेवे । यह तेल सर्ववातकेविकार प्रसूतकेरोग, बालककेरोग, मर्म, हड्डी, क्षत (घाव) इनरोगोंसे क्षीण, ज्वर, गुल्म, ग्रहोन्माद, मूत्राघात, अंत्रवृद्धि, इन सबरोगोंको यह दूरकरे । यह धन्वंतरिके अभिमतहै और सर्वयोनिके रोगोंको दूरकरनेवालाहै ।

वस्तिद्वारेविपन्नायाःकुक्षिःप्रस्यन्दतेयदि ।
जन्मकालेततःशीघ्रंपाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ।

अर्थ—यदि गर्भिणीस्त्री प्रसूतकालमें मरजावे और उसका गर्भ जन्मकालमें वस्तिद्वारमें आनेसे कूखफडके उससमय कुशलवैद्य शीघ्र कूखको चीर बालकको निकाललेवे । विशेषचिकित्सा आगे चिकित्सास्थानमें गर्भिणीके प्रकर्णमें कहैं ।

प्रसंगवशअन्नविपाकक्रियाकहतेहैं ।

अथान्नविपाकक्रिया ।

हस्तविंशतिसम्माना कलापेशी विनिर्मिता । अन्नपाकक्रि

यार्थांच पाकनाडी प्रकीर्त्तिता १ ऊर्ध्वांशोमुखनामास्य अ धोंऽशोगुदनामकः । कण्ठादामाशयंयावदन्ननाडीतिकथ्य ते २ ततश्चामाशयस्तस्मात्क्षुद्रान्त्रंस्थूलमन्त्रकम् । आमा शयात्समारभ्यभागप्रथमआन्त्रिकः ३ ग्रहणीचाग्न्यधिष्ठा नंबुधैराद्यैःप्रकीर्त्तिता । ततःपक्वाशयःप्रोक्तःपक्वान्नपरिधार णात्४ स्थूलान्त्रस्याप्यधोभागः सरलोगुदसंज्ञकः । अन्न किट्टंमलंसर्वं बहिर्निःसारयत्ययम् ५ श्वासनाड्याःस्थिता पश्चादन्ननाड्यन्नवाहिनी । अधस्तात्कुण्डलीभूतानाडीचो दरमध्यगा६कण्ठादधोगतिर्नाडीभित्त्वावक्षस्थलाश्रयाम् । पेशीमुखद्वयवतीप्रविष्टेयमधोगुहाम् ७

अर्थ—अन्नपरिपाकार्थ बीस हाथकी कला और पेशीद्वारानिर्मित एक एक परिपाकनाडी इसमनुष्यकी देहमें वर्त्तमानहै, इसके ऊपरके भागको मुख और नीचेके भागको गुदाकहतेहैं । इसके भिन्नभिन्न अंश, रूप और क्रियासाधकत्ता भेद, भिन्नभिन्ननामोंसे प्रचलितहैं । सबके ऊपरका भाग मुख, उससेपरे कंठसे लेकर आमाशयपर्यंत अन्ननाडी, उसकेआगे आमाशय, उससेपरे क्षुद्रांत्र और पश्चात् स्थूलांत्रहै । आमाशयसे लेकर क्षुद्रांत्रके आद्यभागको ग्रहणी अथवा अग्न्यधिष्ठाननाडी कहतेहैं । उससेपरे पक्वाशय, अर्थात् आमाशय और ग्रहणी यहां अन्नपरिपाकहोकर इसीस्थानमें उपस्थितहोताहै । स्थूलांत्रके अधःस्थित संपूर्ण अंशको गुदाकहतेहैं । यह गुह्यद्वार अंतमेंहै । इसीकेद्वारा समस्तमल बाहरको गिरताहै ।

श्वासनाडीके पिछाडी अन्ननाडी है । चर्वितअन्न ग्रासादि इसीस्थानमें उपस्थित होतेहैं इसी नाडीके अधीन पेशियोंके द्वारा तत्क्षण आमाशयमें प्रेरित होता है । पाकनाडीका उदरस्थभाग अतिशय कुण्डलाकृति है । यह मुखद्वयविशिष्ट पाकनाडी कंठदेशसे लेकर नीचेको आनकर वक्षस्थलस्थ पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करे हैं ।

अन्नंमुखार्पितंदन्तैश्चर्वितंसृणिकायुतम् । पिण्डीभूतंचान्न नाडीं प्रापितंपततिक्षणात् ८ आमाशययकृद्वक्षस्थलपेश्यो रधःस्थिते । तत्रप्रकृतितोऽत्यम्लंघूर्णितंप्रकृतेर्बलात् ९ क्षुद्रान्तान्तमुहूर्त्तेनविशेत्सजलपङ्कवत् । आमाशयाद्दक्षिणतः क्षुद्रान्त्रंकुण्डलाकृति १० अस्यैवप्रथमोभागोग्रहणीतिनिगद्य

ते। असम्यग्जीर्णमन्नंतत्प्रविश्यग्रहणींकलाम् ११ आन्त्र केणरसेनात्रमिलितंपरिपच्यते। तदैवयकृतोनाड्यापित्तको शात्तदङ्गजात् १२ पीतस्तिक्तःपित्तरसोग्रहणीमुपतिष्ठति। अन्नपाकेरसोऽप्येपप्रधानंकारणंमतम् १३ पित्तमेवाग्निना म्नेतन्मुनिभिःपरिकीर्तितम्। नकेवलंकालखण्डमन्नपाकप्र योजनम् १४ यतःशोणितसंशुद्धिंविदधातिनिरन्तरम्। औदरेदक्षिणेपार्श्वेतदास्तेपर्शुकावृतम् १५ ऊर्ध्ववक्षस्थल स्थास्यापेश्योधस्ताच्चवृक्ककः। यकृद्वत्कारणंक्लोमविज्ञेयंपा ककर्मणि १६ प्लीहक्षुद्रान्त्रयोर्मध्ये मध्यास्तेदीर्घवर्त्मततु। आमाशयोऽस्यपुरतोवर्त्ततेऽस्माद्विनिःसृतः १७ रसोनाडी विशेषेणक्षुद्रान्त्रमुपतिष्ठति। प्लीहाप्यन्नस्यपचनेहेतुर्मुनि-भिरीरितः १८ वामतोऽधोगुहायांसवर्त्ततेपर्शुकावृतः। अरु णाभोऽग्रतश्छिद्रैर्बहुभिश्चसमाततः १९ ऊर्ध्ववक्षस्थलस्था स्यपेश्यधोवामवृक्ककः। स्रोतोयंत्रादधोपक्कंश्वेताभंरसमन्न जम् २० शिरामार्गेण निखिलंप्रेरयन्तिहृदालयम्। आमा शयकलाचारिधमनीभिरपोऽखिलाः २१ गृह्णन्तेप्रायशःशेपा अन्त्रस्थाभिरनन्तरम्। आकृष्टद्रवमन्नंतत्किट्टशेपन्तुपक्कव त् २२ स्थूलान्त्रंप्रविशेत्पश्चात्पुरीपंतन्निगद्यते। ततःप्राप्यगु दंकाले सर्वथासारवर्जितम्। तद्बहिर्निःसरेद्देहान्नित्यंकल्या णहेतवे॥ २३॥

अर्थ–मुखमें दियाहुआ अन्नका ग्रास दांतोंसे चर्वित और लाल (लार) से मिलकर तथा पिंडके समानहो अन्ननाडीमें प्राप्तहो तत्क्षण आमाशयमें जाता है। आमाशययंत्र उदरगहरमें यकृत् और वक्षस्थलस्थ पेशियोंके अधोभागमें स्थित है। इसयंत्रमें भुक्त (भोजनकराहुआ) द्रव्यप्राप्तहोनेपर इसजगेसे एकप्रकारका अति-तीव्रअम्लरस निकल भुक्तपदार्थकेसाथ मिलकर उसपदार्थको जीर्ण करता है अर्थात् पचाता है। आमाशयगतअन्न इसयंत्रकी स्वाभाविकशक्तिद्वारा क्रमागत चलायमान हो आमाशयिक अम्लरसके योगसे और इतस्ततः भ्रमणकरनेसे संपूर्ण भुक्तद्रव्य

कीचकेसदृश होजाता है, अर्थात् इसका कोईअंश पतला और कोईअंश गाढा रहता है। भुक्तान्न ऐसी अवस्थासे क्षुद्रांत्रोंमें प्रवेशकरे हैं। आमाशयके दक्षिणस्थ कुण्डलाकृति नाडीका नाम क्षुद्रांत्र है। यह आमाशयके दक्षिणसे लेकर कुछ दूर तिरछेभावमें बाँईतरफ और अधोमुख आयकर अतिशय कुंडलीभूतहोगया है। इसका प्रमाण न्यूनाधिक १३॥ हाथहोवेगा इसका प्रथमभाग अर्थात् तिरछा और अधोगामी अंशको ग्रहणी अथवा अस्थ्यधिष्ठान कला कहते हैं, इससे आगेके अंशको पक्वाशय कहते हैं। भुक्तद्रव्य, कुछ द्रवअवस्थाहोकर ग्रहणीमें उपस्थितहो आँतोंसे निकलेहुए एकप्रकारके रसकेसाथ मिलता है। इसीस्थानमें यकृत् जो है सो नाडीविशेषद्वारा तदंगस्थित पित्तकोशसे पित्तरसको लायकर भुक्तान्नकेसाथ मिलाता है। पित्तरस पीलेरंगका और तिक्त (कडुआ) स्वादवाला है। यही अन्नपरिपाक विषयमें मुख्यप्रधान कारण है। इसी पित्तरसको अग्निकहते हैं। यकृत केवल अन्नपारिपाककाही साहाय्यकरता नहींहै किंतु यह रुधिरशोधनका एक प्रधानयंत्र है। यह यंत्र उदरके दक्षिणपार्श्वमें वक्षस्थल पेशीकेनीचे तथा दक्षिण वृक्कके ऊपर पर्शुकाओंसे आवृत होकर स्थित है। क्लोमनाम और एकयंत्र है वह नाडीविशेषद्वारा तदीयरस क्षुद्रांत्रोंमें मातहोकर अन्नपरिपाककार्यका निर्वाह करे हैं. यह यंत्र दीर्घाकृति प्लीहा और क्षुद्रांत्रोंके मध्यमें अवस्थित है। इसके सन्मुख आमाशय है. उक्तयंत्रोंके समान प्लीहाभी अन्नपचनेका कारण मुनीश्वरोंने कहा है। यह अरुणवर्ण तथा सन्मुखकी तरफ अनेक छिद्रोंसे व्याप्त है। यह उदरगह्वरके बाँईतरफ वक्षस्थलपेशीके नीचे और वामवृक्ककेऊपर पर्शुकाओंसे व्याप्तहोकर स्थित है। जलविशिष्ट पतले पदार्थ पीनेसे आमाशयिक कलास्थित धमनीगणका जलप्राय समुदायभाग तत्क्षण खींचकर रुधिरकेसाथ मिलता है और अवशिष्टअंश यंत्रस्थधमनीगणोंसे खींचकर इसीजगे रहता है। २० के नंबरका चित्र देखो।

भोजनकरा अन्न इसप्रकार पक्कहोकर श्वेतवर्ण द्रवपदार्थरूप परिणामको प्राप्तहोताहै इसद्रवका देहरक्षणोपयोगी सारांश स्रोतोनाडी समूहद्वारा खींचकर शिरामार्गहो क्रमसे हृत्कोष्ठमें प्राप्तहो रुधिरके स्वरूपको धारणकर देहकी रक्षा और पोषण करताहै. । अन्नद्रवकासारहीन कीचके समान जो अंश बचे उसको किट्ट और मल कहते हैं; वह स्थूलांत्रोंमें प्रवेश होता है फिर वही मल यथासमयमें गुदाकेद्वारा पुरीषरूप हो देहके कल्याणार्थ नित्य बाहर निकलता है।

अहोकुशलिनोधातुर्महिमाकोऽयमुल्बणः। विचित्रविधिनापक्वमन्नंसत्वानिजीवयेत् । अन्नग्रासोरदैःपिष्टोलालाक्लिन्नोन्ननाडिकाम् । श्वासरंध्रंनसोरन्ध्रंचातिक्रम्यमुखंविशेत् । निरुणद्ध्यु

पजिह्वासा सर्वथाश्वासनाडिकाम् । जिह्वाप्रयातिपश्चाच्च पाकनाडीततोऽभितः । किंचिदूर्ध्वंमुखीभूत्वापिंडंग्रसतियत्न तःआद्यरन्ध्रंप्रविष्टंचेदन्नंकासैर्विनिःसरेत् । द्वितीयगंक्षवथुना क्षणेनप्रकृतेर्बलात् । अतोनैवातित्वरणंश्रेयःपानान्नकर्माणि । अन्नंवैप्राणिनांप्राणाइतिश्रुतिनिर्देशतः । तदन्नंविधिनासे व्यमदोषंप्राणवर्धनम् । अन्नंरसोऽन्नमसृञ्चमांसमन्नमपिस्मृतं मेदोऽन्नमस्थ्यमन्नंमज्जान्नंशुक्रमेवच । अन्नंबलमथौजोऽन्नंमनोऽ न्नमपिचोच्यते । चराचरेषुनिखिलाःप्रजाश्चान्नसमुद्भवाः । अन्नपानविधिर्यश्चतत्कालेचोचिता क्रिया । क्रियतेविकृति र्वेत्ससंकीर्णवर्गसंग्रहे ।

अर्थ—कैसी अद्भुत विधाताकी महिमा है कि, विचित्र विधिसे अन्नका परिपाक कर जीवोंको जीवाता है । अन्नकाग्रास दांतोंसे पीसकर और लाला (लार) से आर्द्र होकर पिंडरूप होकर श्वासके छिद्रको और नाकके पिछाडीके छिद्रको त्याग-कर अन्ननाडीमें जायकर गिरता है । यह कार्य अतिकौशल्यतासे होता है । अन्ना-दिक जिससमय गलेसे नीचेको जाता है उससमय पूर्वोक्त श्वास आने जानेका छिद्र उपजिह्वा अर्थात् दूसरी छोटी जो जीभ है उस्से ढकजाता है. उसीप्रकार जिह्वा किंचित् पीछेको जाय और अन्ननाडी कुछ ऊपरको तथा आगेको आती है इस्से नासिका-का पिछाडीका छिद्र रुकजाता है अतएव निर्विघ्न गलाधःकरण कार्य सिद्ध होता है । अन्नादिकका कणिका यदि दैववश प्रथम छिद्रमें चलाजावे तो उसीसमय खासीसे बाहर निकलजाता है. इसीको धांसुगई कहते हैं. यदि इस श्वासछिद्रमें गयाहुआ ग्रासादिक अटकजावे तो अवश्य प्राणनाशकी संभावना जाननी । और दूसरे छिद्रमें ग्रासादिक चलाजावे तो छींक आनेसे उसको निकालदेवे, इसीसे जल आदि पीनेमें और भोजनकरनेमें बहुत जल्दी न करनाचाहिये । अन्नही प्राणियोंके प्राण है ऐसा वेदमें लिखा है अतएव उस अन्नको विधिपूर्वक सेवनकरे । दोषवर्जित और बलव-र्द्धक अन्न भोजनकरना उचित है. अन्नही रस, अन्नही रुधिर, अन्नहीमांस, अन्नही मेद, अन्नहीहड्डी, अन्नहीमज्जा, इसीप्रकार अन्नही शुक्रको प्रगटकरे है । अन्नही बल, अन्नतेज उसीप्रकार अन्नही मन कहाता है. चराचर जितनी प्रजा हैं सब अन्नसेही प्रगटहोती है । अन्नपानविषयक विधि और तात्कालिक कर्त्तव्य क्रिया इत्यादि समुदायका विषय आगे संकीर्ण वर्गमें कहेंगे ।

भ्रूणजन्मक्रम ।

पुंवीर्यं स्खलितंनार्योधरांविशतिरंहसा। ततोडिम्बाशयंयातित
स्त्ररूपान्तरंव्रजेत्। एकीभूयसमायातो जरायुंडिम्बरेतसी। आ
वरण्यवृतेतत्रवृद्धिंचेतोनिरन्तरम्। आदौबिन्दुनिभोजीवःशेतेग
र्भाशयेस्त्रियाः। वदर्यास्थिनिभोमासाच्चतुरस्रस्ततोभवेत्। त्रि
पक्षात्परतःस्याच्चद्विधाभिन्नकलायवत् । मासद्वयाच्चगर्भस्य
भवेत्सर्वांगसंस्थितिः । ततःषण्मासपर्यंतंपुष्टिर्भवतिसंतत
म्। सप्तमेमासिनयनंभवेत्प्रमुदितंध्रुवम् । मासाष्टमेभवेद्गर्भो
ननुतिर्यगवस्थितः। अधोमूर्द्धोर्ध्वचरणोनवमेमासिजायते। कु
क्षावुषित्वाचनवमासान्नवदिनाधिकान् । भूमौततःपतेद्गर्भो द
शमेप्रकृतेर्वशः॥

अर्थ-रतिक्रियाद्वारा पुरुषकास्खलितवीर्य अतिवेगसे प्रथमस्त्रीके जरायुमें प्रवेशकरे पीछे डिम्बाशयमें जायकर रूपान्तरको प्राप्तहोताहै । तदनंतर डिम्ब और शुक्र मिलकर जरायुमें प्रवेशकरेंहै उसजगे एक आवरनीद्वारा आच्छादितहो निरंतर वृद्धिको प्राप्तहोताहै, जीव प्रथम स्त्रीके जरायुमें बिंदुतुल्य होकर रहताहै, एकमहिनेके अनंतर बेरकी गुठलीकेसमान और चोंकोन होताहै. तीनपक्ष (४५ दिन) के उपरांत दोखंडवाले मटरके सदृशहोकर रहताहै. दोमहिनेके पश्चात् गर्भकेमुख उत्पन्नहोय, किंतु नेत्रमुँदे रहतेहैं. तीनमहिनेमें भ्रूणके सर्वअंग प्रत्यंग स्फुटतरहोय, इससेउपरांत छःमहिनेपर्य्यंतक्रमसे उसकी वृद्धिहोतीहै. और इसीसमय यह बालकपेटमें फडकताहै, छःमहिनेके उपरांत बालकके क्रेशोत्पत्तिहोतीहै । तथा सातवेंमहिनेमें बालकके नेत्र खुलतेहैं, और आठवेंमहिनेमें भ्रूण पेटमें तिरछाहोकर रहताहै, नवममहिनेमें बालकका नीचेको मस्तक और ऊपरको दोनों पैरकरके निस्सरणोन्मुख होताहै । इसप्रकार बालक नोमहिने और नोदिन गर्भवासकरकेदशवे महिनेमें प्रकृतिवश पृथ्वीमें गिरताहै । २१ नम्बरका चित्रदेखो।

गर्भिणीकेप्रतिमासमेंउपचार।

मधुकंशाकबीजंचपयस्यासुरदारुच। अश्मंतकस्तिलाः
कृष्णास्ताम्रवल्लीशतावरी । वृक्षादनीपयस्याचलताचो

त्पलसारिवा । अनन्तासारिवारास्नापद्माचमधुयष्टिका । बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरिशृंगत्वचोघृतम् । पृश्निपर्णीबला शिग्रुःस्वदंष्ट्रामधुपर्णिका । शृंगाटकंविसंद्राक्षाकसेरुमधुकं सिता । सप्तैतान्पयसायोगानर्द्धश्लोकसमापनान् । क्रमा त्सप्तसुमासेषुगर्भेस्रवतियोजयेत् ।

अर्थ–मधुकादि द्रव्योपलक्षित आधे २ श्लोकमें समाप्ति होनेवाले सातयोगोंको गर्भस्रावमें क्रमसे दूधके साथ देनेचाहिये. १ मुलहटी, शाकबीज जीवक और देवदारु. २ अश्मंतक, कालेतिल, ताम्रवल्ली, शतावर. ३ वृक्षादनी पयस्या, लता, कमलगट्टा, और सारिवा. ४ अनन्ता, सारिवा, रास्ना, पद्मा, मुलहटी. ५ दोनोकटेरी, कंभारी, वटादिक्षीरवृक्षोंकीडाली, और छाल, तथा घृत. ६ पृष्टिपर्णी, बरिआरा, सहंजना, गोखरू, मधुपर्णिका. ७ सिंघाडे, बिस, दाख, कसेरू, मूलहटी, और मिश्री, इसप्रकार ए सात योग कहेहैं ।

दूसरेउपचार।

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदग्धिजैः।मलैःशृतं प्रयुंजीतक्षी रंमासेतथाष्टमे । नवमेमधुकानन्तापयस्यासारिवापिबेत् । यो जयेद्दशमेमासिसिद्धंक्षीरंपयस्यया । अथवायष्टिमधुकनागरा मरदारुभिः ।

अर्थ–कैथ, बेल, कटेरी, पटोलपत्र, इक्षु, निदग्धिका, इनकी जडको दूधमें औटाय उस दूधको आठवे महिने पिवावे । मुलहटी, अनंता, कांकोली, सारिवा इनको दूधमें, औटायकरनोमेमहिनेमें पिवावे । और दसवे महिनेमें कांकोलीको दूधमें औटायकर पिवावे । अथवा मुलहटी, सोंठ, और देवदारू इनको दूधमें औटायकर उसदूधको दशमें महिने पिलाना चाहिये ।

मर्यादासेउपरांतगर्भधारणकेदोष ।

निवृत्तप्रसवायास्तुपुनःषड्भ्योवर्षेभ्यऊ र्ध्वंप्रसवमानायाःकुमारोल्पायुर्भवति ।

अर्थ–निवृत्तगर्भास्त्री फिर छःवर्षके अनंतर प्रसवहोनेसे उसकी संतान अल्पायु होतीहै . इसीसे छःवर्षके अनंतर स्त्रीको निवृत्तगर्भा कहतेहैं । इसजगे वमनादिक्रिया

गर्भव्याघातकहै अतएव उसका निषेधहै परंतु प्राणघातक व्याधीकेविषे मृदुद्रव्य बराबर प्रतिप्रसवमें देनीचाहिये सोकहतेहैं. ॥

रोगविशेषकरकेगर्भिणीकोवमनक्रियाकहतेहैं.

अथगर्भिण्यांव्याध्युत्पत्तावत्ययेछर्दयेत् ।

अर्थ–गर्भिणीके प्राणनाशक रोगहोनेमें वमनकरावे और मधुर, अम्लअन्नकरके अनुलोमक्रियाकरे, तथा संशमनीय मृदु औषध देनी चाहिये, तथा मृदुवीर्य, मधुरप्राय और गर्भकेअनुकूल ऐसे अन्नपान गर्भिणीको देने चाहिये तथा गर्भकोविरुद्ध भी क्रिया मृदुप्राय यथायोग करनीचाहिये ।

गर्भिणीके आहारकानियम ।

सौवर्णसुकृतंचूर्णं कुष्ठंमधुघृतंवचा । मत्स्याक्षिकाशंखपुष्पी मधुसर्पिश्चकाञ्चनम् । अर्कपुष्पीघृतंक्षौद्रंचूर्णितंकनकंवचा। हेमचूर्णानिकैटर्यः श्वेतदूर्वाघृतंमधु । चत्वारोभिहिताः प्रा श्याःश्लोकार्धेषुचतुर्ष्वपि । कुमाराणांवपुर्मेधाबलपुष्टिवि । वर्धनाः ।

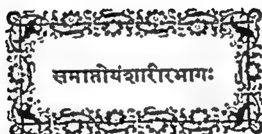
अर्थ–सोनेकाचूर्ण, कूठ, मुलहटी, वच इन सब औषधोंको घृतमें उबालके चटावे, यह १ प्रयोग हुआ । ब्राह्मी, शंखपुष्पी, घृत, सहत और सुवर्णकेवर्क यह दूसराप्रयोग । अर्कपुष्पी, घृत, सहत, सुवर्णचूर्ण, और वच, यह तीसरा प्रयोग है । तथा सुवर्णचूर्ण, कटुनिंब, सपेददूब घृत और सहत यह चतुर्थ प्रयोगहै । ए आधेआधे श्लोकमें चारप्रयोग कहेहैं । ये प्रयोग १ वर्षपर्यंत देने चाहिये । इसकरके गर्भकी देह, बुद्धि, बल, पुष्टि, इनकी वृद्धि होवे । किसीकेमतमें १२ वर्षपर्यंत देना ऐसा लिखाहै । परंतु ये औषध बालकको चटाना चाहिये ऐसा कोई कहतेहैं ।

बालकोंकोऔषधप्रमाणविश्वामित्रोक्तकहतेहैं.

विडङ्गफलमात्रन्तुजातमात्रस्यभेषजम् । एतेनैवप्रमाणेनमा सिमासिप्रवर्धितः । कोलास्थिमात्रंक्षीरादेर्दद्याद्भेषज्यकोविदः। इति श्रीसौश्रुतशारीरेदशमोध्याय॥१०॥समाप्तोयंशारीरभागः

अर्थ–तत्काल हुए बालकको १ बायविडंग प्रमाण औषधी देनीचाहिये, तदनंतर यह मात्रा प्रतिमास एकएक वायविडंगके समान बढानी चाहिये तथा जब-तक बालक दूध पीतारहे उसको बेरकी गुठलीके समान औषधिदेवे । और जब अन्न खानेलगे तब गूलरकेसमानमात्रा देनीचाहिये ।

इति श्रीमाथुरकन्हैयालालतनयदत्तरामनिर्मिते बृहन्निघंटुरत्नाकरे भाषाटीका-विभूषिते शारीरस्थानं प्रथमं पूर्णतामियात् ।



अथ शस्त्रचिकित्साप्रारम्भः।

अब शस्त्रचिकित्सा लिखनेका यह प्रयोजन है कि, मूढगर्भके निकालनेमें मंडला-गुलिशस्त्रोंको लिखाहै; दूसरे शिरामोक्ष तथा शारीरकर्म विशेषकरके शस्त्रचिकित्साकी प्रत्येक समय आवश्यता रहतीहैं इसीसे विनाशस्त्रचिकित्साके जाने वैद्यको शस्त्रकर्म करना सर्वथा वर्जितहै. अतएव शस्त्रचिकित्साका आरंभ करतेहै।

अथातोअग्रोपहरणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब अग्रोपहरणीयाध्यायकी व्याख्याकरेंगे. (छेद्यादि कर्मके प्रथम यंत्रादि उपस्करको प्रधानकरके जो अध्याय कहीजावे उसको अग्रोपहरणीय कहतेहै)।

त्रिविधकर्म.

त्रिविधंकर्म पूर्वकर्म्मप्रधानकर्मपश्चा त्कर्मेतितद्व्याधिप्रतिप्रत्युपदेक्ष्यामः॥

अर्थ–कर्म तीन प्रकारका है. १ पूर्वकर्म (लंघन विरेचनादि.) २ प्रधानकर्म (पाटनरोपणादि.) ३ पश्चात्कर्म (बलवर्णाग्निजननादि.) ए तीनों प्रकारके कर्म रोग२के प्रति यथास्थलमें लिखेंगे (इसजगे ग्रंथबढनेके भयसे नहींकहे.)

अस्मिञ्छास्त्रेशस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्म्मै वतावत्पूर्वमुपदेक्ष्यामस्तत्सम्भारांश्च।

अर्थ–इसशास्त्रमें शस्त्रकर्मको प्रधान होनेसे प्रथम शस्त्रकर्मकोही कहेंगे, और शस्त्रकर्मके उपस्कर (सामग्री) कोभी कहेंगे।

शस्त्रकर्मकोअष्टविधत्व।

तच्चशस्त्रकर्माष्टविधम्। तद्यथा। छेद्यं भेद्यं ले ख्यं वेध्यमेष्यमाहार्यं विस्राव्यं सीव्यमिति॥

अर्थ–वह शस्त्रकर्म आठप्रकारका है. छेद्य, भेद्य, लेख्य, वेध्य, एष्य, आहार्य, विस्राव्य, और सीव्य। तहां बवासीरआदि छेद्य, विद्रधिआदिभेद्य, रोहिणीआदि लेखनीय, शिरा (नस) आदि छोटेशस्त्रसे वेध्य, नाडीआदि एषणीय, शर्करादिरोग आहरणीय, विद्रधिआदिरोग विस्रावणीय, और मेद समुत्थादिरोग सीव्यकर्म करने योग्यहै।

शस्त्रकर्मके पूर्वकर्त्तव्य

अतोऽन्यतमं कर्म चिकीर्षता वैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयितव्यानि । तद्यथा । यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकाशृङ्गजलौकालाबूजाम्बवोष्ठपिचुप्रोतसूत्रपट्टमधुघृतवसापयस्तैलतर्पणकपायलेपनकल्कव्यजनशीतोष्णोदककटाहादीनि परिकर्मिणश्च स्निग्धाः स्थिरा बलवन्तः ।

अर्थ-छेद्य भेद्यादि कर्ममें किसीकर्मके करनेवाले वैद्यको प्रथम इतनीवस्तु अपनेपास रखलेनी चाहिये । सर्वप्रकारके यंत्र, शस्त्र, खार, अग्नि, सलाई, सिंगी, जोंख, तुंबी, जाम्बवोष्ठ (जामनके फलसदृश मुखका अग्रभागहो ऐसी कालेपत्थरकी लंबीसलाई,) रूईकेगाले, खीपड़ा, सूत, पत्ते, बांधनेकी कपड़ेकी पट्टी, शहत, घृत, चर्वी, दूध, तेल, तर्पण (जलसंयुक्तसत्तूदूधआदि) कषाय (औषधसंयुक्त औटायाजल) लेप, कल्क, पंखा, शीतल और गरम जल, लोहका कढाव, आदिशब्दसे [मट्टीके कलश, थाली, सोनेकेवास्ते शय्या और आसनआदि जानने] केवल यंत्रादिकही पास न रक्खे किंतु प्रीतवान, स्थिर और बली परिचारक (सेवक) भी रखने चाहिये ।

शस्त्रकर्म (चीराआदि) लगानेकीविधि ।

ततःप्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु दध्यक्षतान्नपानरत्नैरग्निविप्रान्भिषजश्चार्चयित्वा कृतबलिमङ्गलस्वस्तिवाचनं लघुभुक्तवन्तं प्राङ्मुखमातुरमुपवेश्य यन्त्रयित्वा प्रत्यङ्मुखो वैद्यो मर्मशिरास्नायुसन्ध्यस्थिधमनीः परिहरन्ननुलोमं शस्त्रं निदध्यादापूयदर्शनात् सकृदेवापहरेच्छस्त्रमाशु च ।

अर्थ-शुभ तिथि करण मुहूर्त्त नक्षत्रमें दही, चावल, अन्न, पान और रत्नोंसे अग्नि, ब्राह्मण, वैद्य इनका पूजनकर बलि (भेट) मङ्गल (नृत्यगीत आदि) स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचनआदि) को करके अल्पभोजनकरा ऐसे रोगीको पूर्वमुख बैठाल छेद्यादि कर्मकरे, और वैद्यआप पश्चिममुख बैठे । पीछे मर्मस्थान, नस, नाडी, संधी, हड्डी, और धमनी इनको बचायकर तथा जिधरके बाल पडेहो उसी तरफ नस्तर लगावे [क्योंकि विपरीतलगानेसे शस्त्रकी धार मारीजातीहै, और शस्त्रभी टरा होजाताहै तथा पीडाहोतीहै.] चीराआदिदेनेमें वैद्य अत्यंतसावधानीके साथ जबतक राध न निकले तहांतक शस्त्रको भीतर प्रवेशकरे, तथा इसरीतिसे चीरादेवे कि

एकहीवार शस्त्रलगानेसे सब राध निकलजावे और बहुतजल्दी चीरादेके शस्त्रको हटायलेवे। * किसीकी यह संमतिहैकि शस्त्रकर्मके पूर्व मिष्टान्न भोजन करावे यद्यपि मिष्टान्न व्रणवाले रोगीको अपथ्यहै तथापि बलवान् होनेके निमित्त देना चाहिये। जो मद्यपानके अधिकारीहै उनको शस्त्रकी पीडा सहनेकोलिये तीक्ष्णमद्य पिलाना चाहिये। अन्नकेसंयोगसे रोगी मूर्च्छित नहीं होता.।

महत्स्वपिंचपाकेषुद्व्यगुलंत्र्यंगुलंवाशस्त्रपदमुक्तम्
तत्रायतोविशालःसमः सुविभक्तइतिव्रणगुणाः।

अर्थ–अत्यंत पाकवालेभी फोडा फुसीआदिमे दोअंगुल अथवा तीन अंगुल चीरा-देना कहाहै। अब उसके गुण कहतेहै कि, जो व्रण (चीरा) लंबा, विस्तृत और समान तथा पृथक २ हो ए उत्तमव्रणके गुणहै।

आयतश्चविशालश्च सुविभक्तोनिराश्रयः॥
प्राप्तकालकृतश्चापिव्रणःकर्मणिशस्यते॥ १॥
शौर्यमाशुक्रियाशस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथू॥
असंमोहश्च वैद्यस्यशस्त्रकर्मणिशस्यते॥ २॥

अर्थ–लंबा विशाल और जिसके अवयव पृथक् २ हों और जो व्रण मर्मोके आश्रित नहो अर्थात् मर्मोसे पृथक्हो, तथा प्राप्तकालमें शस्त्रकर्म करा गयाहो ऐसा व्रण शस्त्रकर्ममें प्रशंसनीयहै, [प्राप्तकालके कहनेसे बालवृद्धका परित्यागहै, अर्थात् बालवृद्धोंके शस्त्रकर्म न करे अथवा प्राप्तकालसे समय लेना चाहिये, जैसे शीतकालमें आग्नेयव्रणका प्राप्तकालहै, और ग्रीष्मऋतुमें उसका अप्राप्तकालहै कोई आचार्य प्राप्तकालके स्थानमें (युक्ताकालकृति ऐसा पाठ कहतेहै तहां भलेप्रकार पाक होगयाहो ऐसा अर्थ जानना]

अब वैद्यके शस्त्रकर्ममें कौन २ गुणहोने चाहिये सो कहतेहै कि, निर्भयहो शीघ्रक्रिया (चीरनेफाडनेमें शीघ्रकारी) जिसके शस्त्र तीक्ष्ण (पैने) हो शस्त्रकर्म करनेके समय पसीने, कंप और मोहजिस्को न होवे । तथा पक्व अपक्व व्रणके जाननेमें और उसकी क्रियाकरनेमें कुशलहो इत्यादि गुणसंपन्न वैद्य शस्त्रकर्मकरनेमें प्रसंशनीयहै।

---

* प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम्। पानपमायमेमद्यतीक्ष्णयोवेदनासम॥१॥नमूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्त शस्त्रनबुध्यते। अन्यत्रमूढगर्भाश्ममुखरोगोदरातुरात्॥२॥

एकेनवाव्रणेनाशुध्यमानेनान्त
राबुद्ध्यावेक्ष्यापरानव्रणान्कुर्यात् ।

अर्थ-कुशलवैद्य एकव्रणकेशुद्धहोनेसे अपनी बुद्धिसे उसको देख उसीप्रकार और व्रणोंको शुद्धकरे, अर्थात् जिसरीतिसे एकफोडामें चीरादेकर शुद्ध और अच्छाकरा उसीप्रकार और भी व्रणोंको शुद्ध और अच्छाकरे ।

यतोयतोगतिंविद्यादुत्सङ्गोयत्रयत्रच ।
तत्रतत्रव्रणंकुर्याद्यथादोषो न तिष्ठति ॥

अर्थ-जिस २ स्थानमें गति (नाडी आदिकी गतिहो) और जिस २ स्थानमें दुष्टरुधिरका समूहहो उसी २ स्थानमें चीरादेना उचितहै । जैसे दोष (राध) अथवा दोषशब्दसे वातादिक शुद्धहोवे ऐसा जानना ।

तत्रभ्रूगण्डशंसललाटाक्षिपुटौष्ठदन्तवे
ष्टकक्षाकुक्षिवङ्क्षणेषुतिर्य्यक्छेदउक्तः ।

अर्थ-तहां, भौंह, कपोल, कनपटी, ललाट, पलक, होठ, मसूढे, कूख, वंक्षण, (ऊरूकीसंधी) इनमें तिरछा चीरा लगना चाहिये ।

चन्द्रमण्डलवच्छेदान्पाणिपादेषुकारयेत् ।
अर्द्धचन्द्राकृतींश्चापिगुदेमेढ्रेचबुद्धिमान् ।

अर्थ-हाथपैरोंमें चन्द्रमण्डलके सदृश गोल चीरादेवे; और गुदा, मेढ्र (भगलिंग) में बुद्धिमान्वैद्यको अर्द्धचंद्रके समान चीरादेना उचितहै ।

विपरीतचीरादेनेकेउपद्रव ।

अन्यथातुशिरास्नायुच्छेदनादतिमात्रंवेदना
चिराद्व्रणसंरोहोमांसकन्दीप्रादुर्भावश्चेति ।

अर्थ-विपरीत शिरास्नायुके छेदनेसे घोरपीडा और बहुकालमें व्रण (घाव) का संरोह कहिये भरना होताहै । तथा मांसकंदी कहिये कंदके सदृश मांसांकुर प्रगटहोतेहैं ।

मूढगर्भोदराशोऽश्मरीभगन्दरमुखरोगेष्वभुक्तवतः
कर्मकुर्वीत । ततःशस्त्रमवचार्यशीताभिरद्भिरातुर
माश्वास्यसमन्तात्परिपीड्यांगुल्याव्रणमभिमृज्य

प्रक्षाल्यकषायेणप्लोतेनोदकमादायतिलकल्कमधु-
सर्पिःप्रगाढमौषधयुक्तांवर्तिंप्रणिदध्यात् ।

अर्थ-पूर्व यह कहआएहैं कि, भोजनोत्तर शस्त्रकर्मकरे परंतु अब कहतेहैं कि, इतनेरोगोंमें भोजनके पूर्व शस्त्रकर्म करे । मूढगर्भ, उदररोग, बवासीर, पथरी, भगंदर और मुखरोग, इनमें भोजनके प्रथम शस्त्रकर्म कर्त्तव्यहै.) कदाचित् उक्तरोगोंमें अज्ञानवश हो भोजनोत्तर शस्त्रकर्म करेतो कष्टहो । वातकोप और मरणहोवे । और मुखरोगमें आहारको उंगली डारकर जो वमनकरनाहै सो, घातकारकहै.) शस्त्रकर्मके पश्चात् रोगीको शीतलजलसे सावधान करके राध निकालनेके अर्थ व्रणको चारोंओरसे दवावे जैसे उसके भीतरकी निःशेष राध निकलजावे. तदनंतर उसको क्वाथके जलमें भीगेहुए वस्त्रखंडसे धोयडाले पीछे तिलकल्क, सहत, घृत और औषधसंयुक्त बत्ती उसव्रणमें प्रवेशकरे ।

ततःकल्केनाच्छाद्यनातिस्निग्धांनातिरूक्षांघनां
कवलिकांदत्त्वावस्त्रपट्टेनबध्नीयाद्वेदनारक्षोघ्नैर्धूपै
र्धूपयेद्रक्षोघ्नैश्चमन्त्रैरक्षांकुर्वीत । ततोगुग्गुलवगु
रुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैर्लवणनिम्बपत्रव्यामि
श्रैराज्ययुक्तैर्धूपैर्धूपयेत् ।

अर्थ-तदनंतर तिलकल्कसे उसको आच्छादनकर उसके ऊपर न अत्यंत चिकनी और न बहुतरूखी ऐसी मोटी कवलिका (जो भग्नरोगमें ढाक और गूलरकी छालपत्ते आदिसे बनतीहै) देकर कपडेकी पट्टीसे बांधदेवे, पश्चात् पीडाकी नाशक (हींग और लवणादि) तथा राक्षसादिकोंके नाशक (बचसरसोआदि) धूपकी धूनीदेवे. और राक्षसादिकके नाशक मंत्रोंसे रक्षाकरे; तदनंतर गूगल, अगर, राल, बच, सपेदसरसों इनका चूर्णकर नीमकेपत्ते, नोन और घृतमिली ऐसी धूपसे धूनीदेवे, (व्रणमेंही इस धूनीको न देवे किंतु जिसपर रोगी शयनकरे उस शैय्याकी दुर्गंध दूरकरनेको तथा नीलेरंगकी मखियोंके दूरकरनेको धूनीदेवे, क्योंकि व्रणपर मक्खी बैठनेसे उसमें कृमी पडजातीहैं । अतएव घरमेंभी धूनीदेवे इसधूनीसे मच्छरभी नष्टहोतेहैं ।)

आज्यशेषेणचास्यप्राणान्समालभेत । उदकु-
म्भाच्चापोगृहीत्वाप्रोक्षयन्रक्षाकर्मकुर्यात्तद्वक्ष्यामः ।

अर्थ-धूनीदेनेके अनंतर धूनीदेनेसे बचेहुए घृतसे हृदयादिकोंको तर्पणकरे । तदनंतर वैद्य जलके कलशसे प्रोक्षण कर्त्ताहुआ रक्षाकर्म करे ।

अथरक्षाविधानमन्त्राः ।

कृत्यानांप्रतिघातार्थंतथारक्षोभयस्यच । रक्षाकर्मकरिष्यामिब्रह्मातदनुमन्यताम् १ नागाःपिशाचागन्धर्वाःपितरोयक्षराक्षसाः अभिद्रवन्तियेयेत्वांब्रह्माद्याघ्नन्तुतान्सदा २ पृथिव्यामन्तरिक्षेचयेचरन्तिनिशाचराः । दिक्षुवास्तुनिवासाश्चपान्तुत्वांतेनमस्कृताः ३ पान्तुत्वांमुनयोब्राह्म्यादिव्याराजर्षयस्तथा।पर्वताश्चैवनद्यश्चसर्वाःसर्वेऽपिसागराः ४ अग्नीरक्षतुत्वञ्जिह्वांप्राणान् वायुस्तथैवच । सोमोव्यानमपानन्तेपर्जन्यःपरिरक्षतु ५ उदानं विद्युतःपान्तुसमानंस्तनयित्नवः। बलमिन्द्रोबलपतिर्मनुर्मन्येमतिंतथा६ कामांस्तेपांतुगंधर्वाःसत्वमिन्द्रोऽभिरक्षतु । प्रज्ञांतेवरुणोराजासमुद्रोनाभिमण्डलम् ७ चक्षुःसूर्योदिशःश्रोत्रेचन्द्रमाःपातुतेमनः। नक्षत्राणिसदारूपंछायांपान्तुनिशास्तव ८रेतस्त्वाप्याययन्त्वापोरोमाण्योषधयस्तथा। आकाशंखानितेपातु विष्णुस्तवपराक्रमम् । पौरुषंपुरुषश्रेष्ठोब्रह्मात्मानंध्रुवोभ्रुवौ। एतादेहेविशेषेणतवनित्याहिदेवताः१० एतास्त्वांसततंपान्तुदीर्घमायुरवाप्नुहि । स्वस्तितेभगवान्ब्रह्मास्वस्तिदेवाश्चकुर्वताम् ११ स्वस्तितेचन्द्रसूर्यौचस्वस्तिनारदपर्वतौ। स्वस्त्यग्निश्चैववायुश्च स्वस्तिदेवामहेन्द्रगाः १२ पितामहकृतारक्षास्वस्त्यायुर्वर्द्धतांतव। ईतयस्तेप्रशाम्यन्तुसदाभवगतव्यथः। इतिस्वाहा१३एतैर्वेदात्मकैर्मन्त्रैःकृत्याव्याधिविनाशनैः। मयैवंकृतरक्षस्त्वंदीर्घमायुरवाप्नुहि ।

अर्थ-ए वेदात्मक १४ श्लोकसे वैद्य रोगीकी रक्षाकरे ।

रक्षाकेअनंतरकृत्य।

ततःकृतरक्षमातुरमागारंप्रवेश्याचारिकमादिशेत्।ततस्त्व

तीयेऽहनि विमुच्यैवंबध्नीयाद्वस्त्रपट्टेन। नचैनंत्वरमाणोऽप रेद्युर्मोक्षयेत् द्वितीयदिवसेपरिमोक्षणाद्विग्रथितोव्रणश्चिरा दुपसंरोहतितीव्ररुजश्चभवतिततऊर्ध्वंदोपकालबलादीनवे क्ष्यकषायालेपनबन्धाहाराचारान्विदध्यात्। नचैनंत्वरमा णः सान्तर्दोषंरोपयेत्सचारान्विदध्यात्सह्यल्पेनाप्यपचा रेणाभ्यन्तरमुत्सङ्गंकृत्वाभूयोऽपिविकरोति।

अर्थ–इसप्रकार रोगीकी रक्षाकर उसको घरके भीतर प्रवेशकरके आचारिक (आहार विहार जो व्रणितोपासनीयाध्यायमें कहेहैं) उनको कहे अर्थात् बहुतडोलना दुष्टभोजनआदि जो अहितहैं उनको तथा जो रोगीको हितकारी आहारविहारहै उनको कहिदेवे, तदनंतर तीसरे दिन आहारविहारसे निवृत्त करके और व्रणको औषधोंके काढेसे धोयकर कपडेकी पट्टीसे फिर बांधदेवे, परंतु जल्दीसे दूसरेदिनही इसव्रणको न खोलडाले। कारण यहहै कि, दूसरे दिन व्रण खोलनेसे इसमें गांठ रहजातीहै. और घाव बहुतदिनोंमें पुरताहै, तथा तीव्रपीडा होतीहै। पीछे चौथेदिन दोष, काल और रोगीके बलका विचार करके बुद्धिमान्पुरुष काढा, लेपन, बंधन आहार, विहार आचार आदिकरे परंतु जिसके भीतर दोष होवे उसव्रणको कदाचित् रोपण न करे। कारण कि, वह थोडेसेभी अपथ्य करनेसे वह भीतरसे बढकर फिरभी विकारकरै है।

तस्मादन्तर्बहिश्चैवसुशुद्धंरोपयेद्व्रणम्। रूढेप्यजीर्णव्यायाम व्यवायादीन्विवर्जयेत्॥हर्षक्रोधंभयञ्चापियावदास्थैर्य्यसम्भ वात्॥ हेमन्तेशिशिरेचैववसन्तेचापिमोक्षयेत्। त्र्यहात्त्र्य हाच्छरद्ग्रीष्मवर्षास्वपिचबुद्धिमान्॥अतिपातिपुरोगेपुनेच्छे द्विधिमिमंभिषक्॥प्रदीप्तागारवच्छीघ्रंतत्रकुर्य्यात्प्रतिक्रियाम्।

अर्थ–पूर्वोक्त कारणोंसे वैद्य अभ्यंतर[1] और बाह्य[2] शुद्ध (रस, स्थान, वर्ण गंध ए चारों जिस्के शुद्ध होवे ऐसे) व्रणका रोपण करे और व्रण भरभीजावे तथापि जबतक वो स्थिर न होवे तावत्कालपर्यंत अजीर्ण, दंड कसरत, स्त्रीसंग इत्यादि कर्मोंको तथा हर्ष, क्रोध, भय, इन्को त्याग देवे, कोई शंकाकरे कि, सदैव तीसरे २ दिन फस्तखो–

१ अंतरशुद्धिलक्षणं वातादिवेदनापगमः।
२ बहिःशुद्धिलक्षणं विशुद्धवर्णस्रावसंस्थानगंधाश्चत्वार इति।

ले कि कभी बीचमें भी खोले, इसवास्ते कहतेहैं कि, हेमंत, शिशिर और वसंत इन ऋतुओंमें तीसरे २ दिन शिरामोक्ष (फस्त) खोले (कारण यहहै कि इन ऋतुओंमें अधिक शीतपडनेसे शीघ्रपाकका भय नहीं है) और शरद्, ग्रीष्म, तथा वर्षा ऋतुमें दूसरे २ दिन फस्त खोले कारण यह है कि इनऋतुओंमें गरमी अधिक पडनेसे शीघ्रपाकका भय रहता है। (वर्षास्वपिच) इसपदमें चकार धरनेका यह प्रयोजन है कि यह नियम पैत्तिक व्रणमें नहीं है अर्थात् पैत्तिकव्रणको हेमंत शिशिर ऋतुमें यथानियम मोक्षणकरे; अपिशब्दसे वैशाखको गरम होनेसे दूसरे दिनभी मोक्षणकरे। अथवा पैत्तिक व्रणको ग्रीष्मऋतुमें दोवार खोले और बंदकरे, परंतु इसका नियम नहीं है, बुद्धिमान्वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार रक्तमोक्षणकरे।

अब कहते हैं कि यह पूर्वोक्तविधि वैद्यको शीघ्र बढनेवाले रोगोंमें मंतव्य नहीं है क्योंकि जैसे जलतेहुए घरको अनेकउपायोंसे शीघ्रशांति करते हैं उसीप्रकार शीघ्र-बढ़नेवाले रोगोंकी शीघ्र चिकित्सा करे।

शस्त्रजनितपीडामेंचिकित्सा।

यावेदनाशस्त्रनिपातजाता तीव्राशरीरंप्रदुनोतिजन्तोः।
घृतेनसाशांतिमुपैतिसिक्ता कोष्णेनयष्टीमधुकान्वितेन॥

अर्थ-जो तीव्रपीडा शस्त्रके लगनेसे होती है वो इसप्राणीके देहको अत्यंत दुःख-देती है, वह मुलहटी, महुआ, युक्त गरम घृतके सेकनेसे शांति होती है।

इति श्रीमदयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेपंचदशस्तरंगः॥ १५॥

यंत्राध्यायः।

अथातोयन्त्रविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः॥

अब यंत्रकल्पनाध्याय अथवा यंत्रभेदाध्यायकोकहेंगे॥

यंत्रोंकीसंख्या।

यंत्रशतमेकोत्तरं।तत्रहस्तमेवप्रधानतमंयन्त्रा
णामवगच्छ। किंकारणं। तस्माद्धस्तादृतेयं
त्राणामप्रवृत्तिरेवतदधीनत्वाद्यन्त्रकर्मणाम्।

अर्थ-एकसौएक यंत्रहैं उनयंत्रोंमें हस्त (हाथ) को प्रधानता है, कारणकि, हाथके विना सब यंत्रोंकी अप्रवृत्ति है; अर्थात् विनाहाथके यंत्रोंसे कोई कार्य नहीं होता है। अतएव यंत्रकर्मोंको तदधीनत्व है।

यंत्रव्यापिलक्षणपरिभाषाको कहते हैं।

तत्रमनःशरीराबाधकराणिशल्यानि, तेषामाहरणो पायोयन्त्राणि। तानिषट्प्रकाराणि। तद्यथा–स्व स्तिकयन्त्राणिसन्दंशयन्त्राणितालयंत्राणिनाडीयं त्राणिशलाकायंत्राणिउपयन्त्राणिचेति।

अर्थ–तहां मन और शरीरको पीडाकरनेवाले शल्य (कांटेलोवरेमादि) हैं. उनके दूरकरनेका उपाय यन्त्र है । वो यंत्र छःप्रकारके हैं, जैसे १ स्वस्तिकयंत्र, २ संदंशयंत्र ३ तालयंत्र ४ नाडीयंत्र ५ शलाकायंत्र और ६ उपयंत्र. इनमें स्वस्तिकयंत्र साथियेके[1], समान चार अवयववाले होते हैं. संदंशयंत्र संडासीके आकार होते हैं; इसीप्रकार औरोंकीभी उनके नामसे आकृति जाननी चाहिये ।

स्वस्तिकादियंत्रोंकीसंख्या ।

तत्रचतुर्विंशतिःस्वस्तिकयंत्राणिद्वेसंदंशयंत्रेद्वेएवतालयन्त्रेविं शतिर्नाड्यःअष्टाविंशतिःशलाकाःपञ्चविंशतिरुपयन्त्राणि।

अर्थ–पूर्वोक्त १०१ यंत्रसंख्याको दिखाते हैं तहां २४ स्वस्तिकयंत्र हैं, २ संदंशयंत्रहैं, २ तालयंत्र है २० नाडीयंत्रहैं, २८ शलाकायंत्रहैं और २५ उपयंत्रहैं, सबके जोडनेसे १०१ यंत्रहोतेहैं। [द्वेएवतालयंत्रे] इसमें एवशब्दके धरनेसे यह प्रयोजनहै कि शल्यकी आकृति देखकर स्वस्तिकादि यंत्र अधिकभी बनाने चाहिये।

तानिप्रायशोलौहानिभवन्तिततत्प्रतिरूपकाणिवातदला भे । तत्रनानाप्रकाराणांव्यालानांमृगपक्षिणांमुखैर्मुखा नियन्त्राणांप्रायशःसदृशानि । तस्मात्तत्सारूप्यादागमा दुपदेशादन्ययन्त्रदर्शनाद्युक्तितश्चकारयेत् ।

अर्थ–वे यंत्र प्रायः लोह (सुवर्ण, चांदी, तामा, लोहा, पित्तल) के होतेहैं, तथा सुवर्णादि पंचलोह न मिलनेपर उनको (तत्प्रतिरूपकं) अर्थात् हाथीदांत, सींग, काष्ठ, आदिके बनावे. और इनयंत्रोंके मुखका स्वरूप अनेकप्रकारके व्याल (सिंह–

---

१ गेहूंके चूनसे मंगलकार्योंमें स्त्री मुछचौकोन चार लकीर खींचती है उसका नाम साथिया है.

व्याघ्रादिहिंसकजीव) मृग (हरिण, ससे, आदि) और काक, गीध आदि पक्षियोंके मुखके समान होना चाहिये । अतएव इनयंत्रोंका स्वरूप शास्त्रसे और वृद्धवैद्यके उपदेशसे तथा अन्ययंत्रोंके देखनेसे वा युक्ति (अकल) से करने चाहिये । तहां शास्त्रमें लिखाहैकि स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुलके बनाने चाहिये । और उपदेशके कहनेसे केवल वृद्धवैद्यकाही ग्रहण नहीं है किंतु जो इसकर्मको करते रहतेहैं, ऐसे शिल्पकारोंके कहनेसे बनावे । अन्ययंत्र (चीमटा, संडासी, कैंची, चीमटी, नेहन्नी, आदि प्रत्येकदेशोंमें पृथक् २ आकृतिकी होतीहैं, उनको देखकर बनावे जैसे आजकल यूरोपिअन आदि विलायती मनुष्य बनातेहैं. और युक्तिके कहनेसे यथाप्रयोजन बनानी चाहिये अर्थात् पुरुषके हाथपैरआदि अवयवोंके विचारसे बनावे, जैसे, जो छोटेबालकहै उनकेलिये यंत्रभी छोटे और बडोंको बडेयंत्र बनाने चाहिये ।

समाहितानियन्त्राणिखरश्लक्ष्णमुखानिच ।
सुदृढानिसुरूपाणिसुग्रहाणिचकारयेत् ।

अर्थ-न्यूनाधिक (छोटेबडे) दोषकरके रहित तीक्ष्ण और चिकने मुखके तथा दृढ और सुन्दररूपवाले सुघाट ऐसे यन्त्र बनाने चाहिये । कोईआचार्य कहतेहैंकि कार्यभेदसे किसीयंत्रका मुख तीखाबनावे और किसीका मृदुबनावे तिनमें कंकमुखादिवालेयंत्र खरमुखकहातेहैं. । और सिंहास्यादियंत्र श्लक्ष्णमुखकहातेहैं ।

स्तास्विकयंत्राणि ।

तत्रस्वस्तिकयन्त्राण्यष्टादशांगुलप्रमाणानिसिंहव्याघ्रतरक्ष्वृक्षवृकद्वीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककङ्ककुररचासभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रक्रौञ्चभृङ्गराजाञ्जलिकर्णावभञ्जननन्दिमुखमुखानिमसूराकृतिभिःकीलैरवबद्धानिमूलेंकुशवदावृत्तवाराङ्गाण्यस्थिविनष्टशल्योद्धरणार्थेमुपदिश्यन्ते ।

अर्थ-स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुललंबे, और सिंह, बघेरा, जरख, रीछ, भेडहा, चीता, विलाव, स्यारिया (लोमडी) हिरण एर्वारुक (हिरणकाभेद होताहै) ए ९ पशु, तथा काक (कौआ) कंक (लंबीचौंचकाबडापक्षीजोमुर्दोंकोभक्षणकर्ताहै अथवा कोई सपेदचीलको कंक कहतेहैं,) कुरर (टटीहरी,) चास (पपैया वा चातक कोई नीलकंठको चास कहतेहैं,) भास (गीओंके झुंडमें रहनेवाला गीधविशेष परंतु कोई घरमें रहनेवाले मुर्गेको भास कहतेहैं,) शशघाती (शशारीनामसे प्रसिद्ध

कोई बाझको शंशारी कहतेहैं) उलूक (वागल-वा चमगिद्दड) चिल्ल (चील-नामसेप्रसिद्ध) श्येन (शिकरा वा कुई) गीध, क्रौंच (कोची कोचरी नामसे प्रसिद्ध और कोई कुंजनाम पक्षीको क्रौंच कहतेहैं,) भृंगराज (कालीचिडिया) अंजली और कर्णावभंजन (ए दोनामोंका पर्यायवाचीशब्द लोकप्रसिद्धीसे जानना,) और नंदीमुख (पत्राटी) ए १५ पक्षी कहेहैं, इन दोनों पशुपक्षियोंके मुखके समान स्वस्तिक यंत्रोंका मुखबनाना चाहिये और उनयंत्रोंके स्कंध (अर्थात् कंठदेश) मसूरके समानगोल और छोटीकीलोंसे जटित करने चाहिये; (परंतु कोई कहतेहैंकि यंत्रके तीसरे भागमें कील लगावे) और उनयंत्रोंका मूल अर्थात् पकडनेका स्थान अंकुशके समान कुछ नीचा और मुडाहुआ बनावे, ये स्वस्तिकयंत्र टूटीहड्डी जो देहके भीतर छिपीहुई रहतीहैं उसके निकालनेके लिये. कहेहैं !

स्वस्तिकयंत्रोकी तसबीरदेखो

अथसन्दंशयंत्राणि ।

सनिग्रहोनिग्रहश्च सन्दंशौषोडशांगुलौ भवत
स्त्वङ्मांसशिरास्नायुगतशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यते ।

अर्थ-संदंशयंत्र दोप्रकारकेहैं, एक सनिग्रह (अर्थात् जिसकामुखबंद रहे) और दूसरा अनिग्रहहै (जिसकामुख खुलारहे) ए दोनों यंत्र १६ अंगुल लंबे होने चाहिये. ये त्वचा, मांस, नस, स्नायुगत, शल्यके निकालनेके वास्ते कहेहैं । संदंशनाम संडासीका है * । २२ नंबरकेचित्रदेखो।।

तालयंत्रम् ।

तालयन्त्रेद्वादशांगुले मत्स्यतालवदेकतालद्वि
तालकेकर्णनासानाडीशल्यानामाहरणार्थम् ।

अर्थ-तालयंत्र दोनोंका विस्तार १२ अंगुलका होताहै, इन्दोंका स्वरूप मछलीके तालके आकार एकताल तथा द्वितालक होताहै, तालक लोहेकी पत्तीका नाम है, जिनसे किवाँडकी संधी आपसमें जोडीजातीहै ।

---

१ जिसओरसे कांटेआदिको पकडकर खींचतेहैं, उस भागको यंत्रका मुख कहतेहैं ।

* वाग्भट ६ अंगुलका दूसरा संदंशयंत्र नासिकाके बालआदि निकालनेको तथा पलकोंके परवाल तोडनेको कहताहै, उसकानाम मुचुंडीहै । इसके मुखमें छोटे २ दांत होतेहैं, और पकडनेकीजगे छल्लाप्राहोताहै, इसछल्लेके दाबनेसे काम होताहै। यह गंभीरव्रणोंमेंसे जो अधिमांसहोताहै उसके निकालनेको कहाहै ।

मछलीके तालुकहनेसे इसजगे मछलीका कांटालेना अर्थात् जैसा वो पतला होता है ऐसे तालुयंत्रोंके मुखजानने ।

नाडीयंत्राणि ।

नाडीयन्त्राण्यनेकप्रकाराण्यनेकप्रयोजनान्येकतोमुखान्युभयतोमुखानिच, तानिस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थंरोगदर्शनार्थमाचूषणार्थं क्रियासौकर्यार्थंश्चेतितानिस्रोतोद्वारपरिणाहानि यथायोगपरिणाहदीर्घाणिच।भगन्दरार्शोऽर्बुदव्रणबस्त्युत्तरबस्तिमूत्रवृद्धिदकोदरधूमनिरुद्धप्रकाशसंनिरुद्धगुदयन्त्राण्यलाबूशृङ्गयन्त्राणिचोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ।

अर्थ—नाडीयंत्र अनेकप्रकारके और अनेक प्रयोजनवाले होतेहें, कोई एकमुखवाले (जैसे रुधिरके निकालनेको अलाबूयंत्र, भगंदरयंत्र और अर्श यंत्रादि) कोई उभयतोमुख होतेहें, (जैसे बस्ती, उत्तरबस्ती, और धूमयंत्रादि) ये सब नाडीयंत्र स्रोतोगत शल्यके निकालनेके लिये बवासीर आदि रोगोंके देखनेकेलिये और अस्थिगतवायु रुधिर और स्तनसंबंधी दूधके आचूषण (खींचने) के लिये तथा क्रिया (शस्त्रक्षाराग्निआदिक्रिया) ओंके सुखकरणार्थ कहेहें । इन नाडीयंत्रोंके मुख स्रोतोंके द्वारसदृश छोटेबडे और गोलहोनेचाहिये । अब उनकेनाम कहतेहें । भगंदरयंत्र २, एकएकछिद्रका दूसरा दोछिद्रवाला इसीप्रकार अर्शयंत्र २, अर्बुदयंत्र २, व्रणयंत्र १, यह व्रणकी चौडाई लंबाईके समान होनाचाहिये, बस्तियंत्र ४ है, कोई ३ प्रकारके कहतेहें. उत्तरबस्ती २, मूत्रवृद्धियंत्र १, दकोदरयंत्र १, धूमयंत्र ३, निरुद्धप्रकाशयंत्र १, संनिरुद्धगुदयंत्र १, और अलाबूयंत्र १, इन सब यंत्रोंको यथाप्रयोजन यथास्थान में कहेंगे ।

शलाकायंत्राणि ।

शलाकायन्त्राण्यपि नानाप्रकाराणि नानाप्रयोजनानियथायोगपरिणाहदीर्घाणिच।तेषांगण्डूपदशरपुंखसर्पफणबडिशमुखेद्वेद्वे एषणव्यूहनचालनाहरणार्थमुपदिश्येते।

अर्थ—शलाकायंत्रभी अनेकप्रकारके अनेक प्रयोजनवाले होतेहें, इनको यथायोग गोल और लम्बे बनाने चाहिये, तिनमें गंडूपद (केंचुआ) के मुखवाले यंत्र २, बाणकीपुंखके आकार मुखवाले यंत्र २, सर्पफणकेतुल्य मुखवाले यंत्र २, बडिश (मच्छीपकडनेकी लोहवंशीके) मुखवाले यंत्र दो बनावे। ये आठयंत्र, एषण (गं-

भीरपाकी व्रणोंसे राधरुधिरआदिकों निकालना,) व्यूहन (निर्माणकरना) चालन, और आहरण (निकालने) के अर्थ कहेहैं।

मसूरदलमात्रमुखेद्वे किञ्चिदानताग्रेस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थम् पट्कापासकृतोष्णीपाणि प्रमार्जनक्रियासु। त्रीण्यन्यानिजाम्ब्ववद्वदनानि। त्रीण्यङ्कुशवदनानि।

अर्थ–मसूरकीदालके समानमुखवाले दोयंत्र बनावे वो अग्रभागमें कुछ नवेहुए होवे, ये स्रोतोगत शल्योंके निकालनेके अर्थहै* छः यंत्रोंके अग्रभाग रूईसे लिपटेहुए झाडने पोछनेआदि क्रियाके अर्थ कहेहैं; तीनयंत्र कलछीके आकार मुख और नीचेमुखवाले क्षार औषधोंके प्रयोगार्थ कहेहैं, तीनयंत्र जामनफलके सदृश मुखवाले तीनयंत्र अंकुशके मुखसमान मुखवाले।

षडेवाग्निकर्मस्वभिप्रेतानि। नासार्बुदहरणार्थमेकंकोलास्थिदलमात्रमुखंखल्लतीक्ष्णोग्रम्। अञ्जनार्थमेकंकलायपरिमण्डलमुभयतोमुकुलाग्रम्। मूत्रमार्गविशोधनार्थमेकंमालतीपुष्पवृंताग्रप्रमाणपरिमण्डलमिति।

अर्थ–ये छःयंत्र अग्निकर्म (दागने) में अभीष्टहैं। नासार्बुदहरणार्थ एक बेरकीगुठलीके अर्धदलप्रमाणमुख बीचमें नीचा और अंतमेंतीखा ऐसा यंत्र होताहै, नेत्रोंमें अंजनआँजनेकेअर्थ १ यंत्र मटरकेसमानगोल और दोनों प्रान्त फूलकी कलीके समान होतेहैं. । मूत्रमार्ग विशोधनार्थ एकयंत्र मालतीपुष्पकेवृन्त (जिसमें फूललटकाकरेहै उसडांठेको वृंतकहतेहैं) उसके समान बनावे। इन शलाकायंत्रोंका विस्तार आठ अंगुलका होनाचाहिये; शलाकानाम सलाईकाहै।

उपयंत्राणि।

उपयन्त्राण्यपिरज्जुवेणिकापट्टचर्मान्तवल्कललतावस्त्राष्ठीलाश्ममुद्गरपाणिपादतलाङ्गुलिजिह्वादन्तनखमालाश्वकटकशाखाष्ठीवनप्रवाहणहर्षायस्कान्तमयानिक्षाराग्निभेषजानिचेति।

---

*स्रोतोगत शल्यकानिकालनादिखातेहैं, जैसे नासाशल्य कंठमें जायकर अटकजावे उससमय वैद्य मुखमें नाडीयंत्रडाल तत्तोलोहकी सलाईसे शल्यको खींचलेवे. वाग्भट लिखताहैकि कंठशल्यके देखनेको १० अंगुललंबा और ५ अंगुल चोडा नाडीयंत्रहोताहै और कमलककडीके सदृश ऊपरके भागमें होवे और १२ अंगुललंबा होनाचाहिये।

अर्थ–अब उपयंत्रोंको कहतेहैं. मूंजकी रस्सी–वेणीका (तिवलीरस्सी) पट्ट (पट्टी) चामके टुकडे, (पट्टेआदि) ढाक, और गूलरकीछाल (यह टूटेहुए हाड आदिके ऊपरबांधनेको कामआतीहैं) लता, कपडा, ऊंचा और गोल ऐसा पत्थर, मुद्गर, (काष्ठआदिकाबनागुरज) हथेली, पैरकेतलुए, उंगली, जीभ, दांत, नख, (नाखून) बाल, घोडा, वृक्षकीशाखा, थूकना, प्रवाहन (वमन, विरेचन, आंसू, ए क्रमसे कफपित्त और नेत्रमें रजआदि शल्यदूरकरनेंको) हर्ष (प्रसन्नता) अयस्कांत (आकर्षक, द्रावक, चुम्बक, भ्रामक, आदिभेदवाला पाषाणविशेष) के बनेहुएपदार्थ, क्षार, अग्नि और अनेकप्रकारकी औषध ए सब उपयंत्रकहातेहैं ॥

एतानिदेहेसर्वस्मिन्देहस्यावयवेतथा ।
सन्धौकोष्ठेधमन्याश्चयथायोगंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ–ए पूर्वोक्त यंत्र सर्वदेहमें तथा देहके संपूर्णअवयवों (हाथपैरों) में तथा संधिकोष्ठ, धमनीआदिमें यथायोग वरतने चाहियें ।

अथयन्त्रकर्माणि ।

यन्त्रकर्माणिनिर्घातनपूरणवन्धनव्यूहनप्रवर्तनचालन
विवर्त्तनविवरणपीडनमार्गविशोधनविकर्षणाहरणाच्छ
नोन्नमनविनमनभञ्जनोन्मथनाचूषणैषणदारणर्जुकरण
प्रक्षालनप्रधमनप्रमार्जनानिचतुर्विंशतिः ।

अर्थ–अब यंत्रोंकेकार्यकहतेहैं. । निर्घातन (इतस्ततश्चलायमानकरके निकालना) पूरण (तेल, आदिसे बस्तिनेत्रादिकोंको पूरणकरना) बांधना, व्यूहन (उठेहुएकोकाटकरनिकालना) विवर्त्तन (कमतीबढतीकोगोलकरना) चालन, विवर्त्तन (कानकी पवनके निकालनेको यंत्रको कानमें फिराना) विवरण (मांसरुधिरआदिमेंछिपेशल्यको प्रकाशितकरना) पीडन (दाबना) मार्गविशोधन (मूत्र, पुरीष, आदि रुकेहुएमार्गोंका शोधनकरना) विकर्षण (गडेहुएशल्यको पकडकर खींचना) आहरण (निकालना) आच्छन (कुछव्रणके मुखपर शल्यको लाना) उन्नमन (अधःस्थितोंको ऊपरलाना) विनमन (नीचेकोकरना) भंजन (शिर, कान, आदिका मीडना) उन्मथन (प्रनष्टशल्य के मार्ग में शलाई डालकर मथनकरना)आचूषण (विषदुष्टस्तनसंबंधी दूध और रुधिरमें सींगी, तूंबीआदि लगाकरचूसना) एषण (जोखआदिसे खींचना) दारण (शिरकर्णआदिके दो टूककरना) ऋजुकरण (टेढोंको सीधा करना) प्रक्षालन (धोना) प्रधमन (नासिकामें नाडीयंत्रद्वारा चूर्णका डालना) और प्रमार्जन (पोंछना)ए २४ यंत्रोंके कर्म हैं.

अबअनेकशल्याकारकर्मोंको बाहुल्यहोनेसेपूर्वोक्तसंख्याका अनियमदिखातेहैं।

स्वबुद्ध्याचापिविभजेद्यन्त्रकर्माणिबुद्धिमान् ।
असंख्येयविकल्पत्वाच्छल्यानामितिनिश्चयः ॥

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुष अपनीबुद्धिसे भी यंत्रकर्मोंको करे क्योंकि शल्योंको असंख्येयविकल्पत्व है, अर्थात् अनेकप्रकारके शल्यहैं, उनके निकालनेके उपायभी अनेकहैं, अतएव केवल लिखेहुएपरही न रहे, किंतु कुछ स्वबुद्धि चातुरीसे भी कर्मकर्तव्यहैं यहनिश्चितहैं।

अथयंत्रोंकेदोष।

तत्रातिस्थूलमसारमतिदीर्घमतिह्रस्वमग्रा
हिविषमग्राहिवक्रंशिथिलमत्युन्नतंमृदुकीलं
मृदुमुखंमृदुपाशमितिद्वादशयन्त्रदोषाः।

अर्थ–जो यंत्र अत्यंत स्थूलहो. और अशुद्धलोहसे बनाहो, जो अत्यंत लंबाहो, बहुतछोटाहो, जिसकामुख विकृतहो, और जो एकजगेसे न पकडे, तथा टेढाहो, शिथिलहो, अर्थात् जो ठीक दाबेनहीं, जिसकी कीलआदि ऊपरको ऊठरहीहो, तथा जिसमें मृदुकील लगीहो, अथवा ढीलीकीलहो, और जिसकामुख नरमहो, तथा विकृतपाश कहिये जिसयंत्रके मुखसे शल्य न पकडनेमेंआवे, ये यंत्रोंके १२ दोषहैं ॥

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तंयन्त्रमष्टादशांगुलम् ।
प्रशस्तंभिषजाज्ञेयंतद्धिकर्मसुयोजयेत् ॥

अर्थ–उक्तदोषरहित, अठारहअंगुललंबा यंत्र, वैद्यउत्तमजानतेहैं, उसको चीरने फाडने आदिकर्ममें योजनाकरे अर्थात् कार्यमेंलावे।

स्वस्तिकयंत्रोंकाविषयभेददिखातेहैं।

दृश्यंसिंहमुखाद्यैस्तुगूढंकंकमुखादिभिः।
निर्हरेत्तुशनैःशल्यंशस्त्रयुक्तिव्यपेक्षया ॥

अर्थ–जो शल्य दृश्य (दीखते) हैं उनको सिंहमुखादि यंत्रोंसे निकाले, और जो छिपेहुए हैं, उनको कंकमुखादि यंत्रोंसे धीरे २ निकाले, तथा शस्त्रयुक्तिके अनुसार निकाले।

कंकमुखयंत्रकोप्रधानताकहतेहैं ।

निवर्त्ततेसाध्ववगाहतेचशल्यंनिगृह्योद्धरतेचयस्मात् ।
यन्त्रेष्वतःकङ्कमुखंप्रधानंस्थानेषुसर्वेष्वविकारिचैव ॥

अर्थ–भलेप्रकार प्रवेशहोता है और निकलता है तथा शल्यको पकडकर खींचेहै अतएव सर्वयंत्रोंमें कंकमुखनामक यंत्र प्रधान (श्रेष्ठ) है, और ये सर्वसन्धि धमनी आदिमें अविकारी है अर्थात् विकार नहींकरे है ।

इतिश्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरेपंचदशस्तरङ्गः ।

अथातःशस्त्रावचारणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब शस्त्रावचारणीय अर्थात् जिसमें शस्त्रोंके बनाने और वर्त्तनेकी विधिहै उस अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

शस्त्रोंकीसंख्या।

विंशतिः शस्त्राणि । तद्यथा मण्डलाग्र करपत्र वृद्धिपत्र नखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधारसूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चककुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकबडिशदन्तशङ्क्वेषण्यइति ।

अर्थ–शस्त्र बीसप्रकारकेहैं, जैसे १ मण्डलाग्र* २ करपत्र, (करोत) ३ वृद्धिपत्र, ४ नखशस्त्र, ५ मुद्रिका, ६ उत्पलपत्रक, ७ अर्द्धधार, ८ सूची, ९ कुशपत्र, १० आटीमुख, ११ शरारिमुख, १२ अन्तरमुख, १३ त्रिकूर्चक, १४ कुठारिका, १५ व्रीहिमुख, १६ आरा, १७ वेतसपत्र, १८ बडिश, १९ दन्तशंकु, और २० एषणी ।

शस्त्रोंकेअष्टविधकर्म।

तत्रमण्डलाग्रकरपत्रेस्यातांछेदनेलेखनेच । वृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधाराणि छेदनेभेदनेच । सूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चकानिविस्रावणे। कुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकाणिव्यधने।सूची

* मंडलाग्रशस्त्र छुराके आकारहोताहै, करपत्रको भाषामें करोत कहतेहैं. । वृद्धिपत्रको छुराकहतेहैं । नखशस्त्रको नहन्नी, वा नाखूनतराश कहतेहैं । शराी शस्त्रको कतरनी अथवा कैंची कहतेहैं ।

चवडिशोदन्तशंकुश्चाहरणे। एषण्येषणे आनुलोम्येच। सूच्यः सेवने । इत्यष्टविधेकर्मण्युपयोगः शस्त्राणांव्याख्यातः।

अर्थ–तहां मण्डलाग्र और करपत्र इनदोनों शस्त्रोंको छेदन और लेखन कर्ममें लेने चाहिये। वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, और अर्द्धधारा ए शस्त्र छेदन भेदनमें ग्रहणकरनेचाहिये। सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अंतरमुख, और त्रिकूर्चक, ए शस्त्र स्रावकरानेमें लेने, कुठारिका, व्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्रक, और सूचीशस्त्र, ए वेधनेमें लेनेउचितहैं। वडिश, दंतशंकु, ए शस्त्र निकालनेमें लेनेचाहिये। एषणीशस्त्र चूसनेमें और अनुलोमन कर्ममें लेने चाहिये और सूचीशस्त्र सीनेमें लेना. इसप्रकार शस्त्रोंके अष्टविध कर्मकी विधिकहीहै।

तेषामथ यथायोगं ग्रहणसमासोपायः कर्मसुवक्ष्यते। तत्रवृद्धिपत्रंवृन्तफलसाधारणेभागेगृह्णीयात् भेदनान्येवं सर्वाणिवृद्धिपत्रंमण्डलाग्रञ्चकिंचिदुत्तानपाणिनालेखने बहुशोवचार्यंवृन्ताग्रेविस्रावणानि। विशेषेणबालवृद्धसुकुमारतरुणनारीणांराज्ञांराजपुत्राणाञ्चत्रिकूर्चकेनविस्रावयेत। तलप्रच्छादितवृन्तमंगुष्ठप्रदेशिनीभ्यांव्रीहिमुखम्।कुठारिकांवामहस्तन्यस्तामितरहस्तमध्यमांगुल्यांगुष्ठविष्टब्धयाभिहन्यात्।आराकरपत्रैषण्योमूलेशेपाणितुयथायोगंगृह्णीयात्।

अर्थ–शस्त्रकर्ममें इनशस्त्रोंके योग ग्रहण (पकडने) का उपाय कहतेहैं। तहां वृद्धिपत्रको डंडीके और फलकके बीचमें पकडना चाहिये। इसीप्रकार भेदनेके सर्वशस्त्रोंमें जानलेना। वृद्धिपत्र और मंडलाग्र इनको ऊपरकी तरफसे पकड लेखनकर्ममें बहुधा इसको कार्यमेंलावे। और इन्ही वृद्धिपत्र और मंडलाग्रोंको डंडीके अग्रभागमें पकड राध रुधिरआदि के स्रावकर्मकर्तव्यहैं। विशेषकरके बाल वृद्ध सुकुमार तरुण स्त्री राजा महाराजा तथा राजपुत्रोंको त्रिकूर्चक शस्त्रद्वारा स्रावकर्तव्यहै. । हथेलीसे वृन्त (बेंटा वा डंडी) को दाब अंगूठा और तर्जनीउंगलीसें व्रीहिमुखशस्त्रको पकडे। कुठारीके डंडेको बाँएहाथसे पकड दहनेहाथकी मध्यमांगुली और अँगूठेसे दाबके चलावे। आरा करोत और एषणी इन शस्त्रोंको जडमेंसे.

पकड़ने चाहिये । और बाकीके शस्त्रोंको यथायोग्य अर्थात् किसीको बेंटेकी जडमें किसीको बेंटेके मध्यमें किसीको बेंटेके अग्रभागमें ग्रहण करने चाहिये ।

शस्त्रोंकीआकृति ।

तेषांनामभिरेवाकृतयःप्रायेणव्याख्याताः ।

अर्थ–मंडलाग्रआदि शस्त्रोंका स्वरूप उनकेनामसेही प्रायः कहाहै, विशेपकहतेहैं.

तत्रनखशस्त्रैषण्यावष्टांगुले । सूच्योवक्ष्यन्ते । बडिशो दन्तशंकुश्चानताग्रेतीक्ष्णकण्टकप्रथमयवपत्रमुखे । एप णीगण्डूपदाकारमुखी । प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणमुद्रि का । दशांगुलाशरारिमुखीसाकर्त्तरीतिकथ्यते । शेपाणि तुपडंगुलानि ।

अर्थ–नखशस्त्र (नेहन्नी) और एपणीशस्त्र ए आठअंगुल लंबे होतेहें । और सूचीशस्त्र (सुई) का प्रमाण आगे (अष्टविधकर्मीयाध्यायमें) कहेंगे. बडिशशस्त्र और दन्तशंकू इन दोनोंका अग्रभाग कुछ नवाहुआ और तीक्ष्णकंटक (जिसका- काँटापैनाहो) तथा प्रथमोत्पन्नयवपत्रके समान होना चाहिये । एपणी शस्त्र केंचु- एके सदृश मुखवालाहोता है । मुद्रिकाशस्त्र प्रदेशिनी (अगलीउंगली) के आगेके पोरुआके समान होनाचाहिये । शरारीमुख शस्त्रको कैंचीकहते हें । वो दशअंगुल लंबी होनीचाहिये । बाकीके शस्त्र छः २ अंगुललंबे होनेचाहियें ।

अब शस्त्रोंका प्रमाण औरभी ग्रंथांतरोंसे लिखतेहैं । मंडलकेसमान गोल जि- सका अग्रभागहो उसको मंडलाग्रशस्त्रकहतेहैं । वो दोप्रकारकाहै. एकतो वहहै कि *जिसकी गुलाई उसके छटेभागपर्यंतहो और दूसरा छुराके आकारहो इन दोनोंका* प्रमाण (लंबाव) छःअंगुलका होताहै । करपत्र (यह कांटेदार होती है इसको करोत ॥। आरी कहतेहें) परंतु कोई १२ अंगुलका करपत्र कहते हें । वृद्धिपत्र दो- प्रकारकाहै । एक अंचिताग्र दूसरा प्रयताग्र. इनमें अंचिताग्र वृद्धिपत्रको छुरा कहते हें। दोनों सातअंगुल लंबे पंचांगुलवृत्त और ढाईअंगुलका अग्रभागहोना चाहिये । नख- शस्त्रको नेहन्नी कहतेहें । इसका अग्रभाग ५ अंगुल लंबा १ अंगुल विस्तृत और अर्ध- अंगुलकीधार होनी चाहिये । अर्द्धधाराशस्त्र ८ अंगुल लंबा १ अंगुल विस्तृत और चक्रके समान धारवाला होना चाहिये । कुशपत्रकेसमान कुशपत्रशस्त्रहोताहै । ३ अंगुल

---

१ षड्भागे मण्टलं वृत्तं क्षुरसंस्थानमेव वा । मण्डलाग्रस्य जानीयात्प्रमाणन्तु षडंगुलम् । अंगुले रुचकं विद्याद्‌गुलं फलमुच्यते । वृत्तंस्याद्द्व्यंगुलं मध्ये कुशपत्रस्य लक्षणम् ।

डंडी १ अंगुलका अग्रभाग और २ अंगुलबीचमें कुछ गोल होती है । आटीमुख शस्त्रकी डंडी ७ अंगुल और अँगूठेके समान उसका अग्रभाग होनाचाहिये । आटीनाम आडीपक्षीको कहतेहैं, उसके मुखसमान जिसका मुखहो उसको आटीमुख शस्त्र जानना । शरारीनाम लंबीचोंचके पक्षीको कहतेहैं वो दोप्रकारका होताहै एकतो जिसके कंधे सपेदहो दूसरा लालमस्तकवाला होताहै धवल (सपेद) कंधे वालेको शरारी कहतेहैं । उसके मुखके सदृश मुखजिसका उसको शरारीशस्त्र कहतेहैं । इसीको भाषामें कैंची कहतेहैं । यह १२ अंगुलकी और दोनोंपछे चलायमान होनी चाहिये । शरारीको भाषामें बगलाकहतेहैं अंतर्मुखशस्त्रका मुख भीतरहोताहै । यह ८ अंगुल लंबा और अर्द्धचंद्राकारहोना चाहिये ।

त्रिकूर्चकशस्त्र ८ अंगुलका तिधारा और ३ अंगुलका अग्रभाग होनाचाहिये, और तीनो कांटोंमें चामल २ भरका फरक रहना चाहिये । इसकी डंडी ५ अंगुलकीकरे और इसके ऊपर छल्ला २ से आकारसे भूपितकरे । ४ कुंठारिकायंत्र का-बेटा७॥अंगुललंबा उसका अग्रभाग आधेअंगुलका होना चाहिये, उसको गोदंतसदृश बनावे, ब्रीहिमुखशस्त्रका प्रमाण, भोज इसप्रकार लिखताहै कि,६अंगुललंबा और दोअंगुलकी उसकी डंडी और४अंगुलका अग्रभागहोना चाहिये, और इसकामुख चावलके समानहो,यह अटकेहुए कांटेके निकालनेके अर्थ कहाहै,आरा यह चमारोंका शस्त्रहै। इसकी १६ अंगुल लंबा और तिलकेसमान अग्रभाग तथा पूर्वअंकुर विस्तृत इसका बेटा गोपुच्छकेसदृश होना चाहिये, वेतसपत्रयंत्रका विस्तार १ अंगुलका तीक्ष्णहोनाचाहिये, और ४ अंगुललंबा तथा ४ अंगुलका बेटा होनाचाहिये । यहभी भोजकाप्रमाणहै । बडिशयंत्र ६ अंगुलकेलंबे दोनोंका एकमुख इन दोनोंका बेटा ५॥ अंगु-

---

१ वृन्त सप्तागुल विद्यात्तस्याग्रे फलमिष्यते । आटीमुखप्रकारोहि फलमगुष्ठमायतम् । २ अष्टागुल प्रमाणेन जिह्वा धामविधारक । शस्त्रमन्तर्मुख नाम चन्द्रार्द्धमिवचोद्धृतम् । ३ अगुलानि तथाष्टौच शस्त्र कार्यं त्रिकूर्चकम् । फलैस्त्रमुखाकारैरगुलैरन्वित त्रिभिः । एकैकस्यफलस्यैषामन्तर ब्रीहिसम्मितम् ॥ वृत्त पचागुलायाम कार्यं रुचकभूषितम् । ४ कुठारिकाया वृन्तस्यात् सार्द्धसप्तागुलायतम् । फलमर्धागुलायाम गोदन्तसदृश समम् ५ शस्त्रं ब्रीहिमुखकार्यं मगुलानि षडायतम् । द्व्यगुल तस्य वृन्तेष्टास्यात् तत्फल चतुरगुलमम् । तन्मुख ब्रीहिविस्तार तत्तुसमूढकटकम् ६ आराद्व्यष्टागुलायामा कर्त्तव्यातु विशाम्पते । तिलप्रमाणन्तुफलतस्या कार्यसमाहित । पूर्वांकुरपरीनाह वृत्तगोपुच्छसन्निभम् ७ तीक्ष्णमगुलविस्तार चतुरगुलमायतम् । अगुलानि तु चत्वारि वृन्तंकार्यं विजानता । ८ बडिशो चापिकर्त्तव्यो प्रमाणेन षडगुलैः । स्यानतस्तुतयोरेक एको नात्यर्पितोभवेत् । अर्द्धपचागुलंवृत्त शेषकार्यं मुखंतयोः । अर्धचन्द्राकृति वक्र कार्यं नास्यानतस्यतु । स्याननस्यानत तस्मात् बडिशस्यभिषग्वरैः । वृन्ताग्रयोरन्तरस्यात् यावदर्द्धागुलमतम् । एष हिक्रियन्ते एतोदशशकुर्विजानता।शकुश्चमुखतस्य कार्यमर्धागुलायतम् । चतुरस्र समञ्चैव ।

लका आर शेपइसका मुखहोनाचाहिये, एकधारशयंत्र अर्धचन्द्राकृति और नवाङ्गुल होताहै । इसका विस्तार नीचेके श्लोकसे देखो एपणीयंत्र व्रणके विस्तार माफिक होताहै । इसका मुख केंचुएके समान होनाचाहिये ।

उत्तमशस्त्रकेलक्षण ।

तानिसुग्रहाणिसुलोहानिसुधाराणिसुरूपाणिसुस माहितसुखाग्राण्यकरालानिचेतिशस्त्रसम्पत् ।

अर्थ-इन शस्त्रोंको सुघाट, श्रेष्ठलोहके, उत्तमधारवाले, सुहावने, सुंदरमुखवाले और अकराल, अर्थात् उनमें कोई फांस नहो, अथवा विकरालरूपवाले न होय, ए उत्तमशस्त्रके गुणहैं ।

शस्त्रोंकेदोष ।

तत्रवक्रंकुण्ठंखण्डंखरधारमतिस्थूलमत्यल्पमतिदीर्घमति ह्रस्वमित्यष्टौशस्त्रदोषाः । अतोविपरीतगुणमाददीतान्य त्रकरपत्रात् । तद्धिखरधारमस्थिच्छेदनार्थम् ।

अर्थ-टेढा, भोतरा, खंडित, कठोरधार, अत्यंतमोटा, अतिपतला, अत्यंत लंबा, अत्यंत छोटा, ए शस्त्रके आठ दोषहैं । इसीसे एक करपत्र (करोत) को छोडकर अन्य इससे विपरीत गुणवान् शस्त्र लेने उचितहैं । खरधारावाला शस्त्र हड्डी काटनेको कहाहै । इसीसे करोत खरधारावाली लेनी ।

शस्त्रोंकीधार ।

तत्रधाराभेदनानांमासूरी, लेखनानामर्द्धमासूरी, व्यधनानां विस्रावणानाञ्चकैशिकी, छेदनानामर्धकैशिकीति ।

अर्थ-भेदनेके निमित्त वृद्धिपत्र और नखशस्त्र आदिकी धार मसूरकी दालके समान पतली करनी चाहिये, लेखनके अर्थ मंडलाग्र आदि शस्त्रोंकी धार मसूरदालकी आधी होनी चाहिये । वेधनेकेलिये कुठारी आदिकी धार और विस्रावणके निमित्त सूची, कुशपत्र आदिकी धारा केश (बालकेसमान) पतली होनी चाहिये । यदि उक्त वृद्धिपत्रादिकोंको छेदनेके अर्थ प्रयोगकरे तो उनकी धार आधेबालके समान होनी चाहिये ।

शस्त्रोंकीपायना ।

तेषांपायनात्रिविधाक्षारोदकतैलेषु । तत्रक्षारपायितंशरश

ल्यास्थिच्छेदनेषु। उदकपायितंमांसच्छेदनपाटनेषु। तैल
पायितंशिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु। तेषांनिशानार्थंश्लक्ष्ण
शिलामाषवर्णाधारासंस्थापनार्थंशाल्मलीफलकमिति।

अर्थ—उनशस्त्रोंकी पायना (पानीचढाना) तीनप्रकारकीहै, यह लुहारोंमें प्रसिद्धहै। एक क्षारपायना, दूसरीजलपायना और तीसरी तैलपायना, तहां क्षारपायना अर्थात् क्षारोंमें बुझायकर जो धाड धरीजातीहै, वो बाण, शल्य और हड्डीके काटनेमें कहीहै। और जलपायना मांसकेछेदन पाटनमें जाननी। और तीसरी तैलपायना शिरावेध स्नायुच्छेदनेमें कहीहै। अब कहतेहैं कि, यदि बीचमें धार भोंतरी होजावे उसके घिसनेके लिये साफ चिकनी उडदके रंगकी ऐसी पाषाण (पत्थर) की शिल्ली लेनी चाहिये। और धारके संस्थापनार्थ (ठीककरनेको) सेमरका पट्टा (अथवा चामकापट्टा) होता है। ये शिल्ली और पट्टा बहुधा नाऊ (हज्जामों) के पास होते हैं।

शस्त्रकोश।

स्यान्नवांगुलविस्तारःसुघनोद्वादशांगुलः।
क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः। विन्य
स्तपाशःसुस्यूतःसांतरोणार्थशस्त्रकः। शला
कापिहितास्यश्चशस्त्रकोशःसुसंचयः।

अर्थ—शस्त्रोंके रखनेका कोश ९ अंगुल चौडा और १२ अंगुल लंबा तथा सघन और क्षौम (जोवकलसे बनता है) पत्ता, ऊन, रेशम, वस्त्र, और नर्मचमडेका बनाहुआ होनाचाहिये, जिसमें पृथक् फांसेके सदृश बनहो तथा शस्त्रोंके बीच २ में ऊनका कपडा लगरहाहो, उस कोशका मुख शलाईसे ढकाहुआ और अनेक शस्त्रोंका संग्रहजिसमें ऐसा सुंदरकोश नाईकी पेटीके समान होना चाहिये।

धारकी परीक्षा।

यदासुनिशितंशस्त्रंरोमच्छेदिसुसंस्थितम्।
सुगृहीतंप्रमाणेनतदाकर्मसुयोजयेत्।

अर्थ—जब शस्त्रबालोंको काटडाले और देखनेमेंभी उत्तम दीखे तब जाने कि धार चढगई। और उन पूर्वोक्त शस्त्रोंके पकडनेका स्थानभी उत्तमहो तथा यथाप्रमाणहो, ऐसे शस्त्रोंको छेदन भेदनादि कर्मोंमें योजना करना चाहिये।

अनुशस्त्र ।

अनुशस्त्राणितुत्वक्सारस्फटिककाचकुरुविन्दजलौकाग्नि क्षारनखगोजीशेफालिकाशाकपत्रकरीरवालांगुलयइति ।

अर्थ-अब बालकआदि जो अशस्त्रावचरणीयहै, अर्थात् जिनको शस्त्रकर्मकरना वर्जितहै अथवा शस्त्रकर्मके समय शस्त्र न मिलनेसे उसकर्मको अन्यद्रव्यद्वारा करना, उनद्रव्योंको अनुशस्त्र कहतेहैं; जैसे; त्वक्सार (बांस) स्फटिक, कांच(शीसा) कुरुविन्द (पत्थरकी जातविशेष अर्थात् शिल्ली) जोंख, अग्नि, क्षार, नख, (नाखून) गोजी (गोभी, कोई सहोडा कहतेहैं) शेफालिका (जिसकी डंडी लाल होतीहै और शरद्ऋतुमें खिलताहै) शाकपत्र (महावृक्ष जिस्के कठोरपत्ते होतेहैं) करील, बाल, और ऊँगली, ए अनुशस्त्र अर्थात् हीनशस्त्रहैं, अथवा शस्त्रोंके तुल्य है ।

अनुशस्त्रोंकोविषय ।

शिशूनांशस्त्रभीरूणांशस्त्राभावेचयोजयेत् ।
त्वक्सारादिचतुर्वर्गंछेद्येभेद्येचबुद्धिमान् ॥
आहार्यच्छेद्यभेद्येपुनखंशक्येषुयोजयेत्।वि
धिःप्रवक्ष्यतेपश्चात्क्षारवह्निजलौकसाम् ।
येस्युर्मुखगतारोगानेत्रवर्त्मगताश्चये।गोजी
शेफालिकाशाकपत्रैर्विस्रावयेत्तुतान्।एष्वे
ष्वेपण्यलाभेतुवालांगुल्यंकुराहिता ।

अर्थ-उक्त ही शस्त्रोंको बालक और शस्त्रोंसे डरपनेवाले, तथा शस्त्रउपस्थित न होनेसे कार्यमें लेनेचाहिये । तथा इनमें प्रथमके चार अनुशस्त्रोंको (बाँस, स्फटिक, कांच, और कुरविंदको) छेदन भेदन कर्ममेंलेवे, और नखशक्य आहार्यछेद्य भेद्योंमें नखशस्त्र योजनाकरे । क्षारकर्म, वह्निकर्म और जोकलगानेकी विधि आगे कहेंगे । मुखरोग और नेत्रके कोएनमें होनेवाले रोगोंमें गोजीशस्त्र, शेफालिका, और शाकपत्र शस्त्रद्वारा स्राव कराना चाहिये । और एष्य (खींचनेयोग्य) शल्योंमें एषणीशस्त्रके उपस्थित न होनेपर बाल अंगुली और अंकुरादि अनुशस्त्रकार्यमें लानेचाहिये ।

अथ शस्त्रगुणसंपत्कारणकहतेहैं ।

शस्त्राण्येतानिमतिमान्शुद्धशैक्यायसानितु ।
कारयेत्करणेःप्राप्तंकर्म्मारंकर्मकोविदम् ॥

अर्थ-ए पूर्वोक्त मंडलाग्रादि शस्त्रोंको शुद्ध और तीक्ष्णलोहके बुद्धिमान् वैद्य स्वकर्ममें निपुण और पंडित ऐसे लुहारसे बनवावे। कोई कहताहै कि इनशस्त्रोंको खेडी लोहके और जिस लुहारकेपास सब बनानेके ओजारहो उससे बनवावे।

शस्त्राभ्यासकरनेकेगुण।

प्रयोगज्ञस्यवैद्यस्यसिद्धिर्भवतिनित्यशः। त
स्मात्परिचयःकार्यःशस्त्राणामादितःसदा॥

अर्थ-शस्त्रका पकडना चलाना आदि प्रयोगके जाननेवालेवैद्यको सिद्धि (आरोग्यसंपादन) सदैवहोतीहै। इसीसे वैद्यको उचितहै कि शस्त्रपरिचय (शस्त्रग्रहणका अभ्यास) प्रथमसेही करनाचाहिये।

इतिश्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेसप्तदशस्तरङ्गः॥१७॥

अथातोयोग्यासूत्रीयमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-अबयोग्यासूत्रीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे। योग्या कहिये उत्तमकर्माभ्यास अथवा योग्या कहिये योग्यकास्थापक, उसका सूत्र जिस अध्यायमें हो उसकी व्याख्याकरेंगे।

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपिशिष्यंयोग्यांकारयेत्
छेद्यादिषुस्नेहादिषुचकर्मपथमुपदिशेत्।
सुबहुश्रुतोऽप्यकृतयोग्यःकर्मस्वयोग्योभवति।

अर्थ-सर्वशास्त्रोंके अर्थ पढभीगयाहो तथापि गुरु शिष्यको कर्ममार्गमें योग्यकरे और उसशिष्यको छेद्य (आदिशब्दसे भेद्य वेध्यादि कर्मजानने) और स्नेह (आदिशब्दसे अनुवासन, वमन, विरेचन, स्वेदन आदिका) कर्ममार्ग बतलाना चाहिये अर्थात् इसप्रकार छेदन, इसप्रकार भेदन, इसप्रकार वमन, और विरेचनआदि कर्मकराने चाहिये। यह विधि गुरु शिष्यको बतावे इसका यह कारणहै कि बहुत पढा और बहुश्रुतभी है परंतु जबतक छेद्यभेद्यादि कर्मोंका अभ्यासनहींकरे अर्थात् अपने हाथसे चीराफाडी आदि करके नहीं देखे तावत्कालपर्यंत इसकर्ममें योग्य नहींहोवे।

शिष्यकोदिखानेयोग्यकर्म।

तत्रपुष्पफलालाबूकालिन्दकत्रापुषैर्वारुककर्कारुक
प्रभृतिषुच्छेद्यविशेषान्दर्शयेदुत्कर्त्तनपरिकर्त्तनानिचो
पदिशेत्। दृतिबस्तिप्रसेवकप्रभृतिषूदकपङ्कपूर्णेषुभे
दयोग्याम्। सरोम्णिचर्मण्याततेलेख्यस्य।

अर्थ-तहां कहते हैं कि पेठा, घींया, तरबूज, खीरा, ककडी, कौंला आदिमें छेद्य दिखावे (अर्थात् कहींका कहीं हाथ न चलाजावे इसलिये प्रथम हाथ साधनेको पेठे तरबूजके ऊपर छेद्यकर्मोंको दिखावे) तथा कतरना और परिकर्त्तन कहिये चारों ओरसे कतरना दिखावे (अर्थात् ऐसे रोगमें इतनाटुकडा कतरे और ऐसे रोगोंमें इसप्रकार चारोंतरफसे कतरना यह दिखावे । तथा उसीप्रकार शिष्यके हाथसेभी कतरावे कि जिससे उसको काटने और कतरनेका अभ्यास होजावे)और हति (भस्त्रा वा धोंकनी) पशुआदिका मूत्राशय, प्रसेवक (वीणाकेनीचे अधिक शब्दहोनेके अर्थ जो चमडेसे मढातूंबा होताहै) इत्यादिकोंमें जल, कीच, भरकर भेद्कर्म (जैसे मूत्रमार्गरुकनेमें सलाई डालकर खोलनाआदि) दिखावे । रोमयुक्तचमडेमें लेखनकर्मको दिखावे ।

मृतपशुशिरासूत्पलनालेपुचवेध्यस्य । घूणोपहत काष्ठवेणुनलनालीशुष्कालावूमुखेष्वेष्यस्य । पनस बिम्बीविल्वफलमज्जामृतपशुदन्तेप्वाहार्यस्य । मधू च्छिष्टोपलिप्तेशाल्मलीफलकेविस्राव्यस्य । सूक्ष्म घनवस्त्रान्तयोर्मृदुचर्मान्तयोश्चसीव्यस्य ।

अर्थ-चकरीआदि मरेपशूनकी नसोंमें तथा कमलकीनालमें वेध्यकर्म करके दिखावे । घुनेहुए काष्ठमें पोलेबांसमें, नरसलकीडंडीमें, सूखीघीया इनके मुखपर एष्यकर्म (खोजनेयोग्योंको) दिखावे । कटहर, कंदूरी, बेलफल, इनकी मज्जामें और मृतपशुओंकेदातोंमें आहार्य (उखाडनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे । मधुकेछत्तेमें अथवा सहतलिपटे हुए सेमरके पट्टेपर विस्राव्यकर्मोंको दिखावे । पतले मजबूतवस्त्रके छोरोंपर तथा नरम चमडेके किसीभागमें सीव्य (सीनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे ।

पुस्तमयपुरुषाङ्गप्रत्यङ्गविशेषेषुबन्धयोग्याम् । मृदुमांसपेशीपूत्पलनालेपुचकर्णसन्धिबन्धयोग्याम् । मृदुपुमासखंडेप्वग्निक्षारयोग्यांमुदकपूर्णघटपार्श्वस्रो तस्यलावुमुखादिपुचनेत्रप्रणिधानबस्तिव्रणबस्तिपी डनयोग्यामिति ।

अर्थ-वस्त्रनिर्मित मनुष्यके अंग और प्रत्यंगविशेषोंपर बंधन (बांधनेयोग्य) को दिखावे । नम्रचर्म, मांसपेशी, और कमलनालमें कर्णसंधिबन्धन योग्य क-

ओंको दिखावे। नम्रमांसके टुकडोंमें अग्निकर्म और क्षारयोग्य कर्मोंको दिखावे। जलपूर्णघटपार्श्वोंके छिद्रोंमें और घीयाआदिके मुखमें नेत्रप्रवेशन तथा व्रणबस्तिपीडन योग्य कर्मोंको दिखावे।

एवमादिषुमेधावीयोग्यार्हेषुयथाविधि।
द्रव्येषुयोग्यांकुर्वाणोनप्रमुह्यातिकर्मसु॥
तस्मात्कौशलमन्विच्छन्शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
यस्ययत्रेहसाधर्म्यंतत्रयोग्यांसमाचरेत्॥

अर्थ–इसीप्रकार बुद्धिमान् पुरुष औरभी पुष्प फलादिकोंमें योग्यकर्मोंको अपनीबुद्धिसे बतलावे। इसप्रकार द्रव्योंमें अभ्यासकरानेसे वहशिष्य चीरने फाडने आदिकर्ममें मोहको नहीं प्राप्तहोवे इसीसे कुशलहोनेकी इच्छा जिसके उसको शस्त्र, क्षार, और अग्नि इत्यादि कर्मोंके यथायोग्य अर्थात् जिसद्रव्यमें जैसी समानता पाई जावे उसको उसीमें शिक्षादेवे।

इतिश्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरेअष्टादशस्तरंगः॥ १८॥

अथातोऽष्टविधशस्त्रकर्मण्यमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब अष्टविधशस्त्रकर्म जिसमें ऐसीअध्यायकी व्याख्याकरेंगे।

छेद्यकर्मकेयोग्य।

छेद्याभगंदराग्रन्थिःश्लैष्मिकस्तिलकालकः। व्रणवर्त्मार्बुदा न्यर्शश्चर्मकीलोऽस्थिमांसगम्। शल्यंजतुमणिर्मांससंघातो गलशुण्डिकाः। स्नायुमांसशिराकोथेवल्मीकशतपोनकः। अध्रुपश्चोपदंशाश्चमांसकन्द्याधिमांसकः।

अर्थ–भगंदरादिरोग, कफजन्यगाठ, तिलकालक, व्रणवर्त्मरोग, अर्बुद, बवासीर, चर्मकीलक, हड्डी, और मांसगतशल्य, लहसन, मांससमूह, गलशुंडिका, स्नायुमांस, और नाडी आदिकापचन (सडजाना) वल्मीक, शतपोनक, अध्रुप, उपदंश, मांसकंदी, और अधिमांसक, इतनेरोग छेद्य (छेदनेयोग्य) हैं।

भेदनेकेयोग्य।

भेद्याविद्रधयोऽन्यत्रसर्वजाग्रंथयस्त्रयः। आदितोयेविसर्पा श्ववृद्धयःसविदारिकाः। प्रमेहपिडिकाशोफस्तनरोगावम

न्थकाःकुम्भिकानुशयीनाडचोवृन्दोपुष्करिकालजी। प्रा
यशःक्षुद्ररोगाश्चपुप्पुटौतालुदन्तजौ। तुण्डकेरीगिलायुश्च
पूर्वेयेचप्रपाकिणः। वस्तिस्तथाश्मरीहेतोर्मेदोजायेचकेचन।

अर्थ–सन्निपातकी विद्रधिकेविना, और सबविद्रधि, तीनप्रकारकीगांठ, प्रथमसेही बढनेवाली विसर्पवृद्धि, विदारिका, प्रमेहपिडिका, सूजन, स्तनरोग अवमंथक, कुंभिका, अनुशयी, नाडीव्रण, वृन्द, पुष्करिका, अलजी, क्षुद्ररोग, तालुपुप्पुट, दंतपुप्पुट, तुंडकेरी, गिलायु, और जो पूर्वपाकी रोगहै, वस्ति, और पथरीकेहेतुरूपजो रोगहै तथा मेदासे उत्पन्नहोनेवालेरोग ए सब भेदनेयोग्यहैं।

लेख्ययोग्य।

लेल्याश्चतस्रोरोहिण्यःकिलासमुपजिह्विका।
मेदोजोदंतवैदर्भोग्रंथिवर्त्माधिजिह्विका।
अर्शांसिमण्डलंमांसकंदीमांसोन्नतिस्तथा।

अर्थ–चारप्रकारकी रोहिणी, किलास, उपजिह्विका, मेदसेप्रगट दंतवैदर्भ, और गांठ, वार्त्मरोग, अधिजिह्वा, ववासीर, मंडल, मांसकंदी, मांसोन्नति, इतनेरोग लेख्य हैं। अर्थात् ऊपरसे छीलने योग्यहैं।

वेध्यऔरएष्य।

वेध्याशिरावहुविधामूत्रवृद्धिदकोदरम्। एष्या
नाड्यःसशल्याश्चव्रणाउन्मार्गिणश्चये।

अर्थ–अनेकप्रकारकीशिरा (नस वा रग) मूत्रवृद्धि, और दकोदर,ए रोग वेध्य हैं। सशल्यनाडीव्रण और उन्मार्गिव्रण ए रोग एष्य (चूसकरखींचनेयोग्य) हैं।

आहार्यऔरस्राव्य।

आहार्याःशर्करास्तिस्रोदन्तकर्णमलाश्मरी। शल्यानिमूढ
गर्भाश्चवर्चश्चनिचितंगुदे। स्राव्याविद्रधयः पञ्चभवेयुःसर्व
जाद्दते। कुष्ठानिवायुः सरुजः शोफोयश्चैकदेशजः।

अर्थ–त्रिविधशर्करा रोग, दन्तमल, कर्णमल, पथरी, शल्य, मूढगर्भ, गुदामें मलकासमूह, एरोग आहार्य अर्थात निकालने योग्य हैं। संनिपातकी को त्यागकर पांच विद्रधि, कोढ, पीडासहित वायुरोग, एक अंगकी सूजन।

पाल्यामयाः श्लीपदानिविषजुष्टस्यशोणितम् । अर्बुदानिविसर्पांश्चग्रंथयश्चादितस्तुये । त्रयस्त्रयश्चोपदंशाःस्तनरोगाविदारिका । शौपिरोगलशालूकंकण्टकाः कृमिदन्तकःदन्तवेष्टः सोपकुशःशीतादोदन्तपुप्पुटःपित्तासृक्कफजाश्चोष्ठ्याःक्षुद्ररोगाश्चभूयशः ।

अर्थ-कर्णपालीके रोग, श्लीपद, विषदूषित रुधिर, अर्बुद, विसर्प, वातकी पित्तकी और कफकी गांठ, उपदंश, स्तनरोग, विदारिका, शौषिर, गलशालूक, कंटक, कृमिदंतक, मसूढेके रोग, उपकुश, शीताद, दंतपुप्पुट, पित्तरक्त, कफसे होनेवाले होठोंके विकार, और बहुतसे क्षुद्ररोग ए सब रोग स्राव्य हैं ।

सीव्यरोगए ।

सीव्यामेदःसमुत्थाश्चभिन्नासुलिखितागदाः ।
सद्योव्रणाश्चयेचैवचलसंधिव्यपाश्रयाः ।

अर्थ-मेदसे होनेवाले रोग, चिरेहुए लिखित (छिलेहुए) सद्योव्रण और जो चलसंधिके आश्रित हैं, ए रोग सीव्यहैं अर्थात् सीने लायक हैं ।

नक्षाराग्निविषैर्जुष्टानवामारुतवाहिनः । नांतर्लोहितशल्याश्च तेषुसम्यग्विशोधनम् । पांशुरोमनखादीनिचलमस्थिभवेच्च यत् । अहृतानियतोऽसृनिपाचयेयुर्भृशंव्रणम्।रुजश्चविविधाः कुर्य्युस्तस्मादेतान्विशोधयेत्। ततोव्रणंसमुन्नम्यस्थापयित्वा यथास्थितम् ।

अर्थ-जो व्रण क्षार, अग्नि और विषसंयुक्त हैं उनका सीव्य कर्म न करे। तथा जो पवनके वहनेवाले, तथा जिनके भीतर लोहितशल्य है, उनकाभी सीव्यकर्म न करे किंतु ऐसे व्रणोंका शोधन कर्म करे । जिनमें धूल, बाल, नख, आदि होवे और जिसमें चलायमान हड्डी होवे, इन सबको निकाल कर व्रणको, शुद्धकरे यदि पूर्वोक्त धूलवाल न निकाले तो वे व्रणको पचाय अनेक प्रकारकी पीडा करते हैं अतएव व्रणसे धूल आदिका विशोधन अवश्य करे, पीछे उसको नरमकर यथास्थित स्थापन करे ।

सीव्येत्सूक्ष्मेणसूत्रेणवल्केनाश्मन्तकस्यवा । शणजक्षौमसूत्रा-

भ्यांस्नाय्वावालेनवापुनः । मूर्वागुडूचीतानैर्वासीव्येद्वेल्लित कंशनैः॥सीव्येद्गोफणिकांवापिसीव्येद्वातुन्नसेविनीम् । ऋजु ग्रंथिमथोवापियथायोगमथापिवा ।

अर्थ-जब व्रण शुद्ध हो जावे तब उसको बहुत बारीक डोरेसे अथवा वक्कलके सूतसे अथवा पटसन वा सन अथवा रेसम, तात, बाल इनसे सीना चाहिये । अथवा मूर्वा और गिलोयके टेढतंतूओंसे व्रणके दोनों प्रान्त मिलायकर धीरे २ सीना चाहिये । गोफणिका, तुन्नसेवनी, अथवा नम्रग्रंथी ए तीन प्रकार अथवा औरभी जो सीनेके योग्य हैं उनको जंहा जैसी चाहिये ऐसे सिलाई करे ।

अथसूची (सुई).

देशेऽल्पमांसेसन्धौचसूचीवृत्तांगुलद्वयम् । आयतात्र्यंगु लान्यस्त्रामांसलेवापिपूजिता । धनुर्वक्राहितामर्मफलको शोदरोपरि । इत्येतास्त्रिविधाः सूचीस्तीक्ष्णाग्राःसुसमा हिताः । कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमंडलाः ।

अर्थ-थोडे मांसवाले प्रदेशमें और सन्धिमें दो अंगुल लंबी और गोल सुई होनी चाहिये, और तीन अंगुल लंबी और कुछ त्रिकोण सूई मांसल प्रदेश अर्थात् जहां अधिक मांस होवे उस जगेकेलिये उत्तम है ओर धनुषके समान टेढी ऐसी सुई मर्मफल कोश, और उदरके ऊपर हितहै । ए तीन प्रकारकी सुईयोंके अग्र-भाग तीक्ष्ण और मालतीपुष्पके डँठरेके समान आगेको गोल होनी चाहिये ।

वहुतदूरऔरवहुतसमीपटाँकेलगानेकेदोष ।

नातिदूरेनिकृष्टेवासूचिकर्मणिपातयेत् । दूराद्रुजोव्रणोष्टस्यस न्निकृष्टेऽवलुञ्चनम् । अथक्षौमपिचुच्छन्नंसुस्यूतंप्रतिसारयेत् । प्रियङ्ग्वञ्जनयष्ट्याह्वरोध्रचूर्णैःसमन्ततः । शल्लकीफलचूर्णैर्वा क्षौमध्यामेनवापुनः । ततोव्रणंयथायोगंवद्ध्वाचारिकमादिशेत्

अर्थ-जिस समय वैद्य किसी घावको सीवे तो अत्यंत पास २ तथा बहुत दूर २ टाँकें न देवे । दूर २ टाँके देनेसे पीडा होती है । और व्रण भरनेसे रहजाताहै । और बहुत पास २ टांके देनेसें सब आपसमें मिलजाते हैं । इस प्रकार यथायोग्य टांके देकर उन टांकोंके ऊपर पटवस्त्र तथा रूईके गालेद्वारा आच्छादन करे । तथा प्रियंगु, सुरमा, मूलहटी, लोध और शल्लकी फल आदिके चूर्णद्वारा प्रतिसारण

करे। तदनंतर नियमितरूप व्रणबंधन करिके रोगीको कर्त्तव्य कर्म बतलावे अर्थात् अमुक कर्म करना तुमको पथ्यहै और अमुक कर्म अपथ्य है।

एतदष्टविधंकर्मसमासेनप्रकीर्तितम्।चिकित्सितेषुकात्स्न्र्यें नविस्तरस्तस्यवक्ष्यते।हीनातिरिक्तंतिर्यक्चगात्रच्छेदन मात्मनः। एताश्चतस्रोऽष्टविधेकर्मणिव्यापदः स्मृताः।

अर्थ–इस जंगे यह आठ प्रकारका शस्त्रकर्म संक्षेपसे कहाहै, इसको विस्तारपूर्वक आगे चिकित्सास्थानमें कहेंगे। इस आठ प्रकार शस्त्र क्रियाका हीनता, अतिरिक्तता, तिर्यकूछेद, और अपने देहका छेद होना ये अष्टविध शस्त्रकर्ममें चार प्रकारकी व्यापादे (व्याधि) कहीहै। ये चार प्रकारके दोष रहित वैद्य होना चाहिये।

कुशस्त्रचलानेके अवगुण।

अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्चभावैः।
यदाप्रयुंजीतभिषक्कुशस्त्रंतदासशेषान्कुरुतेविकारान्॥
तंक्षारशस्त्राग्निभिरौषधेश्चभूयोऽभियुञ्जानमयुक्तियुक्तम्।
जिजीविषुर्दूरतएववैद्यंविवर्जयेदुग्रविषाग्नितुल्यम्॥
तदेवयुक्तंत्वतिमर्मसंधीन्हिंस्याच्छिरास्नायुमथास्थिचैव।
मूर्खप्रयुक्तंपुरुषंक्षणेनप्राणैर्वियुंज्यादथवाकथंचित्॥

अर्थ–अज्ञानसे, लोभसे, अहितवाक्यके कहनेसे, भय, मोह और अन्यभावसे यदि वैद्य खोटेशस्त्रका प्रयोगकरे तो वो शस्त्र अनेक विकारोंको करेहै। जो चिकित्सक अयौक्तिक अर्थात् युक्तिरहितहो, क्षार, शस्त्र, अग्नि और औषधको वारंवार प्रयोगकरे उसवैद्यको जीवनेकी इच्छावाला रोगी दूरसेही त्यागदेव। मर्म और संधिस्थान इनका अतिक्रम करके शस्त्रादि प्रयोग करनेसे शिरा, स्नायु और अस्थिपर्यंतका क्षय होकर रोगीका जीवन विनाश होवै।अथवा अनेक क्लेशोंसे प्राण न बचे इसीसे मूर्खवैद्यसे शस्त्रकर्म कदाचित् नहीं करना चाहिये।

मर्मविद्धकेलक्षण।

भ्रमः प्रलापः पतनंप्रमोहोविचेष्टनंसंलयनोष्णताच। स्र-
स्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्चतास्ताः॥
मांसोदकाभंरुधिरंचगच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्धसंख्येष्वपिहिक्षतेषुसामान्यतोमर्मसुलिङ्गमुक्तम्

भ्यांस्नाय्वावालेनवापुनः । मूर्वागुडूचीतानैर्वासीव्येद्वेल्लित कंशनैः॥सीव्येद्गोफणिकांवापिसीव्येद्वातुन्नसेविनीम् । ऋजु ग्रंथिमथोवापियथायोगमथापिवा ।

अर्थ–जब व्रण शुद्ध हो जावे तब उसको बहुत बारीक डोरेसे अथवा वक्कलके सूतसे अथवा पटसन वा सन अथवा रेसम, तात, बाल इनसे सीना चाहिये । अथवा मूर्वा और गिलोयके टेढतंतुओंसे व्रणके दोनों प्रान्त मिलायकर धीरे २ सीना चाहिये । गोफणिका, तुन्नसेवनी, अथवा नम्रग्रंथी ए तीन प्रकार अथवा औरभी जो सीनेके योग्य हैं उनको जंहा जैसी चाहिये ऐसे सिलाई करे ।

अथसूची (सुई).

देशेऽल्पमांसेसन्धौचसूचीवृत्तांगुलद्वयम् । आयतात्र्यंगु लात्र्यस्रामांसलेवापिपूजिता । धनुर्वक्राहितामर्मफलको शोदरोपरि । इत्येतास्त्रिविधाः सूचीस्तीक्ष्णाग्राःसुसमा हिताः । कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमंडलाः ।

अर्थ–थोडे मांसवाले प्रदेशमें और सन्धिमें दो अंगुल लंबी और गोल सुई होनी चाहिये, और तीन अंगुल लंबी और कुछ त्रिकोण सुई मांसल प्रदेश अर्थात् जहां अधिक मांस होवे उस जगेकेलिये उत्तम है और धनुषके समान टेढी ऐसी सुई मर्मफल कोश, और उदरके ऊपर हितहै । ए तीन प्रकारकी सुईओंके अग्रभाग तीक्ष्ण और मालतीपुष्पके डाँठरेके समान आगेको गोल होनी चाहिये ।

बहुतदूरऔरबहुतसमीपटांकेलगानेकेदोष ।

नातिदूरेनिकृष्टेवासूचिकर्मणिपातयेत् । दूराद्रुजोव्रणौष्ठस्यस न्निकृष्टेऽवलुञ्चनम् । अथक्षौमपिचुच्छन्नंसुस्यूतंप्रतिसारयेत् । प्रियङ्ग्वञ्जनयष्ट्याह्वरोध्रचूर्णैःसमन्ततः । शल्लकीफलचूर्णैर्वा क्षौमध्यामेनवापुनः । ततोव्रणंयथायोगंबद्ध्वाचारिकमादिशेत्

अर्थ–जिस समय वैद्य किसी घावको सीवे सो अत्यंत पास २ तथा बहुत दूर २ टांके न देवे । दूर २ टांके देनेसे पीडा होती है । और व्रण भरनेसे रहजाताहै । और बहुत पास २ टांके देनेसे सब आपसमें मिलजाते हैं । इस प्रकार यथायोग्य टांके देकर उन टांकोंके ऊपर पटवस्त्र तथा रूईके गालेद्वारा आच्छादन करे । तथा प्रियंगु, सुरमा, मूलहटी, लोध और शल्लकी फल आदिके चूर्णद्वारा प्रतिसारण

करे। तदनंतर नियमितरूप व्रणबंधन करिके रोगीको कर्त्तव्य कर्म बतलावे अर्थात् अमुक कर्म करना तुमको पथ्यहै और अमुक कर्म अपथ्य है।

एतदष्टविधंकर्मसमासेनप्रकीर्तितम्।चिकित्सितेपुकात्स्न्येंनविस्तरस्तस्यवक्ष्यते। हीनातिरिक्तंतिर्यक्चगात्रच्छेदनमात्मनः। एताश्चतस्रोऽष्टविधेकर्मणिव्यापदः स्मृताः।

अर्थ-इस जगे यह आठ प्रकारका शस्त्रकर्म संक्षेपसे कहाहै, इसको विस्तारपूर्वक आगे चिकित्सास्थानमें कहेंगे। इस आठ प्रकार शस्त्र क्रियाका हीनता, अतिरिक्तता, तिर्यक्छेद, और अपने देहका छेद होना ये अष्टविध शस्त्रकर्ममें चार प्रकारकी व्यापादे (व्याधि) कहीहै। ये चार प्रकारके दोष रहित वैद्य होना चाहिये।

कुशस्त्रचलानेके अवगुण।

अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्चभावैः।
यदाप्रयुंजीतभिषक्कुशस्त्रंतदासशेषान्कुरुतेविकारान्॥
तंक्षारशस्त्राग्निभिरौषधैश्चभूयोऽभियुञ्जानमयुक्तियुक्तम्।
जिजीविषुर्दूरतएववैद्यंविवर्जयेदुग्रविषाग्नितुल्यम्॥
तदेवयुक्तंत्वतिमर्मसंधीन्हिंस्याच्छिरास्नायुमथास्थिचैव।
मूर्खप्रयुक्तंपुरुषंक्षणेनप्राणैर्वियुंज्यादथवाकथंचित्॥

अर्थ-अज्ञानसे, लोभसे, अहितवाक्यके कहनेसे, भय, मोह और अन्यभावसे यदि वैद्य खोटेशस्त्रका प्रयोगकरे तो वो शस्त्र अनेक विकारोंको करेहै। जो चिकित्सक अयौक्तिक अर्थात् युक्तिरहितहो, क्षार, शस्त्र, अग्नि और औषधको वारंवार प्रयोगकरे उसवैद्यको जीवनेकी इच्छावाला रोगी दूरसेही त्यागदेवे। मर्म और संधिस्थान इनका अतिक्रम करके शस्त्रादि प्रयोग करनेसे शिरा, स्नायु और अस्थिपर्यंतका घाव होकर रोगीका जीवन विनाश होवे। अथवा अनेक कष्टोंसे प्राण न बचे इसीसे मूर्खवैद्यसे शस्त्रकर्म कदाचित् नहीं करना चाहिये।

मर्मचिद्धहोनेकेलक्षण।

भ्रमः प्रलापः पतनंप्रमोहोविचेष्टनंसंलपनोष्णताच। स्रस्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्चतास्ताः॥
मांसोदकाभंरुधिरंचगच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्धसंख्येष्वपिविद्धमात्रेषुसामान्यतोमर्मसुविद्धमुक्तम्॥

अर्थ-पंच मर्मस्थानमें शस्त्र लगनेसे भ्रम, प्रलाप, गिरजाना, मोह, दुष्टचेष्टा, पुकारना, गरमी, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, ऊर्ध्ववात, वातकी तीव्रपीडा, मांसके धोनेसे जैसा जल निकलैहै ऐसा रुधिर निकसे, तथा सर्वइन्द्रियोंकी शक्तिका लोपहोना ए लक्षण होते हैं ।

छिन्नभिन्नशिराके लक्षण ।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमंप्रभूतंरक्तंस्रवेद्वैक्षततश्चवायुः । करोति
रोगान्विविधान्यथोक्तान्छिन्नासुभिन्नास्वथवाशिरासु ॥

अर्थ-शिरा (रग) के छिन्न भिन्न होनेसे जो घाव होजावे उसमेंसे अत्यंत अधिक वीरबहूटीके समान लाल रुधिर और वायु निकले तथा अनेक प्रकारके रोग होतेहैं ।

स्नायुविद्धके लक्षण ।

कौब्जंशरीरावयवाङ्गसादःक्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च ।
चिराद्व्रणोरोहतियस्यचापितंस्नायुविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ॥

अर्थ-स्नायुविद्धहोनेसे शरीका कुबडा होना, तथा सर्व अवयवोंका रहजाना, सर्व कार्यमें अशक्ति तथा अत्यंत पीडाहो और घावके भरनेमें बहुत दिन लगतेहैं ।

सन्धिस्थानमेंक्षतहोनेकेलक्षण ।

शोफातिवृद्धिस्तुमुलारुजश्चबलक्षयः पर्वसुभेदशोफौ ।
क्षतेषुसन्धिष्वचलाचलेषुस्यात्सन्धिकर्मोपरतिश्चलिङ्गम् ॥

अर्थ-सन्धिस्थानमें घाव होनेसे सूजनकी अतिवृद्धिहो, प्रबलपीड़ा, दुर्बलता, पर्वस्थलोंमें टूटेके समान पीड़ा और सूजन तथा संधिकर्मका उपराम अर्थात् अंगचालन विषयमें सामर्थ्यका न होना ए लक्षण होते हैं ।

अस्थिविद्धके लक्षण ।

घोरारुजोयस्यनिशादिनेषुसर्वास्ववस्थासुनशान्तिरस्ति ।
तृष्णाङ्गसादौश्वयथुश्चरुक्चतमास्थिविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ॥

अर्थ-अस्थि विद्धहोनेसे दिन रात्र घोरतर पीड़ा, प्यास, अंगोंका रहजाना, सूजन और वेदना उपस्थित होवे । अस्थिविद्ध व्यक्तिको वैद्य किसी अवस्थामें आराम नहीं करसकता ।

मांसमर्मविद्धकेलक्षण।

यथास्वमेतानिविभावयेयुर्लिङ्गानिमर्मस्वभिताडितेषु। स्प
र्शंनजानातिविपाण्डुवर्णोयोमांसमर्मस्वभिताडितःस्यात् ॥

अर्थ-मांसमर्ममें घाव होनेसे स्पर्शज्ञानका अभाव, तथा शरीरका पांडुवर्ण हो।

शस्त्रकर्ममेंकुवैद्यकीनिन्दा।

आत्मानमेवाथजघन्यकारीशस्त्रेणयोहन्तिहिकर्मकुर्वन्।
तमात्मवानात्महनंकुवैद्यंविवर्जयेदायुरभीप्समानः ॥

अर्थ-जो कुवैद्य शस्त्रक्रियाकालमें अपने अंगकोही शस्त्रसे छेदलेवे ऐसे आत्महननकर्ता कुवैद्यसे आयुकी कामनावाले रोगीको कदाचित् शस्त्रकर्म न कराना चाहिये।

तिर्यक्प्रणिहितेशस्त्रेदोषाः पूर्वमुदाहृताः।
तस्मात्परिचरन्दोषान्कुर्याच्छस्त्रनिपातनम् ॥

अर्थ-तिरछे शस्त्रके लगनेसे जो दोष प्रगट होते हैं वो प्रथम लिखआए हैं। वो उक्त दोष जैसे न होवे उस रीतिसे सावधानीके साथ शस्त्रपात करना चाहिये।

आगे जो चार श्लोक हैं वे वैद्यपरीक्षामें कहेंगे।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे एकोनविंशस्तरंगः।

इतिशस्त्रचिकित्साविधिः समाप्तः।

(इसके आगे दूसरा भाग देखो)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-कल्याण-मुंबई.

जाहिरात ।

मिताक्षरा (धर्मशास्त्र) पद योजना

तात्पर्य्यार्थं भाषाटीका।



इस असारसंसारमें मर्यादास्थितीके हेतु अनेक प्राचीन आचार्योंका मत लेकर "आचार" "व्यवहार" "प्रायश्चित्त" नामक तीनभागोंमें महर्षि याज्ञवल्क्यजीने भारतवर्षके चतुर्वर्णोंके नीतिपूर्वक स्वधर्ममें तत्पर रहनेके हेतु रचनाकी. आचाराध्यायमें गर्भाधानसे लेकर मरणपर्यन्तके समस्त संस्कार, सब जातियोंकी उत्पत्ति, ब्राह्मणादि चतुर्वर्णोंके धर्माचरण आठ प्रकारके विवाहोंके लक्षण, भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंका विवेक, दानलेनेदेनेकी विधि, श्राद्ध तथा नवग्रहोंकी शान्ति, राजाओंके धर्माचरण वर्णित हैं ।

व्यवहाराध्यायमें न्याय सभा निरूपण, दीवानी फौजदारी मुकद्दमोंके निर्णयकी विधि, भूमिसम्बन्धी झगड़ोंका निपटारा, ऋण देने लेने तथा गिरवी रखनेकी विधि, साक्षियोंका सत्यासत्य तथा दण्डका विचार, दस्तावेज लिखनेकी परिपाटी विष देनेवालेकविचार, हिस्सा बांटनेकी विधि, १२ प्रकारके पुत्रोंका वर्णन, वारिस होने तथा दत्तक लेनेकी विधि, स्त्री कन्याके धनका निर्णय, सीमाके झगड़ोंका निपटारा, देय अदेय दानोंका विचार, राजसम्बन्धी गूढ़ संचित समय संकेतोंके व्यतिक्रम का विचार, वेतन किराया मजूरी आदि झगडोंका निर्णय, चोर डाकू लुटेरे आदिकों का विचारादि विस्तारपूर्वक वर्णित हैं ।

प्रायश्चित्ताध्यायमें जलदानप्रकार, आशौच सूतकादि निर्णय, जगदुत्पत्ति प्रपंच विस्तार, सर्व प्रायश्चित्तकरण दोष नरकादि लक्षण भेद व सुरापानादि महापातकों के प्रायश्चित्त कथन, प्रत्येक